संघर्ष और समर्पण

Sangharsha Aur Samarpan.

Sanhaiyalal Ojha "Saneh"

Price 5/8/- Pages 633.

लेखक

सन्हैयालाल ओझा 'स्नेह'

एम० ए०, साहित्यरत्न

[illegible]

Raj Hans Prakashan,

राजहंस प्रकाशन, दिल्ली Dehli

प्रकाशक :
राजहंस प्रकाशन,
सदर बाजार,
दिल्ली ।

मूल्य
साढ़े पांच रुपये

मुद्रक :
राजहंस प्रेस,
दिल्ली ।

आत्म-निवेदन

१५ अगस्त १९४७ के दिन, जब कि भारतवर्ष का एक युग, जैसा भी वह था, समाप्त हुआ, मेरा यह उपन्यास भो समाप्त हुआ था। उस युग का अंतिम अध्याय आरंभ होता है सन् १९४२ के अगस्त-मास से; मैंने इस उपन्यास का लेखन लगभग एक माह पूर्व— १३ जुलाई १९४२—प्रारंभ किया था !

मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि उस युग के समान ही मेरा उपन्यास भी ज्योतिर्मय है, यद्यपि मैं यह कहना चाहूंगा कि उन दिनों के समाज की सांस में जिन वैचारिक धारणाओं की गन्ध थी, उनका थोड़ा-सा संश्लिष्ट चित्र इस उपन्यास के पात्रों द्वारा देने का प्रयत्न किया गया है। यही नहीं, प्रयत्न की दिशा थोड़ी और आगे तक गई है : कि इन धारणाओं का निरपेक्ष रूप से मूल्यांकण किया जाए ! किसी भी समाज को कल्याण और प्रगति की कसौटी पर कसने के लिए यह आवश्यक है कि उस समाज की तत्कालीन मान्यताओं (Standards) को और मूल्यों (Values) को समझने का प्रयत्न किया जाए। जिसे समाज का दर्पण कहा जाता है उस साहित्य में, और जिसमें शाश्वत-जीवन की विशिष्ट (individualistic) धाराओं का आलेखन होता है, उस उपन्यास-साहित्य में इस प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता रहती ही है। प्रस्तुत-उपन्यास में ऐसे ही विशिष्ट व्यक्तित्वों (Personalities) का संधान किया गया है जो शाश्वत जीवन का प्रबल स्रोत लेकर तो अवतीर्ण होते हैं, किंतु जिनके प्रवाह की दिशा स्थिर होती है उस द्वन्द्व के द्वारा, जो शाश्वत जीवन की गति में, समाज में प्रचलित धारणाओं के आघात-प्रतिघात से उत्पन्न होता है।

इन धारणाओं का विश्लेषण करने में मैंने सम्पूर्ण रूप से तटस्थ रहने का प्रयत्न किया है। पुष्ट-व्यक्तित्वों की स्थापना के लिए यह नितांत

आवश्यक भी है। इतना होने पर भी मैं एक स्थिर सिद्धान्त लेकर चला हूँ : कि किसी भी प्रकार की सामाजिक विचार-धारा के प्रवर्त्तन में, मूल में कल्याण ही की भावना रहती है, बुराई का अंश उसमें बाद में किन्हीं स्वार्थों के कारण पैदा हो जाता है। जान-बूझ कर मैंने बुराई के पहलू को नजर अन्दाज कर दिया है, कि हम समाज के निर्माण की दिशा में सब ओर से सार संग्रह करते जाएं।

पर ये सब बातें तो पाठकों के स्वयम् देखने परखने की हैं। यदि मैं कहीं गुमराह हुआ हूँ, तो मुझे पाठकों की दूरन्देशी का भरोसा है; और यदि कहीं मंजिल की ओर बढ़ पाया हूँ, तो कहना चाहूँगा कि मेरी कलम मुझे अकस्मात् ही उधर घसीट ले गई है।

इन्दौर के नवयुग साहित्य सदन के अध्यक्ष श्री गोकुलदास जी धूत का नाम मुझे बड़ा डरते-डरते लेना पड़ रहा है, कि कहीं वे कुपित न हो जाएँ। उन्होंने यदि जल्दी समाप्त करने को बार बार प्रेरणा न दी होती, तो प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में पाँच वर्ष की अपेक्षा, छः सात–आठ या और भी अधिक वर्ष लग सकते थे। और राजहंस प्रकाशन तक मुझे खींच ले जाने का श्रेय भी इन्हीं को है किंतु उनके उपकार की बात इससे अधिक नहीं कह सकूंगा। वे मेरे आत्मीय हैं। उन्होंने जो कुछ मेरे लिए किया है, वह आत्मीयता के कारण किया है। आत्मीयता के क्षेत्र में कृतज्ञता की बात कुछ चलती नहीं है।

एक और नाम उल्लेख करने का लोभ मैं छोड़ नहीं सकता, यद्यपि बड़े संकोच के साथ। वह है इन्दौर-निवासी पं॰ प्रभाकर दूबे काव्य-तीर्थ का। मेरे साहित्यिक-जीवन के निर्माण में उनका उतना ही श्रेय है, जितना मेरे पार्थिव जीवन के निर्माण में मेरे माता-पिता का। उनके और मेरे सम्बन्ध की सीमा-रेखा कागज पर स्पष्ट करने की वस्तु नहीं है।

मेरे कई मित्रों ने भी इस उपन्यास के कई अंशों को पढ़ कर या सुन कर मुझे बहुत उत्साह दिया है। मेरे एक प्रगतिवादी मित्र श्री

अमर साहित्य-रत्न ने तो कई बार बहस करके मेरे दुरूह-मार्गों को स्पष्ट करने की स्फूर्त्ति दी है। इन सब मित्रों को मैं कृतज्ञता के साथ स्मरण किए बिना आगे नहीं बढ़ सकता।

और यही क्यों !—आज जब राजहंस प्रकाशन की कृपा के द्वारा, यह उपन्यास आपके हाथों में पहुँच सका है, तो मैं यह आशा क्यों न करूं कि मेरी अक्षमताओं और त्रुटियों से सहानुभूति रखते हुए आप इस समस्त उपन्यास को तद्गत-भाव से पढ़ जाएंगे !—लेखक की चरम-आशा और परम-आकांक्षा यही तो है ! तब आपके अतिरिक्त मैं और किसे अपनी कृतज्ञता का स्तबक अर्पण करूं ?

उदयपुर	विनयावनत
पौष शुक्ला १४, २००६ वि०	कन्हैयालाल ओझा, 'स्नेह'

संघर्ष
और
समर्पण

सन्ध्या को पाँच बजे नवनीत आफिस से लौटकर घर आया, तो उस का मन बहुत उत्फुल्ल न था ! दिन भर की मेहनत ही कम क्लांति का कारण नहीं होती; आज तो वह अपने अफसर से चार चोंचें भी लड़ा चुका है। परन्तु नवनीत को जो जानते हैं, वे ठीक जानते हैं कि इन बातों का बहुत अधिक प्रभाव नवनीत पर पड़ता कभी देखा नहीं गया !

बैठक के दरवाजे में घुसते ही देखा कि माया बैठी हुई है !

माया—नई तो जरूर नहीं, पर इतनी पुरानी भी नहीं कि नवनीत उसे एक आदत शुमार करले, खास कर तब, जब कि वह उसकी पत्नी ही है ! परन्तु, सब कुछ होते हुए भी, नवनीत को कुछ नया ही मालूम दिया ! माया कभी उसके कमरे में उसे इस तरह बैठी हुई नहीं मिलती !

टाई की गाँठ ढीली करते हुए उसने सहज हास्य से पूछा, "कहो डीयर, आज यहां कैसे ?"

माया की मूर्ति भी, मालूम दिया, आह्लाद की न थी। आँखों में कुछ रोष तो पहले से ही था, शायद सम्बोधन की अप्रियता ने उसकी भवें भी टेढ़ी करदीं। वह बोली—

"मैं आज तुम्हारे सिर का बोझ उतार देना चाहती हूँ !"

नवनीत कोट उतार चुका था। ड्रेसिंग टेबल पर पड़े हुए काँच में उसने अपना चेहरा देखा, और मानो उसी को देखकर उसके ओठों पर एक मुस्कान स्फीत हो उठी ! बोला, "एकदम उतार देना चाहती हो ?"

"हँसी में बात मत उड़ाओ। मैं गम्भीर होकर कह रही हूँ !"

"खूब, खूब ! गम्भीर होकर कह रही हो सो तो समझता हूँ दोस्त !

परन्तु क्या यह भी जरूरी है कि मैं भी अपने चेहरे पर एकाध मुहर्रम बना लूँ ?

"नहीं जी ! मुहर्रम बनाने की तुम्हें क्या जरूरत है। पुरुष होकर भला पुरुष-व्यवस्था में कोई दण्ड क्यों सहन करे ?—खास कर तब, जब कि एक की आँखों का मुहर्रम ही दूसरे की आँखों की हँसी है !"

"लेकिन इससे कौन इन्कार करता है कि मातम का होकर भी मुहर्रम एक जलसा है, जिसमें सभी खुश दिखाई देते हैं—दिली तौर से। मातम का तो खाली नाटक होता है नाटक, जैसा कि अक्सर पति-पत्नियों में हुआ करता है ! हालाँकि आज तुम्हें देखकर शायद यह भरोसा करने की हिम्मत न हो ! पर खैर, जाने दो ! बोझ उतारने की बात कर रही थी न ?, आधे रास्ते में भी बोझ उतर जाए, बात तो मीठी ही है ! मजदूरी की मैं चिन्ता नहीं करता, मगर मित्र हर्जाने का दावा तो न करोगी न ! मेरी तो कमर ही टूट जाएगी।"

"तुम जैसी ओछी मैं नहीं हूँ !"

"सचमुच नहीं हो !—जब कि तुम खुद ही मेरा बोझ उतार देना चाहती हो, तो कौन तुम्हें ओछी कहेगा ? कहो, क्या करना होगा मुझे ? झुकना ?"

"नहीं नहीं, झुकने क्यों लगे !—लाज न लग जाएगी !—मुझे मेरे पीहर भेज दो, बस !"

"पीहर ?" दुहरा कर नवनीत ने फिर काँच में मुँह देखा, सिगरेट निकाली, एक ज़ोर का कश खींचकर माया के मुँह पर धुँआ छोड़ते हुए वह फिर मुस्करा उठा, व्यंग से नहीं, सरल भाव से ! "तो पीहर जा रही हो !" कहता हुआ पैर फैला कर आराम कुर्सी पर आँख मूँद नवनीत बैठ गया !

माया उसी तरह सोफे पर बैठी रही, केवल उसकी तीक्ष्ण आँखें नवनीत पर टकराती रहीं ! नवनीत ने एक कश खींचा, धुँएँ के बादल को कमरे में छोड़ता हुआ बोला, "कितने रुपए चाहिएँ ?"

'एक भी नहीं !''

''एक भी नहीं ! तब तो तुम जा सकती हो, चाहो तो आज ही ! आठ बजे भी तो एक गाड़ी छूटती है ?''

''उसी से जाने को कह रही हूँ !''

''जरूर जरूर ! मैं समझा पैसे का सवाल होना लाजिमी है, तब तो पहली तारीख पर रही !—अच्छा अभी तो साढ़े पाँच भी नहीं हुआ। हरनाम से कहो तैयारी कर दे । और तुम तब तक कुछ खिला-पिला दोगी न ?''

माया विस्मित नहीं हुई, वह इस व्यक्ति को जानती है, गत चार वर्ष से वह इसी स्वभाव का सामना करती रही है ! शर-विद्ध की भाँति वह बोली, ''खिला पिला दोगी न !—कहते हुए शर्म नहीं लगती ?''

''शर्म !—अजी भूख लगती है भूख उस समय तो !''

कह कर धुएँ के खेल को देखते हुए नवनीत स्वयम् ही मुस्करा उठा। जिस वर्जिनिया मुल्क की यह सिगरेट है उसी मुल्क का निवासी उसका साहब भी है, इसीलिए तो इस धुएँ में उन्हीं साहब का चित्र बन रहा है। साहब मानो कह रहे हैं—

''यू डैम, टोमरा इटना इमाकट कि अमरा डाटर का इन्सल्ट कर डे !''—

और नवनीत के कानों में अपने ही उत्तर की ध्वनि झंकृत हो उठी—

'सर, मिस साहिबा से गलती हो गई। उनकी तरफ मेरी तो पीठ थी, मुझे क्या पता था कि वे क्या करना चाहती थीं ! और अपने इस गोरे रंग का तो क्या करूँ !—शायद उन्होंने समझा हो कि मैं ही उन का 'डीयर किटी' होऊँ। इसलिए जब उन्होंने मेरे गले में हाथ डाल दिया तो मैंने उनको उनकी भूल समझा दी। कैसे समझ लूँ कि मैंने उनका इन्सल्ट किया है ! मेरा तो जवाब देने का 'मैनर' भी बहुत माइल्ड था !'

पर साहब बहादुर का गुस्सा कम होने के बजाए बढ़ता ही जा रहा

था। नवनीत ने देखा, धुएँ ही का तो खेल है, हाथ हिलाकर उसने साहब का मुँह लाल कर देने का उपक्रम किया, तो धुएँ की रेखाएँ आड़ी-तिरछी हो गईं ! साहब ने मुंह की खाई। नवनीत जब कि दूसरी दुनिया में व्यस्त था, तब माया ने उत्तर दिया—

"तो फिर जहाँ खाना मिलता हो, वहाँ रवाना हो ओ !"

"होटल की कहती हो न ! खाना तो वहाँ भी बहुत ठीक बनता है माया, पर उस रसोइए की सूरत—नारवे का कटा-छटा समद्री तट नक्शे में देखा है न ? और मजबूरी का नाम सब्र है, मगर जब तुम्हारे जैसे चेहरे वाला सम्मुख बैठा हो तो इसमें तो कोई शक नहीं है, कि खाने का स्वाद तो बढ़ ही जाता है !"

"परन्तु मैं कोई तुम्हारी दासी नहीं हूं !"

"बिल्कुल नहीं !—यह मूर्खता तो तुम्हारे शास्त्रकार ही कर गए हैं, जो पत्नी को दासी का पद दे गए हैं। अच्छा तो आज मेरी ही बारी सही। तुम सामने बैठना, देखना, देखें मैं कैसा खाना बना सकता हूं !"

"मुझे तुम्हारी बेवकूफी देखने का इतना समय नहीं है। सचमुच आठ की गाड़ी से मैं घर चली जा रही हूँ !"

"जरूर जाओ—पर अभी तो छः ही बजे हैं। और देखो, मथुरा के पेड़े बहुत मशहूर होते हैं न ? पिताजी से कह कर थोड़े बहुत भिजवा देना। पर हाँ, पारसल ठीक तरह से पैक करना, रेल वालों को जानती हो न ?"

"मज़ाक रहने दो महाशय, मैं तुम से अपने सब सम्बन्ध छोड़ देना चाहती हूँ ! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह नहीं हो सकता !"

"वाह, पेड़े की बात मज़ाक हो गई ?—अच्छा न भिजवाना ! पर क्या सभी सम्बन्ध यहीं छोड़ जाओगी ?—अपने साथ कुछ नहीं ले जाओगी ?"

माया का रोषारुण मुखमण्डल अकस्मात् भारी हो उठा ! ले क्या

वह नहीं जाना चाहती !—पर निष्ठुर, तूने रक्खा क्या है ले जाने देने को ?—आज अपना कहने को उसके पास है ही क्या ?—संयत वाणी में उसने कहा, "नहीं !"

"जाने दो, न ले जाना, पर तब तक क्या मीठे तौर से बोलना भी नहीं चाहती ?"

"तुमने क्या वह अधिकार मुझे दिया है ?"

"कभी इनकार किया हो ऐसा मालूम तो नहीं देता !"

"कभी स्वीकार किया हो ऐसा मालूम पड़ता है ?"

"नहीं, नहीं—इन व्यर्थ की बातों में क्यों उलझाती हो ! मुझ सर्वस्वहीन की बिसात ही क्या कि किसी को कुछ स्वीकार करूँ !"

"यदि बिसात न थी तो विवाह ही क्यों किया ?—एक नासमझ कन्या को फुसला कर ब्याह लाते हुए तुम्हें तनिक भी ग्लानि न हुई ?"

"फुसला कर ?—अरे मित्र, मैं किसी को फुसला सकता हूँ, यह लाँछन तो मेरा दुश्मन भी मुझ पर नहीं लगा सकेगा ! फुसलाना दूर, मैं तो किसी को इशारे से बुला भी नहीं सकता !"

"पर तुम्हें क्या हक था कि तुम मुझे इस प्रकार दुःख देते ?"

कुछ गम्भीरता से नवनीत ने कहा, "दुःख देने की किसी को भी मेरी वृत्ति नहीं होती माया, किन्तु, तुम तो जानती ही हो, दुःख किसी को लिया-दिया जा सकता है क्या ?—मानलिया तो दुःख; नहीं-तो सुख !—तुम्हारी बात सच हो सकती है, लेकिन क्या यह भी कहना चाहती हो कि मैंने ही दुःख दिया है ?"

"यदि तुमने थोड़ा भी यत्न किया होता, थोड़ा भी —"माया आगे न कह सकी !

"दुलार —हूँ ?" नवनीत हँस कर बोला, "यत्न और दुलार क्या हैं, यह मुझे मालूम नहीं। तुम तो जानती ही हो, माँ-बाप बचपन में ही मर गए, जो यत्न या दुलार सिखाते। वह स्कूल में पढ़ने की तो

बात नहीं है न ? इनके लिए जो मुझ तक भटकते हैं, कविता की भाषा में उसे कहते हैं मृग-मरीचिका ! समझती हो न ?"

"जी हाँ, तुमने मुझे वह अच्छी तरह समझा दी है !—अब तो मुझे तुमसे केवल मुक्ति की राह समझना है !"

"किस तरह सीखना चाहती हो ? डाइवोर्स द्वारा ?—तुम्हारी इच्छा में मैं किसी तरह की बाधा न दूँगा माया !—मेरा तो कोई यहाँ कानूनदाँ मित्र नहीं, हो सके तो पिताजी के मार्फत मथुरा ही में किसी से सलाह ले लेना। त्रिलोक नारायण कहाँ है आजकल ?—वह तुम्हें काफी मदद दे सकेगा !"

माया स्थिर सौम्य बैठी रही; चेहरा अवश्य उसका अधिकाधिक लाल होता जा रहा था, वह बोली—

"यदि हिन्दुओं में तलाक की प्रथा होती, और कानून इसके लिए जगह कर देता, तो तुम जैसे निर्लज्ज पतियों की नाक पर चूना पोतने वाली साहसी रमणियों की कमी न होती।"

"बल्कि मैं तो समझता हूँ, कि अधिकांश रमणी-रत्न पति-देवता के सिर-स्थान को अपने चरण-कमलों से सुशोभित करती हुई स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसर होतीं !"

"इतनी शिष्ट भाषा का प्रयोग भी तुम लोगों के लिए अभद्र चीज होगी, उसे 'ठोकर मारना' कहना अधिक उपयुक्त है।"

नवनीत अपनी कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ, वह एक के बाद एक—चार सिगरेट पी चुका था ! बोला—

"किसी कानून की शरण खोज कर क्या करोगी ? यह सिर उपस्थित है, चाहो तो ठोकर मार कर, या इसे धड़ से अलग करके भी तुम अपनी स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त कर सकती हो। मैं आत्महत्या की स्वीकारोक्ति लिख दूँगा, ताकि कानून तुम्हें तकलीफ न दे सके !"

"बड़े भोले बनते हो महाशय !—पर जब बीते हुए इन दीर्घ चार

वर्षों तक तुमने एक समर्पित कन्या को धूल में लोटते जाने दिया है, जब तुम उसकी सम्पूर्ण आकांक्षाओं को भस्म होते हुए निर्विकार भाव से देखते रहे हो, उसके नारीत्व के समस्त उपादानों की समष्टि में अपना उपेक्षा की काली नागिन छोड़कर, उनको उसके तीव्र-दंशन में ठण्डे और काले होते हुए देखते रहे हो—तब क्या एक क्षण के लिए भी तुम्हारे हृदय में यह दुराशा उदय न हुई, कि आत्म-समर्पण न सही, तुम्हारा एक कर्त्तव्य तो है ?"

"पर माया, मैंने तो प्रतारणा को कभी प्रश्रय नहीं दिया !"

"कैसे जरा सुनूँ तो !"

"विवाह की पहली ही रात को क्या मैंने स्पष्ट नहीं कर दिया था कि मुझे पत्नी की आवश्यकता नहीं है ? विवाह के पूर्व भी यही बात मैंने तुम्हारे पिता से कही थी। उन्होंने शायद समझा, और तुमने भी, कि सभी लज्जालु लड़के विवाह के पहले ऐसा ही कहा करते हैं, और फिर एक दिन वे ही लड़के दुलही के टट्टू बन कर नकेल के इशारे पर भार ढोया करते हैं ! परन्तु फिर भी मैंने तो तुम्हें आश्वासन दिया था कि खैर, जब शादी हो ही गई है, तो तुम मेरे मित्र का स्थान पूरा कर सकती हो ! मैं समझता हूँ, मैंने उसके बाद तुम्हारे लिए एक मित्र से तो अधिक ही किया है !"

"बड़ी दया हुई तुम्हारी ! दया के अवतार हो न ? पर क्या तुम यह नहीं जानते कि स्त्री का जीवन मित्रता की खुराक पर नहीं टिक सकता ? उसके लिए पति का प्यार चाहिए अबोध !"

"ठगा तो जरूर गई हो, पर मैंने तुम्हें नहीं ठगा है। मैं तो अपना सौदा भी वापिस फेरने को तैयार हूँ !"

"सौदा फेर दोगे !—पर अब इस बिके हुए सौदे को फिर से खरीदे-गा कौन ?"

"पर सचमुच तो यह सौदा बिका हुआ नहीं है !"

"दुनिया उसे कब देखती है ?"

"मुमकिन है, पूरी कीमत भी न मिले !" सहज भाव से मुस्कराते हुए नवनीत ने कह दिया !

"मगर अपनी पाकिट से पूरी कीमत मत निकालना !" खीझ कर माया ने जवाब दिया !

हँस कर नवनीत ने कहा, "पति के प्रेम को कह रही हो न ?—लाऊँ कहाँ से !—आफिस, यार दोस्त, गाना-बजाना, सैर-सपाटा, सिनेमा-थियेटर—भला बताओ, प्यार करने का समय ही कहाँ रहा ? मालूम नहीं ? गए साल काली बिल्ली जो पाली थी ! सोचा था कि इसी को उपलक्ष्य करके प्रेम की परीक्षा का कुछ क, ख, ग, पढ़ लूँ ! पर समय मिले तब न !—सच कहूँ माया, विवाह के पहले भी मैंने बहुत कोशिश की कि मजनूँ या फरहाद जैसा ही कुछ बन कर दुनिया में नाम अमर कर जाऊँ ! पर भाग्य में वह सुयश कहां है ? कालेज में एक सहपाठिनी थी, नाम भी भूल गया हूँ अब तो । ईसाइन थी, नाम शायद मेडलीन या ऐसा ही कुछ था । एक दिन उसने बड़ी चाहभरी आँखों से देखा, देखा कि सुयोग है, बस बन गए मजनूँ !—मगर न फूलों से नफरत हुई, न चाँद काला नजर आता था, न किताबों का मोह छोड़ सका, और न संध्या की मलयानिल ही अप्रिय मालूम दी !—तारे तो रात को कभी कोशिश करके भी नहीं गिने जा सके । दो दिन बाद देवीजी की चिट्ठी भी आ टपकी—फिर कोशिश की, सोचा, जब एक रिहर्सल का सिलसिला जम गया है तो क्यों न परीक्षा दे लूँ । पर जवाब देने के लिए इत्र-सुवासित कागज की कौन कहे, एक टुकड़ा भी नहीं मिला; पेन दर किनार रही, पेंसिल तक गायब हो गई । रातभर तबियत खराब रही, नींद नहीं आई । तब सवेरे ही जाकर फेस-टू-फेस कहा, 'मिस साहिब ! यह आपकी चिट्ठी धन्यवाद के साथ लौटा रहा हूँ । मेहरबानी कर दूसरी चिट्ठी न भेज बैठना, वरना मेरा हार्ट फेल हो जायेगा !' हार्ट-फेल तो न हुआ, पर प्रेम की परीक्षा में तो फेल होना ही पड़ा !"

माया क्रोधित तो थी ही, किन्तु फिर भी हँसी-जैसी उसके चेहरे पर

छा ही गई। किस्सा खत्म होने पर उसने एक लम्बी साँस ली, और वक्ता की ओर देखा!

नवनीत की ऊमर २४ वर्ष थी! बलिष्ठ शरीर, अध-पके सेब जैसी गुलाबी और गोरी देह-कांति—निश्चय ही कॉलेज की उस ईसाई लड़की ने अपने आपको इस सफेद साँप की नागपाश में बाँधा होगा, और दंशन करना तो इसका स्वभाव है! माया ने मानो फिर उस रूप को पीकर आँखें नीची करलीं!

नवनीत ने कुछ देर साँस ली, और फिर कहना शुरू किया!

"साहिब की लड़की शर्ली ने भी, परसों, प्रेम के प्रकाण्ड-अभिनय की उद्दाम-लालसा से, अपनी गोल-भुजाओं के हार से मेरे कण्ठ को सुशोभित करना चाहा था। मैं जानता था कि उस हार को अपने गले में रहने देकर मैं और भी कुछ प्राप्त कर सकता था, जैसे ओहदा, तरक्की। मन को बहुत समझाया भी कि, रहने दे नवनीत कई संध्याओं में तू गुलाब के विकच-हारों से अपने गले को सजाकर तालाब पर घूमा किया है, आज इस श्वेत-रमणी को यह कमल-नाल बहुत बुरी तो साबित न होगी!' पर क्षण भी न बीता होगा कि दम घुटने लगा! और मतलब यह कि यह सुयोग भी चला गया! अच्छा, साढ़ेसात बज गए हैं, तांगा मँगवा दूँ न! हरनाम कहां है?"

माया ने आवाज दी "हरनाम!"—आज तो तुम्हारे खाने-पीने की व्यवस्था होगई है कल से जब होटल में जाना पड़ेगा तो शायद पत्नी के अस्तित्व की कुछ सार्थकता का पता लगे!" हरनाम आया, तो उसे देखकर बोली—"जाओ, बाबूजी के लिए खाना ले आओ, फिर एक तांगा ले आना!"

नवनीत को कुछ हँसी आई। शादी के बाद भी उसे घर के खाने में कभी अलौकिक आनन्द प्राप्त नहीं हुआ! उसे जब कहीं भूख लग गई, उसी होटल में खालिया, अब ऐसी क्या बात है कि कल से उसे पत्नी की सार्थकता का पता लगे! उसने जेब से चाबी निकाली, ड्राबर खोलकर

एक नोटों का पुलिन्दा निकाला, गिन कर कहा—

"दो सौ बस होंगे न ?"

"जी नहीं, एक पैसा भी नहीं ?"

"मैं जानता हूँ तुम्हारा अभिमान दोसौ रुपयों से बहुत बड़ा है। पर रास्ते का मामला है पैसा हाथ में रहने से बहुतेरी सुविधाएँ होजाती हैं। न हो तो मथुरा से लौटा देना !" परन्तु वह बण्डल टेबल पर ही पड़ा रहा !

खाना जब आगया तो माया ने कहा, "मैं कपड़े बदल आती हूँ !" और वह बाहर चली गई ! परन्तु नवनीत के पेट में अब भूख न थी, झुँझलाकर उसने खाना एक ओर सरका दिया !

उसके जीवन में आज से कोई चार वर्ष पूर्व कहीं से एक धूमकेतु ने प्रवेश किया। शायद उसके अनन्त प्रकाश से, उसकी लाङ्गूल के विस्तार से उसके आकाश में एक भाव-सा भर गया हो ! आज वह जा रहा है, तो जाय; नई बात क्या है ? इस आकाश में सभी बातें तो एक जैसी हैं नहीं—सूरज, चाँद तारे, बिजली, बादल—सभी कुछ तो हैं। धूमकेतु का अभाव फिर क्या वस्तु है ! कुछ नहीं !

हरनाम ने लौटकर कहा—"बाबूजी, तांगा नीचे खड़ा है !"

"अच्छा तो उनसे कहो !"

"जी वे बैठ गई हैं !"

"बैठ गईं ?—तो ठीक है !—तू जा रहा है न ! होशियारी से जाइयो !"

"कहाँ, मैं तो नहीं जारहा हूँ बाबूजी !"

"नहीं जारहा ?—तो जा न भाई ! वे अकेली कैसे जा सकेंगी?—मुझे तो छुट्टी ही नहीं मिली ! जा, ये रुपये लेता जा, और उन्हें वहाँ पहुँचा कर लौट आना ! यदि वे रोकें तो भी साथ चले जाना !—अजीब जिद्दी औरत है ! रात का सफर और अकेले !—रुपये यहीं भूल गई, लेता जा ! जल्दी लौटना, हँ !"

"मैंने तो बिस्तर वगैरा भी"

"अरे भाई, तीन चार घण्टे की तो बात है, एक कम्बल लेले, और कल तो तू लौट ही आएगा !"

"हरनाम जाने के लिए तैयार हुआ, तो नवनीत ने कहा—

"जरा इन्हें ऊपर भेज—पर जाने दे, वक्त होगया—जा जा—"

हरनाम उतर गया, और कुछ ही क्षणों के बाद तांगे का घर्र घर्र शब्द कमरे में मूर्त्त हो उठा। नवनीत उठा, खिड़की पर पहुँचा, परन्तु सिर्फ जाते हुए तांगे की लाल बत्ती की रोशनी ही, मङ्गल के डूबते हुए तारे की तरह दिखाई दी, और धीरे धीरे अदृश्य होगई !

नवनीत फिर लौट कर सोफे पर उसी जगह बैठ गया, जहां एक क्षण पहले माया बैठी थी, एक सिगरेट लगा कर पीना शुरू किया और उस उड़ते हुए धुएं में उसने किसी एक चित्र को स्पष्ट करने की चेष्टा की !

(२)

सिनेमा-गृह के उद्भासित पार्क की बैञ्च पर सिगरेट पीता हुआ अकेला नवनीत बैठा हुआ है ! दूसरा 'शो' शुरू होने में अभी आध घंटे की देर है। घर पर जब अकेले बैठे मन न लगा तो नवनीत वैसे ही उठ कर घूमने के लिए निकल पड़ा और घूमते-घूमते अनायास ही इधर आ पहुँचा। सोचा, "जब आही गया हूं, तो देखता चलूँ !"

मालूम पड़ा कोई अच्छा-सा खेल है, इसलिए भीड़ ज्यादा है। टिकिट बँटना शुरू नहीं हुआ था, लेकिन चवन्नी ग्राहकों से खिड़की इस तरह घिरी हुई है, कि तिल धरने की बात अधिक से अधिक सत्य के निकट यहीं होगी ! टिकट खरीदने के कुछ स्पेशलिस्ट दूर ही घूम रहे थे, यथा समय टिकट खरीदने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं होती, वे अपने फन के उस्ताद हैं ! पुराणों में कथा है कि गंगा-तट पर राजा परीक्षित के फूल सूँघते समय, मच्छर बने हुए तक्षक ने, अकस्मात् ही अपने मूल-स्वरूप में परिणत होकर उसके नासिकाग्र को दंशन कर लिया था;

जो लोग उस समय की कुछ कल्पना कर सकते हैं, वे इन स्पेशलिस्ट के 'फन' को समझ सकेंगे ! 'बुकिंग' शुरू होते ही ये कलाकार एक उछाल मारते हैं, और मच्छर के समान हलके-फुलके होकर किसी की गर्दन पर सवार होजाते हैं, और इसके पहले कि वह सवारी कुछ गड़बड़ाए, जादू के बल से उनका हाथ खिड़की को छड़ों से जा उलझता है, तब शीघ्र ही, तक्षक के समान लम्बायमान होकर वे कई उम्मीदवारों के मस्तकों पर अपना यत्किञ्चित भार बाँट देते हैं। थोड़ा वजन होने से या बेबसी से उम्मीदवारों को भी कोई अधिक शिकायत नहीं होती, और इस तरह ये कलाकार शीघ्रही मनमानी संख्या में टिकिट खरीद कर चवन्नी के टिकिट को छः आने के हिसाब से बेच देते हैं !

पार्क के पार्श्व ही में तेल-मालिश और बूट-पालिश की गश्ती दूकान से लगाकर यूरोपियन रेस्टराँ तक लगे हुए हैं, जहाँ इस पेट में भरी जा सकने वाली तमाम खाद्य-अखाद्य वस्तुएँ मिल सकती हैं !

एक "हिन्दू चाय" वाला नवनीत के पास आ टपका "चाय दूँ बाबूजी ?"

नवनीत जरा चौंका, उसने चाय वाले की ओर देखा, लड़का ही था—कानूनन भी बालिग नहीं कहा जा सकता ! नङ्गा सिर, रूखे लम्बे बाल चारों ओर फैले हुए; चिक्कट में सराबोर कमीज, और घुटने से कुछ नीचे तक लटकता हुआ एक सफेद और एक खाखी टांग का हाफ पैण्ट, जिसमें मैल की सघनता से ज्यादा अन्तर नहीं रह गया था ! चेहरा भी मजे का, नीचे के वृत्ताकार उन्नतोदर अधर पर, बहुत अधिक पानों के चर्वण से बहकर सूखी हुई पीक, नाक भी कुतुब मीनार का छोटे पैमाने पर नया संस्करण !

लड़के ने बाबू को अपनी ओर देखते देखा तो गर्दन नीची करली, और कहा—"दूँ, बाबूजी ?"

"क्यों, इस शरीर से जलन होती है क्या ?"

लड़का कुछ समझा नहीं, नवनीत का मुंह देखने लगा !

"अबे उल्लू, तुम लोग केटली में थोड़ा जहर क्यों नहीं ढोया करते ? चाय पीकर बिस्तर पर पड़े पड़े दिन गिनने से तो वह बुरा नहीं होगा !"

लड़का फिर भी नहीं समझा, बोला, "बिलकुल गरम है बाबू जी, एकदम से कड़क !"

"अबे कड़क के बच्चे, हटता क्यों नहीं यहाँ से ? अगर मैं जो कड़क पड़ा तो अपनी कड़क चाय के साथ खुद तू भी सड़क सूंघता फिरेगा।"

एकाध दर्शक को हँसते देखकर अप्रतिभ होता हुआ लड़का चल दिया !

तभी अजीब से शोरो गुल ने जाहिर किया कि बुकिंग शुरू हो गया है ! क्या हर्ज है, तब-तक कहीं चाय पीली जाय, फर्स्टक्लास का टिकट तो पोर्च में से ही मिल जाएगा !

सामने ही नेशनल रेस्टराँ का क्षण में लाल क्षण में पीला होने वाला प्रकाश मानों ग्राहकों को बुला-सा रहा था। नवनीत इस प्रभा-प्रदीप्त सहास्य-आह्वान की उपेक्षा न कर सका, वह भीतर प्रविष्ट होगया !

बाँई तरफ, हटकर, एक सुरक्षित बाक्स में, रङ्गीन बोतलों से टेबल को सजाकर, एक साहब बहादुर अपनी तबियत रँग रहे थे ! दाहिनी ओर शुभ्र खद्दर की पोशाक में एक राजहँस का सा जोड़ा मानस जैसे क्षुद्र चीनी के कप में मानों क्षीर-नीर विवेक कर रहा था ! सामने ही एक दूसरे खद्दर पोश सज्जन अपने आपको एक आलमारी की छाया में छिपा कर चश्मे की ओट आँखें सेक रहे थे, अकस्मात् ही एक बेटर उनके सामने आकर उनके लक्ष्य को ताकने लगा तो उस पर ठण्ढी चाय के बदले खुद ही उबल पड़े ! बोले—

"यह क्या चाय है ? कोरा पानी—शक्कर नहीं, दूध नहीं, और पूरा उबला हुआ तक नहीं ? इस तरह का धोखा, और नेशनल

रेस्टराँ में ?—न हुआ कांग्रेस का राज्य, नहीं तो मालूम पड़ जाती !"

—देख कर नवनीत ने सोचा, गरमी काफी है, पेट में जाकर तो जरूर ही चाय उबल जाएगी ! वह भी एक कप चाय का आर्डर देकर मैनेजर के पास वाली खाली कुर्सी पर बैठ गया !

साहब बहादुर ने अपना आपानक समाप्त किया, और हिन्दुस्तानी मैनेजर के सामने बिल की रकम के बारे में बातचीत करने लगे !

नवनीत ने कप होठों से लगाया, शक्कर भी काफी थी, दूध भी था ही—और गरम तो इतनी कि उसका ओठ जलते-जलते बचा ! नवनीत को आश्चर्य हुआ कि खद्दर पोश महाशय के नाराज होने का कारण तो नजर नहीं आता। वस्तु-धर्म भी यही कहता है कि चाय की गरमी दिमाग के पारे को ठंढा ही करती है ! ठंढी चाय की शिकायत भी जो पारा गरम करके कहे, इसे नवनीत ने सोचने की चेष्टा न की—वह केवल साहब बहादुर की ओर देख रहा था। साहब आधी अङ्गरेजी और आधी अँगरेजियाना-हिन्दी में डाँटते हुए कह रहे थे—

'जल्डी, बैलेन्स (शेष पैसा) चुकाना मांगटा है इडियट ! (मूर्ख !) हरी अप (जल्दी करो) 'शो' शुरू होगया है !"

"पर बैलेन्स किसका चुकाऊँ सर (महाशय) ?" भयचकित मैनेजर ने कहा !

"किशका बैलेन्स ?—आमरा बिल किटने का हाय ?"

"सात रुपए नौ आने का सर !"

"देन, लैट मी हैव व्योग्र, टू सेवन" (तब बच्चे, मुझे दो रुपए सात आने वापिस दो !)

साहब की क्षिप्रता कुछ ज्यादती को लाँघ गई थी, अतः रेस्टराँ का सारा अतिथि समुदाय इधर ही आँखें बिछाए बैठा था ! नवनीत भी !

मैनेजर ने नितान्त शिष्ट वाणी में उत्तर दिया—

"ओह, 'एक्स्क्यूज मी' (मुझे माफ करें), आप दस का नोट देंगे !"

मैनेजर ने दो रुपए सात आने गिने, और साहिब की ओर बढ़ा दिए। रुपए उठाकर साहब ने दरवाजे की ओर मुँह किया। मैनेजर अप्रतिभ हो गया, बोला—

"सर नोट ?"

"व्हिच नोट ? (कौनसा नोट ?)" साहब ने जमीन पर पैर पटकते हुए कहा—

"दस रुपए का नोट सर ?"

"किश बाट का ?"

"सर, बिलका और यह जो बैलेन्स दिया है !"

"ओ ! डेम इट !—फिर हमने पहले किस बाट का नोट दिया था ?"

"कब सर, आपने तो कोई नोट दिया ही नहीं !

"व्हाट ? (क्या ?)—टुम्हारा मटलब है कि हमने टुमको कोई नोट नहीं डिया ?—टुम इण्डियन, साहब लोगों को लूटना माँगटा है—रास्कल्स ! (बदमाश)"

"आप गाली क्यों देते हैं सर ? एक तो—"

"हम नहीं शुनना माँगटा—'शो' बिगिन हो गया है, हमने नोट डे डिया, अपना एकाउण्ट (हिसाब) डेको !—इण्डियन्स, यू आर रिअली थीव्ज ! (हिन्दुस्तानियो, सचमुच तुम चोर हो !)

मैनेजर ने हिम्मत की—"शरम आना चाहिए साहब, जाइए आप, समझलूँगा दस रुपये आए नहीं ! एक तो खुद चोर और ऊपर से —"

मैनेजर की बात मुँह की मुँह में रह गई ! लाल-मुँह होकर साहब ने कहा—'शट अप, इडियट !' (मुँह बन्द करो !) और मैनेजर के गाल पर एक तमाचा जोर से मुखर हो उठा।

रेस्टराँ में बैठे हुए सभी अतिथि नितान्त शाँति के साथ सिनेमा

जैसा ही यह दृश्य देख रहे थे, नवनीत भी उन्हीं दर्शकों मे था। किन्तु जैसे ही साहिब का हाथ मैनेजर के गाल पर अपने अवैध-स्वामित्व का तड़ाक-घोष उत्कीर्ण करके परावर्तित हो रहा था, वैसे ही नवनीत के हाथ की प्लेट फर्श पर गिरकर एक भयानक आवाज के साथ चूर चूर हो गई। दूसरे ही क्षण, अपनी तड़ाक का नवनीत के हाथ से करारा जवाब पाकर, साहब बहादुर अपने काले-पीले मिटाने के लिए एक पास रखी हुई कुर्सी पर गिर-सा पड़ा।

मैनेजर ने देखा तो उसे अपने गाल की वेदना भूल गई, उसने घबराकर देखा कि नवनीत लाल फिर हाथ उठाकर साहब बहादुर के मुँह को एकदम पका टमाटर कर देना चाहता हैं, तो वह झट से दौड़ कर नवनीत की कमर मे लिपट गया, और बोला –

"अरे भाई! यह क्या करते हो! जानते हो? यह है अंग्रेज, और अपने जिले का कलक्टर!"

"जरा छोड़ तो दो, देखूँ इसकी कलक्टरी!"

नवनीत छूटने की कोशिश करने लगा, और मैनेजर उससे लिपटे रहा। किन्तु जब वह बिलकुल छूटने के किनारे हुआ तभी खद्दर पोश सज्जन ने भी अपनी बाहुएँ फैलाईं, गोया नवनीत इस युग की खिसकने वाली नौकरी था।

साहब ने तब तक संज्ञा प्राप्त करली थी। यह भी देख लिया कि मैं सुव्यवस्था में हूँ, और दुश्मन दुर्व्यवस्था में! समूह के मनोविज्ञान का भी उन्होंने अध्ययन किया! साहब का हौआ खद्दरपोश के ऊपर भी छाया हुआ है, इससे बढ़िया अवसर कब मिलेगा। साहब उठे और नवनीत की ओर क्रोध भरी मुद्रा में आगे बढ़े! साहब को आते देखकर खद्दरपोश सज्जन ने नवनीत को छोड़ने का उपक्रम-सा दिखाया—साहब बोले—

"नो नो!—डोण्ट रिलीज हिम (उसे मत छोड़ो)–पकड़े रहो–वह जंगली है, 'रेश' है!"

दोनों ने फिर नवनीतलाल को अच्छी तरह पकड़ लिया। साहब ने देखा कि खतरा नहीं है, तो पास आए और निरीह नवनीत के ऊपर लगे हाथ छोड़ने! हाथ दर्द करने लगा, तो बूटों से काम लिया। जब नवनीत बेहोश होकर गिर पड़ा, तो दोनों को उसे पकड़ कर थामे रहने की भी जरूरत नहीं रही!

साहब ने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा, "ओह; इलैव्हन थर्टी! प्लेग आन द रोग!" (साढ़े ग्यारह! शैतान पर प्लेग गिरे।) और मृतप्राय नवनीत की देह को एकबार और पैरों से ठुकराते हुए साहब बाहर हो गए! दस रुपए का नोट देना न पड़ा, और एक चाँटे का बदला भी पूरा हो गया। सौदा बुरा न रहा। खेल शुरू हो गया था, इसलिए इस चल-चित्र को देखने के लिए अधिक भीड़ इकट्ठा नहीं हुई!

मैनेजर को चेत हुआ!—पसीने पसीने अपनी कुर्सी पर गिर पड़ा! कैसा अप्रिय काण्ड हो गया। साहब ने शराब पिया, ऊपर से दो रुपये सात आने हजम किए और मैनेजर को एक चपत का इनाम देते गए! मगर, इस छोकरे को किस पागल कुत्ते ने काटा कि बीच में कूद पड़ा!—बिजिनेस है! इसमें मान अपमान की बात ही क्या?—बनिए की मूँछ ऊँची नहीं होती! आज दस रुपए ले गया, मगर तेल तो तिलों में से ही निकलता है! बेवकूफ! अंग्रेज बच्चे से अपमान? अच्छा हुआ कि मारपीट से ही साहब की बातचीत निपट गई, अगर कहीं पुलिस!—पुलिस कहीं देख तो नहीं रही?—मैनेजर ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, और नीची कर ली!

खद्दरपोश सज्जन बोले—

"देखा? छोटे मुँह बड़ी बात इसे कहते हैं! औकात क्या?—एक कप चाय की ही न?—उलझे भी किससे जो एक बैठक में सात रुपये नौ आने पी जाता है। माना कि शरीर में ताकत है, पर अंग्रेज से मारपीट?—महात्मा गांधी ने कभी हिंसा को तरजीह दी ही नहीं।

इसीलिए तो !—फल जो चख रहे हैं, सो सामने है !—अच्छा वन्दे !'

खद्दरपोश महाशय चल दिए ! सितारा बुलन्द था, जूते नवनीत ने खाए, और चाय के साथ ही साथ चाय की कीमत हजम की खद्दरपोश ने इसी गड़बड़ी में ! यह बात तो है कि अपेक्षाकृत कम पैसा चुकाने के लिए भूमिका तो वेटर को डाँट फटकार कर वे पहले ही बाँध चुके थे, अतः सारा श्रेय नवनीत को नहीं जा सकता, पर भाग्य ही का संयोग समझिये—सभी कुछ बच गया ।

हंस का जोड़ा बाकी बची हुई न चाय पी सका, न बिस्कुट ही खा सका, रकाबी धोनेवाले लड़के से पूछा—

"पीछे से निकलने का कोई दर्वाजा है ?"

"है तो, क्यों ?"

"अरे तो जल्दी बतादे—बाहर निकलना है ।"

"उधर से जाने का मालिक का हुक्म नहीं है !"

मुश्किल से बिल रुपये-सवा रुपये का होता, और जब कि उन्होंने न पूरी चाय पी है, न बिस्कुट ही खाए हैं, तो एक रुपये में से भी कुछ बच ही जाता । सेठ जी ने पाँच का नोट लड़के की ओर बढ़ा कर कहा—

"भैया, जल्दी कर । कहीं पुलिस आ गई तो गवाही में कौन फँसना चाहेगा । कहीं शराब पिए हुए यह साहब ही—"

बात अधूरी ही रखकर दोनों ही पीछे के रास्ते कब बाहर होगए, इसे इनके चाहनेवाले खद्दरपोश सज्जन भी न जान सके ।

मैनेजर ने सामने का दरवाजा बन्द कर दिया ताकि कोई भीतर न आ सके, और तरद्दुद से भरकर कुर्सी पर पड़ गया ! वेटर सामने खड़ा हुआ कभी नवनीत की ओर और कभी मैनेजर की ओर देख रहा था !

नवनीत फर्श पर ही पड़ा हुआ था । घुटने के बल गिरने से घुटना छिल गया था, नाक से भी खून बह रहा था, शायद माथे में या छाती पर भी कहीं चोट लगी थी । चेतना उसे तब भी न थी ।

कप धोने वाला लड़का आ पहुँचा, मैनेजर ने पूछा, "क्या है ?"

"जी, इसका प्लेट फूट गया था !" और उसने कप बतला दिया !

"किसने फोड़ा ?"

लड़के ने नवनीत की ओर इशारा कर दिया !

"ओह, इनका बिल भी तो बाकी है। —क्या दिया था ?"

"जी, सिर्फ एक कप स्पेशल चाय ,"

"सिर्फ चाय ?"

"जी हाँ !"

मैनेजर ने बिल बनाया : चार आने चाय के, सात आने प्लेट के; कुल ग्यारह आने !

तब तक नवनीत को कुछ चेत होने लगा था। उसने अपनी आँखें खोलीं, और फिर बन्द करके परिस्थिति को समझने का प्रयत्न किया। जब सारी बात समझ में आ गई, तो वह कोशिश करके उठ बैठा और मैनेजर की ओर देखकर बोला—"आप को तो कोई चोट नहीं लगी ?"

"आपने गलती की बाबू ! एक अँग्रेज से उलझ पड़ना क्या फायदे की बात है ? मान लो, उसे आपने पीट भी दिया, तो नतीजा क्या होता ? पुलिस क्या आपको आसानी से छोड़ देती ? यह तो गनीमत समझिए कि बात आगे नहीं बढ़ी !"

नवनीत उस अवस्था में भी अपनी मुस्कराहट नहीं रोक सका। मगर बिना कुछ आलोचना किए हुए उसने पूछा, "कुछ पानी मिल सके तो मैं यह खून के कपड़े, और धूल भरा बदन ठीक कर लूँ !"

"जरूर, जरूर !" वेटर उसी समय पानी ले आया और उसकी सहायता से नवनीत ने अपने शरीर और घावों की सफाई सम्पन्न की ! फिर नवनीत जैसे तैसे खड़ा हुआ, क्योंकि दर्द तब भी बढ़ता जा रहा था, हाथ पैर चुटीले हो कर ऐंठ रहे थे, और दर्द केवल शरीर ही में नहीं, मन में भी था ही। बोला—

"अच्छा मैनेजर साहब, फिर चलूँ मैं ! घबराइएगा नहीं। यदि

आपका साहिब खुद ही थाने में रिपोर्ट करदे तो मैं क्या कर सकता हूं, किन्तु विश्वास रखिए, मेरी तरफ से यह बात अन्य कान में नहीं जाएगी। नमस्ते।"

मैनेजर का एक बोझ अवश्य हलका हुआ। जैसे ही लँगड़ाते हुए नवनीत आगे बढ़ा, मैनेजर ने बिल का पन्ना आगे बढ़ाया। नवनीत ने उस कागज को लिया, मुस्करा कर बोला—

"ओह! झगड़े में याद ही नहीं रही!"

नवनीत ने अपने कोट की जेब में हाथ डाला, किन्तु दुर्भाग्य, उस में मनीबेग गायब था!—यानी साहब के साथ जब हाथापाई हो रही थी, या जब वह उसके आघात से अचेत हो गया था-तो किसी ने अवसर का लाभ उठाया, और उसका पर्स ही गायब कर दिया!

किन्तु यह ग्यारह आने का बिल?—साहब बहादुर दस रुपये की धौल जमा गया; पर वह साहब बहादुर था! नवनीत तो भारतीय है, मैनेजर यदि ग्यारह आने के पैसे छोड़ दे तो उसकी दूकान ही कैसे चले!—और उधार?

क्या मैनेजर उसकी पहिचान बनाए रखने की कृपा करेगा! तब?

मैनेजर कुछ हँसा-सा; खद्दरपोश के अन्तिम शब्द उसकी स्मृति में आ गए। बोला—

"जेब खाली है क्या?—बहाना तो—"

नवनीत ने अधिक न सुना। अँगुली से अँगूठी निकाल कर टेबल पर रखता हुआ बोला--

"जब ग्यारह आने चुका दूँ, तो लौटा दीजिएगा!"

मैनेजर किंचित अप्रतिभ तो हुआ, बोला—

"महाशय जी, माफ कीजिएगा। अविश्वास तो मैं नहीं करता, पर दूकानदारी जो ठहरी!"

नवनीत ने तिलमिला कर व्यंग से कहा—"ठीक है. ठीक है! दस रुपए के ऐवज गाल की चपत का सौदा भी जहाँ मँहगा नहीं

पड़ता, वही भारतवर्ष की दूकानदारी है ! आपका दोष नहीं है; दोष तो अंग्रेजों का है. कि आप जैसे 'देश-भक्तों' के और 'प्रभु-भक्तों' के होते हुए भी, भारतवर्ष पर शासन करते रहने के लिए बड़ी भारी सेना का व्यय सहा करते हैं। यदि आपकी दूकानदारी चलाते रहने में वे योग दे सकें, तो आप अपने बेटे का गला काटने में भी संकोच न करेंगे ! मैं प्रयत्न करूंगा कि ब्रिटिश सरकार को यह बात सुझा दूँ । इस देश में बनियों की सेना का यह पाँचवा-स्तम्भ आप लोगों के योग्य होगा !–शायद आपको देर हो रही होगी ?"

मैनेजर कुछ लजा कर बोला, "जी हाँ, देर तो हो रही है, पर क्या चोट ज्यादा लगी है ?"

"आपका पुरस्कार जो है ! अंग्रेज की चोट से तो आज ही चल सकने में कठिनाई अनुभव हो रही है, थोड़े दिनों में ठीक हो जाएगी, किन्तु अपने ही देश भाई को चोट कब अच्छी होगी, कौन कह सकता है !–क्या आप अपना वेटर मेरे साथ भेज सकते हैं ? चला नहीं जाता, कहीं रास्ते में गिर-गिरा पड़ा तो ! जो आप कहेंगे, उसे दे दिया जाएगा !"

मैनेजर ने कहा, "अब आप ही कहिए, इस रात को किसे जाने के लिए कहूँ ? इसे दूकान बन्द करनी है !"

"मुझे ही कहिए मैनेजर साहब ! धन्यवाद !" नवनीत बाहर निकल पड़ा।

वेटर जो स्वयं सब कुछ देख रहा था, आगे बढ़ कर मैनेजर से बोला —

"अपनी नौकरी ही तो रखेंगे ? लीजिए , मैं ऐसे कसाई-खाने में नहीं रहता !--बेचारा युवक !"

और वह नवनीत की ओर आगे बढ़ा। मैनेजर कुछ डरा, कहीं यह वेटर ही पुलिस से भेद खोल दे, तो वेटर को लौटाता हुआ बोला— "बस इतने ही में पिघल गए ? अरे भाई, बिजिनेस है यह ! ऐसे किस्से तो रोज होते हैं यहाँ, किस-किस का साथ दोगे ? पर जाओ तुम्हारी

इच्छा है तो। दूकान मैं ही बन्द कर दूँगा। और यह अँगूठी लेते जाओ। ग्यारह आने लेकर लौटा देना ! मैं राह देखूँगा तुम्हारी; जल्दी लौटना !"

कुछ दिनों के बाद सुना कि खद्दरपोश महाशय के बदन पर खद्दर गड़ने लगी थी। और भाई ! जब उनके लिए चायना सिल्क के सूट की जुगत बैठाने वाली अंग्रेज सरकार उनके सिर पर थी तो इस चरखा सरकार के सूत के बल पर क्यों अधर में लटका जाए !—मूर्खता है जी !

(३)

घुटने का घाव और सिर की पट्टी पहले जैसे ही थे, कि नवनीत को एक यात्रा के लिए तैयार हो जाना पड़ा। पोस्ट मास्टर जनरल मि० विनफ्रेड जाफरी, आई. सी. एस., और जिला के कलेक्टर सर क्रोमवेल रोगर्स के. बी. ई. में गहरी दोस्ती थी !

उस दिन रात को जब सर रोगर्स नेशनल रेस्टराँ से बहुत रात बीते अपने बदन की सुस्ती और खुजली मिटा कर बँगले लौटे, तो रात तो उनकी ठीक कट गई, पर दूसरा दिन ठीक न कट सका ! शोफर ने पता लगाकर खबर दी कि चाँटा कसने वाला रात वाला जवान नवनीतलाल व्यास पोस्ट मास्टर जनरल के आफिस का आफिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट था !—जाफरी के आफिस का !

भारतवर्ष में तब क्रांति जोर पर थी। कम-से-कम पढ़े लिखे लोगों के लिए तो अंग्रेज अब कोई हौवा न रहे थे। और आए दिन गरमदली क्रांतिकारियों के अतिरंजित किस्से, राह चलते ही लोगों के कानों में हौल-दिली भर दिया करते थे ! आज गवर्नर की कोठी के पास एक बम फूटा, कल कलक्टर की कोठी में आग लगाने को कोशिश की गई, तो परसों कोई एलन कूपर ही को पार्क में से उठा ले गया—ये किस्से नए न थे, प्रतिदिन इनकी आवृत्ति समाचारपत्रों से, या फिर भारतीयों की जीभ के बेतार के तार से विस्तृत (ब्रोडकास्ट) होती रहती थी ! सर रोगर्स ने

सोचा कि बात साधारण नहीं है। पढ़ा लिखा ग्रेजुएट, काले-देश का लाल छोकरा इस रात्रि वाले उपसर्ग के बाद किसी भी दिन आफत हो सकता है, और यदि जारूरी से दो शब्द कह देने मात्र से ही यह आफत हटाई जा सकती है, तो क्यों न यही किया जाय ?

मतलब यह है कि घटना के तीसरे ही दिन नवनीतलाल व्यास का मानपुर गांव में ब्रांच पोस्ट-मास्टर की जगह पर तबादला हो गया—कारण, कई शिकायतें बताई गई, हालां कि उल्लेख एक का भी न था; यह भी प्रकट किया गया कि साहब बहादुर ने उदारता की है, वरना शिकायतें ऐसी गम्भीर थीं कि डिसमिसल ही उसका एक मात्र दण्ड था। शिकायतों को गम्भीरता में कोई अविश्वास नहीं करेगा—एक थी उनकी कन्या शर्ली की, दूसरी थी उनके मित्र सर रोगर्स की ! जल्दी ही आज्ञा को कार्यान्वित करने का विशेष रूप से उल्लेख था।

रात भर के अविश्रांत सफरने नवनीतके सम्पूर्ण शरीर को जर्जर कर दिया था, इसलिए प्रातःकाल जब १० बजकर ४१ मिनिटपर गाड़ी शिवहरा स्टेशन ठहरी, तो नवनीत में उतरने की भी शक्ति शेष न थी ! गाड़ी दो मिनिट से अधिक ठहरने क्यों लगी ? कोशिश करके हरनाम ने जल्दी ही नवनीत को नीचे उतारा और कुलियों की मदद से सामान उतारते-उतारते भी गाड़ी चल ही दी। गनीमत हुई कि कुछ सामान शेष नहीं रह गया ! इसके बाद इतमीनान से एक वृत्त की छाया के नीचे नवनीत को लिटा कर वह सवारी की तलाश में बाहर निकला।

सवारी की तलाश में इसलिए कि अभी भी २३ मील ४॥ फर्लांग का रास्ता तै करना है, जहाँ रेल नहीं जाती; पर सुना है मोटर जरूर जाती है। हरनाम ने पूँछताछ की तो मालूम दिया कि दो मिनिट हुए, मोटर रवाना हो गई।

रवाना हो गई, बिना सवारी लिए ही ? छोटा-सा स्टेशन है, दो-चार सवारियाँ उतर जाती हैं, और दो मिनिट में हो, गाड़ी सीटी मारती है उसके पहले ही, मोटर में बैठ भी जाती हैं। मोटर वाले को क्या पता

कि आज इस दईमारे स्टेशन पर एक सेकण्ड क्लास मुसाफिर भी उतरेगा ! आदि आदि !

हरनाम लौटा तो वृक्ष की छाया में नवनीत खुर्राटे भरने लग गया था। पर इससे क्या ? अभिशाप की मंजिल तो तै करना शेष है। हरनाम ने उसे जगाकर समस्त परिस्थिति से अवगत कर दिया।

नवनीत ने कहा "यमराज का वाहन नहीं मिलता क्या ? जा, वही ले आ। छुट्टी तो मिले !" और वह फिर करवट बदल कर लेट गया, किन्तु खुर्राटे भरने की शक्ति अब उसमें न रह गई थी।

हरनाम उठा, फिर स्टेशन के बाहर आया। तांगों का तो सवाल ही आज उठा ! इस स्टेशन पर जो भी उतरते हैं, पचास प्रतिशत पैदल चलदेने वाले, ठेठ मानपुर २३ मील ४॥ फर्लांग तक ! तब ?

तब क्या ?—कल इस समय तक ठहरा जाए तो मोटर मिल सकती है। मिल सकती है, और नहीं भी, क्योंकि मोटर का मानपुर से आना भी कम-से-कम आधी सवारियों के जुट जाने पर सम्भव है।

आखिर, रेलगाड़ी से छुट्टी पाए हुए इन यात्रियों को एक बैलगाड़ी की—बल्कि भैंसागाड़ी को—शरण लेनी पड़ी। किसे मालूम था कि नवनीत को ले जाने के लिये आखिर उसीके शब्दों को सच होना पड़ेगा। और मजा यह कि यात्रा के बाद नवनीत सोचता ही रह गया कि यदि सचमुच यमराज का वाहन ही उसे ले जाता तो इस यात्रा से वही अधिक लोभनीय होती। चारा-पानी दे-दुआकर जब यात्रा शुरू हुई तो साढ़े बारह बजे थे, और तै करना थे २३ मील ४॥ फर्लांग, २ मील फी घण्टा की रफ्तार से !

किन्तु जिस तरह सभी बातों का अन्त होता है उसी तरह यात्रा का भी अन्त हुआ रात के ११॥ बजे के करीब, जब कि यह कठिनाई सामने आई कि ठहरा कहाँ जाए ? नवनीत तब तक लुढ़क-पुढ़क कर गठरी बना हुआ पड़ा था, ऊँघते हुए गाड़ीवान ने उसे बिस्तर समझा, और इसलिए उसका तकिया बनाने में उसे संकोच न हुआ। नवनीत

जाग रहा था, किन्तु प्रतिवाद करने इतनी भी शक्ति उसमें शेष न थी ! हरनाम पीछे—गिर न जाय इसलिए सामान की रखवाली करता हुआ ऊँघ ऊँघ पड़ता था और चौंक चौंक उठता था। तभी चौकीदार ने हाँक लगाई, गाड़ीवान उठ बैठा।

हरनाम ने पूछ कर मालूम किया कि सराय नाम की एक वस्तु है तो। पर वह मुसाफिरों के लिए आवास जुटाने की जगह नहीं, विवाह या मौत के अवसर पर वहाँ शक्कर गलती है। बड़ी भारी जगह है, मानपुर की नाक–एक साथ चार हजार व्यक्तियोंकी पँक्ति बैठ सकती है। किन्तु मुसाफिरों के सोने के लिये तीन गज लम्बी और एक गज चौड़ी जगह मुहय्या नहीं हो सकती। जाति-फिरके का सवाल है, और आधी रात को पंचों को जाकर जगाये कौन ? और वे जागें क्यों ?

किन्तु घबराने जैसी भी कोई बात न थी। कस्बे के दूसरे किनारे पर पनघट से जरा-सा आगे हट कर बाएँ हाथ पर खुला मकान है, वहां पर कोई भी उतर सकता है, किसी की रोक-टोक नहीं।

सो तो ठीक, पर इतनी रात को वह खुला मिल जायगा ?

निश्चिन्त रहो, किवाड़ तो वहां कभी बन्द होते ही नहीं। बल्कि किवाड़ हों तब तो बन्द हों।

और भटियारा जाग तो जायगा न ?

भटियारा ? यह भी खूब सवाल है।—भटियारा वहां रह कर करे ही क्या ? अरे भाई, रात भर किसी तरह निकाल लेना और सवेरे कोई अपना दूसरा प्रबन्ध करना। यहीं रहोगे या आगे कहीं जाना है ?

नवीन चुपचाप सब सुनता रहा। आखिर वह धर्मशाला भी आ ही गई। किराया पाकर गाड़ीवान कहीं दूसरी जगह विश्राम के लिए चल दिया, और सामान तथा हरनाम के साथ नवनीत भी तथाकथित धर्मशाला में प्रविष्ट हुए। रात अधिक हो गई थी, अँधेरी। हरनाम ने होल्डाल बिछा दिया। लेटते ही नवनीत मुर्दों से बाजी बदने लगा, और हरनाम भी आधा जागने की कोशिश करता हुआ लेट रहा।

प्रातःकाल उस गौरवमई धर्मशाला के दर्शन का अवसर मिला—मिट्टी के घरौंदों से खड़ा किया हुआ टूटी कमर का एक मकान। सिंहद्वार का गौरव लिए दरवाजा पश्चिमाभिमुख है, जिसकी कपाट-जोड़ी किसी जरूरतमन्द के घर पर सेवाकार्य कर रही थी, बेजरूरतमन्द के लिए तो वह अवहनीय बोझा ही साबित होती। किंतु उसको सिंह द्वार का केवल नाम दिया जा सकता है, गौरव तो पूर्व की ओर किसी बरसात में बूढ़े की जवान जोरू की तरह खिसक गई दीवार ही को दिया जा सकता है, जिसने कि यहाँ के निवासियों के लिए आम रास्ते की सुविधा करदी है !

निवासी—किन्तु कस्बा होते हुए भी मानपुर ऐसी बस्ती नहीं कि मुसाफिरों का आना-जाना बराबर बना रहे ! अवश्य ही नवनीत लाल अपवाद है ! हर बस्ती में एक समूह ऐसे लोगों का होता है जो बे-घर, बे-रोजगार, बे-जान-पहचान, बे-रिश्तेदार—एक 'बे-कार' को छोड़ कर सब 'बे' होता है' ! सामान उनका बिलकुल संक्षिप्त—खाते खाते यदि जरूरत पड़े कि पानी दूसरी जगह पिया जाए, तो ये लोग यहाँ का मुँह धरा कौर वहाँ जाकर गले के नीचे उतारें !—सामान- सुमून सब कंधे पर लटकाया हुआ, और जमा-पूँजी की एक दम से अचिन्त्य नई तिजोरियाँ, जो विश्व के सप्ताश्चर्यों का गर्व खर्व कर सकती हैं, जैसे सिर की बढ़ी हुई जटा, मुँह का काकल, या दाढ़ी का कोई अदृश्य घोसला—कभी कभी तो जंघा चीर कर भी ये लोग अपनी संपत्ति की पुटलियां उसमें छिपा लेते हैं ! आप जान गए होंगे—ये लोग सभ्य-भाषा में 'भिखारी' नाम के अधिकारी हैं !

इन्हीं लोगों के इस आवास में आँगन की जरूरत ही क्यों होने लगी ! इधर मिट्टी का एक ढूह खड़ा है, उधर बासी सड़ी रोटियों के टुकड़े पड़े हैं, जिन्हें कुत्ते भी बड़े चाव से सूँघ कर हसरत भरे चेहरे से लौट जाते, हैं और उधर आटा सेंकने के लिए चूल्हे की राख का स्तूप—यही सब कुछ उस मकान का अंग-विन्यास था !—भिखारी, कार-

व्यारियों की तरह प्रातःकाल ही अपनी 'दूकानों' पर पहुँच गए थे। धर्मशाला इस समय लगभग शून्य ही थी।

आंखें खोलकर नवनीत ने जैसे ही इस दृश्य को देखा, उसे मचलाहट होने लगी। हरनाम से बोला—

"हरनाम! इस बोरिए-बसने को और मुझे तो तू किसी झाड़ के नीचे पटक आ, अगर मुझे जीवित देखना चाहता है। इस जगह में मैं एक क्षण भी जिन्दा न बचूँगा! पोस्ट आफिस का पता तू बाद में लगाया करना!"

पास ही पनघट से जरा हटकर एक नीम का वृक्ष वर्षों से पनिहारिनों के मुखरित-हास्य को बड़े मनोयोग से सुनता हुआ अपने अक्षय यौवन के मद में झूल रहा था! हरनाम ने अपने मालिक का बिस्तरा यहीं लगा दिया, और फिर कस्बे में पोस्ट आफिस की तलाश में रवाना हो गया।

पनघट अधिक दूर न था, चालीस कदम के भीतर ही। आँख, कान और ध्वनि, सब वहाँ सरलता से पहुँच सकते थे। शांत, नीरव ज्वर-ग्रस्त नवनीत ने उधर अपना रुख किया!

पक्का बँधा हुआ कुआँ, पानी के निकास के लिए नाली, खींचने के लिए रहँट,—डोल, रस्सी, पानी और खींचने वाली पनिहारिनें—न केवल कुएँ से पानी ही खींचतीं थीं, किन्तु देखने वालों का मन भी!

आठ या दस थीं! घड़ा पानी से भरा हुआ; मन उल्लास से; मुखर-मुँह हँसी और चोचलों से; और सम्पूर्ण शरीर यौवन से—कोई लाल, कोई पीली, कोई हरी साड़ी पहने हुए, आठ या दस!

पानी भरने आती हैं; पर पानी भरता है स्वयम् सौंदर्य, —हँसी के फौवारे छूटते हैं, रँगरेलियों की पिचकारियाँ उड़ती हैं! डोल के भरे हुए पानी में होली, आँखों में भरे मद में दिवाली, और ओठों के प्याले में भरी —मृत्यु, जीवन या मस्ती?—

बातें चलती हैं सुसराल की, पीहर की, घर की, बाहर की, नँनद

की, देवर की—और, चितचोर की। तब कोई शर्मा कर, कोई गर्मा कर, और एक दूसरी का मन भर्मा कर अपनी भरी हुई गगरी को, क्षण-क्षण में टूट पड़ने वाली कमर पर रख कर चल देती हैं; एक जाती है, दूसरी आती है—तीसरी-चौथी—कई; आठ दस तो बनी ही रहती हैं!

एक पानी खींच रही थी! पीछे से दूसरी पहुँची, बिलकुल आहिस्ता—और अपनी कमल-पल्लव हथेलियों को फैला कर उसने पहली की कानों तक खिंची हुई आँखों को ढाँक दिया! गागर बीच ही में; पहली ने खींचना बन्द कर दिया, एक हाथ से उसकी हथेली छूकर पहचानने की कोशिश की, फिर कहा—"मनोरमा?"

"ऊहूँ!"

"सुशीला?"

"ऊहूँ!"

"कुमुदिनी?"

"ऊहूँ!"

"शूर्पणखा?" पास वाली युवतियाँ हस पड़ीं, पर पहली के आकर्ण-विलम्बित नेत्र मुक्त न हुए!

"अच्छा बताऊँ कौन है तू?"

"हूँ!"

"रामी धोबिन, पद्दो चमारिन, करण्टी डाकिन, सुरसा चुडैल और हिडिम्बा राक्षसी?—बस! छोड़ती है या नहीं? या सात पीढ़ियों का बखान करूँ?"

तब हँसती हुई मनोरमा ने आँखें छोड़ दीं। देखकर, बनावटी क्रोध करती हुई पहली ने कहा—

"मुँहझौंसी! तेरा ही तो नाम लिया था सबसे पहले!" फिर अपनी आयत आँखों को फाड़ कर, फूले हुए मुँह को कुछ वक्र बनाती हुई उसने मनोरमा के एक धौल जमादी—जमादी, पर दुर्घटना होगई!

पहली का एक हाथ कमर से आवेष्टित था, दूसरा उलझा हुआ था रस्सी से, जो भरी हुई गगरी को कुएँ में आधे लटकाए हुए था। जैसे ही धुप्पलबाजी हुई, युवती को रस्सी का ध्यान तो रहा नहीं, धौल जमाने के लिए वही हाथ आगे बढ़ा। मनोरमा के सिर में धौल, और पानी में रस्सी और डोल, दोनों साथ ही साथ गिरे!

और एक दूसरा व्याघात पड़ गया! हरनाम, दो कुलीनुमा व्यक्ति, और ३०-३५ के बीच का एक और सुदर्शन व्यक्ति वहाँ आ पहुँचे। स्त्रियों ने आगन्तुकों को देखा—एकाध को छोड़ कर सभी ने घूँघट डाल लिए, और फिर पहली को नितान्त आश्चर्य-मूढ़ छोड़ कर एक एक कर खिसकने लगीं! मनोरमा ने घूँघट ही में से कहा—

"और धौल में जमाना!" और उसके लज्जारुण—या रोषारुण अनावृत मुँह पर एक हल्की सी चपत लगा कर घड़ा भरना शुरू कर दिया।

सुदर्शन व्यक्ति विषम परिस्थिति में मालूम दिया। एक क्षण उसने सुन्दरी पर दृष्टि डाली, दूसरे क्षण लेटे हुए नवनीत पर! और उसने नत होकर नवनीत को प्रणाम किया!—पुनः एक अर्द्ध-दृष्टि सुन्दरी की ओर!

हरनाम कुछ कहना चाह ही रहा था कि वह युवती उसी लज्जारुण या रोषारुण मुँह को लिए सुदर्शन व्यक्ति के निकट उपस्थित हो गई। नवनीत और हरनाम दोनों ने उस ओर ध्यान दिया—देखा कि युवती ने एक हाथ सुदर्शन व्यक्ति के कन्धे पर रक्खा, अधरों पर फूटती हुई हँसी छिपाई, और उठती हुई आंखों को नीचे झुका कर बोली, नितान्त भोलेपन के साथ—

"डोल और रस्सी तो आज भी कुएँ में गिर पड़ी!"

सुदर्शन व्यक्ति के मुँह का संकोच एकाएक दूर हो गया, मुस्करा कर बोला:—

"अगर मालूम होता कि तेरी रईसी कभी जाएगी नहीं, तो शादी

के समय सुसराल से अन्य वस्तुओं की अपेक्षा थोड़े डोल रस्सी ही अधिक इकट्ठे कर लेता ! किन्तु डोल रस्सी के लोभ में तुझे न गवाँ बैठूं कहीं ! जा, निकलवा दूँगा !"

"और अगर नहीं निकली ?"

"तो तुझे घर से निकाल दूंगा !" हंस कर उत्तर मिला ! "पर देख इस तरह बात करने का कोई ढङ्ग है क्या ? —मैं अपने नए पोस्ट मास्टर से मिलने आया हूं, देखेंगे तो क्या कहेंगे ?"

"अपने स्त्रैण पोस्टमैन की अवस्था पर तरस खाएँगे, किन्तु मैं तो सिर ऊंचा कर सकूंगी न ?—हैं कहां तुम्हारे पोस्ट मास्टर साहब ?"

"वे जो लेटे हुए हैं !"

'लेटे हुए ?—ढङ्ग तो उनका भी बुरा नहीं है ! आंखें फाड़ कर इस तरह देख रहे हैं जैसे खाजाएंगे !—चलूँ, सिफारिश कर दूं क्या ?'

"व्यक्ति ने हँस कर कहा, "क्षमा चाहता हूं, देवी ! घर पर तुम इसका पूरा बदला ले लेना, किन्तु यहां तो रक्षा तुम्हारे ही हाथ है। कहो तो हाथ जोड़ कर क्षमा माँग लूँ ?"

"क्षमा किया, परन्तु तुम गैर व्यक्ति का इतना ध्यान रखने की अपेक्षा, यदि अपने ही व्यक्ति का इतना ध्यान रखो तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण होगा !"

न जाने किस बोझ से हलकी, युवती दौड़कर पनघट पर पहुँची, और मनोरमा के दूसरा धौल जमाती हुई बोली, "ला, एक घड़ा मुझे दे ?"

फिर जब तक दोनों अदृश्य न हो गईं, सभी उनकी ओर निर्निमेष, एक अतृप्त आकांक्षा से देखते रहे।

हरनाम ने सामान कुलियों को बतला दिया, फिर नवनीत से बोला—

"ये ही हैं यहां के पोस्ट मैन बाबूजी, बड़े ही नेक आदमी मालूम देते हैं। नाम है अधरलाल ! अब आपकी तबियत कैसी है ?—मकान

मैं देख आया हूँ, मजे का है, काम खूब चल जाएगा। चल तो सकेंगे न ? अधिक दूर तो नहीं है !"

"चल सकूंगा !" नवनीत ने केवल यही कहा। तब तक पोस्ट मैन अधरलाल भी अपने दिवा-स्वप्न से निवृत्त हुए। मुँह पर मन्द मुस्कान के साथ बोले—

"यह सेवक आपका स्वागत करता है महाशय ! भाई हरनाम से मालूम दिया कि आप को बड़ा कष्ट हुआ। कल की मोटर मैंने देखी भी थी !

"हां, संयोग ही की बात थी !"

इसके बाद सभी उठे और बस्ती की ओर चल दिये !

(४)

अधरलाल घर पहुँचे तो आठ बज चुके थे। पत्नी दिया जलाए देहली में बैठी कभी बाहर की ओर देख लेती थी, और कभी हाथ में ली हुई किताब की ओर; पर न उसे बाहर की ओर ही कुछ दिखाई देता था, न किताब में ही !

गृहपत्नी का स्वभाव कुछ विचित्र ही देखा गया है, उसकी रति और गति, या तो पति में है, या पुस्तक में ! घर के काम, नौकर के अभाव में, करना उसी को पड़ते थे, इसलिए करती वही थी—नितान्त उपेक्षा के साथ भी नहीं, पर पति या पुस्तक, किसी के भी हाथ में आ जाने पर खाना-पीना-सोना-बैठना सब ग़ायब।

वह पुस्तक की ओर देख रही थी, पर क्या ? जब उसे यह मालूम हुआ तो अपनी अन्यमनस्कता पर वह आप ही हँस दी, फिर उसने पुस्तक खोल कर भीतर देखा ! पाठक चौंकेगा, पुस्तक थी 'किस्सा तोता- मैना'! मैना की कहानी खुली हुई थी, मैना-तोते से कह रही थी—'पुरुष तो ऐसे ही बेरहम होते हैं, इसलिए टेंटें राम, अपनी सलाम ही समझो !"

तोताराम ऊपर वाली छड़ पर फुदक कर बोले—"औरतों की बेवफ़ाई तू नहीं जानती !—मेरी कहानी सुन, तेरी कहानी से वह दो गज़ आगे है।"

"चल हट, अभी फुरसत नहीं है! फिर कभी सुनाना!—चोंच ही तेरी दो गज आगे निकली हुई है, यदि कहानी आगे निकली तो वह तेरे दिमाग़ की कल्पना ही होगी।"

किन्तु पत्नी की आखें 'पुरुष तो ऐसे ही बेरहम होते हैं!' से आगे नहीं बढ़ीं, वहीं पर अटक कर अपने खोए पति को मानों तलाश करने लगीं—किन्तु, तभी अधरलाल ने आकर उसकी कल्पना को भंग कर दिया।

पत्नी ने पुस्तक रख दी—देहली में बैठी हुई थी, पति दरवाजे पर ही खड़े थे—पत्नी उठी, भवों में थोड़ा और बल डाला, और हवा भर कर कपोलों को फुलाती हुई भीतर चली गई।

अधरलाल ने पत्नी का अर्द्ध-विकसित कुसुम-कलिका-सा रोष-विद्रुम चेहरा देखा तो हँसी से अपने अधर भर लिए और घर में प्रवेश किया! पत्नी प्रदीप के सम्मुख खड़ी हो गई, प्रकाश की किरणें ठीक मुँह पर पड़ती हुईं अर्द्ध विकसित कुसुम-कलिका-सा रोष-विद्रुम चेहरा, बल से भरी हुईं भवें, आँकुचित ललाट, और तिरछी दृष्टि!

अधरलाल ने हँसते हुए पूछा—"और तीसरा नेत्र कहां है?"

"तीसरा नेत्र कहाँ है!—शरम नहीं आती कहते हुए?—तीसरा नेत्र होता तो—"

"मदन-दहन हो जाता!"

"मदन के समान सुन्दर तो हो न! काँच दूँ?"

"वह तो तुम्हारा चेहरा ही है आरती!"

"परन्तु इतनी देर तक किसके चेहरे में अपनी मूर्त्ति देखते रहे?"

"ओह, श्रीमती के कुपित होने का कारण अब समझ में आया! किन्तु मैं तो कुएँ में अपनी मूर्त्ति देख रहा था!"

"कुएँ में!"

"हाँ—किन्तु निश्चिन्त रहो, खरहे ने मुझे किसी दूसरे अधरलाल की सूचना नहीं दी थी, बल्कि सूचना दी थी डोल रस्सी की! बेचारा दूसरा अधरलाल बच गया।" अधरलाल हंस दिए।

आरती भी हंस दी, बोली—"किन्तु खरहा !"

"यदि डोल रस्सी न निकलती, तो खरहा तो था ही। पर देवी ! डोल रस्सी ने उसे भी बचा लिया !"

"और तुम्हें कौन बचाएगा !—आज खाना नहीं मिलेगा —आठ बजे कोई डोल रस्सी नहीं निकालता, घर से कब के निकले हो ?"

"खाना नहीं मिलेगा तो गजब हो जाएगा आरती ! रात भर में चूहे इस पेट में इतना बड़ा बिल बना लेंगे कि सवेरा होने के पहले ही इस मुंह की गुफा में गंगाजल तुलसी सोना—

"आरती ने अधरलाल के मुंह पर हाथ रख दिया बोली—"खाना रखा है खालीजिए–जाइए !—मुंह कौन लगे तुम्हारे ?"

"कैफ़ियत भी नहीं सुनोगी ?"

"मेरी बला से। रात-भर भी घूमते रहो, तो चूं नहीं कहूँगी !"

"नाराज हो गई हो क्या ?—सेवक क्षमा माँगता है !" हंस कर अधरलाल ने हाथ जोड़ लिए ! आरती ने उन्हें पकड़ कर कहा—

"माफ कर दिया—आओ—मुझे बड़े जोरों से भूख लग रही है !"

"अरे, तो क्या तुमने भी अभी तक खाना नहीं खाया ?"

"खाती तो रहती हूँ—अजी ग़म। पर कम ही खाती हूं इसलिए तो तुम्हें देखते ही भूख लग पड़ती है !"

"जल्दी ही आता ! पर बेचारा पोस्ट मास्टर आते देर नहीं हुई कि बीमार हो गया।"

"बीमार हो गया !—वह न, जो उस पनघट पर सोया हुआ था ?

"वही।"

"उस दिन तो भला-चंगा दीखता था ? उस देह को क्या बीमारी हो सकती है ?—देखता ऐसे था, मानो गिद्ध हो ?"

"घर से ही बीमार चला था, उस दिन भी उसकी हालत वैसी ही थी !"

"तभी तो उसने खाया नहीं ! भला-चंगा होता तो खा भी जाता

मगर बड़ा बेवकूफ़ है तुम्हारा पोस्ट मास्टर ! बीमार था तो घर से चला ही क्यों ?—मुश्किल होगी तो उस बेचारी पत्नी की। नई जगह, नया कारोबार, कोई जान-पहचान नहीं, और सिर पर पति की बीमारी ! मर्द को क्या ? यदि सहन न हुआ, तो 'हाय बाप' चिल्लाते हुए करवटें बदलता रहे।" हंसकर अधरलाल ने कहा, "निश्चिन्त रहो आरती ! दुःखित होने वाली पत्नी या मां कोई उनके साथ नहीं है !"

"नहीं है ?" आरती को विश्वास नहीं हुआ।

"नहीं है !"

"और वह बीमार है ?"

"हां—और सख्त ?"

"नहीं नहीं, तुम झूठ कहते हो। सख्त बीमारी में उन्हें घर से निकलने किसने दिया ?"

"उनकी तकदीर ने ! सुख में पली हुई देह, सिर और घुटने पर घाव मालूम देता है मन पर भी कोई भयानक घाव है, और बारह घण्टे का बैलगाड़ी का सफर इसलिए तो दिनभर उनके पास बैठा रहा !"

"दिनभर कराहते रहे होंगे !"

"दिनभर तो नहीं ! क्योंकि बहुत समय तक तो वे बेहोश ही रहे।

"तो क्या उन के मां-बहन-पत्नी कोई नहीं हैं क्या ?"

"होगी तो जरूर ही !"

"फिर भेज कैसे दिया उन लोगों ने इन्हें !—क्या वे स्त्रियां नहीं हैं ?"

अधरलाल हँस पड़े, बोले—उनकी माँ, बहन, पत्नी आदि स्त्रियां हैं या मर्द, यह तो मैंने नहीं पूछा, अबकी बार जरूर पूछूँगा ! किन्तु यह उदर-दरी जो खोखली होती जा रही है !"

आरती ने कुछ विशेष नहीं सुना, पूछा—"और उनके खाने-पीने की क्या व्यवस्था है ?"

"बीमार आदमी खाता-पीता है ?—खाना पीना हो तो बीमार ही क्या हुआ ! वैसे नौकर साथ है ही !"

"नौकर ?—चौपट समझो तबतो ! अरे, कह नहीं दिया उनसे कि, न हो तो भूखे रह लें, मगर नौकर के हाथ का बीमारी में ऐसा वैसा खाकर—"

"कहो न !—कि गङ्गाजल सोना-तुलसी आदि ग्रहण करने की तैयारी न करदें ! तुम स्त्री हो, ऐसी भयानक बात तुम्हारे मुँह से नहीं निकल सकती। पर पट्ट महादेवी, खातिर रखिए, रातभर उन्हें भूख नहीं सताएगी, न उनका नौकर ही वैसा है, जैसा कि तुम समझ रही हो ! बल्कि यदि कुछ विलम्ब और होजाए, तो तुम्हारे उन अकथित शब्दों को सार्थक करने के लिए मैं स्वयम् प्रयत्न कर सकूंगा !"

शीघ्र ही आरती ने खाना परोस दिया !

"और हाथ न धुलवाओगी ?"

"यह भी काम मैं ही करूँगी तभी होगा ! एक तुम हो, एक है बेचारा पोस्ट मास्टर, जो बीमार है, मगर फिर भी हाथ धोने से लेकर सभी काम हाथ से ही करता है !"

अधरलाल कुछ कहे उसके पूर्व ही आरती ने उसके हाथ धुलवा दिए। अधरलाल थाली पर बैठे, आरती चौके में बैठी रही !

"तुम न परोसोगी अपने लिए ? क्या मेरी जूठन से पेट भरने का निश्चय है क्या ?"

"वे दिन लद गए जब पत्नियाँ इसी में अपना सौभाग्य समझा करती थीं।"

"पर तुमने तो अपनी निष्ठा से उनकी भी टांग तोड़ रक्खी है !"

"तोडूँगी क्यों नहीं, मुझे क्या ऐसी पुरानी पत्नियाँ पसन्द हैं ?—और मैं क्या तुम्हारी पत्नी हूँ ?—इष्ट देवी नहीं हूँ क्या ?"

"जरूर हो !—तभी तो जब तक इष्ट देवी के नेवैद्य नहीं लग-जाता तब तक भक्त खाने की कल्पना ही नहीं कर सकता !"

"परन्तु तुम सब कर सकते हो !—तंग मत करो खाओ;—सच तो यह है कि मेरी भूख ही मर गई !"

"बेचारे पोस्ट मास्टर के भाग जग गए !—दे दूँ क्या कल उन्हें इसकी खबर !"

आरती ने मानों कुछ भी न सुना, बोली—अच्छा यह बताओ, माँ का तो उनकी, देहान्त हो गया हो सकता है। माँ आखिर किसी की, सब दिन तो जीवित रहती नहीं, और बहन भी पराए घर की हो जाती है, पर पत्नी ने आखिर किस साहस से उन्हें इस अवस्था में अकेले भेज दिया ? या पत्नी भी छुट्टी पागई ? उमर शायद ज्यादा होगी, तभी न दूसरी शादी नहीं कर सके होंगे !"

अधरलाल ने खाना प्रारम्भ कर दिया, बोले—"दूसरी तीसरी शादी का तो मुझे पता नहीं, पर यह तो जानता हूँ कि वे बूढ़े नहीं हैं। अभी तो तीस के भी नहीं हैं !"

"अरे ! अभी तो लड़के ही हैं !"

"हाँ, पर पढ़े हुए बहुत हैं। साहब से शायद कुछ खट-पट हो गई, इसीलिए इस भूँज गाँव में आ पड़े हैं, नहीं तो हेड आफिस में बड़े बाबू थे !"

"तब तो उनकी माँ जीवित होगी, और शायद इन्होंने विवाह किया ही न हो !"

"हो सकता है !"

"माँ बड़ी निष्ठुर है तबतो। न तो विवाह किया, न इस अवस्था में परदेश में साथ ही आई !"

"आरती, एक बात तो साफ है ! पोस्ट मास्टर की माँ निष्ठुर है या नहीं, यह जानने का तो मेरे पास कोई साधन नहीं, किन्तु वह ईश्वर इतना निष्ठुर कभी नहीं है ! एक अपरिचित की बीमारी का

हाल सुनकर जिस स्त्री की भूख मर जाती है, वह स्त्री इस जगत् में मातृत्व का कल्याण प्रसार करने के लिए न तो पोस्ट मास्टर ही की अपेक्षा करेगी, न स्वयम् भगवान् की ही ! भारतवर्ष है आरती, तुम्हारी भूख मर गई, पर मैं आज दुगनी रोटियाँ हजम कर लूँगा !"

"औरतों की बड़ाई करना कोई तुमसे सीखे !"

"तो तुम्हें अभय दान दिया !"

"और सब्जी न दोगी क्या ?"

आरती ने सब्जी परोस दी ! अधर बाबू बोले—

"आज तो थोड़ा-बहुत खालो ! पोस्टमास्टर की चिन्ता करने के लिए बहुत समय मिलेगा। रहस्य में छिपा हुआ जरूर है लड़का, पर है मजे का आदमी !"

"मुझे तो कुछ भूख मालूम देती नहीं; सब्जी भी तो नहीं हैं अब !"

"तो सभी परोस दी मुझे ? पर मैं क्या इतनी खा सकूँगा ?— जितनी इच्छा हो, एकाध रोटी ही सही !"

"तुम मानने वाले थोड़ी हो !—तो लाओ, थोड़ी सब्जी दे दो !"

(४)

बीतती हुई फरवरी की रात, जब कि न तो ठण्ड जाती ही है, और न रहती ही है ! दूसरा पहर खत्म होने को है, जब कि एक आधे-अँधेरे कमरे में नवनीत अपनी खाट पर पड़ा हुआ, छत पर आँखें फैला रहा था।

बुखार का दौर अभी-अभी समाप्त हुआ है। सिर भिन्ना रहा है, जी घबरा रहा है, और बन्द कमरे में गरमी भी मालूम दे रही है ! दिया जल रहा है, पर बहुत हलके-हलके; मानो अँधेरे की पहरेदारी करता हुआ ! और एक पुस्तक एक गिलास के सहारे खड़ी करके सोने वाले के मुँह पर रोशनी न पड़ने का प्रबन्ध भी किया हुआ है। बाहर बरामदे में सोए हुए हरनाम की जाग्रत नाक बता रही है कि आधी रात जा चुकी है।— और जिसके पग-पग पर कट जाने का डर है, वह यदि सबके सो जाने

पर भी जागती रहे तो बहुतेरे खतरे आसानी से दूर हो जाते हैं ! हरनाम की नाक जाग रही है, नवनीत भी जाग रहा है—कट जाने का डर उसे अवश्य नहीं। हिन्दुस्तानी है, उसकी नाक पहले ही कटी हुई है !

नवनीत का दर्द बढ़ता जा रहा है; दर्द बढ़ता ही है, यदि तकदीर ही बेदर्द हो ! और नवनीत की तकदीर बेदर्द है ही !

अँधेरे में छत पर नवनीत क्या देख रहा था, यह तो वहीजाने, पर अँधेरे का समूह जरूर उसके सामने फैला हुआ था ! मानपुर-गाँव !—न यार-दोस्त, न सोसाईटी, नटेनिस क्रिकेट, न नाटक-सिनेमा, न क्लब !—ऐसी जगह है मानपुर !

जिन्दा है, तो जी रहा है; यदि मर गया तो कोई पूछने वाला भी नहीं ! पोस्टमैन रिपोर्ट कर देगा, दो-एक दिन में रिलीव्हर भी आजाएगा ! और कौन जाने, मरने के बाद भी कहीं उसकी लाश को वहाँ पर उपस्थित रहने की नौकरी न देनी पड़े !

नवनीत ने दर्द से कराह कर करवटली; हरनाम की नाक उसी तरह बज रही थी ! मानपुर भी क्या गाँव है ! और वह धर्मशाला ?—यदि अँधेरे की चादर से उसका वीभत्स-सौन्दर्य ढँका न होता, तो क्या क्लांत नवनीत की वह रात्रि शीतल श्रांतिहर हो पाती ?—परन्तु बीत गई वह रात भी !—नवनीत, और अस्वास्थ्य का पल्ला पकड़ कर ऐसी मजेदार जगह में रात बिताने की सजा पाए—नवनीत के जीवन में वास्तव में याद रखने की बात है।

—और वह पनघट ?—पनिहारिनों से भरा हुआ आठ-दस—घड़ा पानी से भरा हुआ, मुखर मुँह हँसी और चोंचलों से, और सारा शरीर यौवन से ! आती हैं पानी भरने, पर पानी भरता है हुस्न, अल्हड़पन;—और टूटती हुई कमर पर पानी की गागर के साथ ही साथ, रह रह कर मचल उठने वाली मन की मस्ती !—यह नया निर्दोष-दृश्य—कैसे भूला जा सकता है ?

न जाने कब तक दर्द ठीक होगा !—ठीक होगा, या शरीर को

साथ लेकर जाएगा ! घुटने का घाव सेप्टिक हो गया है, और हृदय का घाव ? जहर उसमें भी फैला हुआ है ! भूलने की कोशिश करता है इसे नवनीत; पर भूल सकेगा ?—भारतीय है तू ?—क्या खुद अपने मस्तक पर तू धूल नहीं डालता ?—मस्तक और घुटने पर बँधी हुई ये पट्टियाँ क्या इसी मनोवृत्ति की शिला लेख नहीं ?—दुर्भाग्य के समान छाए हुए अँधेरे-आकाश के ये प्रकाश-रन्ध्र तारे क्या कोटि जिव्हा होकर तेरी अकर्मण्यता की जासूसी नहीं करते ?—देश के चरणों पर अपने फेन-स्फीत चीत्कार को मूर्त्त करते रहने वाले समुद्र के क्रन्दन को तू क्यों उत्कर्ण करने लगा, गौरांग जाति द्वारा स्वर्ण-कलश में सज्जित अफीम का मोहक रस जो तेरे कण्ठ में बैठा हुआ है ! रंगीन चश्में से देखकर दुनियाँ को रंगीन देखने वाले अन्धे, जब तुझ में वास करने वाले मनुष्य ही को सुला दिया गया, तब फिर तुझ खोखले में शेष रहेगा ही क्या ! वे तुझे चपत मारेंगे, तू उनका मुँह ताकेगा, और यदि कोई तेरे अपमान का बदला चुकाने की सोचे ?—

बदला चुकाने की सोचकर उसने जो कुछ पाया है, वह याद रखने जैसी वस्तु नहीं, उस से तन और मन दोनों खराब होते हैं, पर उसे भूला कैसे जाए ?—दर्द से कराह कर उसने करवट बदली; हरनाम की नाक तब भी उसी तरह बज रही थी !

और कभी कभी, इन सब कभी न भूली जाने वाली बातों के ऊपर एक और मरीचिका उद्‌भूत हो जाती है, तब भूल जाता है यह समस्त मथनगोल, सिर्फ रहजाती है वही एक बात—अस्तमान् मंगल के प्रकाश-पुंज सी, जाते हुए ताँगे की लाल रोशनी, और उसमें बैठी हुई दीप्त मूर्त्ति नारी का निष्ठुर रोष-स्फीत विद्रुम मुख-मण्डल !—माया का !

कैसे माया, नवनीत के जीवन में थी ही क्या ? नक्षत्र-चर्चित इस महाकाश में बेचारे चन्द्र का महत्त्व ही क्या है ? परन्तु आज नवनीत का हृदय पृथ्वी का आकाश है, उसमें बड़े-बड़े नक्षत्रहीन दीखते हैं;, और

यदि अमावस्या है, तो उसने सूर्य-ग्रहण का योग भी उपस्थित कर दिया है।

नींद नहीं आती, न चैन ही पड़ता है!—नवनीत ने सिरहाने पड़े सिगरेट केस को उठाया, एक सिगरेट जलाई, और लेटे ही लेटे कश खींचने लगा!

(कहाँ से कहाँ पहुँच गया तू नवनीत! वह भी दिन थे जब कालेज का पूरा प्रेस तुझ में समाया हुआ था, रुपए की चिन्ता न थी, आसमान से ही हर महीने आ टपकते थे; पढ़ने के नाम सिवा उपस्थिति पूरी करने के था ही क्या?—हाकी, क्रिकेट, टेनिस, सिनेमा, थिएटर, साइकल, बाग, नदी का किनारा, और फिर बाजार में किसी कपड़े वाले की दूकान पर जाकर पूछना—

"सेठ जी, दो पान तो लगा दीजिए—बढ़िया बनारसी!"

सेठ जी चश्मे से ढँकी हुई अपनी नजर को तन्दुल-उदर से उठा कर इस समूह की ओर देखते, ऊपर-नीचे के दोनों गदराए हुए ओठों को जरा फाड़ कर अपने मिट्टी के रंग के दाँतों को निपोरते हुए पूछते—"एँ—क्या माँगा?"

"दो पान; बढ़िया बनारसी; जरा जल्दी से लगा दीजिए?"

"पान?"

"हाँ, हाँ, पान—मुँह में खाने का, जिसमें कत्था लगता है, सुपारी लगती है, और जानते हैं न?—चूना लगता है!"

सेठजी नाराज न होते, उनके वे मिट्टी के रंग के ओठ कुछ और फैल जाते, वे कहते—

"मज़ाक कर रहे हो भैयाजी! पान आगे मिलेंगे, यह तो कपड़े की दुकान है।—पेण्ट का कपड़ा देखो, जिसे आदमी जाकर ले आयेगा!"

"आपके यहाँ पान नहीं मिलते?—इतनी बड़ी दुकान और पान नहीं!—अजीब शहर है!"

फिर कभी पानवाले की दुकान पर कपड़ा तलाश किया जाता—

और दो युगों का वह लम्बा समय एक छोटे से सपने-सा बीत गया।

पिता एक नामी वकील थे, और नामी रसिक भी-पैसा कमाते थे, और पानी ही की तरह बहाते थे। नवनीत की पाँच वर्ष की अवस्था में जब उसकी माता की मृत्यु हो गई थी, तो वे शहर की नामी रण्डियों का मुजरा सुनने में व्यस्त थे, शव-संस्कार भी मृत्यु के ३० घण्टे बाद हुआ। श्राद्ध में अवश्य खूब धूमधाम थी, और विवाह के प्रस्ताव आने पर भी ४१ वर्ष की अवस्था में उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया, किन्तु फिर भी मृत-पत्नी का बहुत शोक उन्हें सताता रहा हो, यह नहीं कहा जा सकता!—उनके रात्रि-उत्सव, मुजरे आदि बा दस्तूर चलते रहे। स्वयम् नवनीत को अपनी माँ की मृत्यु का कोई विशेष अनुभव नहीं हुआ—जन्म से ही एक धाय उसका परिपालन कर रही थी, और चार-पाँच वर्ष की अवस्था ही से वह पहले नर्सरी स्कूल और फिर बोर्डिंग में भरती करा दिया गया। केवल उसे यही स्मरण था कि प्रति-मास आसमान से पैसे आ टपकते हैं। माता-पिता को जानने की उसे अधिक आवश्यकता न थी।

किन्तु १७ वर्ष की अवस्था में, जब वह इण्टर मीजिएट की परीक्षा का फार्म भर रहा था, तब एकाएक उसे पिता की, हृदयगति रुक जाने से मृत्यु का तार मिला, और बोर्डिंग के अधिकारियों की काना-फूसी भी, कि अब वह निराश्रित हो गया है। उसे दूसरा प्रबन्ध करना पड़ेगा। उसका शाह खर्च बाप, मृत्यु के समय एक होटल में था, और जेब के टोटल के सिवा कुछ मिलने की गुंजाइश उनके पास थी नहीं! अतः नवनीत के लिए बोर्डिंग के इन अधिकारियोंकी चिन्ता स्वभाविक ही थी।

किन्तु नवनीत को मृत-पिता के एक अन्यतम मित्र का किसी को पता न था, वे लखनऊ में एक व्यवसायी थे, और इस प्रकार उन्होंने काफी द्रव्य सम्पादित कर लिया था। वकील साहब की शाह खर्ची से ना-इत्तिफाकी रखते हुए भी उनके लिए इनके दिल में दर्द था! इसके साथ ही एक बात और थी।—

इन व्यवसायी मित्र के, जिनका नाम कमलकिशोर है, एकमात्र एक कन्या थी, और उसी के ऊपर उनके भविष्य की आशाओं का दारोमदार था। मित्र के पुत्र के प्रति उनके हृदय में एक आकर्षण था: कन्या के लिए वह योग्य वर होगा, यह वे सोच रहे थे और उन्हीं की प्रेरणा का फल था कि वकील साहब ने नवनीत को अपने से दूर रक्खा, अपने निकट के विषपूर्ण विलासी वातावरण से दूर !—मित्र की आकस्मिक मृत्यु से, एक ओर अभिन्न मित्र के पुत्र की रक्षा, दूसरी ओर अपने भावी जामातृ की उन्नति की कामना आदि से उन्होंने नवनीत को शीघ्र ही सहायता देने का संकल्प किया; और नवनीत को मालूम न पड़ा कि उसके पिता की मृत्यु हो गई है।

इण्टर मीडिएट पास होते ही उसे पता लगा कि इसकी कीमत उसे चुकानी है, वह है कमलकिशोर की कन्या से विवाह।—नवनीत को आगे पढ़ना था, विवाह के बारे में उसे कोई कुतूहल न था, इसलिए उसने अस्वीकार न किया। कमलकिशोर के लिये उसके हृदय में श्रद्धा भी थी, वे व्यवसाय छोड़कर राजनीति में कूद चुके थे, और उनकी कन्या माया वैसे बुरी न थी, सुन्दर थी, मैट्रिक पास थी, और उसमें वे सब लक्षण थे, जो एक सुन्दर गृहिणी के लिए आवश्यक हैं। और बी. ए. पास करने के साथ ही उसका और माया का विवाह हो गया। माया के साथ ही उसे मानों दहेज में माया की सब सम्पत्ति भी मिली। उसके बाद भी उसने दो वर्ष तक विद्यार्थी रह कर कालेज की पढ़ाई समाप्त की। उसके विवाह ही को चार बरस से अधिक बीत गए।

सिगरेट खत्म हो चुकी थी, उसने दूसरी सिगरेट सुलगा ली। बन्द कमरे में गरमी मालूम दे रही थी, सिर पर पसीना बूँदें बन-बन कर बह रहा था, सिर भन्ना रहा था, और जी घबरा रहा था। पास में रखी हुई घड़ी उठाई गई, फूँक देकर सिगरेट से प्रकाश किया गया, देखा गया कि अभी तो बारह बजने में भी कुछ मिनिट बाकी हैं।

कालेज-जीवन में अभिनय के द्वारा वह बहुत सीढ़ियाँ पार कर चुका

है। कवि, साहित्य या कालेज यूनियन के सेक्रेटरी आदि की बात तो सामान्य है, किन्तु विवाह के पूर्व वह पक्का समाजवादी था, और जब विवाह करके वह अच्छी सम्पत्ति का स्वामी बन गया, तो उसका विश्वास लोक-तन्त्र में स्थापित हो गया। इससे अधिक राजनीति उसके जीवन में न थी। किन्तु उसने सोचा कि सुनसान रात में किसी होटल कमरे में भारतीयों के सामने जब एक गोरे अफसर को चाँटा मार कर के उसने बदले में उसके हाथ की चपतें और पैर की ठोकरें खाई हैं, तो इस इनाम को पाकर वह आप ही एक बड़ा राज्यद्रोही बन गया है।

यह वह युग था जब भारतवर्ष में राजनीति शब्द ही किसी एनार्किस्ट के बम की तरह भयानक था। कालेजों में इसके अध्यापन की सुविधा न थी, और यदि कहीं ऐसा था, तो राजनीति के विद्यार्थी बगुले की दृष्टि से देखे जाते थे।

—परन्तु सिर बहुत जोरों से दर्द कर रहा है, जी घबरा रहा है, अविश्रांत पसीने के मारे सब बनियान तर हो रही है।

क्या बाहर नहीं जाया जा सकता ?—हरनाम को बुलाया जाय ?—नहीं, वह कभी बाहर नहीं जाने देगा—अभी सारी बीमारी का विश्लेषण कर देगा; और जबरदस्ती, कहीं हवा न लग जाय इसलिए, लिहाफ की शरण लेना पड़ेगी। जाना है तो अकेले ही चले जाना ठीक है, जरा जी ठीक होते ही लौट आया जायगा !—पर जाया कहाँ जाय !—मानपुर देखा ही किसने है ? जब से नवनीत आया है, बिस्तर पर पड़ा हुआ है।—सूरत ही दो आदमियों की जानता है—अधरलाल या हरनाम।

"और मुझे जाना ही कहाँ है ? जरा-सा घूम भर आना है, कहीं भी हो। जरा बाहर की हवा लग जाए तो तबियत ठीक हो जायगी। नदी या तालाब, होगा जरूर कुछ तो भी—किसी से पूछ लेने पर भी काम चल जायगा। लेटा रहे हरनाम, आध घण्टे ही में तो लौट आना है, और इसकी नाक कम से कम दो घण्टे तक तो इसकी नींद की पहरेदारी करती ही रहेगी।"

नवनीत उठा, एक बज गया था। कमीज की जेब में उसने सिगरेट केस और माचिस डाल ली, सहारे के लिए एक मजबूत छड़ी लेकर, रात के एक बजे वह, जरूर ही शरीफ आदमी, मानपुर की गलियों में मटरगश्ती के लिए निकल पड़ा—हालांकि मटरगश्ती ही उसका उद्देश्य न थी।

मानपुर एक कस्बा था, जहां लोग आठ बजे के बाद ही सो जाने की चिन्ता करते हैं, रात के एक बजे तक कभी सजग नहीं रह सकता चारों ओर महाशांति झिल्लियों की झनकार को अधिक भयानक कर रही थी, भयानक अंधेरा सारे कस्बे को अपनी दाढ़ों में छिपाए था।—और कभी बड़ी तेज तथा कभी धीमी गति से फगुनहर चल रही थी।

नवनीत ने बाहर आकर गलती की ही। यदि वह अपने ही कमरे की खिड़की खोल लेता, तो उसे बाहर आने की जरूरत न होती। नवनीत के कमजोर और बीमार शरीर के लिए वह काफी तेज साबित हुई, यद्यपि यह मुक्त वायु पाकर उसका चित्त पहले तो प्रसन्न ही हुआ, और वह बढ़ता ही गया।

चढ़े पसीने वह बाहर निकला, हवा चल ही रही थी, मानो शिकार ही ढूंढ़ रही थी, कुछ गलियां पार करके ही नवनीत शिकार हो गया। मतलब यह कि कुछ देर तक तो नवनीत को हवा बहुत पसन्द आई, फिर उसे कुछ ठण्ड-सी लगने लगी, कुछ दूर आगे बढ़ने पर पैरों में कंप-कंपी छूटने लगी—और कुछ ही देर में उसे अनुभव हो गया कि अब वह आगे नहीं चल सकता।

पास ही के एक मकान में सँगीत मुखरित हो रहा था, तबला, सारँगी और नारी कण्ठ,—किसी गायिका का, वेश्या का मकान मालूम दिया। वेश्या का मकान सभी के लिए खुला रहता है, और यदि नवनीत आगे नहीं बढ़ सकता, तो उसे यहाँ पर जगह मिल सकती है। नवनीत ने एक क्षण सोचा, सिगरेट जलाई, और समस्त शक्ति से आगे बढ़ना शुरू किया, थकते-थकते वह मकान तक पहुँच ही गया!

सँगीत अवश्य स्वर्गीय था। मध्य रात्रि, बागीश्वरी मूर्त्त होकर थिरक रही थी 'कैसे कटे रजनी सजनी ! पिया बिन !" मानो महारात्रि के विरहान्धकार के पर्वत को अपनी वेदना-विगलित आँखों के आँसुओं से तिल तिल-काटने का विफल प्रयास कर रहा था। किन्तु, तब-इधर नवनीत के पैरों में खड़ा रहने इतनी भी शक्ति शेष न थी।

तब अन्तिम प्रयास-सा करके उसने साँकल खटखटाई, किन्तु खट-खटाने के साथ उसके पैर लड़खड़ाए, वह अचेत होकर नीचे गिर पड़ा ! (सिगरेट दूर जा गिरी, नहीं तो उपन्यास की यह धारा यहीं बन्द हो जाती, लम्बी साँस लेकर पाठक भी छुट्टी पाजाता।)

दरवाजे पर साँकल की खटखटाहट उत्सव के कमरे तक पहुँचने के लिए काफी क्षीण थी; सम्पूर्ण समुदाय सँगीत और सुन्दरी की ओर ध्यानस्थ था, अतः गायिका सुन्दरी के अतिरिक्त वह क्षीण ध्वनि किसी के भी कानों में प्रविष्ट न हो सकी। किन्तु तभी एकाएक सँगीत बन्द नहीं किया जा सकता। यह भी कदाचित् उसने सोचा हो, क्षीण ध्वनि में कोई नौसिखिया ही खटखटा सकता है, यदि वहदुहराले तो हर्ज ही क्या है ?

किन्तु खटखटाहट दुहराई नहीं गई, न गाना ही पूरा हुआ !—सामने ही उत्सव के राजा, पड़ोस के गाँव के कोई जमींदार, 'वाह वाह' कर रहे हैं, गाना कैसे बन्द कर दिया जाए और नौकर ?—उसने नहीं सुना !

नीचे नौसिखिया, शिकार !—शिकार न सध सके तो भी नवनीत तो है।—नवीनता किसी के भी जीवन में कम मूल्य नहीं रखती, नवीनता ही सच पूछा जाए तो यौवन का क्रियात्मक रूप है—जैसे-तैसे उसने शीघ्र ही सँगीत समाप्त कर लिया, और क्षण भर की छुट्टी लेकर नीचे उतर आई।

वेश्या वह अवश्य नहीं है, किन्तु गायिका का जीवन भी इधर समाज में आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। कई व्यक्ति तो दोनों

को पर्यायवाची ही समझते हैं,, अतः सुनते हैं, नया आदमी ऐसी जगह पर बड़ी कठिनाई से जा पाता है।—दरवाजे पर खड़ा होगा, काली चादर डाले होगा, दिल बड़े जोर से धड़क रहा होगा, शायद दरवाजे पर कान लगाकर भी उसके दिल की धड़कन सुनी जा सकती है।

सुन्दरी ने दरवाजे से कान लगाए, पर उसे कोई आहट नहीं मालूम दी !

बिलकुल ही नया आदमी मालूम देता है, दरवाजा खटखटा कर आड़ में हो गया है, तभी तो एक बजे बाद ही आने का साहस कर सका है ? इतनी देर हो गई, चल तो नहीं दिया कहीं ?--और गायिकाएँ तो मानपुर में हैं नहीं ! पर देर क्यों की जाए !—सुन्दरी ने साँकल पर हाथ रखा। और उसके मन में एक और बात आई !—यदि कुछ न हुआ–भ्रम-मात्र, या वायु का सामान्य झकोरा—उसके ओठों पर हँसी की रेखा खिंच गई।

दरवाजा खुल गया !—सामने भीषण अँधेरा छाया हुआ था, कृष्णपक्ष की द्वादशी के चन्द्र को अभी उदय होने के आसार ही न थे; ठण्डी हवा चल रही थी, बस्ती के दिए भी बुझ चुके थे। सुन्दरी हँसी न रोक सकी, मूर्ख ! इस रात को, इस सूने गाँव में नया आदमी हो ही कौन सकता है ?

और जैसे ही वह दरवाजा बन्द करने को हुई, कि उसे अस्तमान सिगरेट का जलता हुआ मुँह दिखाई दे गया !—यह क्या बला है ? जैसी ही वह आगे बढ़ी, दरवाजे की बाईं ओर गठड़ी की तरह पड़ा हुआ नवनीत उसे ठीक गठड़ी ही मालूम दिया। रात के अंधकार में वह गठड़ी यमदूत के वाहन के समान भयानक लग रही थी, और जिसने नवनीत को देखा है, वह जानता है कि नवनीत औसत से काफी अधिक लम्बा-चौड़ा जवान है !

स्त्री डरी, किन्तु व्यवसायिका होकर वह डरे ?—साहस करके वह आगे बढ़ी। आँख फाड़ कर उस सूची भेद्य अंधकार में उसने देखा कि

एक पुरुष-शरीर पड़ा हुआ है ! तो क्या इसी ने दरवाजा खटखटाया था ?—पिए हुए हैं क्या ?—पिए हुए नहीं हैं, नहीं तो बू जरूर आती, साँस भी बड़ी क्षीण चल रही है । क्या बात है, मुर्दा भी नहीं ! कोई खतरा तो नहीं है ?

गायिका ने नवनीत का हाथ अपने हाथ में लिया ! और, एक बिजली का-सा संचार उसके शरीर में फैल गया, वह काँप उठी, हाथ उसके हाथ में से गिर भी पड़ा, परन्तु हाथ तो आग के समान जल रहा है ! तो क्या बीमार है ?

माथे पर हाथ रखा, वह भी उसी तरह जलता हुआ मिला। गायिका नवनीत के स्पर्श में एक अद्भुत आनन्द प्राप्त कर रही थी, भय की उस स्थिति में भी वह अकेली ही बैठी रही, बल्कि उसके कमीज के बटन खोलकर नवनीत के बहुत जोर से धड़कते हुए हृदय पर अपना हाथ रखा !

इतनी देर तक अँधेरे में रहने से उसकी आँखों के अन्धेरे से परिचय कर लिया था। उसने देखा कि व्यक्ति युवक है, बलिष्ठ है, और बीमार है, सिरपर पट्टी बँधी हुई है ! पास ही सिगरेट का टुकड़ा भी अभी धीमी आँच से जल रहा था, गायिका ने उसे उठा लिया, फूँक कर देखा—युवक सुन्दर है, बहुत सुन्दर है, और अचेत है, गायिका ने सिगरेट को बुझा दिया, फिर चारों ओर दृष्टि डाल के, कि कोई उसे देख तो नहीं रहा है !

'सिगरेट पीते-पीते ही अचेत हो गया है, यदि कहीं सिगरेट दूर न गिरती ?' कल्पना मात्र से ही गायिका के अंग में कँपकँपी छूट गई ! उसने अधिक समय बरबाद करना उचित नहीं 'समझा, इशारे मात्र से नौकर और साजिन्दों ने रोगी को उठाया और ऊपर ले चले !

नौकर और साजिन्दे खुश न थे। माना कि यह वेश्या का मकान नहीं है, पर गायिका ही ऐसी कौन-सी गृहिणी हो जाती है ?—ऐसे किस्से तो इन दूकानों पर प्रतिदिन होते हैं। तबलची बोला—कहाँ पटक दूँ इस लाश को ?"

सुन्दरी मुस्कराई; उसके दिल की बात को समझ कर बोली—

"अपनी खटिया पर ही पटक दो बेचारे को उस्तादजी !—अगर अपनी रजाई प्यारी हो, तो यह मेरा अलवान लेकर ढँक दो सवेरा होते ही रास्ते लगेगा अपने !"

और उसने अपने शरीर का बहुमूल्य अलवान बूढ़े उस्तादजी के हाथ में थमा दिया। फिर हँसती हुई बोली--

"हम लोग मतलब रखते हैं गरम मुट्ठी से, या अण्टी के जोर से; सो इसकी तो सारी ही देह गरम है, जल रही है बिलकुल; और अण्टी ही की बात हो, तो मुझे डर है कि कहीं इसकी कमर ही न टूट जाए !—ठीक नहीं है क्या ?—चलो, देर हो रही है !"

सुन्दरी अपनी सँगीत शाला में अनुचरों के साथ परावर्तित हो गई। उसने क्रमशः हिण्डोल और फिर बसन्त छोड़ दिया !

अलवान काफी गरम थी, नवनीत धीरे-धीरे चेतन होने लगा ! मुँह उसका अलवान के भीतर ही था, बाहर निकालले इतना न साहस था न शक्ति; और जिस पर वह लेटा हुआ था, वह खटिया थी, न कि पलंग—बूढ़े तबलची की, उसकी कमर के समान ढीली अदवायन, फलतः नवनीत भी उस पर धनुष होकर पड़ा था। बिस्तर जरूर शिकायत के काबिल न था !

अतः नवनीत को यह पता तो लग गया कि वह घर पर नहीं है, पर कहाँ है, यह सोचना पड़ा ! सँगीत तब भी बन्द नहीं हुआ था, बसन्त के स्वर चल रहे थे, और सुन्दरी का कोकिल कण्ठ सितार के तारों के साथ उलझ-उलझ पड़ता था। धीरे-धीरे नवनीत की स्मृति लौटने लगी !

—तो वह एक गाने वाली—वेश्या—के मकान में लेटा हुआ है ! और बूढ़ी खाट बता रही है कि वह जवान वेश्या का पलंग नहीं है ! बाहर दरवाजे पर पड़ा हुआ देख कर बूढ़े दरबान का दिल भी पिघल सकता है, सम्भव है उसी ने उठाकर खाट पर पटक दिया हो।

और यह अलवान ?—अवश्य उसकी नहीं; पर पड़ी होगी कहीं आस-पास; इत्र-सुवासित—उठा कर डाल दी मुझ पर; मकान तो वेश्या का ही है न !

वेश्या की दया पर नवनीत टिका हुआ है तो ! वेश्या की दया पर, वेश्या जो स्वयम् पुरुष की घृणित वासना की दया पर जीवित है ! और वासना की दया ?—'दया' शब्द को बदनाम करता है नवनीत, वासना की आग न कहा जाए उसे ? वेश्या, जिसमें आहुति है, उसकी दया पर तू नवनीत ?

वेश्या के घर पर रात बिताना, प्राणान्तक बीमारी का शिकार होकर भी, कितना अच्छा पैमाना है जिन्दगी का नवनीत ! कोई सुनेगा, कहेगा, "कब्र में पैर लटका कर बैठे हो मियाँ क्या अब भी अपने जीवन का सत्य, और उस परमशांति मृत्यु का 'नित्य' वेश्या के तलवों ही में तलाश कर रहे हो ?"

वेश्या, कितना बुरा शब्द है !–घर के कूड़ा-करकट से भी तो इतनी नफरत नहीं होती ! बीमार था तो क्या हुआ ?—और कहीं जगह न हो तो क्या नाबदान पर बैठ जाना उचित है ?—शमशान का आसन क्या इतना भयानक है कि उसकी अपेक्षा यह सड़ा हुआ नाबदान पसन्द किया जाए ?

नवनीत उठ खड़ा हुआ; और जैसे ही अलवान नीचे गिरी, ठण्डी हवा के झोंके ने उसके पैर हिला दिए !

पूर्व में तब भी प्रकाश की रेखा स्पष्ट न थी, यद्यपि हवा के झोंके बतला रहे थे कि चौथा पहर शुरू हो गया है ! भीतर कमरे में भी सितार पर भैरव का ठाट जम रहा था !

नवनीत ने देखा कि अलवान के बिना वह एक भी पैर आगे नहीं बढ़ा सकता—और अलवान लेकर रवाना होना !—खूब !—नवनीत ! क्या तुम चोर भी हो ? परन्तु अन्य उपाय ही क्या है ?

सवेरा होते ही हरनाम के साथ अलवान लौटा दी जाएगी, आव-

श्यकता हुई तो किराए के साथ; कोई खास बात न होगी—किन्तु उन लोगों से कह कर जाना ?—एक वेश्या का मुँह उससे न देखा जायगा !

साहस करके नवनीत ने अलवान उठाली ! और धीरे से साँकल खोल कर दरवाजे से बाहर हो गया। एक सिगरेट मुँह में दबाली, और छड़ी के सहारे घर की ओर चल पड़ा ! ऊपर कमरे में तभी गायिका ने भैरवी में नई गजल छेड़ी—

"वो चले झटक के दाम न मेरे दस्ते-नातवाँ से !"

उसके कुछ देर बाद जमींदार साहिब के भी जाने का समय हो गया क्योंकि वे भी अँधेरे ही अँधेरे अपनी अमलहारी में पहुँच जाना चाहते थे। सलाम करके गायिका ने छुट्टी ली, और नवनीत की ओर अपना रुख किया !

बूढ़े तबलची को नींद सता रही थी। जब कि बैठक जमी हुई थी, तभी उसने सोचा था कि छूटते ही सबसे पहले तो वह उस लाश ही को नीचे धकेलेगा, और फिर स्वयम् खाट पर लम्बी तानेगा, इसलिए छूटते ही गायिका से भी पहले वह उस कमरे में उपस्थित होगया, और कहना न होगा कि जिस लाश को ढकेलने के लिए उसने बांहें चढ़ा रक्खी थीं, वह वहाँ न थी !

गायिका के आते ही तबलची बोला—"कहा था न मैंने ?"

"क्या ?"

"कि इस आफत को घर में न पालो !"

"पर हुआ क्या है ?"

"होगा क्या ! खाट खाली है—और अलवान का पता नहीं !"

"सच ?"

"तो क्या झूठ कहूँगा ?—देख लो न—यह रही खटिया ! पक्का उस्ताद था !"

सुन्दरी चुप रही, और बूढ़ा कहता रहा—"यों ही यह बाल सफेद

नहीं हुए हैं ! गजब किया उसने, लखनऊ जो कि शोहदों का अखाड़ा है, वहाँ भी ऐसे किस्से तो नहीं सुने ! पर शक्ल देख कर ही भाँप गए थे हम—अलवान क्या कोई मामूली थी !"

सुन्दरी तब भी चुप !

"—बर्फ पड़ रही हो ख्वाह—यदि अलवान बदन पर हो, तो क्या मजाल की जरा भी 'सी सो' करना पड़े—हजार-बारह सौ की चीज, मुफ्त में मिलती हो तो कौन छोड़ेगा !"

सुन्दरी का मुँह, पूर्व में फैली हुई पाँडु आभा-सा पाँडुर होगया। रात भर की जागी हुई, आँखें भारी थी ही, दिल भी भारी होगया, वह अपने कमरे में आप चलदी !

बूढ़े तबलची का क्या जाता है, वह अपनी खटिया पर लम्बा हो गया। किसी को नीचे धकेलने की मेहनत से ही उसे छुट्टी मिल गई !

गायिका शब्द की पुनरुक्ति से मेरे पाठक घबरा जायेंगे, अतः उसका नाम बता देता हूँ—वह है 'नीलम'!

नीलम अपने कमरे में लौटी, और उन्हीं उत्सव के कपड़ों में पलंग पर लुढ़क गई ! पलंग की स्प्रिंग ने अवश्य उसके शरीर को गुद-गुदा दिया, परन्तु हृदय उसका वैसा ही भारी रहा ! "बारह सौ रुपए की अलवान, वाकई मुफ्त में मिलती हो तो कोई छोड़ना न चाहेग ।!—पर, सब कोई उसे चुरा भी सकते हैं क्या ?"

और सब कोई का क्या मतलब ?—क्या वह युवक चोर भी है ?

बीमार था; इसमें सन्देह नहीं, सिर पर पट्टी बंधी हुई, बुखार भी तेज था, साँकल भी उसने अवश्य खटखटाई थी, और यहाँ से अलवान लेकर भी अवश्य गायब हो गया है ! चेहरा न कहता था तो क्या होता है काम तो कर गया कि वह चोर है ! अलवान, हजार-बारह सौ की ठहरी, यदि आसानी से मिलती हो तो कौन छोड़ेगा ! बड़ा भला मानस दीखता था, तो क्या हुआ !— मैं क्या कम भली-मानस

दीखती हूँ ! चेहरे के नीचे कितना कुछ छिपाया जा सकता है यह नारी से अधिक कौन बता सकता है ?—पर आज इस युवक ने भी बता दिया !

—देखती हूँ, यह चोर विचित्र ही था। इस घर में जिसने भी कदम रक्खा है, उसने मेरी ओर दृष्टि डाले बिना चले जाने की कभी न सोची ! मेरी कृपा की दृष्टि हजारों रुपयों से अधिक मूल्यवान् समझो गई है—वह अलवान ही स्वयम् मेरी ऐसी ही कृपा दृष्टि का मूल्य नहीं थी क्या ? और युवक उस अलवान को लेकर चल दिया, मेरे एक भ्रू-विक्षेप की भी उसने अपेक्षा न की--और चल दिया !

युवक सुन्दर था; जहर का प्याला सुन्दर न हो तो उसे पीएगा कौन ? अलवान लेकर चल दिया; अलवान कोई बड़ी बात नहीं, बड़ी बात है उसकी चोरी; युवक द्वारा चोरी ?--वह भी कोई बड़ी बात नहीं--किन्तु, वह चल दिया, बिना उसके भ्रू-विक्षेप की अपेक्षा किए !

और इस भ्रू-विक्षेप का फल क्या होता ?—नारी, चिरंतन नारी, वह क्या किसी पुरुष को मुक्त करती है ?—चल दिया तो बच ही गया, तेरे विष का दांत बेचारे पर गड़ न पाया--मुक्ति मिली ! परन्तु नीलम, अंगूर की लता के समान कोमल, मीठी और मादक। विश्व की कोमलता के अधिवास-पेरिस का पानी-अपनी उपेक्षा नहीं सह सकी ! केवल एक बार मिलकर चला जाता, बस नीलम उससे अधिक न मांगती ! देखने में बड़ा सुन्दर था न ! किसे पता था कि उस सुन्दर शरीर में इतनी उपेक्षा भरी है, नहीं तो रात ही को जी भर कर देख लेती। देखने लायक तो था ही ! और बिना अपनी सूरत दिखाए वह चल दिया ! खूब किया तुमने लड़के ! अच्छा देखो—तुम भी याद करोगे, जरा और दिन निकल जाने दो !

हाँ, हाँ, हर्ज क्या है ?—उसकी अलवान चोरी गई है, हजार बारह सौ की होगी—कोई भला-मानस इतना बड़ा नुकसान नहीं सह सकता—पुलिस में रिपोर्ट करना ही चाहिए ?— पुलिस वाले; पीटेंगे

नहीं तो क्या शादी करेंगे ! चोरी करना खेल है क्या ! पर अभागे युवक सचमुच ही तूने तो इसे खेल ही समझा। अलवान भी लेगया, और नीलम की आँखों की नींद भी ? ज़रूर पुलीस में रिपोर्ट कर देनी चाहिए !

कम से कम उसका पता तो लगेगा ? न होगा, पुलिस को समझा दिया जाएगा ! भारतवर्ष की पुलिस, समझूँगी, एक और अलवान चोरी चली गई ! उस युवक को एक बार देख तो लिया जाए, देखूँगीं कि एक सुन्दरी के घर से केवल उसकी भौतिक वस्तुओं को चुराने वाला युवक कौनसा है, कैसा है !

(—और नीचे से किसी ने साँकल खटखटाई—धीरे से, उसी तरह जिस तरह रात्रि को खटखटाई गई थी। पर इस समय गायिका के यहाँ आए कौन ? चोर तो आने से रहा ! पुलिस को भी कौन जाने मिल सकेगा या नहीं ! सभी चोर पुलिस को मिल तो जाते नहीं ! यह चोर भी क्या पुलिस को मिल जाएगा ?)

और पुनः साँकल खटखटाई गई, अधिक शक्ति से !

साजिन्दे मस्त-नींद में बेहोश थे ! सूरज सामने की वृक्ष-श्रेणी पर चढ़ चुका था, उसकी रंजित लालिमा में नीलम की मुख-श्री सुबह का चाँद हो रही थी ! वह नीचे उतरी और उसने दरवाजा खोल दिया !

सामने हरनाम खड़ा था, अलवान लिए हुए, जिस पर दो दस के और एक पाँच का नोट !

हरनाम ने देखा, देखकर क्षणभर के लिए विमूढ़ हो गया ! नीलम, सुबह के चाँद-सी होते हुए भी, चाँद सी थी—चाँद जो पूर्णिमा को सोलहों कलाओं से चमकते समय समुद्र को भी आलोड़ित कर देता है हरनाम सौन्दर्य की इस चाँदनी में सम्मुख नहीं देख सका, उसने दृष्टि नीची करली !

बोला—"यह अलवान आप ही की है ?"

"हूँ।—कहाँ से लाए ?"

"लीजिए।" और हरनाम ने हाथ आगे बढ़ा दिये।

नीलम ने हरनाम की ओर देखा, बोली—"कौन हो तुम ?"

"जी, मैं उनका नौकर हूँ—हरनाम !"

"उनका ?—कौन 'उनका' ?"

"जिन्होंने यह अलवान भिजवाई है !"

नीलम का चेहरा तमतमा उठा, नीचे के ओठ को दाँतों में दबा कर बोली—"तो लेजाओ यह अलवान उन्हीं के पास ! कहना कि चोरी की वस्तु नौकर के साथ नहीं पुलिस के साथ लौटाई जाती है !—और तुम्हारे 'उनका' यदि पता बता सको, तो पुलिस को खोज लगाने में थोड़ी सहायता मिलेगी—नहीं तो, पुलिस स्वयम् उनको खोज लेगी !"—और क्रोध से उसके गालों पर रक्त बिखर गया ! हरनाम, दिग्विमूढ़-सा, केवल यही कह सका—"पुलिस—पुलिस क्यों देवी !"

"यह उन्हीं से पूछना—चोरी करने पर पुलिस ही स्वागत करती है, पुष्प-माला लेकर कोई स्वयम्वरा कन्या नहीं !"

"आपका मतलब है, बाबू ने इसे आपके यहाँ से चुराया है !"

"नहीं तो क्या मैं उनके कन्धे पर डाल आई थी ?"

"आप भूलती हैं देवी !—ये रुपए उन्होंने इसीलिए भिजवाए हैं कि आपकी अलवान ने आड़े वक्त में उनकी सहायता की !

"आड़े वक्त में"

"जी हाँ—मुझे जल्दी छुट्टी दे दीजिए—वे अकेले हैं, और डाक्टर कह गया है कि उन्हें निमोनिया हो गया—यदि मैं जल्दी न गया।"

नीलम ने अलवान लेली—अव्यक्त मन से ही—रुपए भी उस पर रक्खे हुए थे।

हरनाम ने नमस्कार की, और मुड़ गया !

नीलम ने पूछा—"परन्तु ये तुम्हारे हैं कौन ?"

"जी मेरे बाबू—"जाते जाते न जाने क्या कह गया !

"उनका नाम ?"

परन्तु तब तक हरनाम आगे बढ़ गया था, उसने शायद प्रश्न ही

नहीं सुन पाया। नीलम लौटी, आकर उसी तरह पलँग पर लेट रही, उन्हीं उत्सव के कपड़ों में—अलवान उसकी छाती पर, नोट उसके हाथों में—

(६)

मानपुर एक कस्बा है, पर गवर्नमेंट की तरफ से एक डॉक्टर जरूर है ! छोटी-सी डिस्पेन्सरी भी, जिसकी औषधियों का सालाना बजट ३५०); अतः नं० १६ का मिक्श्चर बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो तो क्या आश्चर्य है। थोड़े बहुत हलके इन्जैक्शन, आयोडीन जैसी लगाने की औषधियाँ, फिटकड़ी का पानी, थोड़ा-बहुत सिंकोना—कुछ शीशियाँ पानी से भरी हुईं, और कुछ खाली एक साढ़े तीन टाँग की चीड़ के पटियों की टेबल पर सजी हुईं—बोरिक पाउडर कैरम बोर्ड के साथ—बस, सब कुछ यही वह दवाखाना था, और उसके सूत्रधार एक साठ बरस के डॉक्टर जिनका प्रायः नुस्खा 'दो पैसे की हरड़ें, ढाई पैसे का बहेड़ा, और तीन पैसे का आँवला' भिन्न बीमारियों में भिन्न अनुपात से हुआ करता था ! शाम को प्रायः आठ बजे बैठ कर रजिस्टर भरा करते थे, और लगभग डेढ़ सौ नाम भर दिया करते थे !" दस साल से मानपुर कस्बा में थे, उनको मानपुर की आदत थी, और मानपुर को उनकी आदत हो गई थी ! एल. एम. पी. पास हैं, सब असिस्टेण्ट सर्जन हैं, और गए दस साल से यहाँ हैं, कोई शिकायत नहीं—गवर्नमेंट बेवकूफ नहीं कि शिकायत होने पर भी डॉक्टर यहाँ बना रहता ! लोगों की राय थी कि शिकायत करने वाले, शिकायत करने के पहले ही, डॉक्टर साहिब की औषधियों से स्वर्गीय सुख प्राप्त करने में सफल होते हैं, तब फिर उनकी योग्यता में सन्देह ही किसे हो सकता है !

नवनीत की चिकित्सा—या विचिकित्सा इन्हीं डाक्टर महोदय ने की। हरनाम की जबानी सब हाल सुन कर, और नली लगाकर कान

से हृदय की 'भट-भटाभट' ध्वनि सुन कर वे विचारमग्न हो गए! ... अधरलाल भी मौजूद थे, बोले—

"डाक्टर साहब, कहीं निमोनिया तो नही है।"

डॉक्टर साहब ने इतमीनान से कहा—"जी हाँ, है तो निमोनिया ही, पर अभी खास 'डेवेलपमेंट' नहीं है!"

"तो कोई अच्छी-सी दवा!"

"एक 'रम' का मिक्श्चर मैं बना दूँगा, मगर 'एएटी फ्लोजिस्टीन' का पलस्तर हो सके तो बड़ी सहायता मिलेगी!"

"आपके पास हो तो—"

"जी कल ही मेरे यहाँ आखिरी डिब्बा खत्म हो गया! इसके अलावा, सेक बहुत जरूरी चीज है, रात भर सेक होनी चाहिए, कोई इनका फेमिली मेम्बर—"

"डॉक्टर साहिब, ये यहाँ पर अकेले हैं, केवल एक सेवक इनके साथ है।"

"देखिए, मेरी राय है कि कुछ औषधियाँ और एक नर्स आप शहर से बुलवा लीजिए। नौकर के ऊपर 'डिपेण्ड नहीं किया जा सकता। और देर नहीं होनी चाहिए!—इन्हें तो आप बाहर ले जा नहीं सकते—बल्कि—"

डाक्टर का रुका देख कर अधरलाल बोले—"बड़े सर्जन को बुला लिया जाए?"

"वैसे तो कोई खास जरूरत नहीं है, पर आप चाहें तो वैसे भी दिलजमई के लिए—मगर मैं सम्हाल ही लूँगा! हाँ, घर पर एक तार जरूर कर दीजिए!"

अधरलाल ने पूछा "मगर इन्हें तापमान इतना तेज क्यों है? —१०६° तो बहुत होता है डॉक्टर साहिब!"

"तो—है तो वास्तव में बहुत—डिस्ट्रिक्ट सर्जन को बुलाने में विशेष तो कोई लाभ नहीं—पर, बुलालें तो आपकी मर्जी, नहीं तो मैं

सम्हाल ही लूँगा ! अच्छा जरा और बीमार देखना है, दुपहर को एक बार और नौकर को हाल चाल बताने के लिए भेज दीजिएगा !"

पाँच रुपये डॉक्टर ने जेब में डाले। ब्राण्डी का या ऐसा ही कुछ एक मिक्श्चर भेज दिया गया !

अधरलाल डॉक्टर को जानते थे, उनकी चिन्ता कम न हुई, हरनाम से बोले—

"मुरादाबाद गए बिना काम नहीं चलेगा हरनाम !"

"आप जाएँगे ?"

"मैं ?—मैं तो नहीं जा सकूँगा। स्टेशन कैसे छोड़ सकता हूँ ! तुम जाओ !"

"मैं ?—बाबू को किसके भरोसे छोड़ जाऊँ ?"

"मेरे भरोसे !"

हरनाम ने अधरलाल की ओर देखा, वास्तव में भरोसा इस व्यक्ति पर किया जा सकता है, किन्तु—

"क्या आप चौबीसों घण्टे यहाँ पर बैठ सकेंगे ?"

"क्यों नहीं !"

"और इनकी सेवा—"

"हाँ हाँ, वह भी कर सकूँगा हरनाम !—मनुष्य की सेवा के अवसर बड़े भाग्य से मिलते हैं, फिर नवनीत बाबू तो हमारे अपने व्यक्ति हैं ? ऐसा सरल और निरीह व्यक्ति, इन्हें कौन अपना न मानेगा ! विश्वास रक्खो हरनाम ! तुम से ज्यादा मैं इन्हें अपना समझूँगा ! जाओ—एक तार घर पर दे देना ताकि इनकी पत्नी या माँ, कोई आजाएँ, और बड़े डॉक्टर साहिब और एक चतुर नर्स के साथ जल्दी लौट आओ !—सारी लॉरी कर लेना। किराया वगैरा के लिए रुपए घर से मँगा दूँ ?"

हरनाम, मानो बिना कुछ सुने हुए अधरलाल की ओर देख रहा था—अचानक ही उसकी आँखें गीली हो आईं !

अधरलाल ने कहा—"धीरज खोने से काम नहीं चलेगा हरनाम ! परदेश में मजबूत रहना चाहिए !—अभी तो मोटर जाने में घण्टे-भर की देर है, मैं घर हो आता हूँ ! तपाने की सलाह मुझे पसन्द है, परन्तु इस डॉक्टर की दवा पर मैं विश्वास नहीं कर सकता !—तब तक तुम सेक करो, रुपए लेता आऊँ न ?"

"नहीं, रुपए आपकी दया से काफी हैं !" हरनाम ने आँखें पोछीं, और पलँग पर बैठ गया। अधरलाल उठ खड़ा हुआ !

"चिन्ता मत करना !—डॉक्टर की बात का विश्वास न भी किया जाए तो भी चिन्ताजनक अवस्था नहीं है। निमोनिया साफ दीख रहा है ! पर अभी प्रारम्भिक ही है। तपाते रहो बल्कि तलवों में भी थोड़ा सरसों का तेल मालिश कर देना। कमरे में एकाएक हवा का झोंका न आए, इसका ध्यान रखना। मैं अभी आता हूँ !"

हरनाम ने अधरलाल की जाती हुई आकृति की ओर देखा, उस अधेड़ की चाल में वह महत्ता वर्त्तमान थी, जिस पर ऐसे क्षणों में निर्भर किया जा सकता है।

अधरलाल घर पर आए तो देखा कि आरती आँगन में बैठी बरतन मल रही है। पास ही खड़ी हुई एक गाय जूठन का पानी पी रही है, और एक कौवा भी दाल की कटोरी ही उड़ा लेजाने की फिराक में है। बरतन मलते-मलते आरती कभी कौए की ओर देख लेती है, कभी गाय की ओर !—गाय के पानी पीने का ढंग जैसा विचित्र है, वैसा ही कौए के ताक लगाने का भी !—कौआ गाय की पीठ पर बैठ गया, गाय ने पूँछ हिलाई, पर कौआ न उड़ा, तो गाय ने अपना मुँह उठाया। कौआ जानता था कि मुँह पीठ तक पहुँचेगा नहीं इसलिए वह पीठ पर बैठा चोंच चलाता रहा। आरती ने गाय पर दया दिखाने के लिए अपने हाथ फैलाए—नई बात देखकर कौआ उड़ गया, पर इस हलचल में एक अलक छूट कर आरती की आँख के सामने झूलने लगी। परेशान होकर उसने हथेली के मूल भाग से उसे एक तरफ करना चाहा, हथेली के

मूल भाग से, तो भी राख की एक लकीर उसके चमचमाते हुए भाल पर बन गई, और इधर देखती है तो अधरलाल खड़े उसकी सूरत देख कर हँस रहे हैं।

"अरे इतनी जल्दी ?—मालूम पड़ता है बरतन साफ नहीं करने दोगे !"—कह कर वह उठी, हाथ धोए और भीतर चलदी !

"पर तुम्हारा मुँह फूला हुआ क्यों है ?"

"कहने आया हूँ कि आज रात को शायद नहीं आ सकूँ !"

"तुम्हारे मुँह घी-शक्कर ! सवेरे जब लौटो, तो दो पैसे के भगवान् को लड्डू चढ़ाते आना !"

"तो लाओ, दो पैसे हवाले करो !"

"जरूर पैसे मैं दूँगी पर शाम को ले जाना, या शाम को भी नहीं आओगे ?"

"ना शायद शाम को भी नहीं !"

"मेरी बला से; पर तुम्हारी प्रतिष्ठा क्या इतनी सस्ती होगई है !"

"तभी तो ! मजाक नहीं आरती ! पोस्ट मास्टर बहुत बीमार हो गया है ! नौकर को बड़े सर्जन तथा नर्स बुलाने के लिए शहर भेज रहा हूँ। जब तक वह लौटे नहीं, तब तक उनकी तीमारदारी का भार मेरे सिर पर है।

"तुम्हारा पोस्ट मास्टर भी अजीब जानवर है। यदि कोई पीछे तीमारदारी करने वाला नहीं, तो बीमार पड़ने की जरूरत ही क्या थी ?"

"यदि अच्छे हो जाएँ, तो उन्हीं से इस जरूरत का हाल पूछ लेना !"

"अच्छे तो होंगे ही, अच्छे नहीं होंगे क्या ?"

"वही, जो बीमारी से अच्छे नहीं होने पर होते हैं, यानी बैकुण्ठ-धाम के यात्री !"

"हैं, हैं !—तुम्हारा रिश्तेदार नहीं है तो क्या हुआ ?—किसी के

लिए ऐसा कहा जाता है ?—तुम्हीं तो कहते थे कि अभी पच्चीस का भी नहीं हुआ!—अभी इस लोक की यात्रा तो कर लेने दो उसे ! पर यह तो बताओ तुम रात भर वहाँ बैठे रहकर क्या करोगे ?"

"उनको सेक करूँगा, माँगेगे तो पानी पिलाऊँगा, और—मक्खियाँ तो रात को होंगी नहीं—तो मच्छर ही उड़ाऊँगा !"

"मच्छर तुम जरूर उड़ाओगे—पर उनका सेक क्यों करोगे ?"

"इसलिए कि उन्हें निमोनिया होगया है !"

"निमोनिया ?—सच कहते हो !"

"झूठ क्यों कहूँगा ? रिश्तेदार न सही, किन्तु दुश्मन भी तो नहीं है !"

"सचमुच निमोनिया है ?—तुम तो जानते नहीं, पटना में, मेरे बड़े भाई की मृत्यु इसी बीमारी से मेरे सामने हुई थी ! डॉक्टर और नर्सों का अभाव न था, पर सेवा करने वाली माँ तो चल बसी थी, डॉक्टरों ने कहा था—मैं उन दिनों छः ही वर्ष की थी, परन्तु मुझे याद है—कि यदि उनकी सेवा अच्छी तरह हो पाती तो वे बच जाते !-डॉक्टर और नर्स आएंगे भी तो कल तक—और निमोनिया क्या एक जगह खड़ा रह कर उनकी राह देखेगा ?—तुम तपाओगे उन्हें पर तुम जानते भी हो कि तपाना किसे कहते हैं ?—मैं चलूँ तुम्हारे सँग ?—पर नए घर में मैं करूँगी क्या ? यहीं ले आओ न उसे ! मोटर में ले आओगे तो हवा भी नहीं लगने पाएगी ! मैं अलसी का पुलटिस बना दूँगी और बोतल से सेंक भी करती रहूँगी । और कल डॉक्टर के आने पर तो बहुत कुछ हो जाएगा ! उसके घर यदि कहला दो तो एक दो-दिन में वे लोग भी आजाएँगे । जवान लड़का है, सेवा के अभाव में मर न जाय ! जाओ, जाओ—देर न करो !"

अधरलाल जानते थे, गीली आँखों से उसकी ओर देखते हुए, उसके दोनों हाथ उन्होंने पकड़ लिए फिर उसके सुवासित स्निग्ध मस्तक को अपने विस्तीर्ण वक्ष में भर कर उन्होंने कहा—"देवी तुम्हारी महत्ता

के समुद्र का मैं क्षुद्र तट बन गया हूँ, आप्लावित करती रहो, और यदि मुझे डँसना भी पड़ा, तो भी मेरे लिए वह लज्जा की बात न होगी !"

"सौतिया डाह जागृत हो गया क्या ?" आरती ने अपनी अश्रु-रूद्ध आँखों को अधरलाल की आँखों में गड़ा दिया, फिर बोली—

"समुद्र क्या मर्यादा का उलंघन करता है नाथ !— ये चरण मेरे इस जन्म के ही नहीं जन्म-जन्मान्तर के कूल हैं !"

और उसने अधरलाल के चरणों को झुक कर चूम लिया ! अधर-लाल ने भी आँखें पोंछी, और बाहर निकल गए !

जब तक दिख सका, आरती सामने देखती रही; फिर बर्त्तन साफ करने थे, और सब काम से जल्दी ही उसे निबट भी जाना था !

× × × ×

कुछ दिनों बाद, जबकि उसकी अवस्था कुछ सुधर रही थी, तो नवनीत दिन के ग्यारह बजे एक साफ पलँग पर पड़ा हुआ चेत में आया ! दीर्घ अचेतन के पश्चात् जब अकस्मात् नवनीत की आँख खुली, तो उसे अपने आप को एक अन्धकारमय निर्जन प्रकोष्ठ में पड़े पाए जाने पर तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ !—वह कमरा किसी कुम्भीपाक नरक का था, या रौरव का, यह भी उसने अधिक नहीं सोचा क्योंकि दीर्घ अचेतन के पश्चात् भी उसकी दर्द की अनुभूति नष्ट नहीं हुई थी और न ही पानी की बड़ी प्यास होने पर भी, उसने किसी को पुकारा ही ! —नरक के महान्धकारमय कोने में पड़े हुए प्रकृत पापी की करुण-पुकार पर कान ही कौन देता ?

छाती में मानो एक भयानक तूफान क्षुब्ध हो रहा था, जिसकी पर्वता-कार लहरें प्रत्येक साँस के साथ गले के क्षीणतट को कम्पायमान कर रही थीं--इसी तूफान को मानो दबाने के लिए उसने छाती पर हाथ रक्खा, मालूम पड़ा कि छाती पर एक बड़ी-सी पट्टी बँधी हुई है ।

एक पट्टी सिर पर और एक घुटने पर भी तो थी ?—नवनीत ने टटोला, सिर की पट्टी तो बाकायदा मौजूद है, और घुटने में अब कोई विशेष दर्द नहीं है। नरक की व्यवस्था बहुत बुरी तो नहीं है। किसी के दर्द का वे भी ध्यान रखते हैं। उन्हें बहुत निर्दय तो नहीं कहा जा सकता।

पर इसी खोज तलाश में उसके लिहाफ का कुछ अंश सरक गया, प्रकाश की एक रेखा भीतर घुस आई, तब समझ में आया कि नरक का यह महान्धकार उस लिहाफ के कारण है। हाथ की सहायता से उसने मुँह पर से लिहाफ हटा लिया और देखा !–देखा कि वह तो एक खास कमरे में है। दुपहर सिर पर बोल रही है, कमरा साफ-सुथरा है। पास ही एक ताक में कुछ शीशियाँ, एक डिब्बा एण्टीफ्लोजिस्टीन का, रबर की थैली, एक स्टोव. और पास ही में एक बड़ा-सा लोटा भी। तो क्या उसमें पानी भी है ?

नरक का कमरा तो नहीं, पर स्वर्ग का अवश्य कहा जा सकता है ! ठीक सामने दीवार पर एक बड़ी-सी मूर्त्ति लटक रही है। कृष्ण की मुरली छिपा कर राधाकृष्ण के सामने सौगन्ध खा रही है, किन्तु उसकी शरारती आँखें और अधर हैं हँसा। बतला रहे हैं कि उसका वही हाथ जो उसकी पीठ की ओर है, उस मुरली को छिपाये हुये है—और कृष्ण परेशान-से मिन्नतें करते हुये खड़े हैं। भावों का सजीव उत्कर्ष देखकर जी चाहता है चित्रकार की तूलिका चूम ली जाये। इधर एक दूसरा चित्र और है, पर उस पर सीधा प्रकाश पड़ रहा है इसलिये कहा नहीं जा सकता कि उस चित्र में क्या है ?

नवनीत को प्यास जोरों से लग रही थी, कोशिश करके वह उठ बैठा और लोटे को उठाकर पानी पीने का उपक्रम करने लगा !

लोटे को यदि मुँह लगा दिया जाय तो लोटा झूंठा हो जाएगा, और फिर मकान-मालिक को उसे साफ़ करना पड़ेगा ! मकान-मालिक कोई है जरूर, उसने सिर की पट्टी को बदला है, घुटने की पट्टी हटाई

है, छाती पर भी पलस्तर लगाया है, और निमोनिया था, तो सेंक आदि की व्यवस्था भी उसने की ही होगी—नहीं तो क्या आज वह जीवित मिलता ? और हरनाम का बचा ?—स्वर्ग में उसे आने की ज़रूरत ही क्या है ?—गरज यह कि नवनीत की ओर से मकान-मालिक को कब तकलीफ़ नहीं मिली। अवश्य ही उस तकलीफ़ की तुलना में लोटा साफ करने की तकलीफ कोई भारी बात नहीं, पर तकलीफ तो है। तब उसने एक हाथ मुँह को लगाया, और दूसरे हाथ से उस पर पानी उंडेलना शुरू किया !

कमज़ोर हाथ, बैठा हुआ और कभी इस तरह पीने की आदत नहीं। नतीजा यह हुआ कि लोटा एकदम झुका, पानी कुछ मुँह में गया, कुछ तालू में, और कुछ नाक में—और कुछ सीधा दिमाग में। गंगा की तीसरी धारा चिबुक पर होती हुई गले के बीच उतर गई, बनियान और कमीज़ गीले हो गये।

तभी नाक और दिमाग का सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ—एकाध छींक और खाँसी; तब तक हाथ ने भी जवाब दे दिया, शेष लोटा बिस्तर में लुढ़क गया !

ग्यारह बज चुके थे, अधरलाल मौजूद न था, और आरती बाहर बर्तन साफ़ कर रही थी, तभी उसे छींक और खाँसी सुनाई दी वह वैसे ही भरे हाथों उठ दौड़ी ! देखा कि बीमार के बिस्तर पर बाढ़ आ गई है। एक क्षण तक निर्वाक खड़े रहकर उसे परिस्थिति समझनी पड़ी !

इधर नवनीत क्या करे, क्या न करे की हालत में था ही, सामने जब उसने एक तरुण स्त्री मूर्त्ति को देखा तो वह और भी विमूढ़ हो गया, किन्तु धीरे-धीरे उसे स्मृति होने लगी, यह तो वही पनघट वाली युवती है ! तो क्या—

आरती ने कहा—"यह क्या कर डाला !" [पाठक देखें-यह आरती और नवनीत का एक अपरिचित युवक-युवती का—प्रथम संभाषण था !]

नवनीत ने नीची दृष्टि ही से नितान्त सम्भ्रम के साथ कहा—"पानी पी रहा था !"

"और इस बिस्तर को भी पिला रहे थे ?" पास आते हुए आरती ने हँसकर कहा ! देखा कि उसकी कमीज भी गीली हो गई है !

"अरे—यह कमीज भी तो गीली हो गई !—क्या हाथ से पानी पी रहे थे ?"

"जी हाँ।" नीची दृष्टि ही से नवनीत बोला।

"मुँह क्यों नहीं लगा लिया ?—और भारी था तो आवाज़ क्यों न दे ली ?—शायद ख्याल किया हो कि तकलीफ़ होगी !—पर तकलीफ क्या मुझे कम उठानी पड़ी है ?—पर—अच्छा, उठ तो सकते हो न ? कमीज़ और बनियान उतार लो, मैं तब तक हाथ धो आऊँ !—तबियत तो ठीक मालूम देती है न ?"

आरती की अन्य बातों का उसने कोई उत्तर नहीं दिया, यही बोला—"क्या हरनाम यहीं है ?—उससे कहें तो दूसरी कमीज निकाल देगा।"

"जब बिल्ली बीमार होती है तो, मालूम नहीं ? चूहे शेर हो जाते हैं ! हरनाम मुझ-जैसी नौकरानी पाकर भी नौकर ही रहेगा क्या ?—पर चिन्ता न करो। कमीज मिल जायगी।" कहती हुई आरती बाहर चली गई, और हाथ धोकर शीघ्र ही वापस लौट आई। नवनीत तब भी वैसे ही बैठा रहा था।

"अरे ! अभी तक कमीज भी नहीं खोली ?—और अगर सर्दी खा गए तो ? भुगतना तो मुझे ही पड़ेगा न।—रहो-रहो—मैं उतारे देती हूँ।"

"नहीं, नहीं, आप तकलीफ न करें। मैं उतार लूंगा।"

"अब तक उतार लिया है न, जो अब उतार लोगे।" आरती ने नवनीत का हाथ पकड़ कर ऊँचा किया, फिर आहिस्ता से कमीज का पल्ला पकड़ कर खींच लिया। लज्जा के मारे नवनीत का बदन सिकुड़ा

जा रहा था, एक अपरिचित रमणी उसका स्पर्श कर रही है—उसके रोमांच खड़े हो गये !

आरती ने चुटकी ली, "बहुत सकुचा रहे हो ? भगवान् ने गलती की, न तो हाथ ही चूड़ी पहनने लायक बनाए, न बदन ही लहँगे-साड़ी के काबिल ! पर ऐसा ही था तो परदेश में बीमार ही क्यों पड़े ?—और बहू को क्यों न ले आये साथ में ? तब न तो सकुचाना पड़ता और न एक नारी की लज्जा के नाटक का पर्दा ही खुलता ! चेत में आकर क्या मेरा अपमान करने लगोगे ?–चार दिन अचेत रहे, तब तो बच्चू ! यह शर्म घोलकर पी गये थे। —ऊहूँ !—न खुलेगी बनियान तुम से ?–रहो-रहो, मैं खोले देती हूं !"—उसने शीघ्र ही बनियान भी खोल दी, उसके बाद ट्रंक में से धुले हुए कमीज और बनियान निकाल कर उसने पहना भी दिये। बिछौना बदला और फिर उस पर नवनीत को लिटा दिया।

(कठपुतली की तरह नवनीत सब कुछ करता रहा, किन्तु अन्त में न जाने क्या सोचकर उसकी आँख गीली हो गईं। आरती ने चोरी पकड़ ली, अपने हाथ से आँसू पोंछ कर) बोली—

"नाराज हो गए।–पर यह नखरे-तिल्ले बीवियों को बताना, बहनें इन्हें सहा नहीं करतीं !—और ग़रीब घर है, सारा काम-काज करना है, तुम्हारी इस रईसी को देखते रहने की मुझे फ़ुरसत नहीं है लाला !–ज़रा आराम करो, ज्यादा सोचना मत—और पानी की प्यास लगे तो—कुआं मत खोदने लग जाना—आवाज देने से मैं सुन लूँगी ! समझ गए न माँ के लाडले !" आरती बाहर चल दी, उत्तर की राह भी न देखी।

लिहाफ़ के भीतर नवनीत ने देखा कि यह नारी कैसी है !—आप जानते हैं, नारी नवनीत के लिए कोई आकर्षण नहीं थी, प्रत्युत वह बड़ी सरलता से किसी भी नारी के निकट अपने हृदय के सम्पूर्ण-स्वास्थ्य को बनाये रखता था, आज इस नारी ने उसके स्वास्थ्य को नष्ट करके

पग-पग पर उसके लिए एक संकोच की दीवार खड़ी कर दी। क्या कृतज्ञता ही इसका एक-मात्र कारण है !

स्वयं रमणी में कहीं संकोच का लेश भी नहीं है, छिपाव की कोई भी प्रवृत्ति उसमें लक्षित नहीं होती ! किन्तु रमणी का जब प्रकट रूप ही स्पष्ट हो जाता है तो उस जैसी रहस्य की प्रहेलिका अन्यत्र मिलेगी ही कहाँ ? नारी रहस्य का नामान्तर-मात्र है ! अत: जहाँ रहस्य नहीं है वह नारी क्या है ?

भारतीय नारी के महत्त्व को वह जानता है ! किन्तु इस महत्त्व को वह अशेष-गर्व की वस्तु नहीं समझता ! वह सोचता है,–पुरुष अत्याचारी है, नारी भीरु है, अत: उसका आत्मोत्सर्ग दुर्बल के पराजय की कहानी-मात्र है ! आत्म-समर्पण में एक आध्यात्मिक आनन्द भी हो सकता है, इसका उसे अनुभव नहीं—उसने किसी को आत्म-समर्पण किया ही कहाँ !

वह अपने जीवन में जानता है तो केवल माया को ! और जानता कहाँ है ? अबोध ! रमणी की दैनिक परिचर्या को–अथवा अधिक से अधिक पति-प्रेम को प्राप्त करने की उसकी साधना-समन्वित तपस्या को—या इससे भी अधिक उसकी नीरव सेवा को ही ध्यान में रखकर क्या एक रमणी-मूर्त्ति को जान लेने का अभिमान किया जा सकता है ? पुरुष की निद्राच्छन्न-समाधि के निश्शब्द कोने में, अश्रु-स्फीत नयनों का जागरण, स्तब्ध रात्रि के महान्धकार ही को छिन्न नहीं करता, किंतु हृदय के निबिड़-मोहान्धकार को भी उच्छिन्न कर देता है, यह नवनीत को आज बोध हुआ, पहली बार !

रात को नवनीत एक-दो बजे थिएटर से लौटता; माया उत्सुक प्रतीक्षा में आँखें बिछाए हुए द्वार पर तत्पर मिलती; और खाने के लिए पूछने पर जब उत्तर मिलता कि वह तो होटल में खा आया है, तो छाती को दबाकर निकलती हुई अपनी दीर्घ साँस को वह दबा लेती; तर होती हुई आँखों को जागरण के बहाने मलसकर नवनीत को शुभ्र-शैया

पर सुला देती;—और जब नवनीत नितान्त अकृत्रिम-उपेक्षा के साथ सो जाता, तो वह भी, भूखी ही, उसके पैरों को अपने सुवासित केश भार से ढँक कर पड़ी रहती थी। कभी-कभी माया की निद्रा-हीन आँखों के निदारुण तप्त-अश्रु-व्यापार ने गम्भीर रात्रि के सूने पक्ष में नवनीत को जाग उठने के लिए बाध्य किया है, परन्तु तब भी वह कहता—

"अरे! अभी तक जाग रही हो? तभी तो आँखें लाल हो गई हैं! जाओ, सो रहो अपने पलंग पर" और फिर करवट बदल लेता। अपने पलंग पर अवश्य ही माया का मन हलका हो जाता! कुछ देर तक दिल खोलकर रोने के बाद नींद स्वयं ही आकर उसे सुला देती।

यदि कभी फुरसत मिलती तो वह सोचता, कैसे जड़ संस्कार हैं इन नारियों के! पुरुषों ने नारी को यदि कभी स्वतन्त्रता दी भी, तो क्या नारी उसका उपभोग करेगी?—निश्चय है कि वह अपात्र को दान देना कहलाएगा।

परन्तु आज आरती ने उसके सम्मुख नारी के इतिहास का एक नया ही पृष्ठ खोला। सेवा में नारी को प्रकृत-आनन्द प्राप्त हो सकता है, इसकी कल्पना आज उसे पहली बार हुई, और सेवाव्रत की साधना में स्त्री अपने लज्जागत संस्कार को—संकोच, लज्जा, दुविधा, आदि को—किस तरह तिलाञ्जलि दे सकता है, यह आरती ही उसे बता सकी।

माया का सौंदर्य, न आरती के सौंदर्य के पैमाने की अपेक्षा रखता है, न नवनीत की आँखों की ही। नवनीत सौंदर्य का भूखा नहीं है, रसिक वह हो सकता है; और मन और आँखों पर काबू रखना भी वह सब अच्छी तरह जानता है। इससे भी आगे हृदय के निभृत-कोण में जिस सौंदर्य की परीक्षा होती है, वह सौंदर्य भी माया में कम नहीं; परन्तु नवनीत, हृदय का वह निभृत कोण माया के लिए तूने खोला ही कब था?

तो क्या माया की निष्ठा में भी आरती की तन्मयता थी? निश्चय ही आज के पहले नवनीत कभी ऐसी प्राणान्तक बीमारी का शिकार

नहीं हुआ था, परन्तु, इससे क्या ? पति की बीमारी ही क्या स्त्री की सेवा का परीक्षा-काल है ? स्त्री के अनवरत परिश्रम ही में क्या उस विश्रांति के क्षण का परिचय नहीं प्राप्त किया जा सकता ? और मूर्ख नवनीत, नारी के कार्यों की फहरिस्त से, या उसके मुँह से निर्गत वाणी ही से यदि उसकी गणना की जाय, तो क्या वह सत्य के निकट मिलेगी ! स्त्री का मस्तिष्क सत्य नहीं होता, उसका हृदय सत्य होता है; स्त्री की वाणी सत्य नहीं होती, उसकी दृष्टि सत्य होती है ! और तदुपरान्त भी कोई उसके हृदय की, उसकी दृष्टि की कहानी समझे तब न !

तभी लिहाफ के भीतर ही नवनीत को मालूम हुआ, कोई कमरे में प्रविष्ट हुआ, साँस रोककर वह उनकी बात-चीत सुनने लगा !

"तो इन्हें चेत होगया था ?—प्रसन्नता की बात है, आखिर मेहनत तो सफल हुई ! पर अभी तो—"

"मालूम देता है, सोगया है !"

"मैं देखूं ?"

"ना-ना—रहने दो, अभी कच्चा दिमाग है ! कहीं फिर बेहोश हो गया तो !"

"अच्छा-अच्छा ! होश में आते ही बड़ा ताज्जुब हुआ होगा ?"

"मुझे न !—सो तो हुआ ही !" नवनीत साँस रोककर सुनता रहा !

"तुम ? तुम क्यों ! मैं तो इन हजरत की कह रहा हूँ ! तुम्हें क्या ताज्जुब होगया ?"

"बरतन साफ कर रही थी, आकर देखा तो मिली हुई कटोरी से पानी पीकर पेट फोड़ने लगे थे !"

"अरे, यह कैसे ?"

कैसे क्या, वंश के भागीरथ हैं ! कमीज, बनियान वगैरा सबको जब उतार चुके, तो गङ्गा की दूसरी धारा को नाक के द्वारा मस्तिष्क के ऊर्ध्व लोक में भेजा, और तीसरी धारा पेट के अधोलोक में भी कुछ

पहुंची ही होगी ! रही इस लोक की जाह्नवी, सो उसने कमण्डलु से निकलते ही, देवाधिदेव के जटाजूट के अभाव में शुभ्र-हिमधवल चादर पर ही कलाबाजियाँ खाईं ! और स्वयं अपने गंगावतरण का दृश्य दिखाने के लिए किंकर्त्तव्य विमूढ़ बने बैठे थे !

"यह सब कैसे हुआ ! पूछा नहीं ?"

"मुंह से 'हाँ' 'जी' के अलावा कुछ निकले तब न ! बाप रे; इतनी उमर होगई, पर माँ के दूध की याद अभी दाँतों से गई नहीं दीखती है !"

"और भी कुछ कहा ?"

"कहा न ! यही कि मुझे कमीज खोलना नहीं आता, बनियान खोलना नहीं आता !"

"तो तुमने क्यों नहीं खोल दिया ? लड़का बड़ा शर्मीला मालूम देता है।"

"खोलती नहीं तो करती ही क्या !--पर ऐसा होश ही क्या कि बेहोशी से बदतर हो जाय !"

"क्यों क्यों ?"

"अरे, कमीज खोला तो रोम-रोम खड़े होगए, पुचकारा तो आँखें ही भर आईं ! ना बाबा, अपने से तो ऐसे नखरे-तिल्ले नहीं सहे जाते !" अधरलाल, मालूम दिया, कुछ हँस दिए। लिहाफ में ही फिर नवनीत की अभावमयी आँखें भर गईं !

"कह नहीं दिया कि नखरे-तिल्ले मुझसे नहीं सहे जाते ? —सहे तो बीबी सहे !"

"बीघी ! मुझे तो नहीं दीखता कि कौन लड़की होगी जिसके हाथ में ऐसे मर्द का हाथ पकड़ने की खुजली चल रही होगी !"

"अरे बहुत होंगी, आरती, बहुत होंगी ! देखने में कैसा सुन्दर है !"

"सौंदर्य की भूख औरतों में नहीं होती सरकार ! बल्कि ऐसे

चटोर तो पुरुष ही होते हैं ! न मानो तो, काँच में अपनी ही सूरत न देख लो !"

"तुम्हारी आँखों के काँच में न !—पर उसका प्रयोजन आज ही क्या है ?"

"तो हजरत कुँवारे हैं —हैं ?"

"मैं क्या जानूँ, बल्कि, अगर कोई हो तो इनकी विवाहित पत्नी शायद ही निश्चय से कह सके कि ये कुँवारे हैं या विवाहित ?"

आरती की यह मजाक, सत्य बनकर कितना गहरा घाव नवनीत के हृदय में कर सकी, आरती यह जान ही कैसे सकती थी !

"और कुछ हाल पूछा तुमने ?"

"मैंने तो नहीं पूछा, पर खुद ही बहुत कुछ बता गए !"

"क्या क्या बताया ?"

"यही कि एम० ए० तक पढ़े हैं, और एम० ए० में पढ़ाया जाता है कि भाड़ किस तरह झोंका जाता है !"

"कहती क्या हो ?" हँसकर अधरलाल ने पूछा !

"जब होश आजाय तो यकीन कर लेना—पहला नम्बर पास हैं ! दिल्ली में दस साल रहकर यही तो किया !"

"तुम तो बहुत कुछ जान गई इनके बारे में ! लिखकर छपा देना इनके जीवन चरित्र को ! औरतें चाव से पढ़ेंगी ! फिर क्या हुआ ?"

"फिर क्या ! दूसरी चिड़िया उड़ी 'फुर्र !' शिकारपुर की यूनिवर्सिटी में अमावस्या को उलूक-विद्या पढ़ाते थे। बड़े दफ्तर में एक दिन प्रयोग के लिए एक उल्लू की तलाश में थे, वहां का साहब भी ऐसे ही किसी उल्लू की तलाश में था—दोनों ने एक दूसरे के पंखों पर हाथ रखा; सफल होगए ! तभी अमावस के अंधेरे में इन्हें पाकिस्तान के बंकिम-चाँद और सितारे की ज्योति दिखाई दी, उड़े और मानपुर में शरणार्थी होगए ! सोचती हूँ, कुछ स्वस्थ होजाएँ तो भट्टाचार्य के गुरुकुल में भेज दूँ, इनका नमस्कार ग्रहण करके धन्य होजाएँगे.! पर चलो भी,

इनकी रामायण अभी तो खत्म होगी नहीं। चौके में चलो, हरनाम है। माना नहीं, खाना बनाया तो उसी ने है, पर तुम्हारे लिए रोटियाँ तो मैं ही बेलूँगी ! हाथ-मुँह धो लो; मैं तब तक इन शिकारपुर के स्नातक का टेम्परेचर देखकर आती हूँ !"

मालूम पड़ा, अधरलाल चल दिए ! नवनीत ने भीतर ही आँखें बन्द कर लीं !

आरती ने लिहाफ हटाकर उसकी बगल में काँच की नली लगा दी, एक मिनट बाद निकाल कर देखा, तापमान औसत पर है, उसके मुँह पर प्रसन्नता का रंग निखर उठा ! नवनीत बन्द आँखों से ही यह जान गया !

कुछ दिन और बीत गए ! नवनीत ने स्वास्थ्य-लाभ कर लिया, उसके घाव ठीक हो गए, केवल कुछ दुर्बलता शेष रह गई, पर शिकायत के लायक कोई बात न थी ! तब एक दिन, जब कि अधरलाल और नवनीत खाना खा रहे थे, आरती चौके में बैठी हुई रोटियाँ बेल रही थी, तथा हरनाम मानो नौकरी से इस्तीफा देकर बाहर बैठा हुआ चिलम के कश खींच रहा था; नवनीत ने अधरलाल को लक्ष्य करके कहा—

"भाई अधरलाल, अब मैं स्वस्थ हो गया हूँ, मुझे घर जाने की इजाजत दे दो !"

अधरलाल ने आरती की ओर देखा, और मुस्करा कर कहा, "मेरी ओर से इजाजत है; किन्तु आप जिसकी कैद में हैं, उसी से पूछिए !"

नत-दृष्टि से नवनीत ने आरती को लक्ष्य करके कहा—"बहन—" किन्तु आगे कुछ अधिक नहीं कहा जा सका !

आरती ने मुँह उठाकर कहा—"कहो बहन के लाडले, क्या रोटियाँ गले के नीचे नहीं उतरतीं ?"

"जिस गले के नीचे तुम्हारे हाथ की रोटियाँ नहीं उतरें, वह अभागा ही है, शायद फाँसी की रस्सी से जकड़ा हुआ हो !"

"या मेरी भौजाई के मृणाल-बाहु-बंधन में ?"

"पर मेरे गले में तो रोटियाँ अटकती नहीं !"

"तो इजाजत को क्या करोगे ?—डरो मत; तुम्हारी बहू से कहने न आऊँगी कि तुम इन कई दिनों तक मेरे मेहमान रहे !"

नवनीत ने साहस करके दृष्टि उठाई, आँखें चार होने पर वही हारा, बोला, "मेहमान कहाँ हूँ ! मैं तो इस घर में भाई हूँ !"

"तभी तो नीचे आँखें करके बात करनी पड़ती है ! पर ऊपर देखोगे तो, सच कहती हूँ, तुम्हारे पोस्टमैन साहब नाराज नहीं होंगे !"

अधरलाल ने हँसकर कहा—"पर आँखें भर कर ही क्या करोगी ! पेट नहीं भरोगी इनका ?—देखो, दोनों की थाली खाली हो रही है !"

आरती ने दोनों थालियों में रोटी परोस दी !

अधरलाल ने कहा, "इतनी जल्दी क्या है ?—आप घर से बुलवा लीजिए, वे आजाएँ, बस, आपको छुट्टी मिल जाएगी !"

आरती ने बीच ही में कहा—"घर से किसे बुला लें !—क्यों जी, क्या शिकारपुर के स्कूल में 'घर' शास्त्र कुछ पढ़ाया जाता है क्या ?"

नवनीत ने साहस किया—"शिकारपुर के स्कूल में तो नहीं, पर मानपुर के अनाथालय में तो, मालूम देता है, यह पढ़ाया जाता है !"

आरती ने तपाक से जवाब दिया—"यहाँ पर कौन ऐसी अनाथा रक्खी है जो, तुम्हारे गले पड़ने के लिए उत्सुक हो ! बहन है यहाँ पर, ज्यादा से ज्यादा भाभी का क्षेत्र पा सकते हो ! किन्तु प्रेम प्राप्त करनेके लिए बड़ी तपस्या करनी पड़ती है ! न हो, इनसे पूछ देखो ! एकांत प्रेम का बलिदान तो दे चुके हैं, और भी न जाने क्या-क्या साधना यम-नियम करने पड़ते हैं, तब कहीं जाकर मैं प्राप्त हुई हूँ !—"

नवनीत लज्जा से गड़-गड़ गया। मन के चोर को अब कहाँ छिपाए ? उसने हाथ धो लिये !

और फिर एक-दो दिन बाद, सचमुच ही नवनीत हरनाम के साथ, भरे हुए दिल और भरे हुए घावों को लेकर अपने पोस्ट आफिस वाले मकान को लौट आया। उस समय शरीर से वह पूर्ण स्वस्थ था !

(७)

मथुरा के कमल किशोर को सभी जानते हैं ! व्यवसाय में उन्होंने खूब उन्नति की थी; पैसा भी ढेरों लुटाया था—जनता को भी, और शासन को भी—अतः कुछ दिनों तक उन्होंने आनरेरा मजिस्ट्रेट का पद भी सुशोभित किया था ! पर जिस समय की बात चल रही है, उस समय वे तत्कालीन गौरांगसत्ता की दृष्टि में शूल होने लग गए थे ! ऐश्वर्य के स्तूप के नीचे उनकी आँखों में प्रजाजनों के असह्य शोषण का रक्त रंजित अंधकार भी छा गया था, अतः वे अपने अशेष-ऐश्वर्य को छोड़कर राष्ट्रवादियों की पंक्ति में खड़े हो गए। तब इन पर सरकार की फिर कृपा दृष्टि पड़ी, उसने इन्हें फिर अपना मेहमान बहनाया, पर इस बार मजिस्ट्रेट के पद पर नहीं, बल्कि जेल के सींखचों में। मथुरा में कमल किशोर की ख्याति और भी चौचन्द होगई !

सत्तावन वर्ष के कमलकिशोर, यह उनका उत्तरकाल है। उत्तर काल में जबकि एक व्यक्ति को शांति की आवश्यकता होती है, कमलकिशोर को वह नहीं मिली, अतः कमलकिशोर को शांति के अभाव में कहाँ तक क्रांति का भक्त या दूत कहा जा सकता है यह विचारणीय है ! सच तो यह है कि शान्ति के अभाव का ही अर्थ क्रांति नहीं, पर तत्कालीन अंग्रेज सत्ता उसे ऐसा ही समझती थी ! अंग्रेजों की सर्वोच्च सत्ता को भारत से निबटे अभी अरसा नहीं हुआ है, और एक दिन यह इतिहास की बात भी हो जाएगी, किन्तु मेरी पीढ़ी ही के नहीं, आज के सभी भारतीय जानते हैं कि कल की यहाँ की अंग्रेज-सत्ता का क्या रूप था ! कमलकिशोर के लिए जिस तरह क्रांति का अर्थ शांति के अभाव के रूप में ऋणात्मक लिया जा रहा है, वह रूप तो सारी ब्रिटिश-सत्ता का था ! सत्य को सिद्ध करने के लिए जहाँ पर मिथ्या का अभाव सिद्ध करना पड़ता है, वहाँ पर मिथ्या के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना काम नहीं चल सकता ! अतः कमलकिशोर अवश्य ही क्रांतिकारी थे !

क्रांति की इस मरीचिका में एक आवास भी था, जहाँ, पर शाद्वल की श्यामल-भूमि में उनकी आत्मा निश्चय ही शांति पाती थी। पाठक उससे परिचित हैं, वह है इन वृद्ध महाशय की एक-मात्र कन्या माया—माया, जिसकी माँ उसे तीन बरस ही की छोड़कर चल बसी थी!

(यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कमलकिशोर ने अपनी कन्या के लिए क्या-क्या किया!) ३५ वर्ष की अवस्था में कोई बूढ़ा नहीं हो जाता, किन्तु निश्चल मन से जब कमलकिशोर ने विवाह से विरक्ति प्रदर्शित कर दी, तो वह केवल माया के कारण थी। अपने विशाल सूने हृदय में माता का स्नेह भर कर उन्होंने माया का पालन किया, और एक दिन एक शिक्षित और सभ्य सुन्दर युवक नवनीतलाल के साथ उसे अपने घर से विदा कर मुक्ति की साँस ली! तब तक माया को केन्द्र करके उनके जीवन की परिधि उसे आश्रय देती रही, अब माया से मुक्ति पाकर ये स्वयं केन्द्र हो गए। असहयोग आन्दोलन के वे प्रमुख संचालक हो गए!

अन्त में चार वर्ष के इस अनवरत जीवन को विश्राम देने के लिए जब उन्होंने एक दिन अपने पूर्व परिचित बन्दीगृह में सरकारी मेहमान होने की तैयारी की तो उसके पूर्व की संध्या को ही उनके घर माया आ टपकी, साथ में नौकर हरनाम, जो दूसरे ही दिन वापिस लौट गया! माया को देखते ही उनकी आँखों में आँसू आ गए; आन्दोलन का नेतृत्व उन्होंने दूसरों के सिर दिया। इतने दिनों बाद तो माया आई, और वे जेल कैसे जाएँ!

पहले तो माया के मुँह से सब हाल सत्य रूप में सुन कर भी उन्हें अधिक चिन्ता नहीं हुई! सोचा, थोड़ा, बहुत मान प्रेम ही का तो एक अंग है! किन्तु चार माह की दीर्घ अवधि के बाद भी जब उन्हें नवनीत का कोई पत्र नहीं मिला, तो उन्हें थोड़ा आश्चर्य हुआ, और स्वयं ही एक पत्र नवनीत का कुशल-सम्वाद जानने के बहाने ही भेज दिया। कहना न होगा कि कमलकिशोर को उसका कोई उत्तर

नहीं मिला। उत्तर मिलता कैसे ? रिडाइरेक्ट होकर पत्र को मानपुर पहुँचने में लगभग एक माह लग गया, जबकि नवनीत प्राणांतक बीमारी का शिकार था, और मानपुर के पोस्टऑफिस में ही वह पत्र कब खो गया इसे कौन कह सकता है ! रह गया नवनीत स्वयं; सो वह खुद पत्र देने ही क्यों लगा !

कमलकिशोर को चिन्ता हुई, एक बार और माया से उन्होंने सम्पूर्ण बात जाननी चाही। माता के वात्सल्य से भरे हुए पिता को उसने निस्संकोच अपनी अवहेलना और निराशा का सब इतिहास कह सुनाया। अपनी एक-मात्र कन्या के दुःख से संतप्त होकर कमलकिशोर पहले विरक्त हुए, फिर दुःखित और तदनन्तर क्रोधित हो उठे। नवनीत—सुन्दर, सच्चरित्र और शिक्षित—सभी कुछ हैं; फिर माया में कोई अभाव किस स्थान पर है, यह भी वे नहीं जान सके। फिर बात क्या है ? माया भी शिक्षित है, सुन्दर है, युग की वृत्तियों से उदासीन नहीं, और संस्कारमयी, सेवा-परायण सभी कुछ है ! क्या बात है—कमलकिशोर को सिर दर्द हो गया !

दूसरे दिन जब कि दोनों ने भोजन कर लिया था, और दोनों ही ग्रीष्म की अलस-दुपहरी बिताने की सोच रहे थे, तो अखबार खोलकर कमल किशोर ने नितान्त प्यार के साथ पुकारा—"माया !"

"पिताजी !"

"तुम्हें अपनी माँ की कुछ स्मृति है ? कहाँ से होगी; तीन ही बरस की तो थीं तुम !—परन्तु मेरे हृदय में, जैसे वह कल की बात हो ! कल की,—सोते-बैठते, उठते-जागते, कठिन कर्मठता में, वा निरानन्द आलस्य में, एक क्षण भी ऐसा नहीं जाता जब कि उसकी तीव्र-स्मृति मेरे अन्तर को आच्छन्न न कर देती हो !"—और अनायास ही उनका स्वर कुछ भारी हो उठा, फिर धीरे-धीरे भावरुद्ध कण्ठ जब गद्गदित होने लगा तो दोनों की आँखें भी गीली हो उठीं, यद्यपि एकाएक माया इस सम्पूर्ण भूमिका का तात्पर्य न समझ सकी !

पिता कहते रहे, "उस पुण्यमयी देवी के जीवन का एक एक क्षण एक एक इतिहास लिये हुए है ! उसका सम्पूर्ण जीवन इतना कर्ममय, इतना त्यागमय, इतना सेवामय और संस्कारमय था कि मैं तो क्या, इस घर के नौकर तक उससे बहुत अधिक स्नेह करते थे माया !"

पिता ने विराम लिया, पुत्री ने आँखें उठाकर पिता की ओर दृष्टि डाली, उनका आशय समझने का उसने प्रयत्न किया, बोली—"रहने दीजिए न पिताजी ! बीती बातों को याद करने से—"

"बीती बातों को याद करके हम अपने भविष्य की राह बनाते हैं माया ! गुणवती पत्नी को पाकर मनुष्य अपने भाग्य की सराहना करता है वह उसके उच्छृङ्खल जीवन का एक मधुर बंधन है ! तुम जैसी गुणवती, शिक्षिता और सुन्दर पत्नी को पाकर भी जो पुरुष अपने-आपको समर्पण न कर दे, वह निश्चय ही अभागा है, किन्तु उसके अभाग्य से भी अधिक भीषण भाग्य उस पत्नी का है माया, जो एक शिक्षित गुणाढ्य और सुन्दर पति को वश में नहीं कर सकती ! तुम्हारी माँ समझती थी कि पत्नी का जीवन पति के अभाव में शून्यवत् है, अतः मुझे भी समझना पड़ा कि पत्नी के अभाव में मनुष्य का जीवन शून्य ही नहीं हाहाकारमय है।"

माया के नेत्र अश्रु-प्लावित होगए; रुआसे गले से वह बोली—"पिताजी, क्या आपका मतलब है कि मैं प्राणपण से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न नहीं करती थी ?"

"मुझे तुझ पर विश्वास है बेटी, तुम उसी माँ की तो पुत्री हो ! मैंने तुम्हें अपनी समझ में एक सत्पात्र के ही हाथ में दिया है, और जहाँ तक मैं समझता हूँ, तेरी असम्मति का आभास भी मुझे उन दिनों कोई मिला नहीं। भारतीय आदर्श में पली एक हिन्दू कन्या के लिए अवश्य ही यह लज्जा की बात है कि पति की साधना में वह किसी 'परन्तु' को स्थान दे ; किन्तु मैं स्वयं आदर्शवादी नहीं, हृदयवादी हूँ। आदर्श चाहे जो हो, किन्तु किसी को प्यार कर सकना या

नहीं कर सकना, यह आदर्श नहीं निश्चित करता, बल्कि हृदय करता है—''

''नहीं पिताजी, आप गलत न समझिए; किसी पापमयी कल्पना से मुझे अभिशप्त न कीजिए !''

वृद्ध ने सन्तोष की साँस ली, फिर कहा—

''मैं तुम्हारी बात नहीं कह रहा था माया ! मैं कह रहा हूँ नवनीत की बात; युवावस्था में शृंखला तो रहती नहीं, और विशेष कर नवनीत के जीवन में तो कोई नियंत्रण था भी नहीं; तब उद्दाम-लालसाओं के क्रीड़ाक्षेत्र में वह फिसल पड़े तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ! किन्तु इस अवस्था में यदि पत्नी अभिमान वश इस तरह हाथ खींच ले तो उसका प्रभाव उल्टा ही पड़ता है माया !''

माया ने लजाकर नीची गर्दन कर कहा—'' पिताजी वे देवता हैं चरित्र में !'' नवनीत पर चरित्र-हीनता का दोष उसका शत्रु भी कैसे लगाता !

वृद्ध को कोई सूत्र हाथ नहीं लगा, उसे कुछ क्रोध भी हो आया, बोले— ''तो क्या तुम्हीं राक्षसी बन गईं ?''

प्रश्न कठोर था, प्रश्नकर्त्ता भी इस बात को समझ गए, पर तीर तब तक छूट चुका था !

माया पर उसका आघात भयानक लगा, उसके शून्य कर्ण-कुहर में 'राक्षसी' शब्द बज उठा, 'राक्षसी' ! कितने अर्थ इसके नीचे पड़े हैं ?

वह, बोली, ''राक्षसी ही कहिए पिताजी, किन्तु जो कुछ भी एक पत्नी के लिए शक्य है, वह मैंने इन चार वर्षों में किया है। सेवा करके उसको कह गिनाने का सौभाग्य नारी को नहीं है, किन्तु आप ही कहिए, क्या चार वर्षों की लम्बी अवधि में एक भी रात एक पत्नी को शांति की नींद न लेने देंगे, क्या एक जून भी उसे सन्तोष के साथ खाना भी न खाने देंगे ?—मैं ऐसी ही अभागिनी हूँ पिताजी ! यह चार

वर्षों का व्यवधान एक क्षण के लिए भी मुझे चिन्ता-हीन शांति का आभास नहीं दे सका !''

"तो क्या उसने तुम्हें खाने को भी नहीं दिया ? मेरी सम्पत्ति से पला हुआ वह ! तब तो तुम्हें वह पीटता भी रहा होगा !"

"इससे भी अधिक पिता जी ! खाना नहीं देने पर भूख की यंत्रणा साफ मालूम देती है। पीट देने पर शरीर के चिह्न सहस्र जिह्वा होकर बोलते हैं । किन्तु उस पीड़ा को क्या कहा जाय जिससे भूख रहते हुए भी परोसी थाली न खाई जा सके, जिसके घाव शरीर पर न लग कर केवल मन की अवाक् देह को जर्जर करते रहें !"—नीची दृष्टि कर उसने कहा— "उन्हें शायद पत्नी की जरूरत नहीं है पिताजी !"

माया का कण्ठ रुद्ध होगया; न वह अधिक कह सकी, न उसमें अधिक सुनने की शक्ति ही रह गई थी, अतः वह इन्हीं शब्दों को मानो साथ लिए हुए कमरे से बाहर निकल गई ! कमल किशोर आत्म-विस्मृत से खड़े रहे !

नवनीत को पत्नी की जरूरत नहीं है--पत्नी की जरूरत नहीं है, या माया की ही ?—नहीं, माया का उत्तर और आशय भी स्पष्ट था। उसे पत्नी की जरूरत नहीं है ! नहीं है, पर क्यों ?

क्या वह अभागा यह नहीं जानता कि पत्नी पति के जीवन में इन्द्र धनुष होती है ?—इन्द्र धनुष—पर सभी पत्नियाँ होती हैं क्या ? मनुष्य-जीवन में पत्नी प्रयोग की वस्तु तो है नहीं, तब यदि कोई पत्नी इन्द्र धनुष न हो तो ?—सन्ध्या के सर्वस्व-हीन आकाश को लेकर कौन इस कर्म भूमि में स्थिर पद रह सकता है ?

नवनीत, शिक्षावान-चरित्रवान-रूपवान सभी कुछ है, तब क्या उसके हृदय में मनुष्य ही न होगा ?—या क्या माया ही उसकी आँखों में जादू नहीं फूँक सकी ?—सच है जादू केवल सौंदर्य धूप छाँह से ही नहीं फूँका जा सकता, उसके लिए हृदय की अपरिसीम निष्ठा

आवश्यक है। भ्रू-निक्षेप से पुरुष का मन लुभाया जा सकता है, रमाया नहीं। रमाने वाली वस्तु आँखों के कटाक्ष में नहीं, उनकी अश्रु राशि में है! नवनीत औसत से ऊँची चीज ही की अपेक्षा करने वालों में है!

परन्तु माया ही निष्ठाहीन है, यही कैसे कहा जाए! माया ने जो कुछ कहा, उसमे मिथ्या का तो कहीं लेश मालूम नहीं देता! यदि वह नवनीत में श्रद्धा न करती होती तो उसके ऊपर लगाए हुए आक्षेप को अस्वीकार न करती! तब? बात सचमुच में क्या है?

सच तो है शून्य आकाश में इन्द्र-धनुष बनाया ही कैसे जा सकता है? उसके लिए वाष्पाकुल, बरस पड़ने वाले सजल-सघन-नभ की आवश्यकता होती है! नवनीत शिक्षित है, दृढ़ चरित्र है, रूप-सम्पन्न है—सभी कुछ है, पर वर्षा का सघन गगन भी उसे प्राप्त है क्या? तभी तो माया को दोष दिया जा सकेगा? पत्नी की जरूरत नहीं है! जरूर ये शब्द नवनीत ही के हैं! पर क्यों नहीं है?–कॉलेज से निकला हुआ लड़का—क्या किसी नाटकीय प्रेम की प्यास तो नहीं ले बैठा! मनुष्य के जीवन में पत्नी के लिए तो एक विराट् शून्य पड़ा रहता है! किसने तेरे जीवन में उस स्थान को घेर रक्खा है नवनीत, जिसमें माया-जैसी रमणी भी प्रवेश नहीं पा सकी?

यदि यह कारण न भी हो, तो भी नवनीत को दोष से कैसे बरी किया जा सकता है? एक समर्पित कन्या को ठुकराने की बात क्या सामान्य है? यदि कुछ उससे त्रुटि हो ही गई तो समर्पण की तुलना में क्या वह इतनी बड़ी होगई कि उसे भुलाया ही नहीं जा सका? और त्रुटि ही कैसे उसे मान लिया जाय? जब सभी चार वर्ष उसके एक-जैसे दुःख में बीते हैं, तो उसका वैराग्य स्पष्ट ही प्रारम्भ से है, और उसमें माया की किसी त्रुटि से सम्बन्ध नहीं है!

प्रारम्भ ही से? तो क्या नवनीत के जीवन में किसी दूसरी नारी ने इन्द्र-धनुष रच दिया था? माया अवश्य जानती होगी! किन्तु,

यह जानकर ही क्या करोगे कमल किशोर ! उससे नवनीत के प्राकृत अपराध की गुरुता तो कम हो नहीं जायगी ? उसके जीवन में कोई इन्द्र-धनुष बनाए या मिटाए, माया का जीवन नष्ट करने का उसे क्या अधिकार था ? प्रवंचक दुष्ट लुटेरा !

'पत्नी की जरूरत नहीं है !' कितनी शोखी, कितने गरूर से भरा जवाब है ! इसीलिए न, कि एक हिन्दू कन्या नहीं कह सकती कि उसे भी पति की जरूरत नहीं है ! अपने अधिकारों का कैसा भयानक दुरुपयोग है पुरुष ! क्या इसी तरह तू अपनी पैठ जमाएगा ?

माया का जीवन नष्ट होगया ! माया का जीवन !—कमल किशोर की एक-मात्र आशा, उनका सबसे मधुर स्वप्न, अपनी अनंतस्नेहमयी पत्नी की एक-मात्र शेष स्मृति माया का जीवन नष्ट हो गया ! जीवन के सायाह्न में कमल किशोर को यह भी देखना पड़ा !

तब, माया को नवनीत के हाथों सौंपा ही क्यों ? दूध पिलाकर यदि साँप न पाला होता, तो त्रिलोकनारायण ही बुरा न था कमलकिशोर; निश्चय ही माया को पाकर वह धन्य हो जाता ! कैशोर्य की उच्छृंखलता क्या विवाह के बाद भी टिकी रहती; और नवनीत के हँसने में ही ऐसे कौन से फूल बरसते थें कि तुमने त्रिलोकनारायण को एकाएक ही निराश कर दिया ! तब एक आश्रित बालक को आज अपनी अवज्ञा करने के अपराध में तुम दण्ड दे सकते थे कमलकिशोर, और स्वयं माया की इच्छा इस दण्ड-विधान में ऊँचा स्थान प्राप्त करती।

त्रिलोकनारायण—वह भी उच्च शिक्षा-सम्पन्न, रूपवान् और उससे बढ़कर धनवान्—तथा इन सबसे बढ़कर माया के प्रति सर्वांग से आसक्त ! एक सत्पात्र को तब खोकर अब पछताने से क्या होता है ?—अपनत्व के चश्मे से रंगी हुई आँखें नवनीत के नग्नरूप को तब न देख सकीं। नवनीत के प्रति तुम्हारी भावना तो एक संस्कार बन गई थी। परन्तु, अब उस बात को सोचने से लाभ ही क्या है ?

सचमुच लाभ ही क्या है ?—एक हिन्दू कन्या नहीं कह सकती कि उसे पति की जरूरत नहीं है !—पर क्यों नहीं कह सकती ?—पुरुष की उच्छृंखलता के जवाब में न सही, उसका स्वयं का भी तो एक अस्तित्व है ! नहीं है क्या ?—नारी के स्वयं के शरीर का, उसके सौंदर्य का, उसके अपने समस्त-भाव का क्या कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं ? तभी तो एक तुच्छ-सा पुरुष भी कह देता है कि उसे पत्नी को जरूरत नहीं है ! वह जानता है न, कि पत्नी की उसे छोड़कर अन्यत्र कहीं गति नहीं है। वह दुतकारेगा, और पत्नी, पति के किये हुए अपराधों के लिए स्वयं ही उसके तलवों में नाक रगड़ कर क्षमा की भीख माँगेगी ! वह कहेगा नितान्त दम्भ के साथ, कि उसे पत्नी की जरूरत नहीं है, और पत्नी अपने आयताकार नेत्रों में आँसू भरकर पति के चरणों में माथा टेकती हुई नितान्त कातर वाणी में रोएगी—'मुझे कुछ भी दण्ड दो, किन्तु इन चरणों की छाया से अलग न करो, मेरी अन्यत्र कहीं गति नहीं है !' और कालान्तर में वे ही चरण उसे ठोकर मार कर रोती हुई छोड़ चल देंगे।

नहीं, नहीं। माया यह अन्याय-अत्याचार नहीं सहेगी ! पुरुष के इस दम्भ का अन्त होना ही चाहिए। यदि नवनीत को माया की जरूरत नहीं है, तो माया ही को नवनीत की जरूरत क्यों होनी चाहिए ? एक मिथ्या संबन्ध का बोझ लाद कर अपनी स्वतंत्र गति को कुण्ठित करना आज की नारी को शोभा नहीं देता। माया इस सम्बन्ध को उच्छेदित करेगी, और कमलकिशोर उसके इस कार्य में सहायता देंगे।

और कमलकिशोर ने एक भयानक संकल्प—माया के त्रिलोकनारायण से पुनर्विवाह का संकल्प कर लिया। त्रिलोकनारायण अभी तक अविवाहित है, और वह इसे स्वीकार भी कर लेगा, सम्पूर्ण हृदय से।

माया तैयार न होगी ?—उसके संस्कार शायद बाधा दें ! पर उसे मिथ्या संस्कारों का बन्धन भी तोड़ना है ! प्रवाद की आशंका भी उसे रोक सकती है। पर क्या इसी के लिए उसका जीवन बरबाद होजाए ?

नहीं नहीं, त्रिलोक से विवाह करके वह अवश्य सुखी होगी। तै रहा कि उसका पुनर्विवाह हो जाए! और कमल किशोर के इस संकल्प का माया को पता भी तब लगे जब सम्पूर्ण तैयारियाँ हो जाएँ, यानी उसे इन्कार करने का मौका भी न मिले।

और उसी दिन कमल किशोर ने त्रिलोकनारायण को, जो उन दिनों इलाहाबाद में एडवोकेट थे, इस आशय का एक पत्र लिख डाला। कहना न होगा, माया को इसका पता ही न था।

(८)

नवनीत एक आराम कुर्सी पर पड़ा हुआ था, तर्जनी और मध्यमा के बीच सिगरेट उलझी हुई थी, मुँह में से धुँए का बादल अलस-गति से निकल रहा था! आँखें उसकी नाक की नोक पर गड़ी हुई, देखने के लिए कि नाक की राह भी उसी परिणाम में धुआँ निकल सकता है या नहीं।

संध्या क्षीण-पर्दों से उतर रही थी, और हवा का मुँहजोर घोड़ा रह-रह कर जोर से भाग निकलने के लिए छटपटा रहा था। नवनीत के मुँह से निकले हुए बादल, उसके मकान की ही छत पर इकट्ठे होकर घनीभूत होने की निष्फल चेष्टा कर रहे थे। साँझ होने पर वह आफिस के काम को छुट्टी दे देता था, आज उसने अपने मस्तिष्क के समस्त विचारों को भी विदा कर दिया था।

(सिगरेट फूँककर वह दिमाग के लिए कोई सुविधा नहीं प्राप्त करता था! महज आँख के सामने एक उत्सव होता रहे, तो उसका दिमाग भी कुछ उलझा रह सकता है। धुँए का उत्सव वैसे कुछ बुरा भी नहीं होता; जीवन का उत्सव भी तो ऐसे ही कुछ खेलों का समन्वय है! खेल चलता रहता है। कभी मन नायक होता है, कभी उपनायक, और अन्त में एक दिन मिथ्या हार-जीत की आँख-मिचौनी करके अनन्त

में उड़ भी जाता है। पिपासा-दग्ध अधरों पर सिगरेट-सुन्दरी का अग्नि-चुम्बन कितनी अधिक शांति दे सकता है, यह नवनीत से भी छिपा नहीं, परन्तु जीवन में सभी कुछ सकारण ही घटित हो, यह कोई आवश्यक नहीं।

तभी हरनाम ने आकर पूछा, "बाबू सब्जी क्या बनेगी ?"

"जो जी चाहे !"

"वही तो पूछ रहा हूँ !"

"मेरा नहीं, जो तेरा जी चाहे !"

हरनाम एक क्षण के लिए चुप रहा ! उसने मानो डरते-डरते कहा—"बाबूजी !"

"क्या है ?"

"देखता हूँ कि—"आगे क्या कहे ?–वह चुप होगया !

नवनीत हँसकर बोला—"देखता है कि बाबू आराम कुर्सी पर टाँगें पसारे हुए सिगरेट के कश पर कश खींचे जा रहा है, और इस खींचातानी में भी–क्यों ?—पा कुछ भी नहीं रहा है ! यही देख रहा है न ? या और भी कुछ ?"

"आप मुझे भुलावा दे रहे हैं बाबू !"

"पागल ! भुलावा ? मेरे पास है कहाँ, जो किसी को दूं ! जा, पहली तारीख से दो रुपये ज्यादा ले लेना ! जीभ चुप हो जायगी न ?

हरनाम पैरों के पास बैठकर बोला—"रुपयों की रिश्वत से जीभ चुप नहीं होती बाबूजी, बल्कि उसीने तो मुझे बे-लगाम कर दिया है !"

"बहुत-बे लगाम हो गई है क्या ?—तब तो पागलखाने भेजना पड़ेगा तुझे ! वहां लगाम लगाई जाती है, जानता है न ?"

हरनाम चुप ही रहा। मन में तो उसके आया कि कह दे : पागल खाने में ही तो है वह : पर चुप ही रहा।

कुछ ही देर बाद, सिगरेट के एक दो कश खींचकर नवनीत स्वयं

ही हँस पड़ा, बोला—"बोलने ही का बहुत शौक है तो चूल्हे में गीली लकड़ियाँ जलाया कर! आंखें लाल करके, सब्जी उबलने के स्थान पर जब तू खुद ही उबलने लग जायगा, तब तू समझेगा कि बोलते रहने की इच्छा होते हुए भी, वहुत अधिक बोलना अधिक प्रिय नहीं रहता। प्रिय लगता है कदाचित् आंखें बहाना! जा, उठ; भूख लगी है। जल्दी ही कुछ बना-बुनू दे।"

तब कुछ कहने की इच्छा को वहीं दबाकर हरनाम उठ खड़ा हुआ। नवनीत अकेला विचारों के साथ खेलता बैठा रहा। उसने कुर्सी पर शक्ति लगाई, स्प्रिंग के दबते ही कुर्सी और नीचे झुक गई। पैरों को अधिक फैलाते हुए उसने जोर का कश खींचा।)

आँखें सामने हिलते हुए नीम के पत्तों को गिन रही थीं, और हवा के झोंके से पत्ते परस्पर गुँथ कर उसकी गणना को सफल कर रहे थे! नवनीत ने अपने मन की रंगशाला में उतर कर देखा कि जिससे वह अब तक बचता आया है, वितृष्णा से जिसका उसने घोर उपहास किया है, पच्चीस वर्ष की अवधि के पश्चात् आखिर वह उसी की पकड़ में फंस गया। मानों प्रेम का एक षड्यन्त्र चल रहा है, और नवनीत ही को केन्द्र मान कर! जीवन के इन लम्बे पच्चीस वर्षों का हिसाब तो कठिन है, किन्तु कम-से-कम माया के प्रवेश के साथ ही उसके जीवन की शान्ति बिदा हो गई है!

माया आई, और आते ही उसने अपने स्नेह के अवरुद्ध उद्गम को एक साथ ही खोल दिया; नवनीत समझ ही न सका—प्रवाह छोड़कर उसे तट पर खड़े होजाना पड़ा, वरंच बहकर वह कहाँ जा पहुँचता, कौन कह सकता है? माया ने अपने हृदय के द्वार खोल कर क्या पाया यह तो अन्तर्यामी के सिवा कह ही कौन सकता है, किन्तु नवनीत को उसकी शीतलता अनुभव ही तब हुई जब कि परिस्थितियों के द्वारा वह बाढ़ ही उसे तप्त बालू में छोड़ कर आगे बढ़ गई! आज जब आरती ने अपने मुखर-स्नेह के साथ उसकी कक्षा में नवनीत की

अभ्यर्थना की, तो मानो नवनीत की एक अदम्य बुभुक्षा जाग्रत होगई ! पच्चीस वर्ष तक इस निस्संग शून्य जीवन ही को शाश्वत मान कर, जिस प्रेम को वह एकान्त निष्ठा से बच्चों का तुच्छ खिलौना समझता आया है, वही उसकी हृदयशाला में आज एकाकी अभिनेता के रूप में अवतीर्ण होकर एक अन्य ही अखण्ड-शश्वत का अभिनय करता मालूम दे रहा है !—और यह भूख अब मिटेगी कैसे ?

तभी अधरलाल ने प्रवेश किया। बोले—"हजरत, नमस्ते !"

नवनीत ने मुस्करा कर प्रति नमस्कार किया !

सुनूँ तो, इस स्वर्णिम संध्या में, बाहर की उन्मुक्त वायु का मोह छोड़ कर, इस आराम कुर्सी को तोड़ते रहना भी क्या कोई आनन्द है ?"

"अवश्य नहीं, बशर्ते कि कुर्सी के दाम अपनी अण्टी से चुके हों ! क्या बताएँ अधर बाबू, कुर्सी की भाँति यदि कहीं पैर भी सरकार की देन होते, तो इन्हें घिसने दिया जाकर भी उन्मुक्त वायु का मोह बनाए रखता ! परन्तु—"

"परन्तु क्या ?—सरकार के हाथ कम लम्बे हैं ? चरण छूकर सिर पर हाथ फेरते क्या देर लगेगी ?"

"ठीक ही कहते हो अधर बाबू !—सोने का आभूषण कहकर हमीं ने तो स्वेच्छा से अपने पैरों में बेड़ियाँ पहनी थीं—तब—"

"उठो, उठो; उसकी विवेचना करने का न तो यह स्थान ही उपयुक्त है, न समय ही !—उठो न, थोड़ा घूम ही लें ! कुछ पैर ही तो घिसेंगे !"

नवनीत उठ खड़ा हुआ ! पास ही खूँटी से उतार कर कोट को बदन पर डाल लिया, केस में सिगरेटें भर लीं, हरनाम को कह दिया कि वह अभी आता है, और दोनों बाहर चल दिए !

मानपुर कस्बा मजे का है। बस्ती के एक सिरे से पक्की सड़क गाँव के बीचों-बीच होती हुई दूसरे सिरे पर निकल जाती है, और एक

ओर शिवहरा स्टेशन से मिला देती है। स्टेशन जाने वाली सड़क से दक्षिण में कुछ ही हटकर एक काफी बड़ा तालाब है—काफी लम्बा चौड़ा और गहरा भी। दक्षिण-पश्चिम से बह कर आती हुई एक नदी के प्रवाह को रोककर यह तालाब बनाया गया है। पश्चिम में एक बंगला बना हुआ और साथ ही पक्का बँधा हुआ घाट। बस्ती के मनचले लोगों के लिए नावें भी हैं, जो किराए से सरलता से मिल जाती हैं। मल्लाह की फूँस की झोंपड़ी भी एक ओर देखी जा सकती है।

इन दिनों यहाँ के सौन्दर्य ने एक विशेष महत्व प्राप्त कर रखा है। अगस्त के दिन हैं। खूब पानी पड़ चुका है, इसलिए तालाब लबरेज भर गया है! नदी में बाढ़ आजाने की वजह से पानी बढ़ता ही जा रहा है!

तालाब लगभग चारों ओर छोटी-मोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ है। एक रास्ता दक्षिण-पश्चिम की ओर खुला हुआ है, जहाँ से नदी बह कर आती है। तालाब के दूसरे पूर्वी सिरे पर, जिधर से पहले नदी निकला करती थी, पक्का ऊँचा बाँध बाँध दिया गया है, नदी के कछार में अब खेती होती है, बाँध के ऊपर कृषकों के पचासेक झोंपड़े खड़े हुए हैं, जो इसी कछार में खेती करके जीते हैं! पूर्व में जरा दक्षिण की ओर, दो ऊँची पहाड़ियों के बीच में बाँध खड़ा करके, बहुत भर जाने की अवस्था में एक नाले के रूप में पानी के निकास की व्यवस्था की गई है! इसी स्थान पर आज एक नया सौन्दर्य पुञ्जीभूत होकर सहस्रावधि नेत्रों को अपना ऐश्वर्य लुटा रहा है!

नवनीत और अधरलाल ने भी, बिना सोचे हुए भी, इसी ओर पैर बढ़ाए!

अधरलाल ने बात का रुख पकड़ कर कहा—"हमें तो सरकार का कृतज्ञ ही होना चाहिए। सरकारी कर्मचारी हैं न! पहली तारीख को वेतन के रूप में क्या हमें उनकी कृपा की भीख नहीं मिल जाती?—इसी से तो हमारे माह भर तक जीवित रहने की उम्मीद की जाती है!"

"कृपा की भीख क्यों कहते हो ?—चाँदी के इन चन्द टुकड़ों के सामने क्या हमारे माह भर के अनवरत परिश्रम का कोई मूल्य नहीं !"

"पर वह भी हर कोई तो प्राप्त नहीं कर लेता ? बेकारों की ओर नजर उठाकर देखो न ! क्या वे महीने भर तक परिश्रम करना नहीं चाहते ? कौन उन्हें पहली तारीख पर पैसे गिन देता है नवनीत बाबू !"

"तभी तो, तभी तो, यह व्यवसाय है अधरलाल, कृपा की भीख नहीं ! कृपा होती तो आज बेकार ढूँढ़े न मिलते—न मैं ही १२०) पाता, और न तुम केवल ५४) रुपए !"

"सो कैसे होता नवनीत बाबू, तुम मुझसे पढ़े हुए कितने अधिक हो ?"

"इसीलिए तो मेरी कीमत बढ़ गई है !--व्यवसाय में कोई किसी के ऊपर एहसान नहीं करता। जाने दो अधरलाल, गहरे उतरने की जरूरत नहीं है, किन्तु यदि कहीं हमारी सरकार होती, तो वह जनता की प्रभु न होकर सेवक होती, तब हम इन बेकारों के दुर्भाग्य के लिए किसी भी समय उस सरकार का कान पकड़ सकते थे—पर जाने दो, आज तो इस सरकारी गुलामी ने हमारी जीभ तक को कील रक्खा है, पेट पर लगी हुई भूख की मुहर को देखते हो न ! तुम नहीं जानते, इन लोगों ने हमारी मनुष्यता तक को इतना पंगु बना दिया है कि हम मनुष्य की तरह सोच नहीं सकते, उसकी तरह जिन्दा नहीं रह सकते, बोलना दर किनार रहा, हम मनुष्य की तरह रो नहीं सकते अधरलाल ! यह मानसिक दासता कितनी भयानक है तुम क्या समझोगे भाई !"

—कहते कहते नवनीत ने सिगरेट केस निकाला, स्प्रिंग दबाकर सिगरेट निकाली और मुँह में लगाई, माचिस के लिए दूसरी जेब में हाथ डाला और वैसे ही बोला—"और तो और; बे कारण की हुई उनकी मार-पीट तक हमारे निकट अपमान की वस्तु नहीं होती, कुछ उसे सम्मान तक समझें—"

"कह क्या रहे हो ?"

"आश्चर्य होता है तुम्हें ?—होना ही चाहिए !—गुलाम देश में इसके सिवा होगा ही क्या ? पर मैं भुक्त-भोगी हूँ अधर बाबू !—जानते नहीं, जब मैं मानपुर आया था तो सिर पर और पैरों पर पट्टी का प्रसाद था ! वह ऐसा ही प्रसाद था—अरे—माचिस क्या हुई ? लाया ही नहीं क्या ?"

तब तक नवनीत ने पता लगा लिया कि उसके मुँह में प्रकाशित होने की दुराशा में व्यर्थ ही एक सिगरेट उलझा हुआ है, और चेष्टा करने पर भी उसकी सहचरी माचिस-सुन्दरी किसी भी जेब से बरामद नहीं हो पा रही है। तब उसने सिगरेट को वापिस उँगलियों में दबाया, और हंसकर बोला—

"माचिस नहीं लाया ! सारी यात्रा का, सारी बात चीत का मजा किरकिरा होगया !"

फिर उसने सिगरेट केस में बन्द कर दी, केस को जेब में इस तरह डाला मानो उसे जमीन पर फेंक दिया !

अधर लाल ने कहा—"चलो, आग का इन्तजाम तो हो जाएगा !—इधर जरा—इस झोंपड़े की ओर !"

"न, न—वैसी कोई खास बात नहीं है !—मैं कोई खास आदी नहीं हूं !"

"तुम कितने आदी हो, यह मैं जानता हूँ !—पर तब तक तुम अपने अपमान की कहानी ही सुना देना !"

"अच्छा चलो !"

दोनों ने आम रास्ता छोड़ कर एक ओर की राह ली ! नवनीत ने सिनेमा में घटी हुई अपने अपमान की समस्त कथा कह सुनाई ! तब तक दोनों ही आम के नीचे बने हुए फूँस के झोंपड़े की ओर पहुँच गए! यह झोंपड़ा एक मल्लाह का झोंपड़ा है !

आम की झुकी हुई शाखा को पकड़ कर अधरलाल ने आवाज लगाई "टीकू !"

खाँसते हुए भीतर ही से टीकू ने उत्तर दिया, "आज नाव नहीं लगेगी !"

"जरा बाहर तो आना !"

नवनीत ने कहा, "जाने भी दो -- मुझे सिगरेट की मुतलक तलब नहीं है !"

भीतर से उत्तर मिला---"किसी के बाप का मुझे देना नहीं है !--कह क्यों नहीं देते बाहर ही से जो कुछ कहना हो ?"

नवनीत ने कहा--"तुम भी क्या ओछी जात के मुँह लगते हो भाई ! चलो, हम चलें !"

अधरलाल ने कहा, "देख तो लो इसे भी ।"--फिर उधर मुँह करके कहा--"ससुराल के रिश्तेदार से भी नहीं मिलोगे क्या ?"

भीतर से उत्तर मिला, "ओह अधर बाबू हैं ! तब तो आना ही पड़ा !" और लंगड़ाते लंगड़ाते टीकू मल्लाह बाहर निकल आया ! हाथ में उसके चिलम थी । संध्या के धूमिल प्रकाश में वह छोटा-मोटा दैत्य ही मालूम देता था ! प्राची के अस्तमान मेघ-जैसी ही उसके शरीर की कृष्ण कांति इस प्रदोष काल में एकाकार हो रही थी, केवल चिलम में पड़ा हुआ तम्बाकू का दीप्त चूरा उसके मुँह को क्षण-क्षण में विभासित कर देता था । बड़ी बड़ी सघन काली मूँछें, छँटी हुई छोटी किन्तु सघन दाढ़ी, घुटी चाँद का नङ्गा सिर जिसकी कनपटियों पर लम्बे बालों की पट्टियाँ, गले में गुञ्जाओं की माला-- यही उसका ऊपरी सौन्दर्य था । कमर में घुटने से ऊँची जोड़े की धोती, जो उसके शरीर ही के रंग की हो गई थी, तथा दाहिने पैर में पड़ा चाँदी का कड़ा ! यही सब कुछ, सन्ध्या के धूमिल प्रकाश में आम्र-छाया के नीचे टीकू-मल्लाह के नाम से नवनीत के सम्मुख प्रगट हुआ !

टीकू को लँगड़ा देखकर अधरलाल ने पूछा, "पैर में क्या हुआ टीकू ?"

"होगा क्या ! बाबू लोगों का काँटा गड़ा है !"

"कैसे ?"

"यह नाला क्या लग गया, मेरी तो आफत हो गई। रास्ता चलते कोई देखने आया', तो साहबजादे को नाव की सवारी के बिना चैन ही नहीं है ! मानता हूँ कि पैसे देते हैं, पर दिन भर के दो चार घण्टे भी मेरे नहीं हो सकते क्या ?—नहीं तो इन पैरों को होगा ही क्या !—नाव खोलूँ ?"

"नहीं, नाव की जरूरत नहीं है, एक माचिस निकाल दो !" और टीकू उसी तरह लँगड़ाता हुआ भीतर चला गया !

नवनीत ने कहा—"माचिस मिलती कहाँ है ? पूरी को लेकर क्या करोगे ! मैं तो चिलम से ही सिगरेट जला लेता !"

—कि टीकू माचिस लेकर लौट आया ! लेकर अधरलाल ने पूछा—"और कोई खास बात तो नहीं है मि० टिंकर ?

हँसकर टीकू ने सिर हिलाया, और दोनों आगे बढ़ने के लिए चल पड़े ! नवनीत ने अपनी सिगरेट जला ली !

"तुम्हारा यह टीकू या टिंकर तो बड़े मजे का आदमी मालूम देता है !"

"फौरेन रिटर्न्ड है !" हँसकर अधरलाल ने उत्तर दिया।

"ऐंऽ ?"

"चौंकते क्यों हो ! सच नहीं कहूँगा क्या ?—बेचारा मुसीबतजदा है ! अंगरेजों के डर से मल्लाह बना हुआ है !"

"क्यों ?"

"वारण्ट का आसामी है ! अपराध यह है कि इसने देश के साथ प्रेम किया था ! है हिन्दुस्तानी ही, किन्तु अमेरिका में भारतीय लाला हरदयाल का नाम सुना होगा न, उसका साथी था ! १९१५ में भारत

लौटने वाले 'मेवरिक' जहाज का यात्री था ! सरकार की कोप दृष्टि से किस तरह बच पाया, वह लम्बी कथा है भाई, फिर कभी सुनाऊँगा। कहाँ-कहाँ भटकता रहा बेचारा। बटेविया-सुमात्रा-मातृ-भक्तों को अपने गुलाम देश से यही तो पुरस्कार मिलता है ! पर अपने तक ही रखना यह बात ! इस सत्ता के प्रति तुम्हारा रोष देखकर ही मैंने यह बात कही है ! जीवन-मरण का सवाल है बेचारे का !—लो देखो, हम कहाँ पहुंच गये !"

टीकू की कथा में खोए हुए नवनीत ने अनुभव किया कि अधर-लाल का स्वर कम से कम चार गुना हो गया था। यदि ऐसा न होता तो शायद नवनीत यह सब कुछ सुन भी न पाता और सामने देखकर उसने स्वीकार किया कि यही वह स्थान है, जहाँ किसी का भी मन हार कर बैठ जाता है !

सामने ही अशेष जल-राशि पहाड़ियों से घिरे अपने संकीर्ण मार्ग के बन्धन से खिसक पड़ने के लिए, विनाश के महाप्रलय की पुञ्जीभूत क्रान्ति को अपने वक्ष में छिपाकर द्रुत-गति से आगे बढ़ रही थी, और कुछ ही कदम तक लहरों की खींचातानी से अपने निबिड़-बन्धन को शिथिल कर लगभग २० फुट की ऊँचाई से मुक्त-बुभुक्षित एवं कुपित सिंहनी की भांति रोष-दीप्त गम्भीर गर्जन करती हुई चट्टानों के उठे हुए सिर को पदस्थ कर रही थी ! लगभग बीस फुट लम्बे और बारह फुट मोटे रुद्धमान जल-प्रवाह के बीस फुट की ऊँचाई से प्रलय-गति से मुक्त होकर गिरने में जिस हृदय-स्तम्भक भीषण 'भयानक' के दर्शन होते हैं, वही प्रकृति का हृदय-रंजक राशि-राशि सौन्दर्य बनकर किस प्रकार मुक्त-गति मे अपना ऐश्वर्य लुटा सकता है, यह नवनीत ने आज देखा। फेन-स्फीत जल-राशि के उस धवल करुण बिछलन में सौन्दर्य की जो अशेष-निधि मुक्त होकर दर्शक के नयनों के सम्मुख बिखर बिखर पड़ती थी. नवनीत मानो उसे बटोरने लगा। चट्टानों के मस्तक को पदस्थ करने वाले—या अभिषिक्त करने वाले—जल-बिन्दु, श्रम-बिन्दु

होकर दोनों ओर की पहाड़ियों की जिस अकल्पमान ऊँचाई को तथा मार्ग की जिस विस्तृत भूमि को सिक्त कर रहे थे, उसमें दर्शकों की पद भूमि भी सम्मिलित थी, और निरायास अज्ञातरूप से सभी दर्शक मुक्ता-बिन्दुओं में बिछे हुए उस सौन्दर्य से अपने स्थूल-शरीर को भी शीतल कर रहे थे। प्रपात के इस जल का एक क्षुद्र अंश नीचे पहाड़ी के पार्श्व में बनी हुई प्राचीर जैसी एक चट्टान-श्रेणी के शिरोभाग पर फैल जाता था, किन्तु गिरने की क्षिप्रता उस सम्पूर्ण खण्ड राशि को एक लहर का रूप देकर उसे एक कुचली हुई नागिन बना रही थी जो मानो उन चट्टानों को अपने तीव्र दर्शन से कृष्ण करती हुई लुट-पुटा कर भागी जा रही थी। पानी के गिरने का भयानक घोष सौन्दर्य की विजय-दुन्दुभि के रूप में समस्त वन-प्रान्त में उद्‌घोषित हो रहा था। कानों की इन्द्रियाँ एक प्राण होकर समस्त शक्ति के साथ उस घोष को मानो पी रही थीं, मनुष्य के क्षीण रव को सुनने का मानो उसे अवकाश न था!"

प्रदोष के उस रक्त-नील अंचल में सौन्दर्य की ऐसी अलभ्यमान छाया पाकर चंचल मन कहाँ जाए?—जलराशि को मुक्त करने वाली यह अपरिसीम शक्ति ही मानो अपनी समता के शक्तिशाली इस मन को दाँव के लिए चुनौती देती है, और कुछ क्षण तक तो अवश्य ही यह अशेष-क्षमताशाली मन अवश हो जाता है!

नवनीत अपने समस्त प्राण से इस सौन्दर्य को आत्मसात् कर रहा था, और दो अन्य आयत-दृगों की दृष्टि, प्रमत्त-सौन्दर्य के इस महोत्सव की भी उपेक्षा करके नवनीत के शरीर पर टकराती रही थी। पास ही, एक दूसरी चट्टान पर—नवनीत की पदभूमि से लगभग ४० फुट दूर—एक रमणी मूर्त्ति खड़ी हुई थी—अवश्य ही प्रकृति के इस महोत्सव को देखने के लिए—किन्तु महोत्सव को भी पदस्थ कर सकने वाली नवनीत की कल्पना ही उसे इतनी अधिक आकर्षक थी कि उसे यह भी अनुमान न हो सका कि नवनीत के पास कोई अन्य दूसरा व्यक्ति भी खड़ा हुआ है!

परन्तु अधरलाल की तीक्ष्ण दृष्टि के सम्मुख मानो कुछ भी रहस्य छिपा हुआ न था। प्रकृति के इस रुद्र-ताण्डव का संहार-सौन्दर्य उनकी आकुञ्चित दृष्टि में स्पष्ट ही अङ्कित था, और पार्थिव विश्व के इन प्राणियों का यह तन्मय दृष्टि-व्यापार भी वे जान चुके थे—यही नहीं, यह भी उनसे छिपा न था कि वह रमणी कौन है, और उस रमणी के पास खड़ा उसका भृत्य कौन है—तथा न दीखने वाली एक विक्टोरिया भी इनकी राह देख रही होगी, यह भी उन्हें मालूम था। मेरे पाठक भी यदि स्मृति से काम लें तो पहचान जाएँगे कि यह युवती उनको पूर्व परिचिता नर्त्तकी नीलम है, जिसके नयनों की नींद और हृदय की शान्ति चुराने का अपराध नवनीत कर चुका है !

अधरलाल की और भृत्य की आँखें चार हुईं। मालूम देता है, भृत्य अधरलाल को जानता है, उसने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया ! अधरलाल ने उसका उत्तर दिया और इशारा किया कि वह रमणी का ध्यान इधर आकर्षित करे !

नीलम का भी अधरलाल के साथ पर्याप्त परिचय मालूम दिया। क्योंकि इधर ध्यान जाते ही उसने न केवल नमस्कार ही किया, बल्कि उनसे मिलने के लिए भी वह अपने भृत्य के साथ वहाँ से रवाना हो गई ! रास्ता दूसरी ओर से चक्कर काटकर था !

अधरलाल ने नवनीत के मुग्धमन को आकर्षित करने के लिए उसके कन्धे पर हाथ रक्खा, और कान के पास मुँह ले जाकर कहा—

"चलोगे नहीं ? अंधेरा हो रहा है !"

"चल देने का बस इस जादू ने रखा ही कहाँ है भाई ? मन करता है, एक कुटिया यहीं खड़ी कर ली जाए, फिर भूख-प्यास की चिन्ता कौन करे ?" किन्तु अधरलाल ने पैर बढ़ाए और नवनीत भी पीछे हो लिया !

"मालूम पड़ता है, जैसे जन्म सफल होगया अधर भैया !"

"वह तो मनुष्य देह प्राप्त करके ही हो जाता है ! सामने देखो—यह जो युवती चली आ रही है, वह पार्थिव सौंदर्य के अतिरिक्त नृत्य और संगीत की भी प्रतिमूर्ति है ! बहुतेरे इसे देखकर भी समझते हैं कि उनका जन्म सफल होगया। यह मानपुर की प्रसिद्ध गायिका है !"

"गायिका ?"

"शरीर का शुभ्र हिम-श्वेत रंग देखकर मालूम देता है मानो पश्चिम की गौरांग जाति की कोई देवी हो ! मानपुर में एक ही तो गायिका है, किन्तु यदि मेरा सारा भारतवर्ष देखा हुआ होता तो कहता कि देश-भर में इसकी तुलना नहीं हो सकती !"

सामने से नीलम चली आ रही थी ! नवनीत को स्मृति आई, एक पूर्व रात्रि की, जब भीषण ज्वर से आक्रांत होकर वह मानपुर की गलियों का चक्कर काट रहा था, और इसी बीच उसे एक गायिका के यहाँ विश्राम लेना पड़ा था ! गायिका को उसने कभी देखा नहीं, रात-ही-रात में वह वहाँ से रवाना हो गया था, तो क्या यह अतुल-सौंदर्य-शालिनी गायिका वही गायिका है ?—कि नीलम ने उसी भुवन-मोहिनी हँसी के साथ नमस्कार किया ! नवनीत ने सामान्य तौर से नमस्कार का उत्तर देकर इधर-उधर प्रकृति की धूमिल पड़ती हुई सौंदर्य राशि में अपने को उलझाने का प्रयत्न किया !

नवनीत ने आँख चुराकर देखा—देखा कि गायिका सचमुच सुन्दर है—संध्या के अंधकार में मानो उसका मुँह प्रकाश की प्रदीप्त रेखा है—बहुत सुन्दर है, सच ही उसने ऐसा सौंदर्य नहीं देखा ! किन्तु वह है गायिका—वेश्या जिसने अपने जीवन में केवल व्यवसाय को सर्वोत्तम चुना है जो यदि प्रेम करती है तो व्यावसायिक दृष्टि से कला की आराधना करती है, किन्तु लाभ की दृष्टि से,—उसका नमस्कार, उसकी श्रद्धा, उसका विश्वास, सभी कुछ तो व्यावसायिक है !—अद्‌भुत सौंदर्य है, पर क्या उसका व्यवसाय किया जाए ?

नवनीत ने फिर उधर दृष्टि डाली ! कितना स्पृहणीय, और कितना भयानक ?—इन्द्रासन शायद रूप के इसी ऐश्वर्य से दोलायमान होता है ! पर जाने दे नवनीत ! सौंदर्य के इस जाल में जो भी फंसा है उसने अन्त में एक मूर्ख ही की उपाधि पाई है, और कीमत में उसे अपना सर्वस्व चुका देना पड़ा है । इस दृष्टि की पाश जिसे न लगे वह श्रद्धेय है, प्रणम्य है ! और नवनीत के वक्ष को दबाकर एक लम्बी साँस उसके ओठों के बाहर होगई !

अधरलाल ने नवनीत के कन्धे पर हाथ रख कर कहा, "ये हैं हमारे नए पोस्ट मास्टर साहिब, श्री नवनीतलाल व्यास एम०ए०—"

"रहने भी दो; आखिर इस एम० ए०-फेमे का मतलब क्या है—जी, मैं नवनीतलाल हूँ, और सरकार की गुलामी करता हूँ !"

"गुलामी तो सभी करते हैं नवनीत बाबू ! कुछ गुलाम गुलाम कहलाते हैं, कुछ कर्मचारी, और कुछ अधिकारी ! आप अधिकारी हैं !"

"हुआ, हुआ !––अधिकारी और कर्मचारी क्या ! गुलाम आखिर गुलाम है !" नीलम ने कहा,

उसी तरह मुसकराते हुए—स्वर की माधुरी से नवनीत चौंक उठा ; क्या मनुष्य-लोक में ऐसा स्वर भी संभव है ?

"इस गुलामी को जाने दीजिये !––आपके नाम ही में आपका परिचय मेरे लिए बड़े अभिमान की वस्तु है । इतनी बड़ी नौकरी को जो गुलामी समझता है, वह निश्चय ही अपने देश का रत्न है !" नीलम की वाणी में एक आन्तरिक उल्लास स्पष्ट प्रतीत होता था !

बहुत बढ़ गईं आप ! यदि आपका परिचय मैं भी कुछ जान लूँ, तो शायद कुछ और बताऊँ अपने बारे में ! अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना बुरा तो है, पर शायद हमारे अधर बाबू आपको अधिक न बताएँ !"

अधरलाल कुछ कहने को हुए, किन्तु तभी नीलम ने कहा—

"मुझे नीलम कहते हैं। नाचना और गाना मेरा व्यवसाय है, मानपुर के कस्बे में आप-जैसों की कृपा से जीविका जुट जाती है !"

नवनीत ने कहा—"व्यर्थ ही रहा नीलमदेवी, हमारा परिचय ! न मुझे गाने से प्रेम है, न नाचने से !"

"ठीक तो है, इनसे प्रेम करने से मिलता ही क्या है ?—पुरुषों के प्रेम करने की वस्तु तो—"

एक क्षण के लिए नीलम अंधेरे में भी अपनी बात का प्रभाव देखने के लिए रुक गई; किन्तु नवनीत ने सूखा-सा जवाब दिया—

"मुझे मालूम है, आप 'औरत' कहने जा रही हैं !—पर आप ही जानिए, आपके ऐसा कहने का और सोचने का कारण ही क्या है ?"

उसके उत्तर से दोनों ही चौंक उठे ! दोनों ने नवनीत की ओर दृष्टि डाली !

नीलम ने पूछा—"आप भी कुछ तो सोचते होंगे ?"

"यह स्त्री का मिथ्या अभिमान है नीलमदेवी ! वह सोचती है कि विश्व में सौंदर्य की अन्तिम मूर्ति वही है, कला का सम्पूर्ण विकास उसी पर जाकर समाप्त हो जाता है, और इसी मिथ्या मोह में मूढ़ होकर वह अपने सौंदर्य और कला का जाल भी तो फैलाती है !"

अधरलाल को काठ मार गया, क्या नवनीत का व्यंग्य स्वयं नीलम है !—परिचय के प्रारम्भ में क्या नवनीत दुर्विनीत हो गया !

नीलम ने संयत और किंचित् सतर होकर उत्तर दिया, "और वह जाल भी खाली नहीं लौटता ! अच्छी-अच्छी मछलियाँ प्रतिदिन ही मिल जाती हैं !"

अधरलाल तमाशा-सा देखने लगे !

"मैंने यह भी नहीं कहा कि मछलियाँ फँसती नहीं; पर मछलियों का व्यवसाय तो बड़ा महँगा पड़ता है उन्हें ! प्राणों का मूल्य...!"

"परन्तु मछलियाँ पकड़ में आती हैं, इसलिए तो जाल डाला जाता है—"

"बल्कि यों कहिए कि जाल डाला जाता है, तभी मछलियाँ पकड़ में आती हैं! पर जाने दीजिए; बड़ी अप्रिय बात है। मन में कहेंगी कि कैसा अशिष्ट व्यक्ति है, परिचय के प्रारम्भ ही में कटु और दुर्विनीत हो उठा। बल्कि—"

"कहिए न, रुक क्यों गए?

"कुछ नहीं। कहना यही चाहता था कि मैं तो एक बार मानपुर की एक वेश्या द्वारा उपकृत ही हुआ था—जीवनदान भी कह सकता हूँ उसे! इसलिए भी मुझे तो आप लोगों का कृतज्ञ होना चाहिए!"

वेश्या? मानपुर में कौन वेश्या है? नीलम समझ गई कि यह संकेत उसी के ऊपर है! क्या इसीलिए तो नवनीत के उत्तर में यह व्यंग नहीं है? और क्या कदाचित् इसीलिए तो नहीं नवनीत उस रात्रि को बिना उससे मिले चल दिया?

नीलम ने कहा—वेश्या? मानपुर में तो कोई वेश्या नहीं है!

"आप अभी ही तो स्वीकार कर चुकी हैं कि—"

"मैं एक गायिका हूँ—वेश्या नहीं, महाशय! मैं जानती हूँ कि हमारे देश में ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो नृत्य और संगीत को भी वेश्या का काम ही मान लेते हैं! किन्तु, आप तो शिक्षित हैं, आपतो इस भेद को समझते होंगे।"

"मुझे माफ कीजिएगा, यदि मैंने अपराध किया हो, या आपके दिल को चोट पहुँचाई हो! भारतवर्ष के वातावरण में मेरे लिए शायद यही सोचना सम्भव था, पर अपने अविचार के लिए मुझे खेद है!" किन्तु सचमुच नवनीत को खेद हुआ हो ऐसा मालूम नहीं हुआ।

"आपकी वह घटना क्या है—उस रात वाली! मैं भी सुनूँ, आपने जीवन-दान कैसे प्राप्त किया?"

"उससे आपका लाभ ही क्या होगा ?—हो सकता है, दया की भावना से नहीं, किसी स्वार्थ-भावना से ही उसने मुझे आश्रय दिया हो ! सोचा होगा, आधी रात के समय वेश्या की गली में मटरगश्ती करने वाला शराबी चरित्र से आवारा हो सकता है; पर जेब से नहीं !"

हँसते हुए नीलम बोली—"आपके लिए तो उसे ऐसा ही सोचना चाहिए था !—दूर की कल्पनाएं केवल कवि ही सोचा करते हैं—कवि तो नहीं हैं न आप ? या, वह भी हैं !"

"जी नहीं, मेरा वह सौभाग्य नहीं है !"

"तो फिर कहीं अपनी श्रीमती जी की फटकार खाकर तो आप तुलसीदास नहीं बन गए ?"

"मानपुर में कोई वेश्या नहीं, और सुनता हूँ गायिका भी एक ही है ! यदि यह सच है तो मेरी उस बीती हुई घटना की गवाह आपके सिवा कौन हो सकती है ?—तब तो आप शराबी ही नहीं, यह भी कह सकती हैं कि मैं चोर हूँ. हालांकि आपका अलवान मैं लौटा चुका हूँ !"

"क्या चुराई हुई वस्तु को लौटा देने से ही कोई दोष से मुक्त हो जाता है ?—और मास्टर साहब ! आपको मैंने शराबी तो कभी कहा नहीं, यह आपके नाराज होने की बात है। बल्कि याद कीजिए, आप ही ने अपने-आपके लिए आधी रात के समय वेश्या की गली में मटरगश्ती करनेवाले शराबी की कल्पना की है ! मुझ पर क्यों क्रोधित होते हैं ! आपको दस्यु-वृत्ति के लिए मैंने आपको पुलिस में तो नहीं दिया न !"

"कैसे देतीं ?—क्या उसी के साथ आपको पचीस रुपये के नोट नहीं मिल गए थे ?"

मालूम पड़ा नवनीत को खिजाने में नीलम को आनन्द मिल रहा है, वह हँसती हुई बोली—

"मिल गए थे, पर रात्रि-भर के विश्राम का यही मूल्य है क्या?"

लज्जा से नवनीत का चेहरा लाल हो आया, वह उत्तर नहीं दे सका! नीरव अधरलाल ने मानो मुक्ति दिलाई। बोले,

"विश्राम का मूल्य तो बहुत बड़ा होता है नीलम!--क्या इन्होंने तुमको अपना विश्वास नहीं दिया?"

"कहाँ? प्रातःकाल होने के पहले ही तो बिना मिले चोरी से ये रवाना हो गए! पूछ लीजिए न!"

"तभी तो तुम्हें इनका विश्वास प्राप्त हो सका है नीलम! नहीं तो तुम्हारे यहां से तो लोग धक्के खाकर भी निकलना पसन्द न करेंगे! इन्हें इनकी बातों से कहीं गलत न समझ लेना। इनके नाम के द्वारा हृदय की ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति है कि दूसरा उपमान खोजने की चेष्टा में तुम भटक जाओगी!"

नवनीत ने हँसकर कहा--"उपमान खोजने के लिए चाहे तुम भटकना पसन्द न करो, किन्तु मालूम देता है मुझे भूखा रखकर खिजाने के लिए इधर-उधर भटकना तुम जरूर पसन्द करते हो! साढ़े आठ बज रहे हैं आखिर सिगरेट पीकर भी किसी की भूख गई है क्या? और नीलम देवी! आप भी सावधान रहिए, इनकी बातों में न भटकिएगा, मेरे हृदय की अभिव्यक्ति का नमूना आपको मिल ही चुका है और कोई कारण नहीं कि आप उसे अन्यथा समझें!"

नवनीत ने एक और सिगरेट जलाकर कश खींचते हुए भूख मिटाने का उपक्रम किया।

नीलम ने कहा, "यदि एक मिनट आप ठहर जाएँ तो पीछे विक्टोरिया आ रही है!"

नवनीत ने कहा, "धन्यवाद! अलवान के प्रयोग ने चोर बनाया, विक्टोरिया का प्रयोग जाने क्या करे! 'बद होना अच्छा बदनाम होना बुरा'!"

"बदनामी से बहुत डरते हैं! बहुत अच्छा करते हैं। पर क्या उससे बच सकना भी सम्भव है!"

"क्यों नहीं? जिस राह को हम पहले ही नमस्कार कर दें, उसमें कौन हमें घसीट सकता है? आप जानती हैं, आपके दर्शन के समस्त कुतूहल को दबाकर भी मैं आपके यहां से चले आने में सफल हुआ था!"

"माफ कीजिएगा। मन में को वश में करने के लिए लगाम चाहिए, चाबुक नहीं! उससे तो वह भागता है अधिक वेग से, और एक दिशा से मोड़ देने पर क्या आश्चर्य है कि वह दूसरी गलत दिशा की ओर, जिसे आप जानते नहीं, अधिक वेग से भागने लग जाए? रहा सवाल आपका मेरे यहाँ से चले आने में सफल होना; किन्तु महाशय! भारत-वासियों में इतनी शर्म हो, तो वे अंग्रेजों से निगाह चुराकर अपने प्राप्य देश से दूर क्यों नहीं हो जाते--या फिर अन्तिम-निर्णय के लिए क्यों नहीं कटिबद्ध हो जाते?—अन्तिम निर्णय में विपत्ति है! है न? —पर माफ कीजिएगा, आप तो सरकारी अफसर हैं! गुलामी का पट्टा आपके गले में नहीं, हम लोगों के गले में है—जिन्हें मजाक में आप लोग कहते हैं, 'स्वतन्त्र नागरिक'! खूब है आपकी बदनामी से बचने की चेष्टा और सफलता!"

नवनीत को अनुभव हुआ कि वह व्यर्थ ही नीलम के साथ बातों में इतना आगे बढ़ गया! माना कि वह वेश्या नहीं है, किन्तु सौंदर्य का दम्भ लिये हुए नर्तकी तो है! माना कि उसके रूप का व्यवसाय उपभोग में नहीं, किन्तु प्रदर्शन में तो होता है!—वह एक शिक्षित और सच्चरित्र युवक है, अपनी भावनाओं की रक्षा स्वयं कर सकता है, देश की पराधीनता की जो आग उसके हृदय में जल रही है, उसकी आलोचना ऐश्वर्य की छाया में पली हुई एक क्षुद्र नारी करे? उसने कहा—

"देखिए, आलोचना करने के पहले उस व्यक्ति को पूरी तरह समझ लेना होता है। मेरा और आपका परिचय दो ही क्षणों तक का

तो है ?–अच्छा हो कि वह यहीं तक रहे ! मैं एक क्षुद्र व्यक्ति हूँ, आपके महाम् जीवन के कार्य-क्रम में मुझसे कोई तूल अरज नहीं होगा, मैं विश्वास दिलाता हूँ !"

नीलम को दुःख हुआ—"क्या आप मुझसे घृणा करते हैं ?"

"नहीं, नहीं ; कैसी बात कह रही हैं आप ! कोई आपसे घृणा कर सकता है ? किन्तु माफ कीजिए–मैं नहीं जानता कि किस तरह आपकी बात इन्कार की जा सकती है !–अधिक अच्छा मेरा उत्तर है कि मैं सरकारी नौकर हूँ, कला को नहीं समझता–बदले में आप ही मुझसे घृणा कीजिए !"

अधरलाल को बीच में आना पड़ा–"यह क्या आप लोगों ने घृणा वृणा की बातचीत चलाई है ?–नवनीत बाबू, मालूम पड़ता है भूख ने तुम्हारी जिन्दादिली को खत्म कर दिया है ! लो सड़क पर वह विक्टोरिया खड़ी है–मालूम होता है, वह सड़क की राह ही आ गई ! नीलम मैं फिर भी कहूँगा कि नवनीत बाबू के हृदय का सौंदर्य अभी तुम नहीं देख पाईं ! इन्हें इसलिए गलत न समझ लेना !"

नवनीत मुस्कराकर बोला—"आपके शरीर का सौंदर्य नीलम रानी किसी दूसरे की अपेक्षा ही नहीं रखता ! ठीक है न !"

नीलम अपने आप में खोगई उसने कोई उत्तर नहीं दिया। नवनीत ने दूसरी सिगरेट जलाई और कोचवान के पास वैठने की चेष्टा करने लगा।

अधरलाल ने कहा—"अरे भाई, ऊपर क्यों ?—इधर जगह है न !"

"ऊपर जरा हवा अच्छी आएगी !" जरा व्यंग्य के साथ नवनीत ने उत्तर दिया।

नीलम समझ गई, अधरलाल के पहले ही बोली–"नारी के स्पर्श से हवा भी दूषित हो जाती है क्या ?"

अब नवनीत की बारी थी, मुसकराकर बोला—"नाराज हो गईं

आप ?–आप तो जानती होंगी, बता दीजिए न, महिलाओं को किस तरह खुश किया जा सकता है ?–जरा अपनी अतीत की भूलों का ही परिमार्जन कर लूँगा !--नीचे ही बैठूँ फिर !"

अधरलाल ने कहा--"मुक्त वायु अच्छी तो होती है, पर उसकी भी धूल मनुष्य को अस्वस्थ बना देती है ! बैठो !"

सामने नीलम बैठी, और दूसरी सीट पर अधरलाल और नवनीत, धीरे-धीरे विक्टोरिया चलने लगी !

नवनीत ने देखा कि सिगरेट के धुएँ ने फैलकर विक्टोरिया को ढँक लिया है, तो सिगरेट फेंकता हुआ बोला–

"माँफ कीजिएगा, मुझे ध्यान ही न था कि सिगरेट का धुआँ सब को रुचिकर नहीं होता !"

"तो क्या हुआ ? मेरी रुचि से तो आपने पहले ही असहयोग प्रकट कर दिया है !" नीलम ने कहा !

"सबकी रुचि का ध्यान तो शायद रखा भी नहीं जा सकता ! एक बूढ़े बाप, उसके बेटे, और बैल की कथा तो आपको मालूम ही होगी ! पर हाँ, सभ्यता का ख्याल रखना ही चाहिए !"

"आप तो अजीब बातें करते हैं—कभी रुचि का ख्याल रखते हैं, तब सभ्यता का शायद नहीं, और कभी सभ्यता का ख्याल रखते हैं, तब रुचि का नहीं !"

"कहता मैं क्या क्या नहीं हूँ नीलम देवी ! पर जो मेरी बातों को सच मान लेते हैं, वे भी मेरे ही जैसे बुद्धू हैं ! कालेज के दिनों की बात कहूँ ? शुरू से ही तो मैं ऐसा ही हूँ !—कालेज में, आप जानती होंगी, लड़कों और लड़कियों में रस्साकशी होती है ! लाहौर तो इसके लिए खास तौर से मशहूर है ! बड़े बदनसीब हैं बेचारे लड़के वहां, बड़ी बेतकल्लुफी के साथ अपनी स्वतंत्रता को खो बैठते हैं, और इस-लिए मौका आने पर हर किसी के सामने उन्हें गर्दन झुका लेनी पड़ती है ! बात यह है कि वहाँ पर लगभग प्रत्येक छात्र 'एङ्गेज्ड' है !

'एङ्गेज्ड' से समझती हैं न ? यानी व्यस्त किसी छात्रा द्वारा ! उस विश्रब्ध-वसना में मैं ही एक ठूँठ था, अतः छुई-मुई की तरह सिकुड़ जाने वाले किसी भी विद्यार्थी की ढाल बनने में मुझे कोई बाधा नहीं रहती थी; और तभी ऐसे प्रसंगों पर कहने के लिए कुछ रह पाता हो, ऐसा याद नहीं पड़ता ! समझ लीजिए, यह भी एक ऐसा ही मौका है ! क्या दिन थे वे भी !" और नवनीत के मुँह से एक लम्बी साँस भी निकल गई !

नीलम ने चुटकी ली, "तो क्या अब आप एंगेज्ड हो गए हैं ?"

नवनीत हंस दिया; बोला—"एङ्गेजमेण्ट की बात आपने खूब याद रक्खी—पर क्या बताऊं ?—भूल ही जाता हूँ ! क्या बताऊं नीलम देवी ! यही देखिए, मैंने खुद भी बहुत चाहा कि अगर कहीं न कहीं एंगेजमेण्ट होजाए, तो इस दमघोटू आजादी से जरा पीछा तो छूटे। कोई कहता है आवारा, कोई कहता है गुण्डा, कोई क्या, कोई क्या— परन्तु इस जले भाग्य में वह सुयश क्यों नहीं है, इसे विधाता ही जानते हैं ! मालूम पड़ता है सूरत से लंगूर समझ कर या बुद्धि में बैल मानकर मनुष्य को एंगेज करने वाली कोई रमणी-रत्न, मुझे तिरछी निगाहों से देखना दूर रहा, फूटी निगाहों भी देखना नहीं चाहती ! मैंने भी इसीलिए सोचा कि फूटी आँखें तो नहीं—क्योंकि फूटी आँखें तो मेरे हैं नहीं—पर सीधे मुँह में भी किसी ऐसी देवी से बात नहीं करूंगा ! पर आप नाराज न हूजिएगा, मेरी तो यह वृत्ति थोड़ी खट्टे अंगूर की है ! अच्छा, देखिए मेरा मकान तो आ गया ! आपकी विक्टोरिया के लिए अनेक-अनेक धन्यवाद ! और अधरलाल ! तुम तो आज दार्शनिक ही बने रहे ! कल इसकी पूर्त्ति करनी पड़ेगी !"

फिर 'नमस्ते' कहकर उसने अपने किवाड़ों को धक्का दिया, और ऊपर हो लिया। प्रति-नमस्कार सुनने का मानो उसे अवकाश न था।

अधरलाल ने विक्टोरिया के क्षीण प्रकाश में मोहाविष्ट नीलम की ओर दृष्टि डाली, देखा कि उसकी धूमिल-श्री पर वाष्प का एक बादल

पुञ्जीभूत होकर आँखों के आकाश में भर गया है। विक्टोरिया धीरे-धीरे डग भरती हुई आगे बढ़ गई।

(६)

दूसरे ही दिन जब सन्ध्या के पाँच बज रहे थे,—अधरलाल चिट्ठियाँ लेकर कस्बे में बाँटने के लिए चले गए थे, और नवनीत हरनाम से दफ्तर बंद करने के लिए कह रहा था कि सामने ही रात वाली विक्टोरिया आ खड़ी हुई। नवनीत चौंका, और उससे भी अधिक आश्चर्य उसे तब हुआ, जब नीलम ने स्वयं उतरकर उसे नमस्कार किया! नवनीत ने नमस्कार का उत्तर दिया, और मन का भाव दबाकर हंसते-हंसते सहज भाव से बोला—

"आइए, पर आफिस तो बन्द हो रहा है!"

"होने दीजिए न! बल्कि पाँच बज गए हैं, यदि देर हो तो जल्दी ही बन्द कर लीजिए!"

हरनाम ने भी चौंककर देखा—देखा कि नीलम खड़ी है, जिसका वह पहले भी दर्शन कर चुका है, और पछता भी चुका है। तो क्या यह महामाया अपनी उस पुलिस वाली कथा को सत्य करने के लिए आई है?

नवनीत भी नीलम का अर्थ नहीं समझ सका! उसने पूछा—
"यानी?"

"घूमने चलिएगा न! विक्टोरिया खड़ी है!"

"ओह, पर क्षमा कीजिए, यह तो मेरे घूमने का समय नहीं है! मैं तो साढ़े छः-सात तक जाया करता हूँ!"

"सचमुच घूमने का समय तो वही है! अभी तो गरमी भी बहुत है! तो फिर सात ही की तै रही! रहने का स्थान तो ऊपर की मंजिल में ही है न? तो फिर तब तक ऊपर ही बैठा जाए! चलें!"

नीलम ने जवाब की राह न देखी, बाहर जाकर कोचवान से कहा—"तुम जाओ—सात बजे विक्टोरिया यहाँ ले आना समझे!"

कोचवान आज्ञा पाते ही आगे बढ़ गया। नीलम ने किसी बात की प्रतीक्षा न की, बगल के दरवाजे से ऊपर चढ़ने लगी; पीछे-पीछे विस्मय-विमूढ़, नवनीत, और उसके भी पीछे अमर्ष से भरा हुआ हरनाम! तीनों ऊपर आ खड़े हुए!

नीलम ने कहा—"दईमारे मानपुर में एक ही विक्टोरिया है, और सभी जानते हैं कि वह एक नर्त्तकी की है! अगर आपके दरवाजे पर कोई देखता तो—"

"लोगों की आलोचना से मैं डरता नहीं, पर अच्छा होता कि—"

"मैं भी उसमें सवार होकर चली जाती! पर क्या करूं, जा नहीं सकी! अच्छा, क्या बिठाइएगा भी नहीं?"—उसने हरनाम की ओर देखा!

"मकान आप ही का है, तशरीफ रखिए! पर मुझे आपको अवकाश देना होगा; साढ़े पाँच बजे डाक्टर मिश्रा से मिलना तै हुआ था, इसलिए मैं ठहर नहीं सकूंगा! आप बुरा तो न मानेंगी न?–बल्कि मैं तो आपको तभी कहने वाला था, परन्तु आपने तो शीघ्र ही विक्टोरिया लौटा दी!"

नीलम कुछ अप्रतिभ हुई, परन्तु बोली–"खाना भी वहीं है क्या? –रात को शायद लौटना भी न हो सके! जलसा तो नहीं है कोई वहाँ?"

"आप तो मजाक करती हैं! यही तीसेक मिनट लगेंगे! सात बजे घूमने चल सकेंगे!"

"तो कोई चिन्ता नहीं, तीसेक मिनिट मैं राह देख लूंगी!"

"शायद कुछ ज्यादा समय भी लग जाए! पर हरनाम, मेम साहब को चाय देना और इन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो! तो चलूं मैं! माफ कीजिएगा, हमारे यहाँ आधुनिक फैशन की महिलाओं को 'मेम साहब' कह कर पुकारने ही का रिवाज है। अच्छा नमस्ते!"

नवनीत के पास इस आफत से छुटकारा पाने का और कोई उपाय

न था। जेब टटोली; सिगरेट केस और माचिस थे ही। उसी वेश में वह नमस्ते करके बाहर हो लिया!

(नीलम ने भीतर जाकर एक कुर्सी दखल कर ली, और कहा—"तो तुम्हारा नाम हरनाम है!—इनके साथ कब से रह रहे हो?" अरसे से—और उसके बाद दोनों में बातें होने लगीं!)

नवनीत बाहर हुआ, और एक ओर चल दिया! किधर जाए, इसकी मीमांसा करने की आवश्यकता न पड़ी, वह कल के सौंदर्य का महोत्सव देखने के लिए उसी राह मुड़ गया!

नीलम चाहती क्या है नवनीत से?—वह वेश्या नहीं, तब भी वह नर्त्तकी है, गायिका है—क्यों उसने नवनीत के सीधे पथ पर पैर रक्खा? उसके सौन्दर्य की बाढ़ में बहुत वेग है, इसीलिए तो वह तट पर ही रहना चाहता है! उसे देखते रहने की चाह होती है, पर उसे अभी न दबाया गया तो उसके जाल में फंसना ही पड़ेगा! फंसाना तो चाहती है, और खूब निकाला है फंसाने का तरीका भी!

('जानती है है कि मैं अकेला हूँ, और मैं १२० रु० महीना पाता हूँ! शायद मानपुर कस्बे में इतनी बड़ी रकम को सहेज रखने में कहीं मेरी योग्यता धोखा न खा जाए, इसलिए दया करने आई है! खूब! नवनीत के चेहरे पर एक विकृत-हास खिल उठा, उसका अज्ञात मन बोल उठा—'पार्टनर। उड़े कश इसी बात पर!' और उसने सिगरेट जला ली!

सूरज नीचे झुक चुका था, किन्तु धूप तेज थी! छोटा-सा कस्बा ठहरा, रास्ता अमूमन अधिक आबाद नहीं मिलता। किन्तु तालाब की राह जो सड़क से जरा एक ओर होकर गई है, इन दिनों काफी आबाद है!

नवनीत को जल्दी तो पहुँचना था नहीं; और समय बिताना था, तो उसने बारह महीने का सड़क का रास्ता अपने लिए चुना! कुछ ही दूर चलने पर सामने से एक लारी आई, और धूल का गुब्बार चारों

ओर छोड़कर आगे बढ़ गई। नवनीत की आँखों में भी जब थोड़ा धूल का प्रसाद पहुँचा, तो उसने उचित समझा कि एक वृक्ष के नीचे थोड़ा सुस्ता लिया जाए !

वृक्ष आम का था, काफी बड़ा—नीचे कई आदमियों के बैठकर सुस्ता लेने की गुञ्जायश थी। समय छः बजे के करीब का था, धूप तब भी तेज थी ! एक समाज, जिसमें कुछ महिलाएँ थीं, कुछ पुरुष थे—नीचे बैठा हुआ सुस्ता रहा था। छाया के एक सिरे पर दो चरवाहे भाई-बहन खड़े हुए इन अर्द्ध नागर समाज की लीला का दर्शन कर रहे थे। कुछ भैंसे, जो शायद इन्हीं की थीं, दूर खड़ी चर रही थीं ! तेरह-चौदह वर्ष का लड़का, और लगभग सोलह की लड़की। श्याम रङ्ग जिस पर स्वास्थ्य का सिन्दूर चढ़ा हुआ, और कजरारी कोड़े जैसी आँखों में उत्सुकता सफेद होकर पुतलियों को घेरे हुए थी। शायद इसी साल शादी हुई थी। लाख की चार पाँच चूड़ियाँ कलाई में, और कुछ इतनी ही बहुमूल में। एक छोटी-सी लड़की भी साथ में थी। मुक्त-स्वच्छन्द-संकोच से हीन, जिनसे एक नगर की लड़की इस अवस्था में सर्वथा वंचित होकर अपने चिर शृंखलाबद्ध जीवन का अभिशाप सहना आरंभ कर देती है। !)

सूरज ढल रहा था, प्रकाश का अवशेष वैभव आकाश के सीमन्त में सिन्दूर भरकर पश्चिम के मेघ में छिप गया ! भादों की मतवाली संध्या पानीदार बादलों से छेड़खानी करती हुई इठला रही थी ! नवनीत ने आम की छाया छोड़ी और आगे का रास्ता पकड़ा !

कितना स्पृहणीय है वह जीवन जिसे हम गाँव कहते हैं ! स्वच्छन्द-निर्बाध मुक्त गति में कहीं शंका नहीं, जहाँ छलन की छाया तक नहीं फटक सकती वहाँ शंका करे ही क्या ?—और शहर की लड़की ? उसे कदम-कदम पर खतरा है, गति में शृंखलाएँ अटकी हुई हैं, जिसकी चितवन तक में आशंका का भूत बना रहता है ! और छली मनुष्य, तू शिक्षा और सभ्यता ही की तो दुहाई देगा !—ठिकाना है कुछ इस

दम्भ का ? जीवन की सहज गति में जिससे काँटे बिखरें, वह भी कोई शिक्षा है, सभ्यता है !

इस लड़की के समान ही एक अन्य स्वच्छन्द रमणी उसके ध्यान में आई ! उसकी स्वच्छन्दता में भी किसी तरह का सन्देह नहीं किया जा सकता। उसकी गति भी, मानो प्रलय की गति के समान ही अनुष्ठित है। वह स्वेच्छा से केवल गहन-गिरिवन-प्रान्तर ही अतिक्रमण नहीं कर लेती, वरन्च मनुष्य की उन्मादिनी-वासना आदि की दुर्गम-पथ भूमि भी उसके लिए सहज-गम्य है ! वह है नीलम, जो आज उसके घर डटी हुई है, और जिससे मुक्ति पाने के लिए ही वह इधर-उधर कदम बाजी कर रहा है !

संध्या की इस धूमिल श्री में नवनीत के हृदय का अन्तरतम तभी एक और नारी की धुँधली मूर्ति से आच्छान्न हो उठा, जिसने अपने विवाह के समस्त बंधनों को एक क्षण में निर्ममता से तोड़कर अपनी स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया था—विवाह के समस्त बंधन, जो आर्य-नारी के जीवन की एक घटना-मात्र नहीं होते, या राह चलते का कोई शौक नहीं होता ! विवाह प्रारम्भ में तो अवश्य ही एक शौक के समान ही मूर्त्त होता है, किन्तु होलिका की विराट् आश्चर्यंकर क्रीड़ा में से निकली हुई एक हीन चिनगारी किसी घास के स्तूप को जिस तरह उदरस्थ कर लेती है, उसी तरह विवाह का यह सहज साधारण बंधन भी आर्य नारी की जीवन-जागृति के लिए चिर सुषुप्ति है ! इस अच्छेद्य-बंधन की अवहेलना अवश्य ही साधारण स्वच्छन्दता नहीं कही जा सकती !

अपनी विचार-धारा में बहता हुआ नवनीत अज्ञात रूप से वहीं चला आया, जहाँ आज भी कल के समान ही एक विराट् जन-समुदाय, नाले के रूप में बहते हुए तालाब के उस सौंदर्य को देख रहा था। नवनीत के साथ कोई साथी न था, इस भीड़ में किसी के परिचय की

भी शंका न थी, और मन की दारुण स्थिति भी थी ही ! वह एक ओर एक दुरारोह पहाड़ी का सहारा लेकर एकान्त स्थान में जा बैठा !

सामने उसी गति से पानी का प्रवाह बन्धन-हीन हो रहा था ! मनुष्यों की भीड़ कल से घनी थी। किन्तु नवनीत को मानो इस सब से कोई तात्पर्य न था। स्वयं प्रकृति मानो पूर्ण संज्ञा विभोर होकर इस एकाकी दर्शक का निहोरा कर रही थी। यौवन के इस उभार में जो व्यक्ति जीवन के कल-कल से विराम लेना चाहता है, उसके हृदय का भार यों ही अकल्पित नहीं छोड़ा जा सकता ! प्रकृति उसका भार सम्भालती ही है !

नवनीत की विचार-धारा फिर बह चली ! सचमुच ही माया ने इस प्रकार की मुक्ति प्राप्त करने के लिए जिस सजीव साहस का परिचय दिया है उसकी समता मिलना कठिन है !—तलाक के किस्सों को वह जानता है, किन्तु उनमें रिक्त-स्थान की पूर्ति (Fill up the blanks) का जो सम्मोहन जाल है, वह उस स्वतंत्रता का मूल्य ही क्या रखता है ! और माया की स्वतंत्रता, वह उसके बंधन खोलने के लिए नहीं, मानो नवनीत के बन्धन खोलने के लिए ही हुई है। बेचारी माया !

चार वर्ष का दीर्घ समय उसने नवनीत के सहवास में बिताया ! पत्नी बनकर ही उसने गलती की ! क्योंकि साधारणतया मनुष्य मात्र के प्रति नवनीत दयालु था। सम्बन्ध की यह निकटता न होती तो शायद माया को इस उपेक्षा का पाप न सहन करना पड़ता ! आरती ने उसकी श्रद्धा प्रतिपादित कर ही ली है; यह नीलम थी कितना अधिक आकर्षण लिये उसके सामने खड़ी है !—यदि गायिका न होती, तो क्या उसके हृदय का आदर न पाती !—क्या उसकी बुद्धिमत्ता और सौंदर्य के प्रभूत ऐश्वर्य ने नवनीत को प्रभावित नहीं किया !—तब क्या कारण है कि केवल माया ही उसको अभिभूत नहीं कर पाती! उसकी सेवा, उसकी बुद्धिमत्ता और उसका सौंदर्य किससे कम है !—

उसने तो इन सबसे ऊपर आत्म-समर्पण भी किया था ? यही क्या उसका मूल्य है ?

किसी की कीमत नापने का पैमाना स्थिर करना सरल नहीं है। माँग और पूर्त्ति का संतुलन बाजार में चाहे जितना महत्त्व रखता हो, पर हृदय की हाट में तो किसी के अभाव-जन्य दुःख का परिमाण ही उसकी कीमत का पैमाना होता है !—माँग और पूर्त्ति के तत्व तो सचमुच उसके मूल्य को घटा देते हैं। मतलब यह है कि पाकर हम किसी वस्तु को नहीं समझते। हम समझते हैं उसे खोकर, या दूर हटकर !

नारी का सौन्दर्य भी पास से देखा नहीं जा सकता, उसे हृदय से देखा जाता है, और फिर बुद्धि से पहचाना जाता है ! आँखें तो सदैव ही उस सौंदर्य से चौंधिया जाती हैं, उस सौंदर्य को समझने के लिए भी आवश्यक है कि आँखें बन्द कर ली जाएँ। इसीलिए माया के आकर्षण का रहस्य चार वर्ष तक जब तक कि वह उसके साथ रही, नवनीत से छिपा रहा !

सूर्य कभी के अस्त हो चुके थे। भीड़ की सघनता, संध्या की सघनता के विलोम-अनुपात में ही विरल हो रही थी। धुँधलापन सम्पूर्ण दृश्य जगत् पर फैल रहा था। केवल उस नाले का भीम गर्जन, स्तब्धता की पृष्ठ भूमि में उत्तरोत्तर मुखर होता जा रहा था। !

नवनीत जिस स्थान पर बैठा हुआ था, वह अपेक्षाकृत अधिक दुर्गम और एकान्त था ! झाड़ियों की सघनता से तथा स्थिति की एकान्तता से वहाँ अंधेरा कुछ घनीभूत हो गया था। ठीक नीचे, नवनीत से २० हाथ दूर, नाले के किनारे एक चट्टान पर बैठा हुआ हमारा पूर्व परिचित धीवर टोकू मछलियाँ पकड़ रहा था। जब उसने देखा कि अँधेरा काफी होगया है, तो उसने अपना जाल समेटा, जो कुछ इस प्रयत्न में हाथ लगा था, उसे भर कर, उसने टोकरी को उठाने का प्रयत्न किया ! मछलियों के अलावा भी उसमें कई वस्तुएँ थीं, एकाएक ही वह उससे नहीं उठ सकी !

टीकू जानता था कि जिस जगह वह खड़ा हुआ है, वहाँ पर उसे मदद नहीं मिल सकती ! किन्तु फिर भी मनुष्य की परमुखापेक्षिणी सहज भावना से उसने इधर-उधर दृष्टि डाली, और शीघ्र ही, अपने से जरा ही दूरी पर बैठे हुए नवनीत के दीर्घकाय शरीर को लक्ष्य कर लिया ! खुश होकर उसने जोर से आवाज लगाई—जोर से आवाज लगाए बिना, नाले के उस भयानक गर्जन में विस्तार भी न था !

"ऐ ऽ ! ऐ बाबू साहब !"

नवनीत की समाधि भंग हुई, उसने कहा—"क्या है ?"

नवनीत के जवाब देने का ढंग अफसराना था । टीकू न होता, तो वह आदमी नवनीत को फिर उत्तर देने का साहस न करता !

वह बोला—"तकलीफ तो जरूर होगी, पर यह बोझ उठवा दोगे तो छोटे न हो जाओगे !"

"छोटे न होजाओगे" में नवनीत के प्रति जो व्यंग था, उसे वह समझ गया । मुसकरा कर बोला—

"जरूर न होगा दोस्त ! पर बहुत ज्यादा लोभ करके तुम्हीं कौन बहुत मोटे हो जाओगे !—कुछ न हो तो मेरे इस अँधेरे में बैठे मिल जाने का मेहनताना ही सही, जरा बोझ कम कर देने से घर तक भी आराम से पहुँचोगे, और कुछ-मछलियाँ तुम्हें दुआ भी देंगी !" और वह नीचे उतरने लगा !

"मैंने मेहनत की है, पानी में क्यों डालूँ !—पर हाँ ,चाहो तो मेहनताने में दो-चार तुम ले लेना !"

"शाबाश, मालूम देता है, ब्राह्मण को मछली खिलाकर ब्रह्म राक्षस बनाना चाहते हो; पर तब तो तुम यहाँ मछली पकड़ चुके !"

"जब ब्रह्म राक्षस को पकड़ लूँगा, तो मछलियों की जरूरत ही क्या रह जायगी ?"

और तभी नवनीत सचमुच ब्रह्म राक्षस की तरह नीचे उतरा !—ब्रह्म राक्षस की तरह इसलिए कि जमीन गीली थी, अँधेरे में उसका

पैर फिसला और कुछ सम्हल पाए, इसके पहले गोल होकर वह लुढ़क चला ! ढलाव बहुत अधिक था, उसके साथ कुछ पत्थर भी खिसके। इतनी जल्दी नवनीत के वचन सत्य हो गए !

टीकू ने एक ही क्षण में परिस्थिति समझ ली, और पलक मारते वह नवनीत के पतन की दिशा में पर्वत की तरह अचल होगया. तीसरे ही क्षण नवनीत उसके पैरों में अटका हुआ दीख पड़ा। यदि एक क्षण का भी विलम्ब होगया होता तो नवनीत प्रथम तो नाले की तीक्ष्ण धारा में, फिर भयानक चट्टानों के तीक्ष्ण-दंतों में उलझते हुए एक अकल्प्य ऊँचाई से गिरकर मौत के दामों अखबारों में प्रसिद्ध हो जाता ! मानपुर की महिलाएँ तो कम-से-कम अपनी दुपहरी के लिए कुछ दिनों विषय न खोजतीं !

गिरते-गिरते नवनीत भी अपनी परिस्थिति से वाकिफ हो चुका था, अवरोध के अभाव में उसकी क्या गति होती, इसका आभास पाकर ही उसके हाथों के तोते उड़ चुके थे, और जिस समय वह टीकू के चट्टान के समान स्थिर पदों पर रुक गया, उस समय उसके होश का खासा भाग फाख्ता हो चुका था।

धुँधले में भी टीकू के मुँह पर मुस्कराहट छा गई ! बाबू साहिब, वाकई बाबू साहिब हैं, कोट; पेंट, चेहरा-मोहरा सभी कुछ बाबू साहबी है, अतः किसी भी कीमत पर उस पर धूल कीचड़ का आवरण टीकू-जैसे व्यक्ति के लिए नयनोत्सव हुए बिना नहीं रह सकता ! एक और बात थी, नवनीत ने ज़िस साहबाना ढंग से बातचीत प्रारम्भ की थी, उसका अवसान इस दुर्दशा में हो, इससे बढ़कर आनन्द और हो ही क्या सकता है ?

किन्तु नीचे पड़ा हुआ दुर्दशाग्रस्त नवनीत भी अपने-आपको हँसने से नहीं रोक सका—बोला, "दोस्त, अब तो तुम्हारा बोझ बढ़ गया है; यह टोकरी ही नहीं, मुझे भी कन्धा देना है !"

"वह तुम्हारा बेटा कोई दूसरा होगा !—बल्कि इस गंगा के कन्धे

चढ़ जाते तो ब्रह्म राक्षसी से तो छुटकारा मिलता !" उसने भी हँसते हुए उत्तर दिया।

नवनीत ने पड़े-पड़े ही टीकू को पहचान लिया; पर इस बारे में वह बोला कुछ नहीं। उसने उठने की चेष्टा की, हाथ बढ़ाकर टीकू ने पूछा—

"चोट बुरी तो नहीं लगी ?"

नवनीत ने हँस दिया, "नहीं, बुरी नहीं; अच्छी चोट लगी है ! हँ ?" फिर टीकू का हाथ पकड़ा और बैठने की चेष्टा की ! टखने में चोट आगई थी, दो चार जगह छोटी—बड़ी खरोंच भी। कोशिश कर-करा कर नवनीतलाल बैठ सकने में सफल होगया !

"मुझसे तो चला नहीं जायगा !" नवनीतलाल ने कहा !

"लेटा तो जा सकता है न ! लेट जाओ, ठण्डी हवा आरही है !" टीकू ने भी झुँझला कर जवाब दिया !

नवनीत हंस पड़ा, "नाराज होने से यदि सिर की बला टल जाती हो तो आदमी अब तक कई मुसीबतों से छुट्टी पा चुका होता ! "इससे तो बेहतर है कोई और उपाय सोचो !"

"उपाय क्या पत्थर सोचा जाय ? दुबले-पतले आदमी होते तो कूम-किनारा तलाश भी करता !"

नवनीत हंस दिया, बोला—"मुझे एक तरकीब सूझी है ! तुमने सुना होगा कि किस तरह एक गाँव में आग लग गई थी, और किस तरह एक अन्धे तथा दूसरे लँगड़े ने आपस में एक दूसरे की सहायता करके गाँव से निकल भागने में सफलता प्राप्त की ! सुना या नहीं ?"

"सुना है, फिर ?"

"फिर क्या, हमें भी वैसा ही कोई उपाय करना चाहिए। जैसे—या तो तुम इस टोकरे को ही ले जा सकते हो, या फिर मुझे ही !" रहा मैं ! सो मैं वजन तो उठा सकता हूँ, पर चल नहीं सकता !"

"तब क्या हो ?"

"हो क्या ?—तुम्हारे सिर पर मैं, और मेरे सिर पर टोकरा ! दोनों ही एक साथ चले जाएंगे !"

टीकू भी नवनीत के पास बैठ गया, और कंधे पर हाथ मार कर बोला—"गिर तुम जरूर पड़े हो, चोट भी खा बैठे हो, पर दोस्त ! आदमी तुम खूब हो !"

"खूब हूँ इसमें तो शक ही क्या है ? तुमने बुलाया सहायता लेने के लिए, मगर गये थे नमाज पढ़ने, रोजे गले लग गए !—अच्छा जाओ दोस्त ! रात-भर अगर खुली हवा में पड़ा रहा तो सवेरे आप ही तबियत खुल जायगी ! जली तकदीर, घर पर कोई दईमारी राह देखने वाली भी नहीं, वरना उसके तड़फने का खयाल करके ही रात गुजार देता !"

"घर पर राह देखने वाला कोई नहीं है क्या ?"

"नहीं है भाई, नहीं है ! इसीलिए तो मरना प्यारा नहीं लगता। वह मरना ही क्या कि जिसको रोने वाला ही कोई न हो !"

"धत् तेरे रोने वालों की !--पर तब तो मेरा झोंपड़ा पास ही है, सवेरे उठते ही चल देना, तब तक तो मोच ठीक हो जाएगी !--बल्कि कहोगे तो रात को पैर में कुछ चने और लीद बाँध दूँगा, सवेरे तो शर्तिया आराम हो जाएगा !"

"तो टोकरा रख आओ ! फिर यदि आए तो दोनों चल देंगे ! तब तक राम नाम का जाप करता रहूँगा !"

टीकू ने फिर एक बार चारों ओर देखा, अन्धेरा बढ़ चला था, संध्या होते ही जंगली जानवरों के डर से सारी भीड़ छंट गई थी !

टीकू ने कहा--"तो चलो, पहले तुम्हें ही रख आऊं, टोकरे को फिर ही ले जाऊंगा !"

"और अगर कोई जानवर मछलियाँ खराब कर गया ?"

"तुम जैसी बड़ी मछली को पाकर अब किसका खयाल रखूं ! —कोशिश करूंगा कि तुम्हारे सिर पर ही टोकरा लाद दूं !"

—और उसने अकस्मात् ही नवनीत को उठा लिया, फिर कन्धे पर रखते-रखते बोला "बस दीखने ही में डील-डौल के हो !"

नवनीत ने घबरा कर कहा—"ना ना, पैदल चलूंगा पैदल—कन्धे का सहारा काफी होगा—गिर पड़ूंगा—तेरे पैर पड़ता हूँ भाई ! मुझे तो चक्कर आ रहे हैं !—हाँ, हाँ, ठीक ! यही तुम्हारा अहसान खूब है दादा !" नवनीत के छटपटाने से टीकू ने उसे नीचे उतार दिया !

नवनीत बोला--"तभी तो ताज्जुब कर रहा था कि यह मामूली-सा टोकरा तुमसे क्यों नहीं उठा !"

"अरे तुम तो बहुत ही हलके हो !"—टीकू ने टोकरा एक कंधे पर रक्खा, दूसरे पर नवनीत ने हाथ; दोनों धीरे-धीरे बढ़ चले !

"मेरा वजन मुझसे छिपा हुआ नहीं है मिस्टर टिंकर--"

"जैसे वज्र गिरा ! टीकू ने पूछा--"क्या कहा ?"

"चौंके क्यों भाई ! मुझे नहीं नहीं पहचाना ?—आदमी मैं खूब हूँ न, इसीलिए तुम्हें तो जानता हूँ। अच्छा, क्या तुम्हारा नाम टीकू नहीं है ?"

"पर टिंकर का क्या मतलब ?"

"सो तो मैं क्या जानूं ? वही जाने जिसने अपना यह नाम रखा हो !--मगर डरते क्यों हो, जो इस नाम को जानते थे वे तो सब समुद्र में—"टीकू ने कन्धा हिलाया, नवनीत का हाथ छूट गया, वह गिरते-गिरते बचा !

काले सर्प के समान फुंकार कर के टीकू ने कहा—"छोकरे सच बता कौन है तू ?—वरना अपने जिन्दगी के दिन पूरे समझ—"

नवनीत घबरा गया। बोला—"तो तुमने मुझे नहीं पहचाना ! कल अधरलाल के साथ मैं माचिस माँगने नहीं आया था तुम्हारे यहाँ ?—दोस्त हूँ दोस्त ! दुश्मनी नहीं करूँगा ! रहा जिन्दगी का सवाल, सो वह तो उसी समय पूरी हो रही थी दोस्त, जब तुमने मुझे सहायता के लिए बुलाया था !"

टीकू को समाधान हुआ, किन्तु बोला—"परन्तु यह सब कुछ कहने का तुम्हारा मतलब क्या था ?"

"तुम्हारी मेहमानदारी पर डाका डालना !—और दूसरा, यह पूछना चाहता था कि आखिर तुमने यह सब कुछ किया क्यों ?"

टीकू ने फिर उसको कन्धा थमा दिया। दोनों चलने लगे ! टीकू निर्वाक, सोचता हुआ !

नवनीत ने पूछा—"अच्छा भाई टीकू—यदि मुझे अपने आपको दोस्त साबित करने में कठिनाई होती तो क्या करते ?"

"वही करता जिससे तुम्हें कल के सूरज का दर्शन नसीब न होता !"

नवनीत भी चुप होगया ! टीकू यह सब कुछ कर सकता था, इसमें उसे रत्ती-भर भी सन्देह नहीं—पर क्यों ? क्या मनुष्य की जान इतनी सस्ती है ?—कि टीकू की झोंपड़ी आगई !

तब तक रात का काफी हिस्सा बीत चुका था, बदली से घिरी हुई अन्धेरे पाख की रात जंगल की सनसनाती हुई हवा में बहुत डरावनी मालूम दे रही थी, झोंपड़ी के नाम पर खाली अन्धेरे का एक स्तूप दिखाई दे रहा था, और एक दूसरे से सटे हुए दोनों व्यक्ति भी, एक दूसरे के लिए अन्धकार की छाया ही दीख रहे थे !

टीकू झोंपड़ी में प्रविष्ट हुआ और मिट्टी की एक ढिबरी में बिनौले डाल कर उसने प्रकाश किया। अन्धेरे में झोंपड़ी का अन्तःकरण प्रदीप्त हो उठा।

नवनीत अन्यमनस्क रूप से भीतर प्रविष्ट हुआ। झोंपड़ी काफी प्रशस्त थी। भीतर बीच में तीन चौथाई दूरी तक एक दीवार खींचकर दो हिस्से कर दिये गए थे। पीछे वाले हिस्से में सामान भरा हुआ था, और दरवाजे वाला हिस्सा उसकी बैठक थी।

उत्तर की दीवार से सटी हुई खटिया खींचकर टीकू ने कहा, "लेट जाओ, खड़ा रहना तुम्हारे लिए मुमकिन नहीं !"

बिछी हुई खाट की नंगी मूँज पर नवनीत लेट गया। टीकू ने

चूल्हा जलाया, फिर उस, पर कुछ चढ़ाकर बाहर अन्धेरे में थोड़ी लीद की तलाश करने निकल गया ! लौटकर उसने उसे गीली करके थोड़े चने के साथ उसके पैरों में टखने की जगह बाँध दिया।

नवनीत छः बजे खाना खा लेता है, अतः इस समय जब कि रात के ग्यारह बज रहे थे, वह खूब भूख महसूस कर रहा था, खाट की मूँज भी उसके विरल-वस्त्रों से ढँके बदन में गड़ रही थी—किन्तु शरीर और मन से वह इतना क्लान्त हो चुका था कि नींद में उसे टीकू का पट्टी बान्धना भी न मालूम पड़ा !

इधर चूल्हे पर राब चढ़ा कर जब टीकू ने अपनी बातचीत का सिलसिला जोड़ने के लिए नवनीत को पुकारना चाहा, तो उसे कठिनाई पड़ी कि क्या कहाकर बुलाया जाए ?—क्यों न उसका नाम ही पूछा जाए ? बोला—

"ऐ बाबूजी, तुम्हारा नाम क्या है ?"—तो उत्तर न सुनकर उसे आश्चर्य हुआ !

"धत्तेरे की ! जैसे माँ की गोद ही तो मिल गई है सोने के लिए ।"

टीकू को इस व्यक्ति की सरलता और विश्वास पर बड़ा मोह हुआ, और जब तक राब बनकर तैयार न हुई, उसी के बारे में वह सोचता रहा। एक क्षण पहले ही वह उसके प्राण लेने को उतारू था, नवनीत से यह छिपा नहीं है, फिर भी कैसे विश्वास के साथ गहरी नींद में सो गया है !"

राब तैयार हो गई तो टीकू ने उसे झकझोरते हुए कहा—

"अजी साहबजादे ! थक तुम्हीं नहीं गये हो, मैं भी थका हुआ हूँ। तुम्हारा दिया नहीं खाता, कि रात-भर जागता रहूँगा । उठते क्यों नहीं ?"

आँखें मसलता हुआ नवनीत उठ बैठा । बोला—"क्यों तंग करते हो टीकू !"

"अरे टीकू के पुरखा ! यह राब बनाई है, थोड़ी पी लो, फिर मन आये उतनी लम्बी तानना ! रात भर में कहीं ठण्डे हो गए तो ब्रह्म-हत्या कब तक सिर पर लादे रहूँगा !"

खाने का नाम सुनते ही नवनीत की क्षुधा सजग हो उठी, परन्तु टीकू के यहाँ—माना कि वह देश के कारण धीवर है, पर धीवर के यहाँ उसने पूछा-"मछलियाँ पकाई हैं क्या ?"

"धीवर के घर हलवा तो मिलेगा नहीं ?"

"तो जिन्दा ही ब्रह्मराक्षस बनाना चाहते हो ! भाई, अभी तो जनेऊ के धागों को खूँटी पर लटकाने तक की हिम्मत नहीं हो पाई मेरी ! सोया ही रहने दिया होता—और अब भी सो जाऊँगा—आधी रात तो हो ही गई, सवेरे नौकर कुछ कर ही देगा, बस घर पहुँचने भर की देर है !"

"और यह भी तो कहो कि मैं नीच जात हूँ—कम-से-कम मल्लाह ही का तो पेशा करता हूँ। छुआछूत का भूत भी तो है न !"

"छुआछूत नहीं टीकू, मैं केवल अखाद्य नहीं खाता। शाकाहारी हूँ मैं !"

"मछली तो शुद्ध शाक है न ! बंगालियों से पूछ लेना, इसके बारे में उनसे अधिक कोई नहीं जानता। पर जाने दो ! मछली-वछली नहीं है—थोड़ा गुड़ रक्खा था सो राब बना ली है। सवेरे तक काफ़ी ताकत आ जाएगी।"

नवनीत खाट से उतरा, और गिरते-गिरते बचा, टखने पर बन्धे हुए पट्टे की उसे मालूम ही तब पड़ी, बोला—

"पैर तो तुमने मेरा न जाने क्या बाँध-बूँध कर मूसल कर दिया है, खैर, सवेरा होने दो, तब तो खोलने दोगे न ?—अच्छा, जो कुछ बनाया हो जल्दी परस दो। कहते हैं नींद और भूख में न बिछौने की और न सब्जी की जरूरत रहती है। पर जब दोनों ही साथ लग जाएं और बिछौना

और भोजन दोनों सामने हों, तो बड़ा मुश्किल है कि वह खाट पर लेटे या थाली पर बैठे !"

—जब दोनों का ही यह संक्षिप्त भोजन समाप्त हो रहा था, और पेट में कुछ पड़ जाने के उपरान्त जब नवनीत मीमांसा कर रहा था कि इस समय लेट जाने में अधिक तृप्ति होगी या फिर कुछ पूछ-ताछ कर टीकू का अधिक जीवन-वृत्त जानने में; तभी बाहर से हवा की सनसनाहट को चीरती हुई आवाज सुनाई दी, "टीकू !"

आधी रात के समय जब कि कठिन परिश्रम के उपरान्त सोने की इच्छा की जा रही हो, किसी का पुकारना कभी अच्छा नहीं लगता, एक बार तो पुकारने वाली चाहे पत्नी ही क्यों न हो ! टीकू कोई अच्छा-सा उत्तर सम्बोधन के रूप में निकालना ही चाहता था कि पुन: सुनाई दिया—

"टीकू ! मैं अधरलाल हूं !"

टीकू का उत्तर होंटों पर ही रह गया, बोला—"चले आओ !"

नवनीत कुछ अन्यमनस्क-सा हुआ, एक अप्रत्याशित स्थिति का सामना करने की दुर्गम स्थिति से। तभी अधरलाल प्रवेश करते हुए बोले—

"कल जो मेरे साथ थे न टीकू, उनका पता नहीं लग रहा है !"

—और भीतर देखते हैं, तो कल जो शाम को उसके साथ थे, और जिनका पता नहीं लग रहा था, वे हजरत भोजन पर से निहायत इतमीनान के साथ उठने का उपक्रम कर रहे हैं !

अधरलाल चिल्ला उठे—"ओह गुडलक नीलम ! ये हजरत तो भोजन उड़ा रहे हैं ! खूब—"

और तभी आश्चर्य के साथ नवनीत ने देखा कि कन्दील लिये हुए हरनाम, पीछे नीलम, और उसके भी पीछे एक नीलम का सेवक !

नीलम ने हंसकर टीकू से कहा—"क्यों टीकू डाक्टर मित्रा ने तुम्हारा यह बँगला किराए पर लिया है क्या ?"

बात को न समझने के कारण टीकू नीलम की ओर देखने लगा। नवनीत नीलम के व्यंग को समझ गया, स्फीत होकर बोल उठा—

"सन्तों के चरण जहाँ भी पहुँच जायं, प्रयाग ही समझो ! हरनाम, मेम साहब को किसी तरह की तकलीफ तो नहीं हुई ?"

हरनाम क्या उत्तर देता ? बोले अधरलाल—"हरनाम ने तो तकलीफ न दी, किन्तु तुमने अवश्य दी है !"

"मैंने !—मेरा ऐसा सौभाग्य कब से होने लगा भैया !—महिलाएं भी कभी तकलीफ पाती हैं क्या ?—कम-से-कम पुरुष तो नहीं जानता ! आप क्या सोचती हैं नीलम देवी ?"

"ठीक मैं भी यही जानती हूँ, बल्कि अब मेरा तो अनुभव भी ताजा ही है !"

नवनीत उठा, और पैर के दर्द को भूलकर जैसे ही चलने को हुआ कि गिरा—गिरा, किन्तु नीलम पास ही खड़ी थी, सजग, उसने नवनीत को सम्भाल लिया ! हरनाम दौड़कर बोला—"क्या हो गया भैया ?"

उसका कन्धा पकड़ कर नवनीत बोला—"कुछ नहीं रे, मामूली-सी चोट है, सवेरे तक ठीक हो जायेगी ! डाक्टर टीकू ने इलाज कर दिया है !" और वह उस मूंज की खटिया पर बैठ गया !

"कैसे लगी ?" हरनाम ने पूछा !

"कैसे लगी ?—यानी दूसरा पैर तोड़ कर बताऊं कि ऐसे लगी !—पैर फिसला, गिर पड़ा और लग गई, और कैसे लगती !"

नीलम को नवनीत के उत्तर से संतोष नहीं हुआ, उसने एक ओर ले जाकर टीकू से सम्पूर्ण हाल जान लिया ! फिर अधरलाल से बोली—

"तो अब यहाँ से तो चला जाए न ? "

अधरलाल ने नवनीत की ओर देखा। नवनीत ने उत्तर दिया—आप लोग जाइए !"

"और तुम नहीं चलोगे ?"

"मेरा क्या है ? घर पर पड़ा रहा तो क्या, और यहाँ पड़ा रहा तो क्या – हरनाम यहाँ पर आ ही गया है !"

"चोट कहाँ लगी है—क्या कुछ ज्यादा है ?"

"ज्यादा तो कुछ नहीं; घुटने में कुछ मोच आगई है, सवेरे तक ठीक हो ही जाएगी !"

अधरलाल ने टीकू से कहा—"अच्छा टीकू हम इन्हें लिये जाते हैं !"

टीकू ने कहा—"मैं ले चलूं ?"

"नहीं, सड़क तक तो चलना ही है, सहारे से चल लेंगे। वहाँ पर विक्टोरिया मिल जाएगी !"

नवनीत तब भी वैसे ही बैठा रहा। उठने की या उठकर चलने की कोई बात ही जैसे उसके सामने न थी। देखकर नीलम बोली—"आप कहें तो मैं आगे बढ़ जाऊ ?—"

नवनीत ने उठकर उत्तर दिय —"स्त्रियाँ सदा ही आगे बढ़ी हुई हैं, इसमें मेरे कहने की तो कोई बात नहीं !—चलिए—कहीं आगे आप यह न कह दें कि 'आप कहें तो मैं जहर खालूँ !' स्त्रियाँ न केवल ऐसा कहती ही हैं, बल्कि सुनता हूँ, वे कर भी दिखाती हैं !"

सभी बाहर निकल आए, कुछ दूर तक पहुँच कर टीकू अपनी झोंपड़ी को लौट आया !

नीलम ने बात का सिलसिला बढ़ाते हुए कहा—"बेचारी स्त्री और करे तो क्या ? यदि पुरुष ही उसे आगे न बढ़ने दे !—लेकिन, निश्चिंत रहिए; आगे न बढ़ पाने पर भी मैं न तो कभी वैसा कहूंगी, और न करूंगी ही"

जब सारी मण्डली धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी, तो नवनीत ने धीमे से हरनाम से पूछा, "तुम्हें मेरा पता कैसे लगा ?"

"तलाश करते करते अचानक ही पता लगा पाए हैं बाबूजी ! बिना कहे ही कैसे चले आए आप ?"

नीलम ने बीच ही में हंस कर उत्तर दिया—"घर में नागिन जो घुस गई थी ?"

नवनीत ने कहा—"नीलमदेवी ! नागिन को नागिन कहा जाता जाता है, और नीलमदेवी को नीलमदेवी ! नागिन को तो घर में घुसने से रोका भी जा सकता है और घुसने पर निकाला भी; किन्तु आप न तो घुसने से रोकी जा सकीं, और न घुसने पर निकाली ही जा सकीं !"

"मनुष्यता का बोझ जो है ! पर सच कहिए क्या निकाल सकते तो "आपको सन्तोष होता ?"

"अपने किये हुए पर असन्तोष अनुभव करने वाला मैं नहीं हूं ?"

"और दूसरों के किये पर ?"

"मुझ में इतनी सामर्थ्य है कि मैं उसका प्रतिकार कर सकूं !"

"तो फिर मेरी निकटता या विद्यमानता ही को आप क्यों बचाना चाहते हैं ?"

"अपने आपको निर्विकार रखने के लिए !"

अंधेरी रात में नीलम का कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ—कन्दील एक ओर था—नहीं तो बुझी हुई राख की सफेदी उसके चेहरे पर अधरलाल या नवनीत से छिपी न रहती ! किन्तु इस उत्तर के बाद ही उसकी नीरवता अधरलाल की पकड़ में आ गई ! वे बोले—

"दण्ड देने से मनुष्य निर्विकार नहीं बनता नवनीत बाबू !—अनाहार से क्षुधा मरती नहीं है। हृदय की तृप्ति न हो तो संयम किस काम का ?"

"पर तृप्ति है ही कहाँ—जीवन की इस जंगली राह में भटक कर किसने क्या पाया है ?"

सड़क पर ये लोग पहुँच गए, किन्तु विक्टोरिया का पता न था। नीलम ने पूर्व रात्रि की विक्टोरिया-विषयक नवनीत की उदासीनता स्मरण की; कहने से शायद नवनीत की ओर से और कोई व्यंग्य सुनना पड़े, अतः नीरव ही रही! अधरलाल ने कहा—

"नीलम, विक्टोरिया तो दीख नहीं पड़ती!"

"क्या मालूम, शायद उसने नाले के रास्ते पर खड़ी कर रक्खी हो? यदि जरूरत हो तो ठहर जाएं, और किशन को भेज दें!"

नीलम के उत्तर की अनासक्ति नवनीत से छिपी न रही; वह बोला —"घूमने से दर्द तो हो रहा है, पर, शायद पैर ऐंठेगा नहीं!—-"

नीलम कुछ न बोली, अधरलाल भी कुछ न बोले। मण्डली चलती रही!

नीरवता भंग करके अधरलाल बोले, "नवनीत बाबू, देखता हूं कि—"

"कहो न भाई, क्या देखते हो?—अंधेरा बहुत घना है, लालटेन की यह क्षीण रोशनी दुनिया के रास्ते को रोशन नहीं कर सकती। हम लोगों का देखना बहुत कुछ विडम्बना जैसा है। जो लोग नहीं देखते, वे सच कहते हैं, और जिन्हें बहुत कुछ दिखाई देता है, उनकी गवाही हम जैसे न देख सकने वाले दे ही कैसे सकते हैं! जो हो, तुम क्या देखते हो?"

अधरलाल हंस पड़े। "तुम्हारे दार्शनिक-रूप को!—क्या रहस्य है नवनीत, तुम्हारे हृदय में, जो तुम्हें इस उमर में दार्शनिक बनाकर तुम्हारे हृदय के आनन्द को चरे डालता है!"

"तुम नहीं जानते? मेरा वह रहस्य है 'वैशाख नन्दन!' चरता कहाँ है!—केवल खयाल है कि चरता है, और इसी खयाल से वैशाख का मुटापा सहन कर रहा है। और यदि कहीं आनन्द मिल गया होता? सावन की हरियाली देखकर यों ही दुबला होता रहता कि, अभी तो सभी पड़ा है, चरा तो कुछ नहीं!"

"मैं नहीं मानता ! तुम्हारा स्वभाव काफी खुशमिजाज है, किन्तु कोई चिन्ता मानो तुम्हें आगे नहीं बढ़ने देती !

हंसकर नवनीत बोला, 'चिन्ता तो है ही ! देखता हूँ कि दुनिया में स्त्री के साहचर्य के अभाव में पुरुष सभी कुछ फीका अनुभव करता है ! मुझे कैसा अनुभव होता है,। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं खुद भी नहीं जानता !—उपाय ही नहीं है ! स्त्री का सहयोग कम-से-कम हिन्दू शास्त्र में तो प्रयोग की वस्तु नहीं होता। कोई ऐसा सुगम-सा उपाय निकल आए कि हिन्दू धर्म की मर्यादा भी नष्ट न हो, और इस जीभ को थोड़ा पता भी पड़ जाय—बस यही चिन्ता है ! मनोविज्ञान गवाह है; नीलमदेवी ताईद करेंगी कि पुरुष यदि स्त्री से बहुत खिसियाता हो, तो समझो कि वह उसे बहुत चाहता है !"

नीलम ने कहा—"मेरी बात होती तो शायद ताईद करती, किन्तु आपका मनोविज्ञान तो बिलकुल ही पृथक् वस्तु है !"

अधरलाल ने पूछा—"तो क्या तुम्हारा विवाह सचमुच नहीं हुआ नवनीत ?"

"सच तो यह है कि विवाह किसे कहते हैं, यही मैं नहीं जानता !"

नीलम से न रहा गया, बोली—"आपका विवाह नहीं हुआ, यह बड़े ही सौभाग्य की बात है,—आपके लिए नहीं, किन्तु उसके लिए, जिसके साथ आपका विवाह हुआ होता !"

"किन्तु भविष्य में भी यह दुर्भाग्य किसी के मत्थे न पड़ेगा, इसकी तो कोई सम्भावना नहीं है !"

अधरलाल ने कहा—"तो फिर शीघ्र ही विवाह क्यों नहीं कर लेते ?—तुम्हें कमी ही किस बात की है !"

"लड़की की अधरलाल, लड़की की !—प्रयोग का विचार मैं छोड़ दूँगा, पर क्या ऐसी लड़की मिलेगी, जिसमें दम्भ न हो ?"

नीलम ने उत्तर दिया—"महाशय जी, यह दम्भ लड़कियों में नहीं आप में है। लड़कियाँ तो काँच-जैसी स्वच्छ और सरल होती हैं, उसमें अच्छे गुणों की प्रतिकृति पाने के लिए अपने ही चेहरे को ठीक करना पड़ता है !"

"उत्तेजित न होइए नीलम देवी ! दम्भ मुझमें हो सकता है, पर वह मेरी अनासक्ति का नहीं, मेरे अपनेपन का है ! स्त्री में काँच के समान ही अपनापन तो कुछ होता नहीं, और वैसी ही अनासक्ति का वे दम्भ करती हैं, किन्तु लैंस के काँच की तरह यह अनासक्ति केवल दिखाने की रहती है; आसक्ति का जितना बड़ा नाटक भीतर चलता है उसका कहीं कूल नहीं, और इस छल का फल भोगता है बेचारा पुरुष !"

"तब भी दम्भ नारी के हृदय में नहीं, वह पुरुष की प्रतिकृति के रूप में आता है !"

"इसकी बात फिर कभी करेंगे ! देखिए, मेरा घर तो आगया, और मैं थक भी काफी गया हूँ !"—कहते-कहते ही नवनीत मकान की दहलीज पर बैठ गया, बल्कि आधा लेट गया और बोला—"आप लोगों को बहुत कष्ट दिया ! देखता हूँ मुझे मानपुर भेजकर भगवान् ने आपके साथ अन्याय ही किया है ! मैं आपको बराबर कष्ट ही देता रहा हूँ ! अच्छा नमस्ते !"

हरनाम ने मकान खोल दिया, अधरलाल और नीलम भी नवनीत के पीछे ही पीछे ऊपर चले आए !

पलँग पर बैठ कर नवनीत बोला—"रात बहुत बीत गई, आरती बहन नाराज तो होंगी, पर इस अभागे का नाम लेने से उनका क्रोध दूर कर सकोगे; इसका मुझे विश्वास है !"

"यदि इतना अभय दिला सकते हो, तो जाने की जरूरत ही क्या है ?—सवेरे भी तो तुम्हारे नाम से छुटकारा मिल जाएगा !"

"पर उन्हें छुटकारा कहाँ मिलेगा भाई ! निद्राहीन प्रतीक्षा में खुली आँखों की दृष्टि सारी रात तुम्हें टटोलती रहेगी ! जाओ भाई, हो सके

तो सवेरे जल्दी आ जाना !—और नीलम देवी ! आपका भी मैं कृतज्ञ हूँ ! माफ कीजिएगा, केवल बोलने के लिए ही मैं आपसे बहुत कुछ कह जाता हूँ । आप बुरा न मानिएगा !"

अधरलाल ने हरनाम से पूछा—"क्यों भाई हरनाम ! हमें तुम भी छुट्टी देते हो ?"

"जाइए आप लोग । मैं हूँ ही !"

नीलम ने निर्वाक् हाथ जोड़कर बिदा ली, पीछे पीछे अधरलाल भी उतर गए । नवनीत भी एक दम गहरा सो गया !

(१०)

इलाहाबाद के एक बड़े से मकान में त्रिलोकनारायण का निवास है ! हाई कोर्ट के सफल वकीलों की आय के बारे में कैसी-कैसी कहानियाँ प्रचलित हैं, उन्हें दुहराकर पाठकों का धैर्य नष्ट करने का मेरा इरादा नहीं है, इतना कहना काफी है कि त्रिलोकनारायण ऐसे ही एक भाग्यशाली हैं !

इतने अधिक धन का एकाकी भार ढोने वाले किसी निस्संग व्यक्ति के बारे में यदि कई परियों की कहानियाँ प्रचारित हों तो आश्चर्य की बात नहीं ! त्रिलोकनारायण के बारे में भी, सुना जाता है, कि वे वाजिदअली शाह के नए हिन्दी संस्करण हैं ! हिन्दी संस्करण कहना आवश्यक हो गया, क्योंकि वे हिन्दू हैं, और वाजिदअली शाह की ऐसी बहुतेरी बातें हैं जो इस युग में और हिन्दू के द्वारा नहीं हो सकतीं !—यदि थोड़ा अनुपात किम्वदन्तियों तथा अत्युक्तियों के लिए निकाल दिया जाए, तो यह उपमा बहुत बड़ी नहीं दीखेगी !

मसलन, वाजिदअली शाह के किसी हुक्के की कहानी मैंने नहीं पढ़ी, पर ख्याल किया जाता है, कि उसकी अम्बोरी तम्बाकू के धुँए से ही किसी का नाक सचमुच का नन्दन वन हो जाता होगा ! त्रिलोक बाबू के सिगरेट में ऐसा तम्बाकू तो नहीं है; वे कौन-सी सिगरेट पीते

हैं, यह सिगरेट का परहेजगार मैं—जिसके लिए शायद चश्मा या कैंची या गैण्डा छाप—भगवान् जाने ऐसी कोई है भी या नहीं—सिगरेट ही सब से बढ़िया सिगरेट हो गई हैं—जान ही कैसे सकता हूँ; मगर सिगरेट पीने की उनकी तेजी का मैं गवाह हूँ! कहते हैं कि वे चेन स्मोकर हैं—चेन स्मोकर यानी एक शृङ्खला से बराबर पीते रहने वाले! शायद ही वाजिदअली शाह को चौबीसों घण्टे हक्के की निगाली अपने होठों से लगाए रखने का फख्र हासिल रहा हो। और ऐसा फख्र यदि उन्हें कभी हासिल रहा भी हो, तो वे अखण्ड सौभाग्य के स्वामी नहीं कहे जा सकते, क्योंकि सुन्दरियों के अधरामृत को अधरों से लगाए रखना उन दिनों अधिक सौभाग्य का प्रतीक था, जो वाजिद-अली शाह को निश्चय ही प्राप्त था। त्रिलोक बाबू के लिए भी प्रवाद तो था कि वे उनकी मधुयामिनियाँ भी इसी तरह के अमृत की प्राप्ति में बीतती रही हैं, पर प्रवाद ही तो ठहरा। प्रवाद मात्र के बल पर ही किसी सभ्य पुरुष को बदनाम करने की न तो मैं अपने में इच्छा ही पाता हूँ, और न सामर्थ्य ही!

इतना लिखने के बाद, वैसे ही आप, मेरा अनुमान है, त्रिलोक बाबू को पहचान सकेंगे! गोरा-सा बदन; इकहरा, इसलिए कुछ लम्बा दीखता हुआ; सदैव ही सूटेड-बूटेड; मुँह निष्कलुष—निष्कलुष, यानी केश की और पाप की दोनों की छाया से हीन;—किन्तु इस निष्कलुष मुँह की मानो अग्नि को छिपाने के लिए ही वह सदैव धूम्राविष्ट था; आँखों पर बिना फ्रेम की ऐनक; अपनी रोल्स रायस में बड़े ही भव्य लगते थे!

त्रिलोक बाबू मथुरा में प्रवेशिका तक माया के सहपाठी रह चुके थे, अतः माया से परिचित तो थे ही, किन्तु सजातीय होने के कारण यह दुराशा भी पाल चुके थे कि उनका विवाह माया से ही हो! कमलकिशोर की सम्पत्ति तो एक आकर्षण थी ही, किन्तु, सुनते हैं, स्वयं माया भी इस सम्बन्ध के प्रतिकूल नहीं थी, बशर्त्ते कि उसके

पिता की सम्मति हो ! किन्तु जब कमलकिशोर ने माया के लिए स्थिर किया नवनीत को, तो स्वयं माया ने भी देखा कि उसके योग्य यदि कोई वर है तो वह नवनीत ही है ! उनका विवाह होगया, और त्रिलोक बाबू टापते ही रह गए !

सम्पत्ति त्रिलोक ने काफी इकट्ठी कर ली, और इस उम्र तक विवाह भी उन्हें कर लेना चाहिए था; लड़कियों की कमी तो कभी भी न थी, किन्तु शायद माया की कमी के कारण हो, या मुक्त जीवन के आनन्द के कारण हो, त्रिलोक ने अब तक विवाह नहीं किया !

इसी अवस्था में एक दिन, जबकि वे अपनी कौमार्य अवस्था का मुक्त-आनन्द उठा रहे थे, उन्हें कमलकिशोर का पत्र मिला ! पत्र काफी लम्बा था, और उसमें कई बातें थीं। बहुत दिनों के बाद पत्र लिख पाने के लिए क्षमा माँगते हुए उन्होंने लिखा था कि स्वयं त्रिलोक भी इन कई दिनों तक पत्र न लिखने के लिए समान रूप से दोषी है !—उन्हें दुःख था कि माया का विवाह क्यों न उन्होंने त्रिलोक के साथ किया ! उसके इस विवाह का इतिहास बड़ा ही दुःखमय है। कहते हैं कि विवाह के प्रारम्भ से ही नवनीत ने माया के साथ अपने कुछ भी संबन्ध नहीं रक्खे। हिन्दू-कन्या की भाँति ही माया भी अपने विवाह के ये दुःखपूर्ण चार वर्ष निःशब्द वैरागिनी की तरह बिताती रही ! किन्तु कमलकिशोर यह सब अन्याय सहने के लिए कभी तैयार नहीं हैं !—लिखा कि कानूनी कार्यवाही करने के बाद वे माया का पुनर्विवाह करना चाहते हैं ! अन्त में कौन-सी कानूनी गुत्थियाँ सुलझानी होंगी यह जानने की इच्छा प्रकट करने के उपरान्त उन्होंने यह लिखना भी न भूला कि माया के योग्यतम वर के रूप में उनकी दृष्टि में स्वयं त्रिलोक नारायण ही हैं, और लौटती डाक से जानना चाहते हैं कि इसमें त्रिलोकनारायण की स्वीकृति है या नहीं !

पाठकों को शायद यह बता देना अधिक उपयोग का न हो कि त्रिलोक ने अविलम्ब अपनी स्वीकृति भेज दी ! माया से विवाह उनके

जीवन की सबसे प्रिय घटना होती, अतः उसके लिए वे सदैव सब अवस्थाओं में तैयार थे ! उन्होंने यह भी विश्वास दिला दिया कि इस राह में कानून की जो आवश्यकताएँ हैं, वे सब स्वयं देख लेंगे, और उसके पश्चात् सशरीर मथुरा पहुँच कर कमलकिशोर का आशीर्वाद ग्रहण करेंगे !

वस्तुतः इसमें कुछ समय लगा ही ! नवनीत की स्वीकृति आवश्यक थी, और इस स्वीकृति को किस तरह प्राप्त किया जा सकता है, यह सोचने की बात थी। त्रिलोक ने इसे खूब सोचा, और अन्त में जब उसने तय किया कि स्पष्ट रूप से सब बातें नवनीत को लिख दी जायं, और उससे पूछा जाय कि वह क्या करने को तैयार है, तो कठिनाई नवनीत का पता जानने की पड़ी। त्रिलोक कर्मठ व्यक्ति है, उसने चेष्टा की, और विभागीय अध्यक्षों से पूछ-ताछ करके इस कार्य में भी वह कृतकार्य हुआ ! बस, एक चिट्ठी सब परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए उसने नवनीत को लिख दी ! त्रिलोक ने खास तौर से लिखा कि विवाह का यह प्रस्ताव कमल किशोर ने माया के हित के लिए और माया की सहमति से किया है ! नवनीत को यदि सबकी भलाई से कुछ सरोकार हो तो उसे उस विवाह को स्वीकृति दे देनी चाहिए। बाद में उसने यह भी लिख दिया कि यदि नवनीत की स्वीकृति नहीं भी मिली, तो भी कानून ने गुंजायश रखी है कि माया स्वयं ही, सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रकट करके पुनर्विवाह की आज्ञा प्राप्त कर ले, अतः यह प्रस्ताव नवनीत का सम्मान बढ़ाने वाला ही होगा ! उचित समय में यह पत्र रजिस्टर्ड लिफाफे में नवनीत को मिल गया, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

नवनीत को पत्र तो समय पर मिल गया, परन्तु नवनीत की मानसिक स्थिति स्थिर न रह सकी। माया के साथ उसके विवाह के चार वर्ष निश्चय ही किसी विशेषता के द्योतक न थे, स्वयं नवनीत ही इन मामलों में संकीर्ण विचारों का न था। किन्तु क्या इसका यह तात्पर्य है कि माया एक दूसरा विवाह करने के लिए तैयार हो उठे ? एक हिन्दू

स्त्री--और स्वयं उसी की स्त्री--एक पति के जीवित रहते हुए पुन-र्विवाह के लिए कृत संकल्प हो उठे !—कुछ भी हो नवनीत उदार है, किन्तु हिन्दुत्व के संस्कार तो उसकी मज्जा में सने हुए थे !

पत्र न माया के हाथ का है, न उसके पिता के हाथ का—बल्कि एक तीसरे ही व्यक्ति के हाथ का है। नवनीत जानता था यही त्रिलोक एक दिन माया के सम्बन्ध के सिलसिले में उसका प्रतिद्वन्द्वी रह चुका है ! त्रिलोक के उच्छ्रृङ्खल जीवन की याद से भी माया का सम्बन्ध स्थिर करने में उसे बड़ा कष्ट हुआ ! प्रतिद्वन्द्वी की पराजय साधारण आनन्द की वस्तु नहीं होती, स्वयं नवनीत अपने विवाह के अवसर पर त्रिलोक बाबू की पराजय पर कम आनन्दित नहीं हुआ था, हालाँकि विवाह तब उसके लिए किसी बड़ी आकांक्षा की वस्तु न थी ! अवश्य ही त्रिलोक नारायण अपनी आराम कुर्सी पर पड़े हुए सिगरेट के धुएँ में माया की रंजित-श्री की कल्पना के साथ नवनीत की श्री-हीनता पर दुर्दशा की हीन हँसी हँस रहे होंगे !

यह पत्र धमकी का भी तो हो सकता है ! माया से विवाह का अर्थ उसके लिए सम्पत्ति का वरदान था, इसमें कोई सन्देह नहीं—कमलकिशोर की सम्पूर्ण सम्पत्ति उसे प्राप्त हुई थी, और अब माया का अभाव, यानी उस सम्पूर्ण सम्पत्ति का विनियोग !--त्रिलोक नारायण इस परिस्थिति का लाभ क्यों न उठाये ?—पर यदि यही हो तो क्या नवनीत इतना गया बीता है कि उसकी दृढ़ता का मूल्य चाँदी के टुकड़ों में आँका जाय ? पैसे का उसे कभी लोभ न हुआ, वह स्वयं अब अपना पेट भर सकता है, और आवश्यकता हुई तो कमल-किशोर का ऋण भी चुका सकता है !—खास करके सम्पत्ति के लोभ पर एक स्त्री की आसक्ति का मोह खरीदना उसके लिए बहुत अधिक घृणा की बात हो गई !

त्रिलोक नारायण हँसेगा, किन्तु चारा ही क्या है ?—अपमान तो मन के समझने की बात है !—उसने पत्र का उत्तर लिखा—

"मित्र त्रिलोक, मेरा अभिनन्दन ! जिस बला को मैं न सम्भाल सका, आशा है, तुम सम्भाल सकोगे ! तुम जानते हो विवाह करने की मेरी रुचि न थी, किन्तु क्या करूँ, यह तो मुझे मालूम न था कि अनजाने ही पिताजी अपनी मित्रता का जाल फैलाकर कहीं किसी अलक्ष्य में मेरे लिए एक षड्यन्त्र फैला गए थे। और सच पूछो तो यह षड्यन्त्र तुम्हारे लिए भी बुरा साबित हुआ, इच्छा रहते हुए भी तुम दोनों का विवाह न हो सका और मैं उसमें एक अवांछित उपसर्ग जुट गया ! मुझे प्रसन्नता है कि आज चार-पाँच वर्ष बाद भी उस अप्रिय घटना का मुझ से प्रतिकार हो सका है—"अपनी स्वेच्छा का उल्लेख करके नवनीत ने अपने रोष-दीप्त हृदय में कुछ हलकापन अनुभव किया ! अन्त में उसने लिखा—"चार वर्ष तक मेरी पत्नी रहकर भी माया मुझे प्राप्त न हुई, यह बात जितनी अधिक अविश्वसनीय है, उतनी ही सत्य भी है ! इस बात का विश्वास करने के लिए मैं कहूँगा कि आज के पहले मुझे कभी पत्नी की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। उम्मीद करता हूँ कि तुम माया को पाकर जिस तरह प्रसन्न होओगे, उसी तरह माया भी तुम्हें प्राप्त करके प्रसन्न होगी ! मुझे भी प्रसन्नता होगी यदि इस विवाह के अवसर पर स्वयं उपस्थित होकर मैं तुम दोनों को प्रसन्न देख सकूँ !"

अपने-आपको भुलावा दे सकने जैसी सुखमय परिस्थिति कदाचित् ही कोई हो—इससे बड़े-से-बड़ा दुःख भी दब जाता है ! नवनीत ने भी इस महान् शोक को सहन करने के लिए इसी रास्ते को पकड़ा !

किन्तु इस पत्र से तो केवल त्रिलोक के उपहास का शमन हो सका, माया के अभिमान को पदस्थ करने का यदि कोई बहाना नहीं मिला, तो क्या यही दुःख उसके लिए सहनीय हो जायगा ?—माया को भी तब उसने लिखा—

"माया देवी, बाबू त्रिलोक नारायण द्वारा प्रेषित अपने पुनर्विवाह के प्रस्ताव पर मेरी बधाई स्वीकार करो ! अन्धेरे में तुम्हें मार्ग मिल गया इसकी मुझे प्रसन्नता है ! हिन्दू-जाति में तुमने एक उदाहरण उप-

स्थित किया है ! एक पति के नाते न सही, हिन्दू के नाते मुझे इस पर गर्व है !

"चार वर्ष तक तुमने मेरे यहाँ तपस्या की, किन्तु तुम जानती ही हो, इसमें मेरा कोई दोष न था। ससुर की सम्पत्ति पर मेरी दृष्टि न थी, बल्कि ससुर ही की मुझ पर दृष्टि थी, नतीजा यह हुआ कि तुम एक निर्मोही व्यक्ति के पल्ले पड़ीं, किन्तु खैर—आज भी वह गलती दुरुस्त हो सकी, यही क्या कम है !—और मैं इन्कार नहीं करता कि तुम्हारे पिता के पैसे से मेरे अध्ययन में सुविधा हो गई !

"मैं तो सदैव ही तुम्हें अपना मित्र मानता आया हूँ। शादी के बाद भी मैंने इस रिश्ते को तो कायम रक्खा था, और आज भी यदि तुम इन्कार न करो तो वह चीज तो है ही। जाने के समय मैंने कहा भी था कि मथुरा के पेड़े भिजवा देना, पर मालुम देता है, क्रोध की मुद्रा में तुम सब-कुछ भूल गईं; शादी के समय एक मित्र का रिश्ता स्मरण रहेगा न ! अगर तुम्हारे विवाह के समय मिठाई के नाम पर भी मथुरा के पेड़े पा सका, तो सोचूंगा कि तुम्हारे साथ विवाह करने की जो एक अकल्पित मजाक की थी, उसकी कुछ तो सार्थकता हो गई। वैसे तो, आशा है शादी पर मित्र को निमन्त्रण देना न भूलोगी !

"मुझे तुम पर ईर्ष्या भी हो रही है। जिस दिन तुम बिछुड़ रही थीं उस दिन तुम्हारी महान् चिन्ता इस बात पर थी कि तुम्हारे-हमारे सौदे में तुम ठगी गई हो, और शायद तुम्हें भ्रम था कि फेर देने पर भी तुम्हारे सौदे का कोई व्यवसाय न हो सके। आज जब तुम्हें आसानी से ग्राहक जुट गया है तो मुझे अपनी ही फिक्र पड़ गई है। मेरी तो बाजार में साख ही उठ गई। पर अच्छा ही है, व्यवसाय समेट लेने पर किसी हानि की सम्भावना तो न रहेगी। यदि व्यवसाय चलाने योग्य होता, तो पहले ही सौदे में मुँह की न खाता !

"बैंक की पुस्तक भेज रहा हूँ, सारा हिसाब साफ है। तुम्हारी सम्पत्ति में से मैंने एक भी पैसा व्यय नहीं किया है, यदि हिसाब

समझना भी चाहो तो समझा देने के लिए तैयार हूँ!—भूल-चूक लेनी-देनी! किताब से मालूम होगा कि लगभग तीन हजार रुपया और मेरे द्वारा बैंक में जमा किया गया है, यदि हर्जाने के तौर पर या अपने पिता द्वारा दिये हुए उस पैसे के लिए जिससे मेरा अध्ययन सम्पन्न हुआ है, और पैसा मेरे हिस्से निकलता हो, तो मैं उस ऋण को चुकाने का प्रयत्न करूँगा!—पर हाँ, कहो तो तुम्हारे विवाह में सम्मिलित होने के लिए रेल-किराया काट लूँ?—पर, नहीं, गरज तो मेरी ही है, तब मित्र, अपने वेतन ही का भरोसा सही!—तुम जानती ही हो, मुझसे तो कोई हिसाब पूछने वाला है नहीं, अलबत्ता अब तुम नहीं बच सकतीं! त्रिलोक नारायण वकील है, याद रखना, एक-एक पाई का हिसाब देना पड़ेगा!

"सच कहता हूँ, तुम्हारे विवाह में सम्मिलित होने की बहुत साध है। पत्नी के रूप में मानकर तुम्हारा सौन्दर्य बहुत पिया है—चार वर्ष तक! तब तटस्थ रहकर यदि एक बार दुलहिन के रूप में तुम्हारा सौन्दर्य देख सकूँ, तो क्या तुम क्रोधित हो जाओगी? सौन्दर्य की प्यास तो बहुत बुरी होती है मित्र! जहाँगीर चार वर्ष तक वन्दिनी नूरजहाँ का सौन्दर्य पीकर उत्तरोत्तर पिपासा-दग्ध ही होता गया—पर, मैं वायदा करता हूँ, जहाँगीर की तरह, ऐन वक्त पर मैं तुम्हारा दावा नहीं कर बैठूंगा। तुम मेरा इतना विश्वास तो जरूर ही करना! तुम जानती ही हो, सौतिया-डाह जैसी कोई चीज आदमी में नहीं होती!

"अच्छा मेरे मित्र, शायद आगे मेरा पत्र लिखना तुम से सहन न हो, तो यही पत्र अन्तिम सही! किन्तु यदि तुम्हारा आदेश हुआ और त्रिलोक ने स्वीकृति दे दी, तो एक पुराने मित्र को पत्र लिखने के लिए मैं दस मिनट का अवकाश निकालने की कोशिश कर सकूंगा! तब तक यही अन्तिम पत्र सही! वन्दे!"

माया ने पत्र पढ़ा, और एक ही क्षण में उसकी दीर्घायत आँखें शून्य हो गईं! अवश्य ही उसके हृदय में एक क्षण-भर के लिए भी

यह दुराशा तो कभी उदय नहीं हुई थी, कि नवनीत का हृदय, माया के बिदा होते ही, उसकी आसक्ति से भर उठेगा, किन्तु उसके चरणों में उसने अपना सम्पूर्ण इहलोक और परलोक अपने नारी-जीवन की समस्त-सार्थकता, सारा माधुर्य चुपचाप समर्पित कर दिया है, वह यदि आज उसका मूल्य नहीं समझ पाया तो क्या कभी भी नहीं समझ पाएगा ? विश्व में इतने बड़े दान की अवहेलना क्या कभी सम्भव है ? हिन्दू नारी का हृदय सिवा इसके सोच ही क्या सकता है— माया के हृदय की इस दशा को ही कैसे अस्वाभाविक कहा जाय !

किन्तु पत्र के प्रथम इंगित का तात्पर्य क्या है ?--पाठक जानते हैं कि माया को पिता के उसके पुनर्विवाह के सम्बन्धी विचारों से तनिक भी परिचय नहीं था, न वह त्रिलोक नारायण को इस सम्बन्ध में लिखे हुए पत्र की बात ही जानती थी !—त्रिलोक नारायण उसका सहपाठी रह चुका है, उससे माया के सम्बन्ध की बातचीत चली भी थी, किन्तु नवनीत के बीच में आते ही माया ने सम्पूर्ण हृदय से त्रिलोक को अपने हृदय-द्वार से बिदा कर दिया था। नवनीत से यह बात छिपी नहीं है, और दोनों के बीच की खाई का कारण कम-से-कम यह बात तो कभी नहीं हुई ! तब नवनीत ने आज इसी व्यक्ति को लेकर पुनर्विवाह का यह गन्दा इशारा किस इरादे से माया के हृदय को विदीर्ण करने के लिए किया है ? वह उसे छोड़कर चली आई है, इसमें कोई संशय नहीं, किन्तु यह उसने किया तो नवनीत ही के लिए है !—क्या उसके हृदय में बिदा होते समय यह दुराशा न थी, कि जिस वस्तु का मूल्य वह पास रहने से नहीं समझ सका, उसको दूर रहकर उसे अनुभव करने दिया जाय ?—या फिर, चार वर्ष तक अविराम घेरा डालकर भी, जिसके हृदय के कवच पर माया के मान-अभिमान, सेवा-साधना सभी के तीर व्यर्थ होकर परावर्त्तित होगए हैं, उसी को घेरे रहकर, अन्त तक उसकी साँस को क्षीण करते रहने की अपेक्षा क्या माया ही ने यह उचित नहीं समझा कि वनवास ले लेने से कम-से-कम नवनीत का

हृदय तो मुक्ति की साँस पाकर सुखी सम्पन्न हो सकेगा ? और उसके बाद भी, उसके निष्कासन का एक-एक क्षण भी तो उसी नवनीत की सहज-अतिरूप गम्भीर मूर्त्ति ही से आच्छन्न रहा है ! कमरे की शून्य निविड़ता में उसकी आँखों का कितना नीरव प्रवाह उसकी छाती पर मूर्च्छित होता हुआ नवनीत के अलक्ष्य-चरणों का प्रक्षालन करता रहा है, उसे उस अन्तर्यामी के सिवा जानता ही कौन है ! पति द्वारा परित्याग की अपने नारी-जीवन की व्यर्थता को भी उसने अपने ही में सीमित-प्रस्थापित कर रखा है, उसके निखिल-स्नेह के आदि-स्रोत उसके पिता भी इस व्यर्थता को न जान सके, फिर यह पुनर्विवाह की प्रवंचना का दुर्वाद उस तक कैसे और क्यों आया है ?

नवनीत के अतल-गम्भीर हृदय की थाह अवश्य माया को नहीं मिली, किन्तु उसने उसके हृदय में प्रवेश ही न किया हो यह बात न थी। वह जितनी ही गहरी उतरी है, उतना ही मानो उसके हृदय का तल गहरा होता गया है। किस जगह वह गहराई समाप्त हुई, और उस गम्भीर-निविड़-निभृत तल देश में क्या है, इसे जब स्वयं नवनीत ही नहीं जान सका, तो माया ही क्या जान सकेगी ! किन्तु यह सब कुछ होने पर भी, नवनीत की महानता में उसे संशय न था ! तब फिर ? —दुःख के दुर्निवार आघात से उसकी आँखें भर आईं !

तभी पैरों की आहट सुनाई दी। शीघ्र ही माया ने आँचल से अपनी आँखों को पोंछ लिया। पत्र को छिपाने की एकाएक जगह न दिखी तो उसे ब्लाउज ही में छिपा लिया, और सन्ध्या के घने अन्धकार में भी वह अखबार पढ़ने का बहाना करने लगी। उसी धुँधलाहट में छिपी हुई माया को देख पाने का प्रयत्न करते हुए उसके पिता कमल किशोर भीतर प्रविष्ट हुए। माया पढ़ते रहने का बहाना किये रही !

कमलकिशोर ने मानों माया को देखा ही नहीं, वे बोले—

"नौकर तो इस घर के सब मालिक हो गए हैं। घण्टे-भर से आवाज दे रहा हूँ, पर किसी नवाबजादे को सुनने तक की फुरसत नहीं है।"

माया ने अखबार से दृष्टि हटाकर संयत स्वर में पूछा—"क्या बात है पिताजी ?"

"वाह, तुम भी यहाँ बैठी हो ? सोच रहा था, घूमने निकल गई होगी ?–अजीब हाल है, बाहर अतिथि बैठा हुआ है, यह नहीं कि उसे भीतर बुलवाकर बिठातीं ! अन्यमनस्कता की भी कोई हद है !"

माया को विदित न था कि कोई बाहर आया हुआ है ! पूछा—

"कौन है पिताजी ! मुझे तो मालूम ही न हुआ ! आवाज तो उन्हें देनी चाहिए !"

"पर कोई सुने भी !—जब मेरी ही आवाज कोई न सुन सका—तो उसकी आवाज किसी ने क्यों सुनी होगी ?"

माया उठकर पिता के पास आई, उनके कन्धे पर हाथ रखकर बोली—

"अच्छा, नाराज तो बहुत हो लिये पिताजी, अब बताइए कि कौन आया हुआ है ?"

कमल किशोर का क्रोध काफूर होगया, हाथ पकड़ कर बोले—"हैं कौन ? तेरे सहपाठी त्रिलोक नारायण !—भूल गई ? खूब ! एक आदमी इलाहाबाद से चलकर आए, और तुम उसे पहचानो भी नहीं !—बाहर बैठे हैं !"

माया चौंक पड़ी ! विपत्ति का बादल जो अभी-अभी टला है, फिर छा गया ! उसकी शिथिल मुट्ठियों से पिता का हाथ भी नीचे गिर पड़ा ! पर अँधेरे में कमल किशोर इसे लक्ष्य न कर सके !

माया बाहर जाने को हुई, तो कमल किशोर बोले—"तुम लाइट करो—मैं उन्हें ऊपर ही ले आता हूँ ! तुम्हारे तो सहपाठी रह चुके हैं !"

कहते-कहते कमल किशोर परावर्त्तित होगए ! विमूढ़-सी माया वैसी ही नीरव स्थिर खड़ी रही ! एक क्षण-भर में ही बिजली की तरह नवनीत के पत्र का पूर्वार्द्ध उसके मस्तिष्क में जल उठा ! हे भग-

वान् ! यह कौन-सी दुरभिसन्धि है ?—उसके पिता की उसमें क्या भूमिका है ?-क्या त्रिलाक का यहां आना आकस्मिक नहीं हो सकता ? कदाचित् उसके यहां आने से पत्र का कोई सम्बन्ध न हो—शायद वह इस बात को जानता ही न हो ! परन्तु माया इस वर्क को स्वीकार न कर सकी ! निश्चय ही त्रिलोक के आगमन से इस घटना का सम्बन्ध है, इसमें उसे कोई संशय नहीं रहा। नहीं तो जिस व्यक्ति का केवल नाम पढ़कर ही वह आज के उत्तरार्द्ध को अमित निराशा से तिक्त बना चुकी है, वह इस तरह अकस्मात् ही सशरीर उपस्थित नहीं हो उठता !

प्रविष्ट होकर कमलकिशोर ने कहा—"अरे अभी रोशनी नहीं की ? क्या बात है माया ?—तबियत तो ठीक है न ?" कहकर उन्होंने स्वयं ही पास की एक स्विच दबा दी—उनकी बगल ही में मिस्टर त्रिलोक नारायण खड़े हुए थे !

देखते ही एकदम त्रिलोक नारायण आगे बढ़े, और अत्यन्त उत्साह से हाथ बढ़ाकर बोले—

"हल्लो मिस माया !–गुड इविनिङ्ग ! कितना आशातीत है कि तुम भीतर ही हो !–सौभाग्य, गुडलक !"

माया संयत रही !—केवल हाथ जोड़कर उसने कहा—"नमस्ते ! बैठिये--" त्रिलोक का 'मिस' शब्द उसके घाव पर नमक बन गया ?

तो क्या माया के पुनर्विवाह की यह कथंचित प्रवंचना त्रिलोक बाबू के ऊपर प्रकट हो गई ?—एक गैर व्यक्ति के सामने-गैर भी वही, जो एक बार उसका प्रणय-प्रार्थी रहकर उसके पति के कारण ही माया के हृदय से बिदा पा चुका है, उसी गैर के सामने माया के विवाह की ट्रेजिडी प्रकट हो, यह सोचकर एक क्षण में ही माया लज्जा, जड़ता, विजृम्भ—न जाने क्या-क्या से भर गई। त्रिलोक का यह सम्बोधन मानो सशरीर होकर उसका उपहास करने लगा ! इच्छा हुई कि वह वहाँ से भाग जाय--पर कहाँ और कैसे ?

कमल किशोर ने परिस्थिति को सम्भाल लिया ! बोले—"क्या

सचमुच तबियत ज्यादा खराब है माया ?—अच्छा हुआ कि तुम घूमने नहीं गईं !—डॉक्टर तो प्रतिदिन ही मना करता है—क्या कहूँ त्रिलोक बाबू ! आप कुछ अन्यथा मत समझ जाना ! इसकी तबियत कुछ दिनों से खराब है !—"

त्रिलोक ने कहा—"अच्छा ?—क्या रोग है ?—बुरी खबर सुनाई यह तो आपने !"—तीनों ही कुर्सियों पर बैठ गए !

माया अपनी विवशता को धैर्य से जीत चुकी थी—स्वयं ही बोली—

"यही साधारण-सा मौसमी बुखार जिसके लिए कोई चिन्तित नहीं होता ! आप अपनी कहिए —स्कूल जब से छूटा, आपने तो सुध ही नहीं ली !"

कमल किशोर ने प्रसन्नता से माया के परिवर्त्तन को लक्ष्य किया, और दोनों की बातों में रंग जम जाय इसलिए वहाँ से चल देना उचित समझा ! इसके पहले कि त्रिलोक माया के प्रश्न का उत्तर दे, कमल किशोर बोले—

"तो मुझे थोड़ी देर के लिए छुट्टी है न त्रिलोक बाबू ? अभी ही यदि यहाँ से नहीं चल दिया तो मेरा काम अधूरा रह जायगा। माया है ही ! बिटिया ! इनके आतिथ्य का और भोजन का प्रबन्ध —!"

माया ने हँसकर कहा—"अब ये कालिज के त्रिलोक नारायण नहीं हैं पिताजी !—'एम्पायर केफे' के अतिरिक्त किसमें शक्ति है कि इनकी डिनर का प्रबन्ध ठीक तरह से कर सके ! न हो तो, जाते हुए आर्डर देते जाइएगा। साथ के लिए किसी का प्रबन्ध कर ही दूंगी !"

कुछ अप्रतिभ होकर त्रिलोक नायायण ने कहा—"तकल्लुफी क्यों करती हैं मिस माया ! मेरा तो काम यहीं अच्छी तरह चल जायगा ! लेकिन अगर मुझसे छुट्टी पाने का इरादा हो तो बात दूसरी है !"

"नहीं नहीं; केवल आपकी असुविधा ही का खयाल था। वैसे यह तो आपका घर ही है। तो पिताजी! आप जल्दी ही लौटेंगे न?"

त्रिलोक ने कहा—"हम लोग आपकी राह देखेंगे!"

"मैं बहुत जल्दी लौट आऊँगा!" कहकर कमल किशोर बाहर होगए। त्रिलोक और माया की चार आँखें हुईं!

"आज हमारी याद कैसे आ गई त्रिलोक बाबू?"

"शिकायत कर रही हो न माया?—परन्तु भूल रही हो! विवाहिता लड़की को याद करना पाप है! जानती नहीं?"

"और चिट्ठी लिखना?"

"वह पाप है, और यह है अपराध अगर पति देवता न माने!—पति देवता भी तो तुम्हारे—गँवार के हाथ हीरा पड़ गया!" माया के कानों पर मानो एक चोट पड़ी, पर सम्हलकर बोली, "गँवार ही को चिट्ठी लिखकर थोड़ा हाल पूछ सकते थे!—थोड़ी चालाकी ही सही!"

"खूब माया, खूब! लेकिन, नवनीत को चालाकी से सर करना बड़ा मुश्किल है! क्या यह भी तुम नहीं जान सकी?—जाने दो इन बातों को। रही तुम्हारी याद की बात! सबूत दूँ क्या?—मैंने अभी तक विवाह नहीं किया! शायद कारण मुझे न बताना पड़ेगा, किन्तु वह तुम्हारी याद का प्रमाण तो है ही!—नहीं क्या?"

"जरूर है! मैं आपके निकट ऋणी हूँ, किन्तु दिवालिया ऋणी त्रिलोक बाबू। जहाँ आपने विवाह का सोचा तक नहीं, वहाँ मैं पूरा-का-पूरा विवाह कर चुकी हूं—तब तो, मेरे विवाह कर लेने के कारण मुझसे नफरत तो नहीं करते?"

"नफरत!—मैं और तुमसे?"

"कम-से-कम न्याय तो यही है! विवाहिता मैं हूं ही—और वे ही गँवार इस हीरे को मुट्ठी में थामे हुए हैं—और आप हैं कि अपने बीते

प्रेम की याद बराबर बनाए हुए हैं ! हिम्मत तो कम नहीं है आपकी त्रिलोक बाबू !"

हँसकर त्रिलोक बोला, "तुम्हारी ही कौन कम है ! गंवार की मुट्ठी में पड़कर तुम अपने-आपको मिट्टी होने से बचाए रही ! गंवारों में ताकत तो होती है, पर बुद्धि नहीं। और स्त्री में चाहे ताकत न हो, बुद्धि अवश्य होती है ! मुझे आश्चर्य होता है माया, कि चार वर्ष तक तुम उस गंवार को प्रेम करते रहने का नाटक किस तरह करती रहीं ?"

माया दृढ़ भाव से बैठी रही। नौकर चाय की ट्रे रख गया था— चाय बनाते हुए उसने त्रिलोक की ओर देखा, और पूछा--

"आपका तात्पर्य ?"

सिगरेट की राख झाड़कर त्रिलोक ने बिस्कुट को मुंह में दबाया और बोला—

"तात्पर्य तो स्पष्ट है । प्रयोग बुरा नहीं होता; तुम भी एक प्रयोग तो कर आईं ! आज हम दोनों प्रेममय-जीवन का ऊषा काल देख रहे हैं, और प्रयोग कर लेने के बाद में उसकी रंगीनी और भी बढ़ गई है ! वेल्स तो इस पूर्वानुभव को बहुत महत्त्व देता है, वह तो यहाँ तक कहता है कि प्रत्येक मनुष्य को वैवाहिक जीवन से सुखी होने के लिए एक विधवा से विवाह करना चाहिए !"

माया को काठ मार गया ! वह तो त्रिलोक को बातों में भुलाना चाहती थी, इसीलिए वह उससे खिलवाड़-सा कर रही थी। आँख उठाकर माया ने देखा कि यह व्यक्ति खिलवाड़ करने लायक नहीं है ! चाय का कप आगे बढ़ाती हुई बोली—

"शक्कर और चाहिए तो ले लीजिएगा !"

कप लेकर त्रिलोक बोला, "मैं जानता था कि मेरी बात का तुम उत्तर न दोगी ! हिन्दुओं के संस्कार ही ऐसे बुरे हैं कि पढ़-लिख कर भी उन्हें फेंका नहीं जा सकता !—इसीलिए तो स्वयं तुमसे वह चिट्ठी नहीं लिखी गई !"

"कौन-सी चिट्ठी त्रिलोक बाबू !"

"वही तुम्हारे पिता की ! और सुनकर प्रसन्न होओगी, उस गँवार को भी बुद्धि आने लग गई मालूम देती है, आखिर चार वर्ष तक तो तुम्हारे साथ का सौभाग्य प्राप्त कर चुका है !—वह अब हमारे रास्ते में न आयगा ! यह उसकी चिट्ठी देखो !"

त्रिलोक ने नवनीत की चिट्ठी माया के सामने पटक दी !—चाय पीते-पीते ही माया उसे पढ़ गई; माया के संमुख सम्पूर्ण रहस्य स्पष्ट हो उठा ! तो यह कूट-चक्र उसीके पिता का चलाया हुआ है !—उन्होंने उसके पूर्व-विवाह की प्रवंचना का वर्णन लिखकर पुनर्विवाह का प्रस्ताव भी कर दिया, और इसकी उसे खबर तक नहीं ?—इतनी बड़ी बात के लिए उससे पूछना भी उन्होंने उचित नहीं समझा ?—लज्जा और अपमान की भावना से उसका सम्पूर्ण मुख-मंडल रक्त हो उठा !

त्रिलोक कुतूहल-मिश्रित आनन्द के साथ माया के आन्तरिक संघर्ष को लक्ष्य कर रहा था। बोला—

"इतनी गरम चाय क्यों पीती हो ? कुछ ठण्डी हो जाने दो !"

दुर्निवार क्रोध से माया और अधिक संतप्त हो उठी, शीघ्र ही चाय को खत्म करके बोली—"आपके भोजन के लिए कह आऊँ !" जब माया चल दी, तो हँसकर त्रिलोक ने अपनी चाय खत्म करने में मन लगाया ! और चाय के बाद सिगरेट का हुताशन करने लगे ! पाँचेक मिनट बाद माया प्रविष्ट हुई तो वह आत्मस्थ हो चुकी थी, सम्पूर्ण परिस्थिति को उसने अवगत कर लिया था !

त्रिलोक ने कहा—"क्या अपने पिता की चिट्ठी भी देखना चाहती हो ? यह है !" कहकर उसने एक और पत्र सामने पटक दिया, किन्तु माया को अब और क्या जानना बाकी था ? उसने चिट्ठी को छुआ तक नहीं !

चिट्ठी उठाते हुए त्रिलोक बोला—"मुझे दुःख है, मुझे जानना

चाहिए था कि तुम्हारे पिता तुम्हारी सम्मति के बिना मुझे पत्र लिखते ही क्यों ? नहीं ?''

"आप ठीक कहते हैं ! ''माया अपने पिता का अपमान नहीं करवाना चाहती थी और न अपना ही ! वह जानती थी कि उसके पिता ने उसके अमङ्गल की बात तो कभी न सोची होगी !—इस नई परिस्थित का सामना उसे किस तरह करना चाहिए, यह सोचने के लिए उसे समय की आवश्यकता थी; और वह कुछ निश्चित कर सके उसके पहले आज का यह आकस्मिक प्रसंग यदि बिना किसी प्रकार की कटुता के समाप्त हो जाय। तो कितना अच्छा हो ! दूसरे दिन के लिए तो वह कुछ-न-कुछ तै कर ही लेगी।

कुछ देर तक धुँए का बादल छोड़ते हुए त्रिलोक ने कहा, तुम्हारे पिता से अभी इस बारे में बात-चीत तो हुई नहीं, किन्तु उसका उत्साह तो इस पत्र से साफ है ! क्या कहती हो ?—बल्कि गरज तो हमारी ही है माया ! जल्दी के लिए तो हमें ही प्रयत्नवान् होना चाहिए !''

माया ने कहा—''आपने कैसे समझ लिया कि यह गरज मेरी भी है ?''

हंसकर त्रिलोक बोला—''मेरी ही सही !—मगर अब इस तकल्लुफी की जरूरत ही क्या है ?—पढ़ी-लिखी हो, अनुभव-हीन भी नहीं—''

''अनुभव-हीन तो आप भी नहीं मालूम देते !—पर मैं यह शिकायत करूँ ही किस बल पर ! अच्छा यह बताइए, पिताजी के इस पत्र पर आपको विश्वास होगया ?''

''क्यों न करता ! क्या मैं तुम्हें जानता नहीं ?—क्या मुझे यह समझाने की आवश्यकता है कि तुम मुझे किस तरह चाहती थीं ?—मुझे विश्वास है, विवाह के बाद भी तुम मुझे स्मरण करती रहीं ! जब मेरा हृदय ही तुम्हें नहीं भूल सका, तो मैं कैसे यह नहीं जान पाता माया !''

—किन्तु तभी माया के पिता ने कमरे में प्रवेश किया ! बात-चीत समाप्त हो गई, माया के मन पर से मन-भर की शिला हट गई, पर वही जाकर मानो त्रिलोक की छाती पर जम गई !

कमल किशोर ने हँसते हुए कहा—"न हुई न अधिक देर !"

माया उठ खड़ी हुई, बोली, "कहाँ ?—इतनी देर तो कर दी आप ने!"

कमलकिशोर ने सहजरूप से आते-आते ही त्रिलोक के अन्तिम शब्दों को सुन लिया था, और सुन कर उन्हें अपनी आशा सफल होती दिखाई दी। प्रसन्न तो वे थे ही, त्रिलोक को लक्ष्य कर बोले—"क्यों त्रिलोक बहुत देर होगई मुझे ?"

"बिलकुल नहीं; माया आपको बहुत चाहती है न, इसलिए उसे थोड़ा समय भी बहुत मालूम दिया !"

सुनकर माया गर्व से मुस्करा उठी, विजय की भावना से वही दृष्टि त्रिलोक पर भी डाली, त्रिलोक ने उसका स्वागत किया !

कमल किशोर ने कहा—और भोजन का प्रबन्ध तो होगया न, या भूल गई ? क्या बताऊँ त्रिलोक, यह मेरी बिटिया, जितनी चतुर है उतनी ही भोली भी ! न तकल्लुफ जानती है, न पसन्द करती है ! पर चाय-वाय तो पिलाई, या वह भी नहीं ?"

त्रिलोक ने कहा—"चाय ?—अजी इनकी तकल्लुफी और मेहमानदारी से तंग आगया मैं तो—"यह-लो, वह-लो, आप कहते हैं ये तकल्लुफी-मेहमानदारी नहीं जानतीं—मैं कहता हूं वह कोई इनसे सीखे !—इतना आदर, इतना अपनापन, मुझे तो आज पहले-पहल मिला ?"

माया ने त्रिलोक की ओर देखा, आश्चर्य से—दृष्टि टकराते ही त्रिलोक ने मुस्कराते हुए कहना जारी रक्खा,

"और निश्चित हुआ है कि कल संध्या को हम दोनों ही घूमने जाएंगे !"

"अवश्य अवश्य !—बल्कि डाक्टर भी अवश्य ही इसमें सम्मति दे देगा !"

माया अभिभूत-सी देखती रही। पिता की इस विशाल प्रसन्नता में विक्षेप डालने का न तो उनको साहस ही रहा, और न समय ही !

किन्तु इस दुस्साध्य व्यक्ति की ओर देखकर वह एक ही क्षण में मानो सिहर उठी ! पिता को लक्ष्य करके उसने कहा—

"चलिए पिता जी, नीचे भोजन का प्रबन्ध देख लें !"

दूसरे दिन तीसरे पहर से ही कमल किशोर एक आवश्यक कार्य से बाहर चले गए ! पुत्री के प्रणय-काण्ड में पिता के अनुपस्थित हो जाने की यह भूमिका अवश्य ही प्रेमियों के लिए बड़ी वांछित रही है। कमलकिशोर ने यह कर्त्तव्य बड़ी निष्ठा के साथ सम्पन्न किया !

और जब कि माया एक बीते हुए दुस्स्वप्न की स्मृति के समान कल की असम्बद्ध घटनावली का विहंगावलोकन कर रही थी, तभी नीचे कार के रुकने की ध्वनि मालूम दी, और दूसरे ही क्षण मुँह में सिगरेट दबाए सशरीर त्रिलोक नारायण भी आ खड़े हुए !

निष्फल क्रोध से होठ काटते हुए माया ने अभिवादन किया !

त्रिलोक ने कहा, "अभी तैयार भी नहीं हुई ? खूब ! भूल गई क्या ! कल तै हुआ था कि आज संध्या को हमें घूमने चलना है !"

"तै हुआ था ! सच कहते हैं आप ?"

त्रिलोक मुस्करा उठा—"ओह, तो कल की नाराजगी अभी दूर नहीं हुई !—बात यह थी कि कल यह प्रस्ताव करना चाह तो मैं बहुत देर से रहा था, किन्तु तुम्हारी बातों में कुछ सुधि ही नहीं रही ! तभी आ गए तुम्हारे पिताजी ; बड़ी विवश परिस्थिति में कल की मेरी कामना प्रगट हो गई ! परन्तु क्या तुम्हारी ओर से मुझे इतना भी अधिकार नहीं है क्या !"

"मेरी ओर से ?—"माया किंचित् मुस्करा उठी;—"किन्तु यह तो आप जानते हैं कि घूमने जाने की मेरी तो कोई वैसी इच्छा प्रगट न हुई !"

"कोई बात नहीं—मेरी कामना है, और मैं आज नए सिरे से प्रार्थना करता हूँ !"

"किन्तु मेरा तो सिर दर्द कर रहा है !"

"तब तो और भी अधिक आवश्यक है वि
हवा की तुम्हें ज्यादा जरूरत है !"

"त्रिलोक बाबू, आप जाइए मेरा स्वास्थ्य
चल सकूँगी !" और वह कोच पर बैठ गई।

त्रिलोक भी पास ही बैठ गया और बोला-
लिए नहीं आया हूँ माया, मैं आया हूँ तुम्हा
गई, तो मैं क्यों घूमने जाने लगा ?" एक क्षण
माया कुछ कहे, किन्तु जब वह नीरव बैठी र
कहना प्रारम्भ किया—"तुम्हारे पिता ने पत्र लिख
दिया है कि तुम्हारे साथ मेरा विवाह हो जाए !—
लिए तो यह स्वर्ग का वरदान है, इस जीवन में मैंने
किया है माया! किन्तु दुर्भाग्य !—मेरी कामना पूर्ण न हुइ
नवनीत का घर बसा दिया ! मेरे हृदय पर क्या बीती, इसे कहने
लाभ होगा—किन्तु इतने मात्र से तुम समझ सकती हो कि सुवि
और साधन होते हुए भी मैं अपने-आपको अन्यत्र विवाह के लिए तैयार
नहीं कर सका—"

"मैं इसके लिए आपकी आभारी हूँ त्रिलोक बाबू ! पर सचमुच मेरा सिर दर्द कर रहा है ! गम्भीर विषय पर बात-चीत करना मेरे लिए लाभदायक न होगा !"

"किन्तु मेरे लिए तो होगा ! तुम जानती हो कि दुर्निवार इच्छा के बावजूद भी मैं यहाँ अधिक नहीं ठहर सकता ! पैसे की मुझे अधिक चिन्ता नहीं, किन्तु आवश्यक मुकदमों में अनुपस्थित रहने से जिस बदनामी की आशंका है, वह हमारे भविष्य जीवन के सुनहरे स्वप्न के लिए कभी हितावह न होगी। इसलिए जाने के पहले, तुम्हारे थोड़े मस्तक-शूल के मूल्य पर भी, अपने जीवन की एक-मात्र आशा के प्रति अपने हृदय की बात कह लेने दो माया—"

तभी एक दासी ने किसी कार्य से भीतर प्रवेश किया। माया ने

पर हाथ रखकर इशारे से उसे चुप कर दिया !
क चुप नहीं रहेगा—कहीं आगे उसकी बातें
हो जायं, तब यदि किसी दासी ने कुछ सुन
ाना भी कठिन हो जायगा। बोली—
खिए। मैं तैयार हो लेती हूँ ! सिर दर्द जब
ो बन्द हवा की अपेक्षा सड़क की मुक्त वायु
ीघ्र ही वह बाहर चली गई। त्रिलोक ने रूमाल
ीशे साफ किए। दूसरी सिगरेट निकाल कर
ने लगा ! पाँच मिनट बाद दरवाजे ही से माया
।"—और नीचे उतर कर गाड़ी की पिछली सीट पर
ठ गई ! बोली—
ी चाहती कि आप मुझे शहर में घुमाएँ ! शायद मेरी इतनी
ो आप मान लेंगे।"

त्रिलोक एक क्षण चुपचाप खड़ा रहा, फिर बोला—"माया ! आखिर तुम्हारा मतलब क्या है ? यदि मुझसे तुम सचमुच ही रुष्ट हो तो—"

माया ने हँसकर कहा—"यह तुनुक-मिमाजी कब से आ गई आपमें ?—कालेज में तो आप बड़े सीधे थे—मतलब तो मेरा बड़ा साफ है ! सिर दर्द कर रहा है, शहर की गन्दी हवा से कहीं वह बढ़ न जाय, यही तो मतलब था !—"चलिए बैठिए !"

त्रिलोक ने कुछ न कहा; गाड़ी में बैठकर उसने गाड़ी रवाना कर दी। शहर को एक ओर छोड़कर गाड़ी दूसरी ओर बढ़ने लगी !

त्रिलोक का मन रहस्यमय हो उठा था ! माया के मन में दुविधा भरी हुई है, यह तो स्पष्ट है, किन्तु कार्य साधन के लिए उसे कौन-सी भूमिका स्वीकार करनी पड़ेगी !—ऐसी अवस्था में मनुष्य अपने मन की दुविधा को एक ओर रखकर अवसर के हाथ अपनी पतवार थमा देता है, फिर जिस ओर भी नाव चली जाय !—एक तो अवसर को उत्पन्न करना, और दूसरे उसका लाभ उठाना, यही उसके विचार का

विषय था ! और माया पीछे की सीट पर बैठी
तो किस तरह ?

कार शहर को काफी पीछे छोड़ आई थ
कर रहा था, शीघ्र गति से पार होते हुए वृक्ष
सांस छोड़ देते थे। माया अपने-आप में खोई
भव कर रही थी ! सामने से एक बैल गाड़
रफ्तार से घबराकर उसके बैल चौंक उठे। म
तो धूल के एक अभेद्य गुब्बार के सिवा कुछ दि
अनुभव हुआ कि गाड़ी बहुत तेज जा रही है !

परन्तु, इतनी तेजी किसलिए ?—क्या इस
और दूर है ?—शहर से तो बहुत दूर निकल आये
किस ओर ?

माया आशंकित हुई, कहीं उसे त्रिलोक भगाए तो नहीं ले
है ? इतनी चिप्रगति !—क्या यह स्वाभाविक है ?--वह अ
नितान्त जनशून्य जंगल, सघन होती हुई रात्रि, और एक वृत्तियों के
दास उच्छृङ्खल युवक का साथ !—माया घबरा उठी, यह बात तो उसे बहुत पहले ही सोच लेनी चाहिए थी, यदि कभी उस पर विपत्ति टूट पड़ी तो उद्धार का मार्ग कहाँ है ?

माया ने चिल्लाकर कहा—"त्रिलोक बाबू ! अब और कहाँ लिये जाइयेगा ?"

उत्तर में मुस्कराकर त्रिलोक ने खाली धुएँ का गुब्बार मुँह से माया की ओर छोड़ दिया, गाड़ी की शीघ्र गति में वह जल्दी ही पीछे छूट गया !

"आप गाड़ी रोकते हैं या नहीं ?"

"जल्दी क्या है माया ?"

"मुझे डर लग रहा है ! मैं चिल्लाती हूं !"

ो ही हो !—और रहा डर !—सो मुझ ही
ार किसलिए सुनूँ तो ?"

तो मैं नीचे कूद पड़ूँगी !"

लगता हो तो कहो, धीमी कर दूँ ?"

ो चलिए !"

पर रुकी नहीं; आगे ही बढ़ती रही ।

ुम डर क्यों रही हो ! आगे आ जाओ ! पीछे
ुलियत नहीं रहती; नाहक दोनों को चीखना

ार नहीं दिया, न वह आगे की सीट पर ही गई;
की आँखों में आँसू भर गए ।

धीमी हो गई, त्रिलोक ने कहा—"रफ्तार से घबराया
माया ! रफ्तार ही तो शक्ति है ! शक्ति को खोकर फिर
रह क्या जाता है ? जानती हो,'जवानी क्यों मधुर है ?—इसी-
ए कि उसमें शक्ति है, उसमें गति है; बुढ़ापे में तो एक्सलेटर (चाल
बढ़ाने का यंत्र) काम ही नहीं देता, और रहा बचपन, सो उसमें भागने
का पैशन (Passion वासना) कहाँ से लाया जाय ?"

शब्द माया के कानों तक पहुँचे जरूर, पर वह अन्यमनस्क-सी ही
बैठी रही । गुजरते हुए वृक्षों की आनत शाखाएँ । मोटर के पास आते
ही घबराकर कांप उठती थीं, और मोटर में बैठी हुई माया का हृदय
भीतर-ही-भीतर मोटर का ध्यान आते ही उससे भी अधिक काँप
उठता था !

अकुण्ठित भाव से त्रिलोक की मोटर जा रही थी, पार्श्व में लगे
हुए कांच में वह माया की प्रत्येक हलचल लक्ष्य कर रहा था, बोला—

"लोग विवाह क्यों करते हैं, समझ देखा है कभी इसे ? इसी तेज
रफ्तार को पाने के लिए ! आज तुम मोटर की इस साधारण-सी रफ्तार
से घबरा गई, किन्तु नवनीत का सम्बन्ध स्वीकार करके जिस दिन तुम

विवाह की मोटर पर चढ़ी थीं, तब क्या प्रल
अपने और नवनीत के दुर्निवार यौवन पर फि
न था ? आज तो तुम दोनों में एक विच्छेद ह
लिए नहीं कि तुम लोग अपने यौवन की स्थि
ऊब गए हो ?—क्यों धोखा देती हो अपने-अ

"बस कीजिए त्रिलोक बाबू! मैं आ
रोक दीजिए!"

तब तक सूर्य कभी के अस्त हो चुके थे!
आकाश के शीर्ष में अधिष्ठित होकर चमक रहा
वाणी सो चुकी थी, नीचे जमीन पर सभी कुछ
शून्य था। केवल कभी-कभी मीठी हवा के झोंकों
मरमरा उठती थी, उनमें बैठे हुए पक्षी भी अपने
या फिर कभी कोई भूला-भटका पक्षी अब भी कभी इस वृ
कभी उस पर बैठकर अपने विस्मृत नीड़ को सुधि ले रहा था।

मैदान के एक हिस्से में आखिर वह जाकर धीरे-धीरे खड़ा होगया त्रिलोक ने दूसरी सिगरेट लगाई, खिड़की खोली, और पीछे की ओर आकर खड़ा हो गया, फिर थोड़ा मुस्कराकर बोला—

"मैं जानता हूं, तुम पूछोगी कि मैं रुक क्यों गया, वापिस मुड़कर चलता क्यों नहीं ?"

"स्त्रियों का दिल बड़ा कमजोर होता है न त्रिलोक बाबू! पुरुष की लम्पटता का उन्हें बहुत पहले से पता लग जाता है, किन्तु फिर भी कदाचित् मोह या भ्रम ही में कहीं त्राण का उपाय निकल जाय, इसलिए वे जानकर भी अनजान बनी रहती हैं, तब ऐसे प्रश्न के सिवा वे पूछेंगी ही क्या ?"

"यानी ?"

"मैं भी एक वैसी ही दुर्बल-हृदय की स्त्री हूँ। मैं भी वैसा ही

ही उसका अनुमान लगा लो, यह कोई

: तुम समझ गईं माया, पर क्या मेरे हृदय
ायगा ?"

समझने के लिए मेरी असहाय अवस्था से
होगा ही कौन-सा !—समझा दीजिए,
मिलेगा !"

बैठ गया और बोला—"किन्तु यह उत्तम
नहीं रहा है—तब तक कोई समझौता नहीं

या मेरे शरीर से ?"

। मेरे लिए दोनों एक बात हैं ! निरा भौतिक-
भुलावे को किसी बढ़िया नाम से छिपाने की मुझे आदत
."

"वैसे छिपाने की जरूरत ही क्या है ?—पर इन सब बातों का मतलब क्या है—? क्या, आपके सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मैं मजबूर हूं !"

"कोई आवश्यक नहीं !—किन्तु माया, ऐसा सुन्दर समय और अवसर तथा सुविधा हो तो, दूसरे का क्रोध क्या इसके उपभोग में आनन्द लेने देगा ? मैं जानना चाहता हूँ कि आखिर तुम मुझ पर क्रुद्ध क्यों हो !"

"मुझे भगा लाए हैं, आप—कृतज्ञ होना चाहिए न मुझे आपका ! क्यों ?"

"भगा लाया ही सही !—पर जब तुम जानती हो कि एक दिन मेरा और तुम्हारा विवाह होना ही है तो फिर इस विरक्ति का अर्थ ?"

माया तनकर बैठ गई, बोली, "यही कि यह विवाह नहीं होगा।"

"और तुम्हारे पिता की इच्छा ?"

"पिता की इच्छा बहुत नीचे की वस्
और हिन्दू-कन्या के दो विवाह नहीं होते !

त्रिलोक बोला—"दो नहीं होते, पर
सही, हम दोनों का वही तो विवाह होगा

माया ने त्रिलोक की ओर देखा; पाँयत
तरह माया के उत्तर के लिए उत्सुक मालूम

माया ने कहा—"त्रिलोक बाबू, मुझे
हैं ? मुझे आपसे बात करने में भी घृणा मा
उत्तर ही की आप राह देख रहे हों, तो मेरा

"तुम्हारी इच्छा ! परन्तु अपने-आपको
नीत को नहीं पा सकोगी माया !"—त्रिलोक
आवेश में आकर कहने लगा,—"मुझे तुम्हारे अ
जाति के पतन पर तरस आता है। चार वर्ष तक ए
रत ठोकरें खाकर भी जिसके भाग्य में निकल जाना बद
निकल जाने के बाद भी जो उस दरवाजे का मोह न छोड़ स
स्वाभिमान का क्या मूल्य है ? हाय स्त्री, तुम्हारा यह पतन ! भारतव
इतिहास में भी सीता-जैसी नारियों का अभाव नहीं है माया, जो पति
के द्वारा निकाल दी जाने पर पृथिवी की गोद में छिप जाना पसन्द
करती थीं ! पति की अवज्ञा का दण्ड कम नहीं होता !—साधारण
दुनिया में पति के अप्रेम का परिचय जिस बात से दिया जाता है, उसे
शायद तुम नहीं जानतीं—पर दुनिया जानती है ! इसलिए जब कभी
कोई स्त्री कहेगी कि तुम्हारे पति की अवज्ञा का कारण शायद तुम्हारा
दुराचरण है, तो—मैं समझता हूं—उस लज्जाहीनता का दोष भी तुम
हँसते-हँसते सह लोगी या—"

बैठी हुई माया खड़ी हो गई, और डपट कर बोली—"त्रिलोक बाबू!
चुप रहिए—

"पर दुनिया को चुप नहीं कर सकोगी माया ! विधवा के जीवन

ना शायद न मिले, किन्तु सधवा के जीवन
ल-तिल करके अपनी आकांक्षाओं के रूप
ने को विडम्बना बहुत कुछ स्पृहणीय नहीं

ही चाहती हूँ! त्रिलोक बाबू! मैं आप
पहुँचा दें, मैं जिऊँगी तब तक आपका

न!—कब्र तो तुम अभी से खोद रही
ने ही लिए नहीं, समेटना चाहती हो उसमें
मझ सकी, उसने प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा!
ुम सोचती हो, समय नवनीत को तुम्हारे
ायद करुणा की भीख माँगकर भी तुम उसे
। अब मैं वह सब देखना सहन कर सकूँगा?—नहीं
मेरी पिस्तौल में जरूर ही ऐसे मौकों पर खुजली चल
ती है!—केवल एक गोली सारा फैसला कर देगी! देखती
से?"

कहकर त्रिलोक ने पेण्ट की जेब से एक रिवाल्वर निकाल कर आगे दिखाया। माया भय-विह्वल हो गई, देखकर त्रिलोक बोला—"डर गईं?—नहीं, यह तुम्हारे लिए नहीं है माया, यह है नवनीत के लिए अगर मेरे और तुम्हारे मिलन में वह और अधिक बाधक हुआ, और फिर दूसरा शिकार हूँगा मैं खुद!—इसलिए कि फाँसी के ऊपर चढ़ने में मुझे उत्साह नहीं मिलता! समझ रही हो?—यह चाँदनी रात बड़ी मादक है, उतर आओ नीचे! क्रोध करने का और भी बहुत अधिक समय मिलेगा!"

माया ने साहस संचित करके उत्तर दिया, कातर भाव से—"यही कृपा कीजिए त्रिलोक बाबू! मुझे लक्ष्य करके एक गोली चला दीजिए!"

"क्यों?—तुम्हें लक्ष्य करके क्यों?"

"इसलिए कि मैं जीवित नहीं रहना

"परन्तु तुम्हारे चाहने न चाहने से
हिन्दू लड़की के जीवन पर उसका स्वय
होता है उसके पति का। और उस दावे
करूँगा—"

त्रिलोक आगे बढ़ा, उसने अवश माया
खींचकर उसे मोटर के नीचे ला खड़ा किय
ही न सकी कि क्या हो रहा है; तब भी
में था!

त्रिलोक ने कहा—"तुम जीवित नहीं र
रहना चाहता हूँ, और आदमी की तरह जीवि
जीवन के आनन्द को छीनने का तुम्हें क्या अधि
रहूँगा और तुम्हें लेकर जीवित रहूँगा!" माया
सुनती रही, और त्रिलोक कहता रहा, "तुम्हें नवनीत क
यदि उसका तुम्हें भय हो, तो मैं उसे न केवल मार्ग से ब
से हटा देने की व्यवस्था कर सकता हूँ! बोलो—चुप क्यों हो!
क्यों नहीं?" और उसने पकड़े हुए माया के हाथ को झकझोर दिया।

किन्तु माया तब भी नीरव, खोई हुई खड़ी रही। त्रिलोक ने रिवाल्वर जेब में रक्खा, माया का शिथिल हाथ छोड़कर उसने दोनों हाथों से पकड़ कर उसके कन्धे हिलाए,—"बोलती क्यों नहीं तुम?—उत्तर दो!"

इस झकझोरने से माया आत्मस्थ हुई, बोली, धीमे स्वर से—"क्या?"

इस कम्पित स्वर से त्रिलोक चौंक उठा! ठोड़ी उठाकर चन्द्रालोक में उसने माया का मुँह देखा; रक्त की एक बूँद भी वहाँ न थी, आँखें शून्य, होठों पर तप्त-नीरसता—यही क्या माया का मुँह है?

"माया!"

पेपासित अधरों को माया के अधरों पर
ज्ञयों ने पिस्तौल का घोड़ा खींच लिया ?
ो गया ! त्रिलोक चार कदम दूर—माया
अकस्मात् ही उससे यह क्या हो गया ?
छा गया ! पता नहीं त्रिलोक जमीन
आ ! उसने दोनों हाथों से अपनी आँखें

कन्धे को पकड़कर त्रिलोक हँस उठा,
म्मीद न थी कि तुम पिस्तौल को चला ही
ादा लगी नहीं, कन्धा जरूर छिल गया है।
शरण लेनी पड़ेगी, पर अभी तो पाँच गोलियाँ
में ! लो मैं खड़ा हूँ !—सूने बिस्तर में रात बिताना
नहीं सहा जायगा माया !"

. ने आँखें खोलकर देखा—त्रिलोक गिरा नहीं, किन्तु खड़ा
ई, उसके काठ मारे हुए प्राण लौट आए, पर वह न कुछ बोली,
. हिली ही !

"मैं दे दूँ पिस्तौल ?—ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ेगी ! रात
का समय है, कोई जान भी न पाएगा। स्त्रियों में रूप होता है, उसका
सिक्का सब जगह चलता है, स्त्रियों के मुंह की झूठी कहानी भी पुरुषों
के सच की अपेक्षा अधिक भारी मान ली जाती है, एक किस्सा गढ़
लेना, तुम बच जाओगी !"

माया फिर भी कुछ न बोली, तो त्रिलोक ने पास आकर पिस्तौल
उठा लिया, और माया के हाथ में थमाने का प्रयत्न करता हुआ बोला
—"मुझे तुम्हारे प्रति शिकायत नहीं रही माया, किन्तु सचमुच ही मैं
जीवित रहना नहीं चाहता !—तुम मेरा अनुरोध स्वीकार कर लो !
आत्म-हत्या करने की कापुरुषता मुझसे मरते समय भी नहीं हो
सकेगी !"

"पर वह कापुरुषता मैं कर सकूँगी त्रिलोक बाबू ! लाइए दीजिए मुझे पिस्तौल !"

"तुम्हारी मुक्ति का यही मार्ग नहीं है ; जिसे तुम चाहती हो उसे प्राप्त करने का मार्ग तुम्हें सुलभ है, वहीं से मुक्ति प्राप्त करना माया! —किन्तु मेरे भविष्य में तो अँधेरा है ! मैं किस बल पर अब दुनिया में लौटूँ ?"

माया चुप खड़ी रही, क्या उत्तर दे !

"मैं तुमसे उत्तर नहीं चाहता ! मैं जान गया हूं, मेरे जीवन का मार्ग तुमसे नहीं खोजा जा सकेगा ?—पर मैंने खोज लिया है—यह पिस्तौल लो, और एक के बाद एक तब तक गोलियाँ छोड़ती रहो, जब तक मैं निर्जीव होकर निश्शेष नहीं हो जाता ! कर सकोगी ?"

माया ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु पिस्तौल लेने के लिए उसका हाथ आगे बढ़ गया ! त्रिलोक ने अपना हाथ खींच कर कहा—

"नहीं; तुमसे हत्या नहीं हो सकेगी !—तो फिर लौट चलें ! चलो, बैठो !"

त्रिलोक ने पिस्तौल जेब में डाल लिया, और मोटर की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके स्कन्ध से काफी रक्त निकल चुका था। पैर बढ़ाते ही उसे चक्कर आने लगे। बोला—

"सहारा दे सकोगी माया, मोटर तक ?—विश्वास करो, अब मुझसे तुम्हारी कोई बुराई न होगी !"—और वह वाक्य समाप्त करते न करते नीचे बैठ गया, बहता हुआ रक्त उसकी शक्ति को उत्तरोत्तर क्षीण कर रहा था—फिर बोला—

"एक बार यदि मोटर में बैठ गया तो मोटर को घर तक तो पहुँचा दूँगा !"

माया की आँखों में आँसू आ गए, अर्द्ध-स्फुट स्वर में बोली, "हे भगवान्, मैंने क्या कर डाला !"

त्रिलोक मुस्कराया, "तुमने क्या किया ?—तुमसे तो पिस्तौल तक

नहीं छूई जा सकती ! यह किया है शैतान ने, जो मुझमें ही था। शोक न करो। देखो, मैं सिगरेट पीना चाहता हूं, मेरा बाँया हाथ काम नहीं करता, माचिस लगाकर जला सकोगी ?"

त्रिलोक ने सिगरेट मुँह में लगा ली, माचिस निकाल कर माया ने उसे सुलगा दिया !

"एक काम और करो, यह रुमाल लो ; घाव को बाँध सकोगी ? शायद खून का बहना कम हो जाय !"

पर जब रूमाल पूरा न पड़ा तो माया ने साड़ी फाड़कर घाव को बाँध दिया ! त्रिलोक उठ खड़ा हुआ, माया ने कन्धे का सहारा दिया ! त्रिलोक आगे बैठा, बगल ही में माया भी बैठ गई। त्रिलोक कुछ मुस्कराया, पर बोला कुछ नहीं !

अष्टमी का चन्द्र अस्त होने की तैयारी कर रहा था। मोटर धीरे-धीरे शुरू होकर अच्छी रफ्तार से आगे बढ़ने लगी।

त्रिलोक ने कहा, "पीछे की सीट पर ही क्यों न बैठीं ? —घर पर तुम्हें यहाँ से उतरते देखकर--"

"मुझे अब इसका भय नहीं रहा है त्रिलोक बाबू !"

"त्रिलोक के प्रति क्या विश्वास पैदा हो गया है ?--परन्तु आज तक तो किसी ने त्रिलोक का विश्वास किया नहीं माया !"

"आज से सभी कोई करेंगे !"

कुछ क्षण चुप रहकर वह फिर बोला--"तुम्हारे पिता से क्या कहा जाय माया ?"

"जो आपका जी चाहे !"

"सच बात भी कह सकता हूँ क्या ?"

"यदि कह सकें तो सच ही कह दीजिएगा !"

"ठीक कहती हो ! कह सकूँ तो न ! यदि कुछ झूठ कहूँ तो बुरा न मानोगी न ! तुम सत्य से न डरो, पर मैं डरता हूँ !"

जब घर पर ये लोग पहुँचे तो अष्टमी का चन्द्र अस्त हो चुका था।

मथुरा नगर पर गम्भीर निद्रा छाई हुई-सी मालूम दे रही थी, किन्तु तब भी कमलकिशोर व्यग्र चित्त से प्रतीक्षा कर रहे थे। मोटर आते ही वे दौड़े!

त्रिलोक ने कहा--"कुछ न पूछिए बाबूजी! आप जरा अस्पताल तक चल सकेंगे?--बिलकुल अभी!"

कमलकिशोर ने पूछा, "ऐसी क्या बात है भाई! इस समय अस्पताल में--"

"वहाँ गए बिना उद्धार नहीं है! आप ही के पुण्य से बचे समझिए-! डाकुओं के एक दल से मुठभेड़ होगई! उनकी गोली का प्रसाद पाना ही पड़ा। बांया कंधा सारा उड़ गया है! गनीमत हुई कि माया बच गई, और इधर भी कन्धा ही शिकार हुआ, वरना--"

"अरे!"

"शायद उनका लक्ष्य कोई दूसरा ही व्यक्ति था। पास आ जाने पर जब उन्हें अपनी भूल मालूम दी, तो सिर पर पैर रखकर भागे; नहीं तो भगवान् ही जाने, क्या होता! सशस्त्र थे, जीवित रहना भी सम्भव था या नहीं, कौन जाने! माया, तुम विश्वास करो, चिन्ता न करना। अब तक तुम्हारे आश्रय में था, अब बाबूजी के आश्रय में हूँ!—"माया बहुत डर गई है बाबूजी!"

माया नीचे उतर गई! माया की जगह माया के पिता बैठ गए, और मोटर आगे बढ़ गई! जब तक मोटर दृष्टि की ओट न हो गई, तब तक माया उसी ओर देखती रहीं, फिर एक लम्बी साँस लेकर धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर चली गई! तीसरे पहर की ठण्डी हवा में दास-दासी सब सो रहे थे—अच्छा ही हुआ; माया व्यर्थ के बहुतेरे प्रश्नों से सहज ही बच गई!

(११)

चार दिन बीत गए, नवनीत का हाल जानने का कोई उपाय शेष न था ! अनिमंत्रित जाकर जो कुछ हो जाने का वह कारण हो गई है, यही नीलम के कम परिताप की बात नहीं ! आज नवनीत की कुशल जानने के लिए व्याकुल होकर भी इसीलिए स्वयं ही नवनीत के यहाँ चले जाने का उसका साहस नहीं हो सका। रही नौकर को भेजने की बात, सो नौकर के ऊपर अपने मनोविग्रह के प्रकट हो जाने से जिस लांछना और भद्दे पन की संभावना थी, वही कल्पना उसे रोक रखने के लिए अपर्याप्त न थी। किन्तु फिर भी नवनीत की कुशल जानने के लिए उसकी व्यग्रता बढ़ती ही गई !

नीलम जान गई है कि नवनीत को उसके नाम से चिढ़ है ! चिढ़ने का सबब शायद उसका नर्तकी-जीवन है ! परन्तु यदि पाठक ही यह नहीं समझेगा कि नवनीत स्त्री-मात्र से 'परहेज करता मालूम देता है, तो उसके साथ न्याय नहीं करेगा !—फिर, नीलम जो चाहे समझे !

अभी उस दिन वह एक सांघातिक चोट खाकर आया है। अवश्य ही हरनाम के ऊपर निर्भर तो किया जा सकता है, परन्तु जिसकी कुशल चाही जाती है, सचमुच ही कुशल के लिए उसे दूसरों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता ! तब ?—क्या करे आखिर वह ?—वह तो सिर के बल दौड़ जाने को तैयार है, पर क्या नवनीत उसका पहुँचना सहन कर लेगा ?

नवनीत ऐसा क्षुद्र क्यों है ?—वह पढ़ा-लिखा है, बुद्धिमान् है, और संस्कारों ने उसके हृदय को उदार भी बनाया है ! क्या वह नारी की उसी प्राचीन लज्जाकुल-दासता का ही पक्षपाती है ?

दासता ?—पातिव्रत के लिफाफे में अब इस मजमून को कब तक छिपाया जा सकता है ?—नर्तकी और गायिका होने से ही क्या कोई असम्मान्य हो गया ?—नृत्य और संगीत यदि असम्मान्य हैं, तो उन्हीं से समाज को तृप्ति क्यों मिलती है ? तब इस तृप्ति को प्राप्त करने

का साधन ही क्यों हेय है ?—पुरुष-प्रधान समाज में नारी के लिए, शरीर के प्रदर्शन के अतिरिक्त, जीविका प्राप्त करने का अन्य उपाय ही क्या है ?—और यदि प्रदर्शन ही का सवाल है, तो समाज की गृद्ध-दृष्टि से रक्षा कैसे प्राप्त की जाय ?—यदि नीलम-जैसी किसी नारी ने कभी साहस भी किया तो उसे कौन समझेगा ?—कदाचित् उसे निर्लज्जता का भी नाम दे दिया जाय !

फिर भी हाय री नारी, इस लोलुप नृशंस पुरुष-जाति ही में तेरी चरम-आसक्ति क्यों है ?—जिस पुरुष के जीवन का छल ही तेरे समस्त अमृत-स्रोत का मरुस्थल है, उसी में शाद्वल बनकर पड़े रहने की दुराशा तू कहाँ से लाई ?—तेरे जीवन की यह मृत्यून्मुखी आकांक्षा तुझे किस जीवन का सब्ज बाग दिखाती है ?—यदि पुरुष तेरे नारीत्व का राहु है, तो उसके कक्ष में गए बिना क्यों तेरा काम नहीं चलता ? क्यों तेरे जीवन की हाय ! हाय उसी कक्ष में विक्षिप्त होकर गिर पड़ने के लिए उतावली हो रही है ? चरम-नारीत्व के ध्वंस की यह व्यवस्था मनोविज्ञान की देन है, या सबल द्वारा निर्बल को पदस्थ करते रहने की अबाध मनोवृत्ति का परिचायक एक हीन संस्कार-मात्र !

हीन संस्कार-मात्र हो या मनोवैज्ञानिक सत्य; युगों से चली आती हुई एक परम्परा का अन्धानुसरण हो, या भौतिक आवश्यकता का एक सहज निसर्ग-सिद्ध परिणाम,—नीलम का मन यदि नवनीत की ओर उन्मुख हुआ है, तो उसकी इस व्यग्रता की कैफियत देने की कम-से-कम आज के पाठक के समीप तो एक लेखक की जिम्मेदारी नहीं हो सकती। किंतु बात यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती ! नीलम एक शिक्षिता रमणी ही नहीं, वह विचारशील भी है; दासता को भक्ति के रूप में स्वीकार करके, दैन्य से भी अपने-आपको बड़भागी समझने का नाशकारी मोह उसमें नहीं है !

नवनीत को वह चाहती है, यह स्पष्ट है ! इस चाहना का मूल वासनामय है या आध्यात्मिक, इसके विश्लेषण की नीलम को कोई आव-



श्यकता नहीं! न ही एक अथवा दूसरा सूत्र पाकर भी लज्जित वा कुण्ठित होना उसके लिए आवश्यक है। नवनीत के मोहक रूप को वह अस्वीकार नहीं करती, किन्तु स्वयं के भी अतुल-सौन्दर्य की स्वामिनी होने के कारण, वह उसके अधिक लोभ का विषय—कम-से-कम आत्म-सम्मान से बढ़कर तो—नहीं हो सकता! और अनुकूलता या संक्रमण से स्नेह के पल्लवित होने की तो बात ही यहाँ पर नहीं उठ सकती! यदि नवनीत का वश चले तो वह नीलम को शायद इस दुनिया में ही न रहने दे! प्रतीत तो ऐसा ही होता है!

मनुष्य का मन पल्लवित होता है स्वेच्छाचार में; जब कि उसका एक अपना व्यवसाय है, तब दूसरों के द्वारा आविष्कृत तथ्यों को वह सहज ही स्वीकार क्यों करने लगा? समाज की नीति जब कभी उस पर थोपी जाती है, शास्त्र-मर्यादा, देशाचार या और किसी भी प्रकार का स्वार्थमय या निस्वार्थमय भाव उस पर लादा जाता है, तो सहज ही वह विद्रोही हो उठता है! संयम से या शमन से कुछ उस पर काबू पा लेते हैं, कुछ नहीं पा सकते, और कुछ पाना ही नहीं चाहते! उनका कहना है कि मन की भी एक दिशा है, वह क्यों नहीं उस ओर जायगा! मार्ग नया है तो क्या हुआ? यात्रा का आनन्द तो नए मार्ग ही में मिलेगा! निर्विघ्न होने पर भी प्राचीन मार्ग का उनके निकट महत्त्व नहीं है!—वह यात्रा थकावट पैदा कर देने वाली जो है! नीलम तरुण है, उसका मन तरुण है, अन्ध विश्वास की लगाम यदि उसकी गति को मोड़ दे तो उसका तारुण्य किस काम का?

अतः नवनीत में आसक्ति होते हुए भी, और उसकी रोग-मुक्ति में उत्सुकता होते हुए भी नीलम ने अपने आत्म-सम्मान को महत्त्व दिया। अवश्य ही मनोविज्ञान कहता है कि ऐसे समय पर नारीत्व के पराजित होने में कोई दोष नहीं है, पुरुष के निकट नत-मस्तक हो जाना कदाचित् मनोविज्ञान की कोटि में गौरव का चिह्न भी हो;—किन्तु नीलम का





समस्त आत्मभाव इस सदियों के पंगु नारीत्व से बहुत ऊँचा उठ गया है, वह पराजय स्वीकार नहीं करेगी !

तीसरा पहर नजदीक था ! सितम्बर की अस्थिर जलवायु यदि सभी मनुष्यों के दिमाग को थोड़ा-बहुत अस्थिर कर दे तो क्या आश्चर्य है ! कभी बादल, कभी स्पष्ट सूर्य, कभी भयानक ऊमस और कभी एकाएक शीत—इन्हीं अतियों की चट्टानों में जीवन की धारा बह रही थी। किंतु आज आकाश साफ था, सूर्य की चमक में एक स्थिर गरमी वादा कर रही थी कि आज की संध्या विगत कई कर्दम-संध्याओं की अपेक्षा अधिक मनोहारिणी होगी !

किन्तु नीलम के जीवन की बढ़ती हुई परेशानी का अन्त कदाचित् स्पष्ट सूर्य के इस निर्भ्रान्त दावे में न था ! विजय पाने के लिए उसने अपनी स्वप्न सहचरी बीणा को उठाया, तार खींच-खाँच कर एक झंकार की; वीणा का मादक स्वर—भौतिक जगत् का स्थूल-सत्य—पीड़ा की समस्त ऐहिकता को दबाकर कमरे ही में नहीं, नीलम के परेशान विस्मृत प्राणों में भी गूंज उठा, उसकी वाणी मुखरित हो उठी।

अस्पष्ट स्वर में वह गुनगुनाती रही ! उसके कण्ठ का वह निबद्ध सौन्दर्य आज प्रथम बार उसके कर्ण-रन्ध्रों में मूर्त्त हुआ ! ओह ! किसके लिए वह आज तक गाती रही ?--क्या क्या निरर्थक गीत उसकी जीभ पर दूसरों को प्रसन्न करने के लिए स्वेच्छा से, विवशता से आसीन हुए ?—किन्तु एक दिन भी तो उसने अपने ही इस सौंदर्य का दर्शन नहीं किया ! कहाँ छिपा था इतने दिनों तक यह सौन्दर्य ?—

वह गुनगुनाती रही, केवल अपने ही पिंजर-बद्ध प्राणों की तुष्टि के लिए। सुनने वालों के लिए चाहे स्वर की स्पष्टता न हो—मोहकता भी चाहे न हो—किंतु उसका जो दिव्य अर्थ नीलम के कानों में झंकृत हो रहा था, उसे कौन समझेगा !

बाईं ओर अलमारी के पल्ले पर एक बड़ा काँच लगा हुआ था; पूरी साइज का, कदे आदम; जिसमें नीलम का वाम पार्श्व पूरी तौर से

प्रतिम्बित हो रहा था। जब उसका यह आत्मस्थ संगीत उसकी नस-नस में आनन्द का उच्छ्वास भर रहा था, तो अकस्मात् ही उसकी दृष्टि काँच के ऊपर जा पड़ी—उसकी मुग्ध आँखों के सम्मुख उसी के अपरूप-सौन्दर्य की चाँदनी शतधा होकर बिखर-सी पड़ी। वीणा बजाती हुई नीलम के सौन्दर्य का ज्वार काँच के उपकूल से टकराकर आज उसी के अन्तर में विक्रान्त हो उठा!

नीलम का शरीर विशेष सज्जा से सजा हुआ न था—उसकी अपेक्षा भी न थी! प्रदर्शन की भावना से मुक्त घर के सहज वातावरण में उसका सौंदर्य वनस्थली के समस्त-सौंदर्य की अपेक्षा कम न था! अवश्य ही वह उद्यान की सजी हुई क्यारियों के समान आयास साध्य सौंदर्य से अधिक दीप्त हो उठती, किन्तु सम्पूर्ण अरण्यानी के विहंगम-दृश्य के सामने एक क्षुद्र वाटिका का महत्त्व ही क्या होगा?

हमारी चेतना इन इन्द्रियों से परे है! इन्द्रियाँ तो वस्तु को ग्रहण करने का एक माध्यम-मात्र हैं। अतः जहाँ तक इन्द्रियों की सीमा है, वहाँ तक बनाव-शृंगार का महत्त्व है, किन्तु जब हमारे मन के समीप यह प्रश्न उपस्थित होता है, तो इन्द्रियाँ अपना दौत्य समाप्त करके ही लौट जाती हैं। मन की अदालत में निष्पक्ष भाव से जिस सौंदर्य की प्रतिष्ठा होती है, वह सौंदर्य आज नीलम को आवृत्त किए था! दर्शक के अभाव में वही स्वयं ही अपने पर अभिभूत हो गई! उसका वीणा-वादन और गीत-गुञ्जार दोनों ही एकाएक मन्द हो गए!

प्रेम करके जीवन के इसी अभूतपूर्व रूप को नारी उत्सर्ग कर देती है! पुरुष की अधिकार-लिप्सा पहले तो प्रेम की रंगीनियाँ दिखाकर नारी को भुलाती है, और जब वह स्वायत्त हो जाती है, तो अपने अधिकार को बनाए रखने के लिए वह बड़ी मनोहर शृंखलाओं की भी व्यवस्था कर लेता है!—यही नहीं, मृत्यु के उपरान्त भी अपना दावा बनाए रखने के लिए नारी के वैधव्य को पवित्रता का ठेकेदार घोषित करने की पुरुष ने जैसी चालाकी दिखाई है, उसकी ही मिसाल कहाँ मिलेगी?

यह अपरूप सौंदर्य, युगल आँखों की वह चपल-दृष्टि, मधुर अधरों का यह सरस हास्य-निर्झर, पुरुष की दासता में निबद्ध होने के लिए है? यह सब निर्लज्ज-निष्ठुर पुरुष के चरणों में सौंप, ठोकर खाकर भी कृपा की भीख माँगने वाली हतभागिनी नारी, क्यों तू अपने-आपको, कठोर शिला पर टकराकर निष्फल शोक में पछाड़ें खाने वाली लहरों के भाग्य से उत्तम समझती है !—क्यों नहीं तू अपनी ही आत्मा के अन्तराल में डूबकर आत्म समाधि प्राप्त कर लेती ?—नीलम ने नवनीत को प्यार करने की अपनी निर्बलता पर अपने-आपको धिक्कारा !"

वह नर्त्तकी है, वह गायिका है; उसका नृत्य, उसका संगीत, दोनों ही दूसरों की तुष्टि के लिए व्यवहृत होते आए हैं। आत्म-तुष्टि के लिए उसे व्यय कर देने से डर रहता है कि शायद उसकी व्यावहारिक कीमत घट जाए, इसीलिए आजतक नीलम न तो कभी आत्म-तुष्टि के लिए गा ही सकी, न नाची ही ! आज जब उसका अन्तर ही विद्रोही हो उठा, तो इस बाहरी कीमत की धारणा उसके लिए समाप्त हो गई ! उसने सोचा, वह आज तक दूसरों के लिए नाचती रही है, उसके नूपुर और पायलों की ध्वनि पर धनिकों ने अपना सर्वस्व तक लुटा दिया है; आज वह अपने ही लिए क्यों न नाचे !—उसके पैरों की संयत गति पर अशेष-ऐश्वर्य का स्वामी उसका ही मन क्यों नहीं लुट जायगा ?—वह नाचने के लिए, उस एकान्त कक्ष में केवल स्वान्तः सुखाय नाचने की अपनी अदम्य आकांक्षा को मूर्त्त करने के लिए उठ खड़ी हुई !

किन्तु तभी दाहिनी ओर के दरवाजे से झांककर अधरलाल ने कहा —"नमस्ते नीलमदेवी !"

नीलम ने आंखें फिराईं; बहता हुआ चित्त चट्टान के आघात से रुक गया। निराशा-स्फीत ध्वनि में उसने कहा—"आइए अधर भैया ?"

अधरलाल भीतर प्रविष्ट हुए; नीलम ने देखा कि अधरलाल के बाद ही एक और रमणी-मूर्त्ति, आरती ने भीतर प्रवेश किया !

"अरे आरती बहन भी? धन्य भाग्य, आज किधर रास्ता भूल गईं ?'

हँसते हुए आरती ने उत्तर दिया, "भूला हुआ कैसे बता सकता है वह रास्ता किधर भूल गया !—बल्कि तुम्हीं बता दो न !"

"हम दोनों तो अकस्मात्, मिल गए हैं आरती, एक जैसे भाग्य वाले । शायद अधर भैया बताएँ, बस्ती इन्हीं की तो है !"

आरती नीलम का व्यंग्य नहीं समझ सकी, फिर भी बोली, "यह भूले को रास्ता बतायंगे !—क्यों जी, बता सकते हो क्या ? तब तो सब से पहले मुझी को बताओ न !"—और आरती ने सचमुच ही भूले व्यक्ति-जैसी मुद्रा बना ली !

अधरलाल ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "मैं तुम्हें ठीक रास्ता बता दूँगा इसका विश्वास करती हो ? मेरा तो काम तुम्हारे रास्ता भूले रहने ही से चलता है आरती !"—

और उन्होंने एक भावपूर्ण दृष्टि नीलम की ओर डाली । नीलम गम्भीर हो गई !

बोली, "अधर भैया ! यह पुरुष जाति स्त्रियों को इस तरह भुलाए कब तक रखेगी ?"

आरती नीलम का भाव समझने में लगी, अधरलाल ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "तुम्हें भुलाने वाला व्यक्ति मैं नहीं हूँ नीलम, मजेदार बात तो यही है कि जिसके ऊपर तुम्हारे रास्ता भूल जाने की जिम्मेदारी है, वही तुम्हें ठीक रास्ते पर लगाने की कोशिश कर रहा था । नहीं क्या ?"

आरती हँस पड़ी; "तो तुम्हीं ने हाथ पकड़कर ठीक रास्ता क्यों न बता दिया !"

"तुम्हारे भय से आरती !"

"क्यों बदनाम करते हो मुफ्त में ?—यदि मेरा तनिक भी भय होता, तो क्या तुम मुझे ठीक रास्ते न लगा देते ?—इसी को भय कहते हैं ?"

नीलम ने कहा—"बैठ तो जाइए,—बातें तो होती ही रहेंगी !"

एक ओर अधरलाल बैठ गए। सामने की ओर नीलम और आरती बैठ गईं। तब तक तीसरा पहर ढलने की तैयारी कर रहा था !

आरती ने पूछा, "क्या हो रहा था नीलम !"

"जरा दिल बहला रही थी !"

"किससे ?"

"वीणा से, और किससे !—जो रास्ता भूल जाता है, उसे रास्ते की तलाश ही में तो शान्ति मिलती है !"

"चलो खैरियत हुई, तात्पर्य यह कि तुम्हारा दिल भी आखिर खो ही गया !"

"दिल खो गया ?—अपना ही रोग लिये फिरती हो सब तरफ !'

आरती हँस दी, अधरलाल को लक्ष्य कर बोली, "सुनते हो जी ! अपना ही रोग सब तरफ लिये फिरती हूं मैं ! परन्तु नीलम, इसके लिए तुम मुझे दोष क्यों देती हो ?—जो रोग मेरा है, वह क्या तुम्हारा नहीं ?—तुम क्या स्त्री नहीं हो ! तुमने अब तक विवाह नहीं किया, और मैंने कर लिया है, इतने मात्र से क्या मुझमें और तुममें अन्तर हो जायगा ?—टीका लगाने-मात्र से क्या रोग का अभाव हो जाता है ? रोग के प्रभाव का नाश हो जाना तो उसका अभाव नहीं कहा जा सकता पगली !"

"यानी ?"

"यानी क्या ! हर पुरुष एक स्त्री का रोग है, और शायद हर स्त्री एक पुरुष का रोग है ! (अधरलाल के प्रति) क्यों जी, ठीक कहती हूं न ?—नहीं है क्या एक स्त्री एक पुरुष के लिए एक रोग के समान ?"

अधरलाल ने हंसकर कहा—"कहती जाओ—विवाह नाम का संस्कार है उस रोग का टीका—हूँ ?—यानी एक बार तो बरबस उस रोग के कीटाणुओं का आह्वान और स्वागत कर ही लिया जाय !"

नीलम ने उत्सुक होकर पूछा, "भैया ! क्या आप भी इस मसले को सचमुच इसी तरह सोचते हैं !"

"क्यों ?—क्या मुझे मेरे शास्त्रों का भय नहीं है ? और नीलम, जबतक इन सब शास्त्रों का निचोड़ यह आरती मेरी विचारणा के दरवाजे धरना दिये बैठी है, तबतक मैं इस बारे में कुछ भी सोच सकता हूं ?"

नीलम ने उठती हुई लम्बी साँस को दबा दिया और कहा—

"जाने दो भाई, पुण्यात्मा को अपने पुण्य बड़े प्रिय लगते हैं ! इस भय से कि कहीं उसके पुण्य क्षय न होजाएँ, वह पाप के पास फटकना भी नहीं चाहता। तब युगों से संचित पापों को ठोकर मारने का दायित्व और साहस, पुण्यात्मा के लिए नहीं, बल्कि वह एक पापी ही के लिए है। स्त्रियों की लज्जास्पद दासता का कारण स्वयं स्त्री है, और इस श्रृंखला को तोड़ने की शक्ति और इच्छा स्त्री ही को प्राप्त करनी पड़ेगी !"

आरती एक क्षण तो अवाक् बैठी देखती रही, फिर बोली, "तुम्हें ही क्या दोष दिया जाय नीलम, जिसका दिल खो गया हो, वह बेदिल होकर ही तो बात कर सकता है !–पर एक दिल्लगी की बात सुनोगी ?—उस दिन तुम्हारे इन भैया से मेरी लड़ाई हो गई—"

"तुम दोनों में—" आश्चर्य-चकित नीलम ने बीच ही में पूछा !

"हाँ, हाँ, हम दोनों में !—क्या तुम समझती हो हम दोनों में कभी लड़ाई होती ही नहीं ?"

"बहन, इस दुनिया में विवाह का ताबीज बाँधे हुए गृहस्थी के जड़ीभूत रोगियों को मैंने बहुत, बहुत देखा है; उनकी परेशानियाँ, उनके दुःख, उनकी दिल मसोस देने वाली आहें, व्यर्थ बच्चों के भार के नीचे दबी हुईं उनकी निस्सत्व अस्थियाँ—मैं नित्य प्रति देखती हूँ, और इस ताबीज के मिथ्या होने के प्रमाण मुझे ढूँढने नहीं पड़ते। पर जब तुम दोनों का मुझे ध्यान आता है—"

"अच्छा है कि तब तुम उस ताबीज को सच समझ लेने का भ्रम कर लेती हो ! पर तुमसे कहे देती हूँ नीलम, इसमें ताबीज का कोई दोष नहीं। यदि इस पर भूत और पिशाचों की छाया न पड़े तो मेरा तो

अनुभव है कि तावीज जब तक टूटेगा नहीं, बराबर काम देता रहेगा !"

नीलम के अधरों पर हास्य-सा छा गया, अधरलाल गम्भीर मुद्रा से खिड़की के बाहर हिलते हुए आम के पत्तों को गिनने लगे !

"पर खैर तुम्हारा तावीज रहे !—जब हम दोनों में लड़ाई हो गई, तो न इन्होंने खाना खाया, और न मैंने—"

"तुमने बताया न होगा शायद, स्त्रियाँ बड़ी तुनुक-मिजाज होती हैं न !" हँसकर नीलम ने कहा !

"वह सौभाग्य नारी को है ही कहाँ ? तुनुक-मिजाजी तो पुरुष के पल्ले पड़ी है !—और खाना बनाने के लिए मैं अकेली ही जो जिम्मेदार हूँ, तब वह तो बन गया; पर खाने में अकेले रहने की हमारे यहाँ रीति नहीं है, शर्त है दोनों के साथ खाने की; जब वह पूरी न हुई तो हम कैसे खा सकते थे ?"

"फिर ?" नीलम ने उत्सुकता से पूछा !

"कुछ देर बीत गई तो मैंने पूछा, "क्यों जी, खाना क्यों नहीं खाते"

जवाब मिला, "भूख नहीं है !"

"अच्छा !"

आरती उसी तरह गम्भीर भाव से कहती रही, "कह नहीं सकता कि इन्होंने सच कहा या झूठ; पर जब थोड़ी देर बाद इन्होंने मुझसे भी वही प्रश्न पूछा, तो मैंने सच-सच उत्तर दिया, 'इसलिए कि तुम नहीं खाते !"—(अधरलाल के प्रति) "क्यों जी, सच है न ?"

अधरलाल ने नीची गर्दन किये हुए ही स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया !

नीलम ने पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

"फिर क्या होता ?—जैसे ही मैंने यह कहा, जाने कहाँ से इन्हें बेशुमार भूख लग गई—यहाँ तक कि मेरे परोसने तक की राह न देख सके !"

अधरलाल ने नीची दृष्टि ही से कहा, "इस पगली की बातें तो तुमने

सुन ही ली हैं नीलम ! सावधान किये देता हूँ, इसको पैमाना मानकर तुम स्त्री जाति की कीमत मत आँकने लग जाना। इसकी वाणी में, इसकी दृष्टि में, इसकी भावना तक में कहीं आत्मवृत्ति का आभास नहीं है। इस प्रकार के आत्मवृत्ति शून्य व्यक्ति को छली कहा जाय, विक्षिप्त कहा जाय, या और किस विशेषण से अलंकृत किया जाय, यह निर्णय करना व्यवहार-जगत् के प्राणी के लिए सर्वथा ही असम्भव है !"

नीलम, आश्चर्याभिभूत, इस आत्म-वृत्ति-शून्य व्यक्ति की ओर श्रद्धा पूर्ण, या विस्मय पूर्ण, दृष्टि से देखने लगी !

किन्तु आरती ने क्षण-भर का भी विलम्ब न किया, और उत्तर दिया, "तुम्हारी गालियों से मैं डरने वाली नहीं हूँ ! मैं आत्मवृत्ति-शून्य हूँ, छली हूँ, विक्षिप्त हूँ—तुम्हारे इन आरोपों को मैं अस्वीकार नहीं करती; पर छलियों के सिरताज, उस विवाह की वेदी के सम्मुख क्या तुम्हीं ने वंचक बनकर मेरे समस्त आत्मभाव का समर्पण नहीं माँग लिया था ? संकल्प का जल छोड़ते समय मैंने भी कब सोचा था कि मेरा कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं छोड़ा जायगा ! आज साहूकार बन कर अपने द्वारा ही लूटे हुए इस निःशेष कर्जदार की खिल्लियाँ उड़ाते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

अधरलाल ने हाथ जोड़ लिये, कहा, "देवि ! तुम्हारे अनुशासन से मेरे शासन का आसन ही डोल उठा है !—यदि नीलम इस वाक्-युद्ध को न सह सकेगी तो अपराध का भागी कौन बनेगा ? हम लोगों के तो फैसले हो चुके, जानती ही हो, काफी नाटकीय ढंग से हुए हैं। तुम्हारा वह आत्म-समर्पण तो पुलिस की लाठियों के जोर पर सम्पन्न हुआ है; तुम्हारी क्या मर्जी है कि नीलम के दावे का भी पुलिस के हाथों फैसला हो ?—क्यों न हम उसी का विचार करें ?—शायद तुम नहीं जानती कि मामला संगीन है !"

"संगीन भी है ?—मैं तो उसे रङ्गीन ही समझती थी !—दिल जो इनका खो चुका है !"

नीलम हँस पड़ी, बोली "अधर भैया ! यह बताइए, इस घर पर आज कैसे कृपा हो गई ?--यह तो आपके आफिस का समय है !"

"आज कृष्णाष्टमी है न! नहीं जानतीं ?--आफिस की छुट्टी है !"

नीलम को, मालूम हुआ, आफिस की बातचीत पसन्द आई; बोली —"आपके आफिस का काम भी कुछ अजीब ही है !"

"अजीब तो है ही ! यदि काम कुछ अजीब न हो तो शायद वह आसानी से हो भी न सके। जानती तो हो, इसीलिए तो जो काम अजीब नहीं होते, वह भी अजीब बना लिए जाते हैं !"

"जैसे ?"

"जैसे क्या ?-मान लो, तुम्हारी यही बात,—नहीं है क्या अजीब ? —मेरा मतलब है, बना नहीं लिया तुमने इसे अजीब ?"

"मैं समझी नहीं !"

"तुम समझना चाहती भी नहीं; इसलिए कि कहीं उसका अजीब-पना खो न जाय; आफिस की इस बात में क्या तुम अपने हृदय का —" अधरलाल ने नीलम की ओर देखा, देखा कि वह उन्हीं की ओर देख रही है, फिर आरती की ओर; दोनों की दृष्टि टकरा गई !

आरती ने कहा "कहिए न, क्या कह रहे थे ?"

नीलम ने कहा—"रहने दीजिये, आप भी कोई अजीब ही बात कह डालेंगे !"

"दूसरी बात शायद तुम सुनना पसन्द भी न करो !"

आरती ने क्षुब्ध-सा होकर कहा—"कहने क्यों नहीं देती ?—तेरे चितचोर के आसन पर क्या ये अपना ही नाम रख देंगे ?" अधरलाल मुस्करा पड़े। नीलम ने कहा, "अपना-अपना प्राप्य अपने मन का अचेतन भी जानता है बहन !—वह स्वेच्छाचारी है, किन्तु अतिचारी नहीं ! अधर भैया जिस किसी भी स्त्री के सम्बन्ध में अपना नामोल्लेख करें, उसका जीवन सफल समझा जायगा; किन्तु सफलता चाहता कौन है ? सफलता का अर्थ है समाप्ति ! मैं समाप्ति नहीं चाहती, मैं सफ-

लता नहीं चाहती ! मैं चाहती हूँ जीवन, मेरी कामना का केन्द्र है संघर्ष !"

आरती के सुकोमल दीप्त भाल पर किंचित् चिन्ता के परिणाम-स्वरूप स्वेद-रेखा स्फीत हो उठी, अधरलाल ने देखा कि कौतूहल शान्त कर देना दोनों ही पक्षों के लिए लाभदायक होगा। वे बोले—

"नीलम, तुम्हारे मन की विषम-स्थिति को मैं समझ गया हूं! तुम्हारा सङ्घर्ष तुम्हारी निराशा के कारण है, और वह निराशा केवल आत्म-सम्मान के आघात से फूटी हुई है ! किन्तु तुम्हें जानना चाहिए कि आत्म सम्मान के भी दो पहलू होते हैं—एक विद्रोहात्मक दूसरा विवेकात्मक ! मेरी बात संस्कारों की बँधी हुई लीक नहीं है !—जहाँ हम आग्रह की ओर झुकते हैं, हमारा मार्ग विद्रोह का हो जाता है, और जहाँ हम निग्रह का दामन पकड़ते हैं, तो हमारा मार्ग-दर्शन विवेक करता है ! समझ रही हो न ?"

नीलम आँखों में निराशा का समुद्र भरे नीचे ही देखती रही ! आरती का भाव जिज्ञासा के रङ्ग से पुता हुआ था !

अधरलाल कहते रहे, "तुमने आग्रह-वृत्ति को प्रश्रय देकर विद्रोह का मार्ग पकड़ा था। आत्म सम्मान तुम्हारा अवश्य रह गया, किन्तु निराशा के मूल्य पर सङ्घर्ष की प्रतिक्रिया के बदले !—मैं इसके लिए तुम्हें दोष देना नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि आघात द्वारा लौटे हुए मन की वृत्ति आग्रहमयी ही होती है, और प्रसाद प्राप्त मन ही निग्रह-मय हो सकता है !"

"अधर भैया, आप ही बताइए मैं क्या करती ?"—और उसकी आँखें भी भारी हो उठीं ?

आरती ने कहा—"करती क्या ? आँसुओं के चुल्लू में डूब मरती, फिर देखती कि तेरा दिल चुराने वाला भी कितनी जल्दी आँसू बहाकर खुद भी डूब जाता !"

अधरलाल ने हँसकर कहा—"किन्तु न तो उसने आँसू बहाये, न

वह डूबा ही ! नीलम के नीरव आँसू उसके हृदय के रुद्ध द्वार पर टकराकर निष्फल लौट गए !—यही है न तुम्हारे दुःख की कविता ? किन्तु इस सम्पूर्ण प्रसंग में एक बात का भी नीलम तुमने अनुमान किया है ?"

"वह क्या ?"

"नवनीत की पूर्व कथा क्या है ? इसे भी कोई जानता है ?"

आरती ने शीघ्र ही पूछा—"नवनीत ?"

"हां वही युवक पोस्ट मास्टर जो तुम्हारी परिचर्या में अपने जीवन के बड़े ही कोमल क्षणों को काट चुका है !"

"कह क्या रही हो नीलम, वह व्यक्ति और ऐसे फौलादी निश्चय का, जिसके हृदय पर से तुम्हारी निश्वासों के ज्वार को भी लौट जाना पड़ा ! तब तो मालूम देता है, जोड़ी अगर मिल सके तो एक ही रहेगी ! वह यदि बुद्धि में बैल है, तो हो तुम निरी गाय—शायद अल्लाह की यदि अल्लाह ने हिन्दू-मुसलमानों के गाय-विषयक वैमनस्य के बावजूद गाय रखना कभी गवारा किया हो !—खैर, अब अगर अपने भैया से कुछ दिनों की छुट्टी दिला सको, तो मैं तुम्हारा दौत्य स्वीकार कर सकूंगी !—दावा करती हूं कि कैसे उस बुद्धू की नाक तुम्हारे तलवे में रगड़ खाने के लिए उत्सुक न हो उठेगी !—परन्तु नीलम समझ में नहीं आता, उस अकर्मण्य व्यक्ति को लेकर तू करेगी क्या ?—आखिर उसमें ऐसा है क्या ? शिल्पी के हाथों की भी उपेक्षा करके जो भद्दे रूप से लम्बा चौड़ा हो गया है, जहाँ अधपके सेव की लम्बाई के स्थान पर चेहरे पर पिलपिले पके टमाटर की रोशनाई पुत गई है, जिस मूर्ख ने जीवित सौंदर्य से आँखें चुराकर, विश्व का समस्त सौन्दर्य आँख फोड़ देने वाले बारीक अक्षरों में छपी चन्द बदसूरत किताबों में, जिन्हें डबलरोटी का यश भी प्राप्त नहीं हो सकता, देखने की कोशिश की है, उस आदमी में ऐसा मोहक है क्या ? अरे पगली, प्रेम करने के लिए कहीं ऐसे व्यक्ति उपयुक्त होते हैं ? जिस मांसल शरीर के ऊपर

भौतिक शस्त्र भी मार्ग नहीं बना सकते, वहाँ एक कोमल नारी के नीरव अनुनय, सजल प्रेमाख्यान, या अधिक-से-अधिक सूखे काँटे जैसे व्यंग भी, मार्ग न पाकर वापिस लौट जायं, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ?—तो भी नीलम, मैं वादा करती हूं कि तुम्हारी खातिर मैं इस निरुद्ध—पत्थर का हृदय फोड़कर तुम्हारे लिए एक झरने का उद्गम बना दूँगी !"

आरती की लम्बी वक्तृता दोनों ही मनोयोग से सुनते रहे !

अधरलाल ने कहा—"मैं मानता हूँ आरती, तुम्हारी कोशिशों का कायल न हो, ऐसा व्यक्ति शायद ही मिले ! पर इन शायद ही मिलने वाले व्यक्तियों ही में नवनीत मालूम देता है। इसे तुम नहीं जानतीं, पर मैं खूब जानता हूं ! यह ठीक है कि क्षेत्र-विशेष में ये बिलकुल क्षीण प्रभाव, बुद्धू हो जाते हैं, पर यह भी समझ रक्खो कि उसी तरह दूसरे क्षेत्रों में वे उसी परिमाण में अक्षुण्ण प्रभाव-शील भी होते हैं !'

नीलम चुप-चाप सुनती रही, आरती ने बोलना चाहा, पर उसके पहले ही अधरलाल ने फिर कहना शुरू कर दिया—

"नवनीत में पानी के गम्भीर-से-गम्भीर और तीव्र-से-तीव्र प्रवाह का सामना करने की शक्ति को केवल इसी बात से इन्कार नहीं किया जासकता आरती, कि वह काई से भरे हुए शिला-खण्ड पर टखने इतने गहरे पानी में भी अपने आपको नहीं सम्भाल सका ! इसके अलावा एक बात और है, शायद तुम सफल हो भी जाओ किन्तु—"

आरती ने कहा—"मैं खूब जानती हूँ महाराज, तुम्हारे गुरुडम को !—यह क्यों नहीं कहते कि मेरा जाना तुम सहन नहीं कर सकते !"

अधरलाल ने कहा—"वह तो है ही !—दूकान लगाकर बनिए की बुद्धि को खो देने से दिवाला निकालना पड़ता है, इतना मुझे मालुम है। किन्तु यह तो आखिरी बात है, दूसरी बात तो सुन लो !"

"अच्छा, उसे भी कह लो !"

"क्या तुम लोगों को नवनीत को स्त्री-विषयक उदासीनता में

कुछ विचित्रता नहीं मालूम देती ? सामान्यतः ऐसे पढ़े-लिखे खाते-पीते सुन्दर युवकों की दीर्घ काल तक कुँआरे रहने की सम्भावना नहीं रहती। क्या यह सम्भव नहीं है कि नवनीत का विवाह हो गया हो, और उस विवाह का दुष्परिणाम ही इस उदासीनता का कारण हो ?— सिद्धान्त-मात्र से एक औसत मनुष्य नारी की ऐसी अवहेलना नहीं कर सकता !"

सब लोगों की चिन्ता-धारा को मालूम दिया, एक नया मार्ग मिला। आरती उठ खड़ी हुई, उसने कमरे की दीवारों पर लगे हुए चित्रों को देखना प्रारम्भ किया। अधरलाल अपने आसन-पर और अधिक आराम से बैठ गए !

अनजाने ही तब तक सूर्य अस्त हो चुका था, किन्तु पश्चिम के लाल बादल सूर्य-प्रकाश को फिर भी कुछ समय तक बनाए रहे ! दूर से लौटते हुए चौपायों के गले की घण्टियों का क्षुद्र रव, नीड़ को लौटती हुई चिड़ियों की क्षीण होती हुई ध्वनि, और वृक्षों की कोटरों से क्षुब्ध होकर लौटे हुए पवन का स्वर, सब मिलकर एक विचित्र-सा वातावरण पैदा कर रहे थे, किन्तु हमारे चरित्र-नायकों का मन किसी दूसरी ही उलझन में लगा हुआ था।

अधरलाल ने शान्ति को तोड़ा, "आज कृष्णाष्टमी है नीलम, आचार्य राधिकारंजन की सुदामापुरी में आज कृष्ण-जन्मोत्सव की धूम है। हम लोग वहीं जाने के लिए निकले हैं। यह सोचकर कि शायद तुम भी चलना पसन्द करो, हम यहाँ आए थे, किन्तु अब कदाचित् तुम्हारी मनस्थिति—"

"नहीं, नहीं, अधर भैया मैं आप लोगों के साथ चलूँगी, यह शून्य घर मुझे खाये डालता है। बस, पाँच मिनिट में मैं कपड़े बदल-कर तैयार हो लेती हूं !"

आरती ने कहा—"चल, मैं भी चलूँ—तुझे तेरे कृष्ण के लिए सँवार दूं !"

अधरलाल देखते ही रहे, और नीलम और आरती दोनों ही बाहर हो गईं ! जब वे लौटीं तो बादलों का शेष वैभव भी तब तक समाप्त हो चुका था। दिये जल चुके थे, एक दासी इस कमरे में दीपक जला गई थी, विचारों में डूबे हुए अधरलाल को इस दीपक का ध्यान दूर रहा, नीलम के लौटने पर वे यह भी नहीं देख सके कि यत्नकृत-सज्जा में नीलम की सौन्दर्य-राशि अभूत पूर्व रूप से प्रदीप्त हो उठी थी।

नीलम ने कहा, "उठिए" और वे स्वप्नाविष्ट की भाँति उठकर दोनों के साथ हो लिए। राधिका रंजन की सुदामापुरी में कृष्णोत्सव देखने की अभिलाषा नीलम के मन में रही हो या नहीं, किन्तु उसके मन की वर्तमान विवशता से उसे अवकाश दिलाने में यह बहुत ही सफल हुआ।

कस्बे के मंदिरों की सांध्य आरती का घण्टिका-नाद इनका स्वागत कर रहा था, जब कि तीनों घर से बाहर निकले।

(१२)

तीसरे पहर तक आकाश साफ था, किन्तु सन्ध्या होते-होते जाने कहां से एक बड़ा-सा अँधियारा बादल आकर पूर्णाकाश में छा गया। भाद्रपद की अँधेरी संध्या और भी अधिक सघन हो गई थी। गाँव के भीतर अवश्य कई तरह का शोर फैल रहा था, परन्तु गाँव के बाहर, कहीं पर मेंढकों की टर्र टर्र, या कहीं पर झिल्ली की झनकार के अतिरिक्त सब कुछ नीरव मालूम दे रहा था।

मानपुर कस्बे के बीचों-बीच से जो सड़क जाती है, वह एक ओर पश्चिम दिशा में—शिवहरा स्टेशन को मिलाती है, और पूर्व में मिलाती है, वह इतना ही बड़ा एक दूसरा कस्बा ! इस ओर की सड़क उतनी आबाद नहीं जितनी स्टेशन की ओर है। पश्चिम की दिशा में सरकारी इमारतें है, तालाब हैं, कस्बे का प्रसिद्ध पनघट भी इसी दिशा में है— कस्बे के मनचले व्यक्ति संध्या को इसी ओर घूमने आया करते हैं !

किन्तु जो सड़क पूर्व को जाती है, वह नीरव है। गाँव की छोटी-सी म्युनिसिपेलिटी ने इधर दीपक लगाना भी आवश्यक नहीं समझा है, हालांकि कस्बे की रक्षा करनेवाली पुलिस-चौकी इसी सड़क पर है। गाँव के लोग पुलिस से डरते भी खूब हैं। उनका उसूल है कि राजा के आगे और घोड़े के पीछे जाना खतरनाक है--शायद, राज्य के चरम-उत्कर्ष प्राप्त पुलिस-चौकी के इस प्रतीक के आगे से गुजरने वाली सड़क पर जाना भी उतना ही खतरनाक है, यह समझ कर ही जनता ने अपने आपको इसके प्रयोग से बचाकर समझदारी ही की है !

इसी सड़क पर हमारे तीनों पात्र—अधरलाल, आरती और नीलम—धीरे-धीरे बढ़े जा रहे थे। पुलिस चौकी की इमारत आई—अवश्य ही एक सरकारी दीपक सड़क के किनारे जल रहा था, राज्य की धुँधली और क्रूर आँख के समान ही; मालूम तो स्पष्ट ही हो रहा था कि उस दिए से जनता को उतना मार्ग नहीं प्राप्त होता था जितना कि पुलिस को !—तीनों व्यक्ति इस सीमा को निश्शब्द पार कर गए।

जैसे-जैसे बस्ती पीछे छूटती जाती थी, मेंढकों का शब्द अधिकाधिक तीव्र होता जा रहा था, रात्रि की निर्जनता से साहस पाकर मेंढक सड़क के मध्य तक पानी से बाहर आगए थे, अवश्य ही पानी के खड्ड भी सड़क से लगे हुए ही थे। अतः जैसे ही ये लोग सड़क से होकर गुजर रहे थे, वैसे मेंढक भी अपनी निर्विघ्न राम-रटना को छोड़ पानी में कूद पड़ते थे—कूद पड़ने का छप-छप शब्द भी उस पार के मेंढकों की अविरल-रटन में मिल कर संगीत और ताल की लीपापोती कर रहा था।

नीलम ने कहा, "हवा में कुछ तरी-सी मालूम देती है। यदि बरसात शुरू हो गई तो ?"

आरती ने कहा—"तेरा यह शृंगार दुहरा-तिहरा हो जायगा। घबराती क्यों है ?—ब्रजांगनाओं की साधना का हाल नहीं पढ़ा क्या ? अरी पगली ! यह बादल और यह बिजली तो सदैव ही राधा के अभि-

सार में सहायक रहे हैं !--सुना नहीं ?--वह तो साँपों के ऊपर पैर रखकर अपना मार्ग तै करती थी !"

"कैसा दुर्भाग्य है कि उस समय मोटर का आविष्कार नहीं हो पाया, नहीं तो सच कहना आरती, इस अभिसार की क्या दशा होती ? बेचारी राधा, मन तो उसका साँपों की फुंकार में उलझ जाता रहा होगा, प्रियतम का क्या ध्यान कर पाती रही होगी वह ?"

अधरलाल ने कहा, "नीलम, भारतवर्ष धर्म-प्राण देश है, और धर्म का मूल उत्तर है ईश्वर !—ईश्वर के प्रति मजाक भारतवर्ष का औसत मनुष्य सहने का आदी नहीं है !"

नीलम ने कहा, "मेरे यहाँ भी यही बात थी भैया, बल्कि जब बच्ची थी तब मैं भी शायद ही यह सहन करती !"

"कुछ समय के बाद समझोगी कि वह तुम्हारे जीवन का शुभ दिन था।"

"हो सकता है कि दासता के मेरे संस्कार फिर प्रबल हो उठें !—परन्तु मैंने कहा न, मैं तब बच्ची ही थी, भगवान् के बारे में किसी भी बात को अपने विचार की सीमा से बाहर समझना उसी अवस्था का द्योतक है !—जहाँ हम लोगों में एक ओर देश की स्वाधीनता के ऊपर मर मिटने की उत्तेजना छाई हुई है, वहां हमें आत्म-स्वातन्त्र्य के लिए जीवित रहने तक का उत्साह नहीं मिलता। मनुष्यता के ऐसे घोर पतन पर किस सच्चे मनुष्य को तरस नहीं आयगा ?"

"मैं जानता हूँ नीलम, तुम बुद्धि के विपुल वैभव की कहानी कह रही हो ! तुमने मुगल जमाने का इतिहास पढ़ा है न ?—वह शायद भारतवर्ष का स्वर्णयुग था !--आज भी दिन में जब ताजमहल के सिर पर सूर्य की किरणों का स्वर्ण किरीट, यमुना की काली केश-राशि के ऊपर स्फीत हो उठता है, और रात्रि को नक्षत्रों के जाल में उलझी हुई चन्द्रिका की चमक उस पर लुट जाती है, तो हमें मुगल कालीन वैभव की सचाई पर अविश्वास नहीं रह जाता !—तुम्हारे बुद्धि के ऐश्वर्य की

उसी ऐश्वर्य से उपमा दी जानी चाहिए।"

"तुम्हारा मतलब ?" आरती ने पूछा !

पर उत्तर दिया नीलम ने--"इनके उपहास का लक्ष्य बता दूँ क्या कहना ! —बुद्धि के इस ऐश्वर्य के नीचे पिसती हुई दरिद्र भावुकता का शोषण मुझसे मंजूर करवा लिया जायगा ! और क्या—"

"भावुकता और भावना के तारतम्य में यदि कोई अन्तर न हो तो तुम्हारी भावुकता को मैं सिर पर चढ़ाने के लिए तैयार हूं।—पर उसे दरिद्र क्यों कहती हो ?—क्या यह तुम्हारे ऐश्वर्य की सापेक्ष दीनता-मात्र नहीं ?"

"चाहे जो कहें आप।–युग समझ गया है कि यह भावुकता या भावना दोनों ही आश्रम की वस्तुएं हैं, श्रम की नहीं।"

"ठीक तो है ! भावना तो आश्रम ही की वस्तु है ! श्रम ने तो जीवन की रीढ़ ही तोड़ दी है, आश्रम ही ने उसे जीवन-दान दिया है, और यदि चाहो तो वह शांति के साथ तुम्हारा गठबंधन भी करा देगा ! परन्तु श्रम ?"

"वही तो आज की मनुष्यता का सच्चा पैमाना है। दूसरे के मुँह की रोटी को वैभव की शैया पर लेटे-लेटे छीन लेने वाली मनुष्यता तो लद गई भैया !"

"परन्तु आश्रम में तो, कह चुका हूँ, किसी वस्तु का आग्रह ही नहीं है नीलम ! साम्यवाद की दुहाई देकर उचित बँटवारे की बात कह रही हो, मैं समझता हूँ, किन्तु जहां पर वृत्तियों का मूल ही निग्रहमय हो, वहाँ साम्यवाद तो बहुत बाद की वस्तु हो जाती है ! पर देखो, मालूम देता है, आरती हमारी इन व्यर्थ की बातों से क्रुद्ध हो गई है।

आरती ने कहा, "कोई भद्र महिला तुम्हारी इन ऊटपटांग बातों को सुनकर अपने-आपको क्रोधित होने से रोक सकती है ? जो कुछ कहना हो साफ-साफ ही क्यों नहीं कह देते ?"

अधरलाल ने हँसकर कहा—"मैं चाहता हूँ कि नीलम के प्रश्न का

उत्तर उसकी स्वयं की भावुकता से ही प्राप्त हो ! बुद्धि के इस नक्कारखाने में, देखें, कहीं उसकी भावुकता की तूती भी सुनाई पड़ती है या नहीं ?"

नीलम ने कहा—"आप मेरी दुर्बलता की हँसी क्यों उड़ाते हैं ? मैं कह चुकी हूं कि दासता के संस्कार अभी मुझमें शेष हैं, भावुकता का दौर मुझे किसी भी समय आ सकता है !"

"किन्तु तुमने तो उस भावुकता को दरिद्र कहा है ! यदि उसके प्रभाव से तुम्हारी बुद्धि का वैभव परास्त हो जाता है, तो—"

नीलम हंस पड़ी—"जिस भाँति आज के लीडरों के सामने बेचारी मनुष्यता ! किन्तु भविष्य के 'कल' की कसौटी पर यदि आपका विश्वास है, तो 'आज' की इस पराजय का क्या मूल्य है ?"

अधरलाल ने कहा, "नहीं,इधर नहीं—हमें दाहिनी ओर मुड़ना है !"

अब तक ये लोग सड़क पर चल रहे थे, यहीं से दाहिनी ओर एक बैल गाड़ियों का कच्चा रास्ता फट गया है, उसी पर इन्हें जाना है ! पक्की सड़क बाएं हाथ की ओर आगे चली जाती है, इसी अंधेरे में—जड़ पदार्थों को अँधेरे में भी मार्ग नहीं खोजना पड़ता !

बरसात के दिनों में कच्चे-रास्तों की हालत खास तौर से अनुभवनीय हो उठती है ! शकट-चक्र के वर्ष-भर के घर्षण से रास्ते की कोमल छाती पर दो समानान्तर खाइयां खुद जाती हैं, वर्षा का शासक उन्हें भी पाट देता है ! यौवन के इस उभार में दमन के चक्कों की छाया तो तब दूर हो जाती है; किन्तु वेश्या के यौवन के समान उस भाग्य में पशुओं के, और पशुओं के समान बदतर ही जीवन बिताने वाले ग्रमीण मनुष्यों के नग्न चरण-चिह्नों के अत्याचार और भी भयानक रूप से उत्कीर्ण हो जाते हैं ! सभ्यताभिमानी नागरिक और बुद्धि के वैभव का व्यवसायी तब उस ध्वंस के रास्ते पर चलने में कुण्ठित भी होता है, और शर्माता भी—कभी उनके पैर जब गरमा जाते हैं तो उनका खून भी खौल उठता

है ! उसके बाद फिर वही दमन-चक्र और यह नया अत्याचार पहले को बिलकुल ही भुला देता है !

इसी ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर आरती, नीलम और अधरलाल अग्रसर हुए !

अनुभव करके कि कहीं वही नीरस प्रसंग फिर न छिड़ जाय, आरती बोली—

"कैसा ऊबड़-खाबड़ मार्ग है ! तुम्हारे आचार्य राधिकारंजन जी का नाम तो बड़ा सुन्दर है, किन्तु क्या ऐसे भावुकता-हीन स्थान को चुनने में उनको नीरसता का परिचय नहीं मिलता ?"

नीलम ने कहा—"किन्तु इस तरह अभिसारिका के प्रेम की गहराई भी तो इन लोगों को मालूम पड़ जाती है !"

अधरलाल ने जैसे कुछ नहीं सुना, वे बोले, "उनके नाम का सौंदर्य उनके मुँह से, और उनकी भावना का सौंदर्य उनके सम्मुख जाते ही तुम्हें प्रतीत हो जायगा आरती !—और नीलम !—यदि सम्भव हुआ तो अपने हृदय की थाह भी तुम्हें मिल जायगी !"

नीलम ने धीरे-से कहा, किन्तु सुन सभी ने लिया—"यदि सम्भव हुआ तो !"

भादों की उस भरी हुई रात में आरती ने अपने मन की मौज के अनुसार गुनगुनाना शुरू किया—शब्द बिलकुल स्पष्ट थे:—

"सजनि, आजु दुरदिन भले !
कन्त हमर नितान्त अनुसरि संकेत कुञ्जहि गेल !—"

—किन्तु नीलम की ओर से कोई चेष्टा लक्ष्य न हुई। उस निबिड़ घन-गम्भीर रात्रि में शायद उसके जीवन का मार्ग भी खो गया था, और उसी को खोज करने के लिए मानो उसी की समस्त इन्द्रियां एकप्राण हो रही थीं !

आरती ने अधरलाल से पूछा, "क्यों जी, क्या यह सच है कि जिस का मन कहीं उलझ जाता है, उसके समस्त बन्धन सुलझ जाते हैं !"

"तुम क्या सोचती हो ?"

"सोचना क्या ? मेरा मन तो सुलझा हुआ है; परन्तु जब देखती हूं कि टांग तो उलझी हुई है—बल्कि मन के सुलझे हुए होने-मात्र से ही यह टांग उलझी हुई है, तो शायद उलझे हुए मन के सुलझे हुए बन्धनों को सच मान ही लेना पड़ता है !"

"नीलम से भी पूछ देखो न !"

नीलम शायद सभी कुछ सुन रही थी, बोली—"जिसको इस जाल का मोह है बहन, वह सुलझकर भी उलझा हुआ ही है। क्यों न इस जाल को तोड़ देने की बात सोचती हो ?"

"दैया रे ! हिम्मत तो कम नहीं; परन्तु तब उस निकम्मे नवनीत ही की कण्ठी बांधकर क्यों जोगन बन बैठी हैं ?"

नीलम ने आरती के गले में हाथ डाल दिए और कहा, "स्त्री के लिए विवाह करना यदि अनिवार्य ही हो, तो अब मैं तुझ से विवाह करूंगी आरती !"

आरती ने बीच ही में कहा—"धीरे-धीरे—क्या एक खुफिया लगवाना है पीछे ?"

"खुफिया क्या ?"

"कहीं तेरा यह लहंगा और चूड़ियां जाली तो नहीं हैं, यह देखने के लिए। समझी ? परन्तु मुझसे विवाह करके तू करेगी क्या ?"

"विवाह करके क्या किया जाता है ?"

"इस विशेष विवाह का प्रयोजन तो तू ही जान !"

नीलम ने अधरलाल को लक्ष्य करके कहा—अंधेरे में भी अधरलाल जान गए कि नीलम का लक्ष्य वही है—

"सब विवाहों का प्रयोजन तो एक ही होता है—आत्म-हत्या !"

आरती ने कहा, "ठीक तो है, अपने गले में तो रस्सी डालेगी तू खुद, और मेरे गले में व्यवस्था कर जायगी सरकार द्वारा डाली जाने की। क्यों ?"

"किन्तु पुरुष से विवाह करने में केवल पहली बात ही तो होती है, दूसरी नहीं !"

तभी एक खड्डे में नीलम का पैर गिरा, वह बुरी तरह गिर भी पड़ती, परन्तु आरती का हाथ तब भी उसके गले में था, वह बच गई !

अधरलाल ने कहा, "अब अधिक दूर नहीं है। वह जो अन्धकार के स्तूप जैसा दिखाई देता है न, वह वास्तव में एक बड़ है ; उस बड़ के नीचे से दाहिनी ओर रास्ता मुड़ता है, वहीं दस कदम की दूरी पर उस मन्दिर का दरवाजा है !"

नीलम ने कहा, "साधना है, दस की जगह दस सौ कदम भी हों तो भी चलना तो पड़ेगा ही, पर आखिर इस साधना का फल क्या मिलेगा कृपानिधान ?"

"सप्त !" हंसकर आरती ने उत्तर दिया !

"और तुम्हें ?" शरारत से भर कर नीलम ने पूछा !

"तेरे भैया जो साथ हैं !—क्यों जी धक्के ही दिलवाओगे न ?"

छोटा-सा गाँव नजदीक आ गया। घ्राण में किसी अपरिचित के आगमन की सूचना पाकर गांव का श्वान-समुदाय चंचल हो उठा !उनका यह निषेध-सूचक संकेत-रव बस्ती के खेतों में सियारों के कानों में गूँज उठा, दूसरी दिशा भी मुखरित हो गई।

नीलम हंसी, स्वागत-गान तो बड़ा भला मालूम देता है भैया ! द्वापर युग में कदाचित् इसी ध्वनि को केका-ध्वनि कहते थे जिसे सुनकर नायिकाओं का मन उमड़ पड़ता था, हूं ?"

आरती ने कहा—"क्या तेरा भी मन उमड़ पड़ा है ?—कलेजे में कँपकँपी तो नहीं छूट गई ?"

नीलम बोली, "उससे भी आगे की अवस्था—जड़ता और स्तम्भ कहते हैं न उन्हें !—नहीं जानतीं ?—ये भी प्रेम की अवस्थाएं हैं। राधा बेचारी ! उस समय की परस्थितियों ने चाहे उसे मरणासन्न कर

दिया होगा, परन्तु कवियों ने तो उसकी अभिसार-गाथा को अमर कर दिया है बहन !"

अधरलाल ने कहा—"इस बात का उत्तर मैं दे ही कैसे सकता हूं !—और सचमुच ही तुम भी कैसे सोच सकती हो ! यदि राधा के कृष्ण होते, और कृष्ण ही की राधा होती, तभी कुछ अनुभव किया जा सका होता !"

"अपनी बात तो कह सकते हो भैया !"

अधरलाल हँसे, "अपनी बात अपनी ही तो है ! उसे कोई कैसे समझेगा ? मैं कहूँगा, और तुम हँस दोगी—प्रत्यक्ष न सही, परन्तु दिल में जरूर हँसोगी ! हम लोगों का अपराध है कि हम भौतिकवादी नहीं हैं। विज्ञान के निकट मैं भी कृतज्ञ हूँ कि उसने मानसिक प्रतिपत्ति को मस्तिष्क के सेलों का और ज्ञान-तंतुओं का उपसर्ग सिद्ध कर दिया है। जहाँ तक चेतना, स्मृति या विचार का महत्त्व है तब तक तो एक मार्ग है, किन्तु हृदयवादियों के जुर्म की सीमा तो विज्ञान के पेनल कोड को पार कर गई है नीलम ! उग्र मनोभाव, संवेदना, शोक, हर्ष, जुगुप्सा आदि को तो किसी ज्ञान-तंतु से बद्ध बताकर स्थिर नहीं किया जा सकेगा !"

नीलम ने कहा—"ठहरिए, विज्ञान के ऊपर अपूर्णता का दोष—"

अधरलाल ने कहा—"फिर कह लेना। देखो, हम लोग मन्दिर के दरवाजे पर हैं !"

रात का पहला पहर बीत रहा था, हवा उत्तरोत्तर तीव्र होती जा रही थी। बातों की गरमी में इन लोगों ने अनुभव नहीं किया कि पानी की बूँदें भी प्रारम्भ होगई थीं !

दरवाजे से कुछ कदम बाएं हटकर यह बरगद का घना पेड़ पुराने विश्वस्त भृत्य की तरह मानो किसी प्रासाद प्रधान की पहरेदारी कर रहा है। रहस्य की एक निबिड कुहेलिका-सी घनी अन्धकार-राशि इसकी गोद में सिमटी पड़ी है। निखिल रहस्य के स्वामी घनश्याम के

लीला-गर्भ निगूढ़-निकेतन के द्वार पर वह आज ही से नहीं बैठा है। युगों की गम्भीर घटनावली इसके ऊर्ध्वग वृन्तों ही पर लिखी हुई नहीं, अपितु अपनी जरायुज प्रलंब केश-राशि से बने हुए रहस्यान्तरों में भी पृथिवी के उद्वेलित वक्ष पर खुदी हुई है। भूत की रहस्य-कथा, वर्तमान का विश्रब्ध-संलाप और भविष्य का आशान्वित-आदेश— तीन सर्गों में विभक्त इसका भी एक पुराण इस गाँव में प्रचलित है, जिसको गाँव का प्रत्येक जीर्ण व्यास विरासत के रूप में अपने पुत्र को सुना देता है। उन कथाओं के नायक, उन कथाओं के उपचेता चाहे व्यासपद-प्राप्त हो गए हों, किन्तु वे कथाएं आज भी प्रखरित पत्तों के रहस्यालाप में सुनी जा सकती हैं। इस अशिक्षित गाँव में कौन नहीं जानता कि द्वापर के महाभारतीय-संघर्ष के मध्य इसी वृक्ष के नीचे व्यासासन पर आरूढ़ होकर दिव्य दृष्टि संजय ने कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि का सिंहावलोकन किया था। किन्तु खैर, इसके रहस्य हमारे नायकों की उत्सुक पिपासा का शमन नहीं कर सकते। तब आज इस बरगद-पुराण का माहात्म्य यहीं तक पर्याप्त होगा!

जीर्ण-दरवाजे को ठेलकर यह मण्डल भीतर प्रविष्ट हुआ। एक दीर्घायत चौक को पार करने के बाद एक विशाल मन्दिर बना हुआ है। आज की रहस्य रात्रि का सम्पूर्ण वैभव-आयोजन इसी मन्दिर में केन्द्रित हो रहा है।

प्रारम्भ बूँदों से हुआ, किन्तु अब क्षीण धाराएं पृथिवी का अभिषेक करने को उतारू मालूम देती थीं। शीघ्र ही तीनों प्राणी चौक पार करके मन्दिर की प्रथम सीढ़ी तक पहुँच गए। चलने की अब तक गरमी थी, अब कुछ शीत का वेग-सा मालूम दिया; किन्तु वस्त्र अभी गीले नहीं हुए थे, ऊपर छाया भी आ गई थी। व्यूह का दूसरा द्वार भी इन लोगों ने पार कर लिया!

भीतर प्रवेश करते ही सारे वातावरण में एक मुग्ध मादकता छा गई। सिक्त वस्त्रों पर शीत का आवरण शरीर को कुछ कण्टकित करने

लग गया था, किन्तु भीतर प्रवेश करते ही सभा-गृह की निश्चल उज्ज्वल-प्रभा ने शीत के विरल आच्छादन पर विस्मृति का घना जाल बुन दिया। बद्ध दीवारों में घनता की गरमी ही अधिक प्रतीत होती थी।

आलान सम्पूर्ण लब्ध-वैभव से सजा हुआ है, गैसों के सफेद प्रकाश में बाहर के निबिड़ अंधकार की कल्पनातक असत्य मालूम दे रही है। चारों ओर लगे हुए स्वच्छ दर्पणों में प्रतिज्योतित रश्मि-मालाएं एक दूसरे पर गिरकर प्रकाश की प्रज्वल-नीहारिकाएं निर्माण कर रही हैं। चारों ओर दीवार पर विभिन्न रंगों की तस्वीरें उच्छ्वसित-प्रकाश की दीप्ति में यदि नाचती हुई मालूम दें तो क्या आश्चर्य है? आँगन के स्तम्भ सुन्दर वस्त्र से परिहित हैं, जिन पर भी यथावकाश भाँति-भाँति के चित्र लगे हुए हैं। ठीक सामने देव-विग्रह के वाम-पार्श्व में एक काँच का अत्यन्त-सुन्दर झूला लगा हुआ है—खाली है, किन्तु कई प्रकार के खिलौनों से सजा हुआ है। बाईं ओर, एक उतने ही वैभव से महालस प्रकोष्ठ में देव-मूर्त्ति प्रकाश की किरणों को बिखेरती हुई हँसती-सी मालूम दे रही है। स्वर्ग का सम्पूर्ण वैभव सजीव हो गया है!

जड़ वैभव अवश्य सजीव हो गया है, किन्तु सजीव सृष्टि वहाँ निर्जीव चित्र लिखित-सी बैठी हुई है! झूले से कुछ दूर हटकर तीन रमणी मूर्त्तियाँ, दाहिनी ओर झूले के ठीक सामने एक आसन पर एक क्षीण-काय जर्जर-वय व्यक्ति, जिनको घेरकर लगभग छः सात व्यक्ति बैठे हुए हैं, और कुछ हट कर उन तीन रमणियों के पीछे लगभग एक दर्जन अन्य रमणियाँ, नाना प्रकार की वेश-भूषा में सज्जित—यही इस मन्दिर की सजीव किन्तु नीरव सृष्टि है! झूले से कुछ हटकर दाँए-बाँए संगीत के वाद्य—सितार, सारंगी, एकतारा, तानपूरा, मृदंग, पखावज आदि—रखे हुए हैं—कुछ यों ही पड़े हैं, कुछ के पास साजिन्दे बैठे हुए हैं, पर सभी चित्र-लिखित से। एक बार आश्चर्य होता है कि इन्हें भी उसी चित्रित-वातावरण की प्रस्तर मूर्त्तियाँ क्यों न मान लिया जाय?

छत से लटके हुए कई झाड़ों में से झाँककर सहस्रों दीपकों की

चंचल-दृष्टियाँ पैट्रोमेक्स के स्थिर श्वेत प्रकाश में भी अपने-अपने अखंड यौवन की कथा से मुखरित मालूम दे रही थीं। विग्रह-प्रकोष्ठ में राधा और कृष्ण की युगल मूर्त्ति, अशेष प्रसाधन में सज्जित, अपने अधर-राग से मानो एक निश्चल सुख का फुहारा छोड़ रही थी। हमारे तीनों नायकों का चित्त एक बार ही आश्चर्य, सुख, मोह और जड़ता से स्तंभित हो गया। अधरलाल, आरती और नीलम तीनों के ही हाथ उठ गए और मस्तक झुक गए। अकस्मात् एकाएक ही उस सजीव जड़-समाज में चांचल्य-सा फैल गया। देव-विग्रह के ठीक सामने स्थिर-प्रकाश से जलती हुई घृत-दीप की ऊर्ध्वमान शिखा भी मानो काँपकर चौंक उठी। सुवासित कालागुरु की धूम्रायित अप्सरा अपने चंचल नृत्य को रोककर मानो एक क्षण के लिए इन अतिथियों को देखने लगी!

आसनस्थ वृद्ध आचार्य राधिका-रंजन प्रफुल्ल से मालूम दिए; उल्लास-भरे स्वर में बोल उठे—"अधरलाल, सचमुच आज महाप्रभु का तुम्हारे ऊपर अनुग्रह स्पष्ट हो उठा है। आज से तुम वास्तव में वैष्णव हो गए।"

मैं तो बहुत पुराना वैष्णव हूँ आचार्य, पर देखिए, मैं दो नई वैष्णवियों को पकड़ लाया हूँ! महाप्रभु को स्वीकार होंगी?" अधर-लाल ने हँसते हुए कहा; पास आकर उन्होंने भूमि पर लेट कर आचार्य को वन्दन किया। आचार्य ने हाथ उठाकर 'स्वस्ति-स्वस्ति' कहा, और उठकर अधरलाल को अपने पास ही बिठा लिया!

नीलम इस अभिनय को देखकर कुछ संकुचित हुई। वातावरण के मादक प्रभाव से वह अभिभूत हो उठी थी, किन्तु फिर भी उसने अपने आपको स्वस्थ रखा। भगवान् की मूर्त्ति के निकट प्रणिपात करने में लज्जा चाहे हो, पर ग्लानि न थी—तब हमारी दुर्बलता का गवाह एक पत्थर-पिण्ड ही तो है!—किन्तु मनुष्य के चरणों पर मस्तक रखना तो बड़ी भारी दासता है!—उसने केवल हाथ जोड़कर ही अपने वैष्णव-धर्म के दीक्षा-निवेश का प्रचुर या अप्रचुर प्रमाण दिया।

अपने आनुगत्य की रक्षा का ध्यान आने से आरती को और भी

कठिनाई हुई कि वह किस प्रकार का प्रमाण दे !—किन्तु यह सोचकर कि उससे नीलम की एकांतिक-दुर्भावना न केवल उपस्थित समाज ही में मूर्त्त हो उठेगी, बल्कि स्वयं नीलम ही की आँखों में अत्यन्त विकृत होकर चमक उठेगी, उसने भूमिष्ठ हो प्रणाम करने की इच्छा को रोक-कर नीलम ही का अनुसरण किया। आचार्य ने उन्हें भी 'स्वस्ति-स्वस्ति' कह बैठने का निर्देश किया !

झुले के सम्मुख विशेष मुद्रा में बैठी हुई तीनों प्रमुख रमणी-मूर्त्तियाँ भी चंचल हो उठीं ! रमणी-मूर्त्ति प्राण रहते भी चंचल न हो, यह आश्चर्य की बात है, बल्कि हमतो चित्रों में भी यही देखने के आदी हैं कि वे अभी ही बोल उठेंगी; विशेषकर यत्न-कृत सज्जा की इस मदहोशी में, जिसमें कि ये तीनों नारियाँ सजी हुई हैं, यह आश्चर्य और भी बढ़ जाता है। किन्तु इन नारियों का इतिहास जगत् के इतिहास से थोड़ा भिन्न है। सावन के सघन बादलों से भरी हुई पूर्णिमा की जैसी विडम्बनामयी श्री होती है, उसी श्री से इनका इतिहास करुणोज्ज्वल है, नहीं तो आज के इस ऐश्वर्य के मूर्त्त-मध्याह्न में, दो सामान्य नारियों के प्रवेश-मात्र से ही उनके प्रभूत यौवन का अविचलित प्रवाह रुद्धमान न हो जाता !—खैर, वह एक लम्बी कथा है !

आचार्य ने आदेश किया—"सखियो, आओ गोपाल की गुण-गाथा में योग दो। अभी तो समारोह आरम्भ करने में काफी देर है !"

तीनों युवतियाँ नीची दृष्टि किये उठ खड़ी हुईं, मस्तक की चन्द्रिका में तथा कटि की जटित मेखला में शत—कोटि सूर्य मानों एक साथ बिखर पड़े। एक की नील साड़ी का चमकता हुआ एक-एक नक्षत्र सौ-सौ चन्द्रमा बनकर सभा-गृह में चंचल हो उठा—मेघ निर्मुक्त नैश-नीलाम्बर की सम्पूर्ण शोभा शतधा होकर मानो मुखर हो उठी ! तीनों युवतियाँ अपने मद-नूपुरों के संगीत को यथासम्भव रोकती हुई, इन्हीं दोनों नारियों के पास आकर बैठ गईं, नितान्त सम्भ्रम के साथ।

अधरलाल ने कहा, "गोस्वामिन् ! आज तो आपकी यह सुदामापुरी इन्द्र की अमरावती हो गई है !"

"अमरावती इन्द्र ही को मुबारक रहे अधरलाल ! महाप्रभु के गोकुल का वैभव उपमा के लिए भी किसी का उपयाचक न होगा। यह ब्रजभूमि है, इसके एक-एक कण में ब्रज-जीवन घनश्याम के प्राण स्पन्दित हो रहे हैं। इन्द्र की लक्षावधि अमरावतियाँ भी उस कण की समता नहीं पा सकतीं, तब उसके वैभव की श्री को पाना क्या एक अमरावती के लिए कभी सम्भव भी है ! आज महाप्रभु का जन्म-दिन है, निबिड़ कारागृह के घने अन्धकार में आज के दिन महाप्रभु ने प्रकाश की अविच्छिन्न धारा बहाई थी। जीवन के वैसे ही दुरन्त कारागृह में आज केवल प्रकाश की स्मृति-मात्र रह गई है। महाप्रभु के प्राण सहस्त्रधारा होकर आज भी ब्रज के रज-कण में अनुप्राणित हैं, किन्तु गोपियों का वह आकुलतामय उत्तर कहाँ है ? सिक्त पलकों के बन्धन से आँसू बनकर मुक्त होने वाली उस समय की वह बुभुक्षा आज इस मिट्टी से मिलकर पवित्र होने के लिए भी उत्सुक नहीं दीखती अधरलाल ! कुञ्जाटवी में रहस्य के आलाप तो सुनाई पड़ते हैं, किन्तु समर्पण की वह निश्चिन्त-निरामयता कहाँ चली गई ? —कहां चली गई, तब इस निष्प्राण-निर्जीव अभिनय के अनुयोग में अमरावती का उपहास---उपहास के अतिरिक्त और है ही क्या ?—नहीं, नहीं अधरलाल, इसे सुदामापुरी ही रहने दो !"

नीलम स्वस्थ्य होकर 'अभिनय का यह निष्प्राण-निर्जीव अनुयोग' देख रही थी। जब तक केवल आचार्य की आंखे ही रस-सिक्त थीं, उसे अधिक आश्चर्य नहीं हुआ था, किन्तु इस भावुकतामयी वक्तृता के समाप्त होते ही जैसे ही उसने उपस्थित श्रोता मण्डली पर दृष्टि डाली उसके विस्मय का कूल न रहा कि अधरलाल तो अधरलाल, आरती तक के आँसू, कदाचित् अनजाने ही, दीपालोक की मुग्ध-छाया में उद्दीप्त हो उठे। एक वही सूखी आंखे' लिये, सूखे दिल लिये, सूखे वृद्ध-

वृन्त की भांति अडिग बैठी रही। अपनी एकांतिक लज्जा का निवारण करने के लिए नीलम को अपना मुँह नीचे छिपा लेना पड़ा।

"दिन को नहीं, आए अधरलाल! बन चारण-प्रसंग की कथा थी आज। महाप्रभु ने यमुना-तीर पर खड़े होकर भुवन-मोहिनी मुरली बजाई थी। यज्ञ कर्त्ता गोप-पत्नियों ने उसे सुना। सुनतीं क्यों नहीं? गोपाल का अविच्छिन्न-सान्निध्य प्राप्त करने के लिए किस गोपाङ्गना की समस्त इन्द्रियां सदैव उन्मुख नहीं रहा करती थीं? लोक-लज्जा को त्यागकर अपने भौतिक जीवन के सभी बन्धनों को क्षण-भर में तोड़ डालती हुई दौड़ पड़ीं! मुक्ति का वह स्वर, स्वतंत्रता का वह आह्वान जिसके कानों में पड़ जाता है, वह किस बन्धन को गिनेगा? उस महान् की जब पुकार सुन पड़ती है अधरलाल, तो फिर किसी से रुका नहीं जा सकता, कोई माया, कोई पाश उसे घेरे नहीं रह सकता, कोई पुरस्कार मार्ग में रोड़े नहीं अटका सकता! ऐसी ही होती है वह पुकार, तब माँ अपने बच्चे को दूध पिलाना भूल जाती है, पत्नी अपने पति को खाना खिलाना भूल जाती है—अरे वह पुकार केवल इन गोपियों ही को नहीं भुलाती रही, इन निर्वाक गौवों तक को समान रूप से मुग्ध करती रही है—"

आंसुओं का बन्धन फिर इस वृद्ध आचार्य की आंखों में शिथिल हो गया। मानो वंशी का वह करुण कठोर आह्वान वह अप्रतिहत निमंत्रण उनके कर्ण-पट पर आकीर्ण होगया। सारा उपस्थित समुदाय चित्र-लिखित-सा आचार्य के निष्कलुष मुँह पर दृष्टि गड़ाए हुए है, और आचार्य की आँखों के आंसू शत-सहस्त्र होकर सभी की आंखों में भर गए हैं!

नीलम भी अपनी आँखें और कान बिछाए इस सम्पूर्ण व्यापार की गवाह बन रही थी! एक क्षण तो उसने भावुकता के इस सस्ते अनुयोग पर हँसने की चेष्टा की, परन्तु वह हँसी मानो भय से सिहर कर ऊपर नहीं आ सकी! क्लोरोफार्म का-सा मादक प्रभाव उस वातावरण

में फैल रहा था; नीलम समझ रही थी, फिर भी उसके मन का स्वास्थ्य धीरे-धीरे इस नशे में अपनी चेतना खोने लगा। प्राणपण से अपने-आपको स्वस्थ रखने का प्रयत्न करती हुई वह वृद्ध आचार्य की बात चीत सुनती रही !

"एक मूर्ख गोप उस गोपी के पत्नीत्व का दावा कर बैठा। जिस महा समुद्र में सब दावे विसर्जित हो जाते हैं, जिस महाप्रमेय में सब साधनाएं स्वयं सिद्ध हो जाती हैं, जिस महाबन्धन में सभी बन्धन मुक्त हो जाते हैं, वहाँ पत्नीत्व का यह शिथिल बन्धन कहाँ तक उस गोपी को रोक पाता ? समस्त बन्धनों के स्वाभी का आह्वान इस पार्थिव शरीर की दीवारों की अपेक्षा नहीं करता, वह आत्मा की पुकार है, माया जगत् के इन उपकरणों का वहां प्रयोजन ही क्या है ? उस गोपिका के प्रणयोन्मत्त-प्राण शरीर के इस पिंजर-बन्धन को तोड़कर उड़ गए। यह पार्थिव शरीर उसके पार्थिव शरीर के दावेदार के पास पड़ा रहा, किन्तु उसके प्रेमास्पद-प्राण को अपने वरेण्य-चरणों के अतिरिक्त कहाँ शांति मिल सकती थी ? भक्तों की इसी तरह की प्रेमिल-पुकार के ऊपर ही तो आज के दिन महाप्रभु को क्षीर-सागर का मोह छोड़ना पड़ा था—इसी मोह को उच्छेदित करने के लिए तो उन्हें एक अभिनय करने की जरूरत आ पड़ी थी। वे भा ऐसे ही दुरन्त-भौतिक बन्धन थे। आज ही के निबिड़-अन्धकार से पूर्ण वह रात्रि थी। बाहर समस्त पृथिवी और आकाश में सजल-करुणाश्रुओं से बोझिल प्रलय के बादल अपनी कालिमा पोत रहे थे, और भीतर उससे भी निबिड़ बन्दी-गृह में लौह-शृंखलाएँ हाथ और पैरों की स्वतन्त्रता को भी जकड़े हुए थीं। किन्तु भक्तों की पुकार व्यर्थ नहीं गई अधरलाल ! महाप्रभु के कानों में पड़ते ही, वे इन समस्त बन्धनों की उपेक्षा करके आ ही पहुँचे !"

ऐश्वर्य के इस प्रखर-साम्राज्य में केवल इस क्षीण-काय वृद्ध की मन्द किन्तु मीठी वाणी ही थिरकती रही, शेष सारा समुदाय निर्विशेष

शान्ति में डूबा रहा। प्रकृति का सम्पूर्ण स्पन्दन भी मानो कृष्ण की इस कल्प-कथा में श्रवण के अपने दम्भ को भूलकर शान्त हो गया था।

कृष्ण-भक्ति का प्रधान अंग कीर्त्तन है। ऐसे आचार्यों के केन्द्र-मण्डल इन कीर्त्तनों से ही सदैव उद्भासित रहे हैं। राधिकारंजन की सुदामापुरी भी अपने करुण-कीर्त्तन के लिए आसपास प्रसिद्ध रही है। फिर आज का दिन तो विशेष समारोह का दिन था, अतः कीर्त्तन का आज विशेष आयोजन है! चूँकि यहाँ कीर्त्तन का सहज और सामान्य विधान है, अतः वह सब प्रसंगों पर, कथा के मध्य भी आवश्यकतानुसार चल पड़ता है!

राधिकारंजन कहते रहे—"प्रेम की पीड़ा ऐसी ही सर्वाहारा होती है। जहाँ बाधा मिली कि या तो वह उसे ही नष्ट कर डालना चाहती है, या स्वयं नष्ट हो जाती है।"

फिर उन तीनों पूर्वोक्त युवतियों में से एक को उद्देश्य करके कहा, "ललिते! वह 'प्राण का प्रस्थान' नहीं सुनाओगी?"

साजन्दे तैयार ही थे, रमणी वहीं बैठी रही, केवल उसने अपना मुँह देव-विग्रह के सम्मुख कर लिया। एक व्यक्ति उसके हाथ में तानपूरा पकड़ा गया। सितार के स्वर झंकार कर उठे। जलधर-केदारा के स्वर-ग्राम में उत्सव की धूमावृत-स्निग्धता मचल उठी। ललिता ने प्रारम्भ किया—

हृदय-उद्गत गंध पाकर मुग्ध-मृग से भ्रमित व्याकुल
सहज-विचरण में हुए अब वेणु-स्वर से श्रवण संकुल;
दूरतर ही गन्ध, स्वर की है न सीमा का किनारा;
व्याध का शर ही बनाता जो कहीं अस्तित्व का पुल—
मुग्धता मृग की सुनाती प्राण का प्रस्थान!
दृग का वरुण-व्रत मधु गान
किस प्रभाती में उदित संपृक्त सूचित अरुण-स्वर्ण-विहान!

नीलम के लिए परीक्षा-काल था। वह गायिका थी, नर्तकी थी। उसे अपने स्वर पर, अपने कण्ठ पर, और अपनी कला पर विश्वास था, गर्व था—तभी तो वह उनका व्यवसाय तक करती थी! जब तक अपनी वस्तु के इतने अधिक सम्मान की हम धारणा नहीं कर लेते, तब तक उसकी दूकानदारी कर ही कैसे सकते हैं? इसके अतिरिक्त मूल्य, ग्राहकों की समझदारी और उनकी पसन्द आदि का अन्दाज भी उसके संगीत-प्रसाधन का आधार रहा है, बल्कि आज ही कुछ घण्टे पूर्व अपने ही मन की गवाही में उसने संगीत का आराधन किया है। संगीत की स्वामिनी होकर वह संगीत की सौदागर नहीं हुई, शायद उसे अवसर भी नहीं मिला। आज वह तटस्थ दर्शक है, श्रोता है—नई बात है!

और भी एक बात हो गई। अब तक वह अपने बौद्धिक अस्तित्व को कायम रखे हुए थी, किन्तु संगीत की मीठी स्वर-लहरी से उसके हृदय का तार भी झंकृत हो उठा। आघात एक ही तार पर किया जाता है। किन्तु झंकार सभी तारों को सस्वर कर देती है। नीलम की भावुकता भी ललिता के स्वरों में गा उठी।

जिस प्रयत्न से, जिस सावधानी से तथा जिस आत्मोत्सर्ग से इस नारी का अन्तर द्रवित होकर इन स्वरों के व्याज से इस कण्ठ में फूट निकला है, उनका मूल्य क्या है? यह साधना एक घण्टे की एक रात की—शायद एक ही जीवन की भी नहीं है! यदि इस जीवन के पूर्वापर में जीवनों की एक श्रृंखला हो—और यहां की धार्मिक भावना तो चौरासी लाख योनियों की कल्पना करती आई है!—उन सभी जीवनों में समान रूप से परिव्याप्त इस साधना का क्या रहस्य है? नीलम ने आज के पूर्वाह्न ही में, अपने ही लिए निर्गीत स्वरों में इसका कुछ उत्तर पाया था, किन्तु दोनों के परिमाण की तुलना ही क्या है?

ललिता ने आचार्य की ओर देखा, मानो उनकी आँखों के मुग्ध-मृग बन्द होकर वेणु-स्वर की सीमा का किनारा पाने के लिए प्राणों का प्रस्थान बना रहे थे। उसने दूसरा चरण छेड़ दिया—

अश्रु बन दृग में गया भर स्नेह उर का आज सारा
ज्योति-सी जलने लगी चिर-सुप्त मूर्छित दीप-धारा
प्राण के ये शलभ भी चिर-मिलन के तट आ खड़े हैं
धवल-ओले-सी रही वह निपट गल-गल नयनतारा—
स्निग्ध आशा-वर्तिका का निकट है अवसान
दृग का वरुण-व्रत मधुगान
किस प्रभाती में उदित संपृक्त-सूचित अरुण-स्वर्ण विहान !

कितने बड़े विराट् प्रेम की भूख को अपने अन्तर में छिपाकर यह नारी इस प्रस्तर-मूर्ति के हिम-शीतल चरणों में दुर्निवार-आंसुओं की अंजलि अर्पित कर रही है ! किस आशा से, किस सौभाग्य से, किस संतोष से ?

कोई संदेह नहीं कि ललिता का संगीत टेकनीक की दृष्टि से निर्दोष और बहुत ऊँचा है, परन्तु यह नहीं, कि नीलम वहाँ तक पहुँच ही न सके ! किन्तु यही तो वह प्राणों की पुकार है, जिसकी चर्चा अभी-अभी गोस्वामी राधिकारंजन कर रहे थे; यही वह ज्योति है, जिसके चिर-मिलन के तट पर प्राणों के शलभ आ खड़े हुए हैं ! और जिस चिरसुप्त मूर्छित दीप-धारा को नीलम क्या, विश्व की कोई शक्ति नहीं प्राप्त कर सकती जब तक कि उसके कान प्रेम की वंशी का वह आकुल आह्वान न सुन लें !

और, इस समस्त प्राणमय व्यापार का आधेय यह प्राणहीन प्रस्तर मूर्ति ! द्वापर की बात छोड़ दी जाय, इस बीसवीं सदी की लक्षावधि गोपियों का भौतिक अश्रु सागर भी उन चरणों का युगों तक प्रक्षालन कर उस मूर्ति के दिल को तिल-भर भी नहीं हिला सकेगा ! चांदी के उन चन्द टुकड़ों में जिनके लिए नीलम की समस्त चेष्टाएं आज-तक नियोजित होती रही हैं, यदि तनिक भी समझदारी हो, तो इस पागलपन की भी कहीं समता नहीं है !

गुसाईं जी ने मानो समाधि से जागकर अपनी बाहों से आँसू पोंछते हुए कहा—"ललिते ! आँसू पोंछ डाल ! ऊपर देख, अश्रु बना हुआ

तेरे हृदय का यह स्नेह महाप्रभु के चरणों में स्वीकृत हुआ है सखी! उठ, जा, महाप्रभु के चरण-स्पर्श कर आ। देख, उनकी स्निग्ध आँखें तुझे बुला रही हैं। नहीं समझती उन आखों के इशारे?"

सब ने देव-विग्रह की ओर दृष्टि डाली, नीलम ने भी। क्या सच-मुच ही वे आंखें बुला नहीं रहीं? क्या संगमर्मर के उन शीतल अधरों पर रंजित अंगराग में फूटी हुई वह सिक्त-हँसी ललिता के प्रणय-निवेदन की अस्वीकृति नहीं दे रही? अरी अभागिन, उठती क्यों नहीं? जीवन का और कौन-सा अमूल्य क्षण होगा, जिसके लिए तू अब तक उस मौन आह्वान का तिरस्कार कर चुपचाप बैठी हुई है? लज्जा का यह बन्धन यदि इस समय भी तू नहीं तोड़ सकती, तो तेरी साधना को सत्य कैसे मान लिया जाय? नीलम के प्राण भीतर-ही-भीतर व्याकुल होने लगे, हाय, यदि वह देवमूर्ति उसकी ओर इस तरह तृषित दृष्टि से देखती होगी, तो क्या वह इतना बिलम्ब लगाती? —अब तक—

गुसाईं जी ने कहा—"लज्जित होती है ललिते?—

बूढ़े का मन भावुकता में नाचने लगा, उनके हाथ की करताल बज उठी, आप-ही-आप उनका कण्ठ कुहक उठा—

लज्जाभृत दृग, अमृत भृत श्रुति, विजड़ित मति, गतिमय मन
कमल-उल्लसित पुलक-तल्प पद यह मृदु अलसित चेतन;
खींच रहे ये प्राण किसे?—क्यों टूट रही अंगड़ाई?
ऊर्जित क्यों दृग-मणि का प्रणयार्णव?
मेरे स्वप्न-विवर का यह वैभव—
संसृति-श्रुति में भृत सखि, बनकर दूरागत वंशी-रव!

बूढ़े के कण्ठ में आज माधुर्य नहीं है। उमर की लम्बाई में वह विरल हो गया है। किन्तु जिससे पत्थर में प्राण पड़ जाते हैं, वह प्राणों का तो उसमें प्रवाह था ही! ज़बर्दस्ती ही नीलम की आँखें भी भर आईं। अधरलाल को अवकाश न था कि वे नीलम की दुर्बलता की जासूसी करते!

आचार्य ने कहा, "जय हो महाप्रभु ! स्वीकार करो ब्रज-जन-वल्लभ विवाह के करुण-मकरन्द से प्रबुद्ध प्राणों के इस शतदल को ! जीवन की इस कँटीली बाढ़ की तनिक भी चिन्ता नहीं करता हुआ जगत् की वेदना का यह मधुप इसके स्वारस्य को पिये डालता है, किन्तु यह है आपके चरणों में उत्सर्ग होने के लिए। व्यर्थ न होने दो उसे ब्रजेश्वर !"

आचार्य आसन से उठे, और विग्रह के गले की वनमाला लाकर उन्होंने ललिता के गले में डाल दी। ललिता का हृदय अप्रतिम आनन्दोच्छ्वास से कांप उठा। तारकांकित नील-नभ के समान उसका नीलम्बर हिल उठा, अमर-आनन्द के उद्भास में जीव और ब्रह्म के बीच की यह जागतिक नील-यवनिका मानो एकबारगी ही दोलायमान हो उठी !

ललिता के इस ऐश्वर्य से सम्पूर्ण समाज को ईर्ष्या हुई ! पहले सबने देव-मूर्त्ति की ओर देखा, मधुर-हास्य का अविकल झरना-सा उन स्निग्ध स्थिर आँखों से बहकर मानो ललिता की लज्जानत आँखों में भर रहा था; किन्तु ललिता की ओर देखकर उन्हें मालूम दिया, उसकी आँखें उस झरने की शीतलता से तृप्त होकर अश्रु के रूप में अपनी शालीनता व्यक्त कर रही हैं। सभी की आंखें झुक गईं।

नीलम भावाभिभूत-सी, अपने आप में खोई हुई, कभी इधर देखती, कभी उधर; कभी उसे अपने ऊपर क्षोभ होता, कभी अधर-लाल, आरती या आचार्य—या इन देवांगनाओं के प्रति; और कभी इतनी अधिक विस्मृत हो जाती कि उसे यह भी ध्यान नहीं रहता कि वह किस दुनियाँ में है !

कुछ समय के भावोपराम के पश्चात् अधरलाल ने समुदाय की तन्द्रा को दूर किया, वे बोले—"स्वामिन् ! जीवन के इस विश्व-व्यापी असंतोष के दुरन्त—कारागृह में हमें आजकल न तो कहीं आत्मा की पुकार सुनाई देती है, और न कहीं प्राणों में वह समर्पणोत्सुक आकु-

बता । महाप्रभु की कृपा का फिर कौन-सा द्वार हमारा उद्धार करेगा भगवन् ?"

नीलम ने अनुभव किया, इस प्रश्न के साथ उसकी भावना का कुछ सम्बन्ध है, वह विशेष मनोयोग पूर्वक आचार्य का उत्तर सुनने लगी !

आचार्य ने अपनी बन्द आँखेंखोलीं; एक बार प्रभूत-विभूति-सम्पन्न देव विग्रह की ओर देखा, फिर सम्पूर्ण मण्डली की ओर; तब तक उपस्थिति बहुत बढ़ चुकी थी; और तब अधरलाल के ऊपर अपने नेत्र स्थिर करके वे धीर गम्भीर स्वर से कहने लगे—

"यह प्रश्न आज ही का नहीं है अधरलाल, बल्कि सृष्टि के आरम्भ ही से चला आ रहा है। आत्मा की पुकार का सुनाई देना बहुत सरल नहीं है, बिना महाप्रभु के अनुग्रह के उसे कोई सुन ही कैसे सकता है ? इस कोलाहलमय विश्व में उस सूक्ष्म पुकार के खो जाने की ही सबसे अधिक सम्भावना है। बहुधा तो हम उसे सुनकर भी नहीं सुनते, नहीं सुनने का बहाना कर लेते हैं ! वह स्वार्थ की नंगी पीठ पर चाबुक की चोट है न !"

नीलम अपने-आपको नहीं रोक सकी; थोड़ा ही विराम पाकर बोल उठी—"तो क्या गुसाईं जी, आत्मा स्व-पक्ष से स्वार्थ बोधिनी नहीं हो जाती ?"

गुसाईं जी ने और समस्त उपस्थित श्रोतृ-मण्डल ने भी नीलम के ऊपर दृष्टि डाली । इन अगणित आँखों का समवेत आक्रमण नीलम नहीं सह सकी, उसने नीची दृष्टि कर ली !

आचार्य किंचित् हंसे, फिर बोले, "तेरी आँखों में तो रस का समुद्र लहरा रहा है सखी ! यह शून्य का हाहाकार उनमें तू कहां से भर लाई ? रसखान भगवान् कृष्ण की अतृप्त-प्यास में ये प्याले उंडेलकर राधिका-रानी निश्शेष हो गई थी । गोपांगनाओं के संचित हृदय का समस्त रस आज तक महाप्रभु के पत्थर के दिलों को भी नहीं

सुखा सका है। युगों के अविश्वास का पवन, शुष्क विज्ञान का प्रखर प्रताप भी तो, इस विग्रह तक के आँखों के रस-समुद्र को नहीं उलीच सका। देख न सखी, सामने ही तो वह मूर्त्ति रस की अतुल राशि में डूबी हुई-सी प्रेम की पवित्रता मांग रही है! देख, उन आँखों में स्वीकृति का वह गम्भीर अनुग्रह दीपालोक में रस-बिन्दु की भाँति उल्लासित हो उठा है!"

नीलम नीची दृष्टि किए बैठी रही। पास ही बैठी हुई आरती और अधिक निकट सरक गई, और पीठ पर हाथ फैलाकर उसने बड़े जोर से चिकौटी खींच ली। नीलम सिहर उठी, परन्तु लज्जा ने उसकी आँखों को ऊपर नहीं उठने दिया!

इधर समस्त शेष उपस्थित जन-समूह की दृष्टि देवमूर्त्ति की ओर खिंच गई! पत्थर की शुभ्र-श्याम आँखों में दीपक का ज्योति-बिन्दु प्रतिबिम्बित होकर प्रवहमान अश्रु गोलक-सा स्पष्ट दिखाई दे रहा था; अधरों पर वही प्रवाल-रागरंजित मधुर-हास्य, जिसे देखकर आप-ही आप मानो चित्र खिंच जाता है। सभी लोगों ने श्रद्धान्वित होकर मूक प्रणाम किया, किन्तु नीलम अपने ही चरण नखों पर अपनी दृष्टि को प्रणिपात किए रही!

अश्रु-निबद्ध आँखों को स्पष्ट करके, तथा कण्ठ के गद्गदावरोध को संयत करके आचार्य ने कहना शुरू किया—

"जगज्जननि राधिका के आत्म-समर्पण पर किसे सन्देह हो सकता है! किन्तु वे जगज्जननि थीं; अपने पुत्रों की शंका का समाधान चाहना उनके लिए नैसर्गिक ही था। तुम्हारा तर्क भी अनुचित नहीं है माँ! तुमने आत्मा को स्वार्थ-बोधिनी माना है, किन्तु आत्मा का संकल्पात्मक अर्थ तो दूसरा ही है!—स्वार्थ बोध के लिए आत्मा नहीं मानी जाती; उसके लिए हम व्यक्ति का प्रतिनिधि 'मन' मानते हैं! आत्मा को तुम कोई भौतिक पदार्थ या वस्तु तो अवश्य नहीं मानती होगी, किन्तु उसे एक 'भाव' ही क्यों नहीं मान लेतीं! आत्मा का यह भाव सामान्य

है, विशेष नहीं ! व्यक्ति का प्रतिनिधि मन है, इस मन का शेष जगत् से सम्बन्ध स्थापित करने वाला जो भाव है, वह मनुष्य-मात्र का प्रतिनिधि है ! उसी को यदि आत्मा मान लिया जाय, तो काम चल जायगा ! क्या चिन्ता है, यदि यह भाव बाहर से ही लाया हुआ हो !''

नीलम को अनुभव हुआ, वृद्ध भावुक है किन्तु बुद्धि-शून्य नहीं; और किसी बात के लिए उसके मन में दुराग्रह भी नहीं । प्रत्येक वस्तु को हर पहलू से सोचने में उसे ग्लानि नहीं होती, तो साहस कर उसने कहा—

''किन्तु 'अभाव' से किसी 'भाव' का प्रतिपादन कैसे हो सकेगा गुसाईं जी ? यदि आत्मा नाम की कोई वस्तु होगी नहीं ?''

''किन्तु 'मैं' तो हूँ, और मुझसे 'इतर' शेष सृष्टि तो है—और यदि यह है, तो इन दोनों के बीच एक सम्बन्ध भी तो है ! इसी सम्बन्ध को, जो दोनों पक्षों में एकता स्थापित करता है, मैं आत्मा का नाम देता हूँ आर्ये !''

नीलम चुप रही, किन्तु कान उसके उसी ओर लगे थे। उपस्थित समूह में से बहुतेरे इस गायिका को जानते थे। कदाचित् इसे सभागृह मे देख उन्होंने इतना-मात्र ही सोचा हो कि उत्सव में इसकी उपस्थिति से कुछ रौनक ही बढ़ेगी, किन्तु यह किसी ने नहीं सोचा था कि वह इतनी अधिक गंभीर होकर ऐसी अनबूझ 'धर्म-चर्चा' भी कर सकती है ! अधरलाल शांत-चित्त से सब कुछ सुन रहे थे। नीलम के प्रश्नों पर उन्हें आश्चर्य नहीं हो रहा था, केवल कभी वे आचार्य की ओर देख लेते, तो कभी नीलम की ओर !

आचार्य ने एक क्षण का विश्राम लेकर फिर कहना प्रारंभ किया—

मैं नासदीय सूक्त की बात नहीं कहूँगा—यह संसार सदा से है अथवा सदा से नहीं है—इसमें क्या है ? किन्तु निपट अनात्मवाद से क्या मनुष्य धर्म के समस्त संबंध निर्वाहित हो सकते हैं ? आत्मा व्यक्ति-विशेष की विरासत नहीं है देवि, वह तो निर्विशेष बृहत् मानव-समाज

की जिह्वा है, व्यक्ति उस समस्त मानव-शरीर का एक अंग-मात्र है ! और निरी भावुकता कहकर तुम जिसकी खिल्ली उड़ाया करती हो, वही सहृदयता इस समस्त मानव-शरीर का मस्तिष्क है ! बुद्धि का महत्त्व समाज का आधेय नहीं हो सकता, वह व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति है। बुद्धि का तकाजा एक व्यक्ति को उसके स्वार्थ के लिए प्रेरित करता है, किन्तु इस सहृदयता का तकाजा उसे मनुष्य-मात्र के लिए सोचने को बाध्य करता है। जब हमारे कार्यों से किसी व्यक्ति-विशेष—समस्त मानव-शरीर के एक अंग—को आघात पहुँचता है, तो इस मानव-शरीर के ज्ञान-तंतु इसी भावुकता के केन्द्र में झंकृत हो उठते हैं और तभी मनुष्य की आत्मा—व्यक्ति का वही निर्विशेषक गुण—पुकार उठता है सखी ! मुझे तो आश्चर्य होता है कि मनुष्य-मात्र में साम्य की वकालत करने वाला समाजवाद मानव-मात्र की इस एकान्तिक समता के प्रतीक आत्मा के बहिष्कार से क्या लाभ उठा सकता है ?"

आचार्य चुप होगए। तभी एक दूसरे शिष्य ने प्रवेश करके सूचना दी कि समय हो गया है। उपस्थित समूह में एक चांचल्य-सा फैल गया।

आचार्य ने कहा—"आर्ये, मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि आर्य-नारियाँ आज भी धर्म और दर्शन के गूढ़ तत्त्व में प्रवेश पाने के लिए व्यग्र हैं। हमें बात करने के लिए समय का अभाव न रहेगा।" फिर अपने शिष्य की ओर अभिमुख होकर उन्होंने कहा—"अर्द्धरात्रि के बाद अधरलाल को घर जाने की जरूरत नहीं है। उनके महाप्रसाद का आयोजन और फिर बाद में यत्किंचित् शयन का प्रबन्ध यहीं हो जाय। क्यों अधरलाल ! तीन प्रहर रात्रि तो यहीं व्यतीत हो जायगी। आज नवीन वैष्णावियों को यह उत्सव सम्पूर्ण नहीं देखने दोगे क्या !"

अधरलाल ने कहा, "नवीन वैष्णावियों से पूछ देखूँ ? (नीलम की ओर इशारा करके) खास करके इस दार्शनिक वैष्णावी से जी घबराता है स्वामिन् !"

आचार्य ने खड़े होकर कहा—"इसकी आँखें कह रही हैं अधर-

लाल, कि प्रेम की पीड़ा जैसी भयानक इसके हृदय में उठ रही है, दूसरों के हृदयों में उसका शतांश भी नहीं है !"

आरती ने फिर नीलम की चिकोटी काटी !

क्षण-भर बाद ही कृष्ण-जन्म के महोत्सव का निरुपम दृश्य प्रारंभ हो गया !

(१३)

अस्पताल में पड़े हुए त्रिलोक नारायण के शरीर और मन, दोनों में सुधार होने लगा। भयानक न होने पर भी चोट चोट तो थी ही, इसलिए एक माह के बाद भी वह इस काबिल न हो सका कि अस्पताल को छोड़कर अपनी मर्ज़ी के पैरों चल सके !

वैसे अस्पताल में भी उसकी नवाबी में कोई फर्क आया हो, ऐसा नहीं मालूम दिया। प्रथम श्रेणी के एक बढ़िया-से वार्ड में, जहाँ बीमारी ही के नहीं, स्वास्थ्य के भी सभी साधन प्रस्तुत थे, मि० त्रिलोकनारायण का डेरा था। एक भारतीय तथा एक अंग्रेज नर्स उनके उपचार में तैनात थीं। कहते हैं कि बीमार के लिए स्वस्थ आदमी की अपेक्षा आराम की—इसलिए ऐशो-इशरत की भी अधिक आवश्यकता है। इसी दृष्टि से वार्ड का प्रबन्ध था; किन्तु यह कहना कठिन है कि वाजिदअली शाह के नवीन संस्करण मि० त्रिलोक नारायण स्वस्थ होकर अपने घर में अधिक ऐश्वर्य का उपभोग करते थे, या बीमार होकर अस्पताल के इस वार्ड में ! एक बात तो साफ थी कि इन दो नर्सों का सामीप्य—यदि इसे ऐश्वर्य कहा जाय—त्रिलोक के घर पर उपलब्ध न था !

इन सब ऐश्वर्य के ऊपर है मुद्रा का ऐश्वर्य ! सतयुग में, सुनते हैं, मुनियों का मन डिगाने के लिए इन्द्र को अप्सराओं के नूपुर-रणन की व्यवस्था करनी पड़ती थी, और तब भी मामला बहुधा उर्दू ही में समझा जाता था ! अप्सराओं के लज्जित होकर लौट जाने के दृष्टान्तों

का पुराणों में अभाव नहीं है ! मुद्रा का आविष्कार आधुनिकतर है। इस युग का औसत आदमी मेरे कथन का विश्वास करेगा कि यदि इन्द्र को इस चन्द्रिका-धवल या स्वर्ण-राग-रंजित मुद्रा-सुन्दरी की झंकार का पता होता, तो उसकी आशंका की मात्रा शायद उतनी तीव्र न रही होती ! त्रिलोक को यह रहस्य मालूम था, और इसीलिए इस सुन्दरी की झंकार-मात्र से वह त्रिलोक का ऐश्वर्य उपभोग करता था, बीमारी और स्वास्थ्य का तो प्रश्न ही क्या है।

कमल किशोर और माया भी दिन-भर में कम-से-कम चार बार उपस्थित होते। एक को अपने भविष्य-सम्बन्ध का ध्यान था, दूसरे को अपने कर्त्तव्य का !—यानी चारों दिशाओं से उसकी बीमारी को खींचने वाले थे। वह स्वस्थ होने लगा !

घटना अपने-आप में बहुत साफ थी। माया के पत्नीत्व की इच्छा करना त्रिलोक के लिए अस्वाभाविक न था। अध्ययन के दिनों में वह उसे प्रेम कर चुका था, और जब माया का अपने पति से विच्छेद हो गया तो माया के पिता ने उसे इस सम्बन्ध के लिए आह्वान किया। त्रिलोक की भूमिका में कोई बात अस्वाभाविक नहीं हुई। किन्तु जब मौका प्राप्त हुआ ?

माया त्रिलोक को प्यार करती थी या नहीं ? त्रिलोक निर्णय नहीं कर सका। अध्ययन के दिनों में त्रिलोक के प्रणयोपसर्ग में माया की कोई अस्वीकृति न थी। चाय के निमंत्रणों पर माया त्रिलोक के घर उपस्थित होती आई है, और आत्मीय के तौर पर बात करने में भी वह कभी संकुचित नहीं हुई। किन्तु तब नवनीत उसके जीवन में न था, कहा नहीं जा सकता कि नवनीत की भूमिका में त्रिलोक की उपस्थिति माया की जीवन-स्टेज पर क्या गुल खिलाती !

नवनीत की और त्रिलोक की तुलना जरा अजीब-सी लगती है ! एक ओर जीवन में पैसा ही सब-कुछ नहीं है, दूसरी ओर जीवन में विद्या भी सब-कुछ नहीं है ! यही बात सादगी या ऐश्वर्य, या और-और

बातों में भी ठीक रूप से लागू होती है। दुनिया में तथाकथित सद्गुणों का ठेका भी कोई एक ही व्यक्ति लेकर नहीं बैठ जाता। तब हर चीज के बारे में सोचने के लिए यदि कोई तथ्य आवश्यक हो, तो हमें सापेक्षता की शरण लेना ही पड़ेगी!

यह तो साफ है कि माया के दिल पर नवनीत की तस्वीर बहुत गहरी नक्श हो चुकी है। यदि घृणा का अत्यन्त अतिरेक न हो, तो भारतीय नारी का हाथ हत्या के लिए अज्ञान में भी पिस्तौल के घोड़े पर नहीं जा सकता। और सच पूछा जाय तो जिस अवश अज्ञात अवस्था में माया ने त्रिलोक पर पिस्तौल चलाई थी वही अवस्था तो मनुष्य के अन्तरतम की साक्षी है। तब माया की भूमिका, उसका वैराग्य भी न तो अस्पष्ट ही है, और न अस्वाभाविक ही!

तब त्रिलोक और माया के इस क्षेपक में लम्बे-चौड़े जमा-खर्च के बाद उत्तर तो शून्य ही बच रहा! कागज जरूर खराब गया, हृदय के ऊपर एक निशानी बन गई, यहाँ तक कि शरीर के ऊपर भी पिस्तौल की गोली का चिह्न तो शेष रह ही जायगा! और माया?

हिन्दू-स्त्री अपने संस्कारों को कैसे छोड़ सकती है? सम्भव है यह झगड़ा दोनों के जीवन-व्यापी प्रणय का ही एक रूप हो, जिसे शायद दोनों ही नहीं समझे! यदि ऐसा है तो फिर शीघ्र ही दोनों में मेल हो जाना सर्वथा सम्भव है!

तभी भारतीय नर्स के साथ-ही-साथ माया भी भीतर प्रविष्ट हुई। माया ने नमस्ते की, और इशारा करने पर पास ही की कुर्सी पर बैठ गई! नर्स ने टेम्परेचर लिया, जीभ देखी, नाड़ी अनुभव की फिर अपने परीक्षण को पास ही टँगे हुए एक बोर्ड पर लिखा, फिर किंचित् हँसकर कहा—

'अब तो आपका स्वास्थ्य ठीक हो गया है!"

त्रिलोक ने हंसकर उत्तर दिया, "इच्छा तो यही होती है कि यह स्वास्थ्य ठीक न होता!"

"क्यों भला ?"

"क्या यह भी कहना पड़ेगा कि तीमारदारी खाली बीमार के लिए ही नहीं, स्वस्थ व्यक्ति के लिए भी जरूरी है। बल्कि ज्यादा जरूरी स्वस्थ आदमी के लिए ही है ताकि वह बीमार ही न हो। लेकिन अस्पताल का तो नियम ही जुदा है। वहाँ पर बीमार हुए बिना और रहे बिना तो तीमारदारी का सौभाग्य प्राप्त नहीं किया जा सकता न !"

नर्स ने कहा, "तो फिर आप शादी क्यों नहीं कर लेते त्रिलोक बाबू ?" साथ ही वह लज्जित भी हो गई; शायद माया की उपस्थिति का ख्याल करके यह कहती हुई भाग गई कि वह खाने के समय खाना लेकर उपस्थित होगी !"

जब तक वह देखी जा सकी, त्रिलोक सतृष्ण नेत्रों से नर्स को देखता रहा, फिर एक लम्बी साँस लेकर माया की ओर उन्मुख हुआ !

"माफ करना, मैं उसे शीघ्र ही विदा कर देना चाहता था। सच कहना, लड़की तुम्हें कैसी पसन्द आई।"

माया ने उत्तर दिया, "सुन्दर है, और आपके स्वास्थ्य के प्रति विशेष चिन्तित भी !"

त्रिलोक मुस्कराया—"मेरे स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, बल्कि कहो मेरे लिए भी !"

माया बोली, "तो इसी से विवाह कर लीजिए न !"

त्रिलोक ने एक लम्बी साँस ली और बोला, "कर तो लूँ, पर किस मन से ? काश ! मेरा मन ही मेरा होता।"

माया संत्रस्त हो उठी। आगे क्या कहना चाहता है वह ? कहीं फिर वही पुराना प्रसङ्ग न आरम्भ कर दे। त्रिलोक ने माया की हड़बड़ाहट लक्ष्य कर ली, वह बोला—

"कुण्ठित न हो माया; मैं अपनी भूल को स्वीकार करता हूँ। मैं प्रेम को अब तक खिलवाड़ ही समझता रहा। सोचता था, प्रेम एक आकर्षण-मात्र ही तो है। यह आकर्षण कितनी स्थूल वस्तु है, यह तो

इसी से समझा जा सकता है कि वह न केवल सौन्दर्य, शील और शक्ति ही से प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु वह वाचालता, नटखटपन और ओछेपन से भी प्राप्त किया जा सकता है। कुछ दर्जे तक यह आकर्षण साथ भी देता है, क्योंकि इन सभी बातों में सामान्यतः आकर्षण का एक बिन्दु तो रहता है, और वह है लोकोत्तरता। किन्तु अस्पताल के इस प्रसंग की तुम्हारे प्रसंग से तुलना करने पर मुझे दूसरी ही बात दिखाई दी है। आकर्षण प्रेम नहीं, वह तो चुनाव का एक साधारण उपकरण मात्र है। सचमुच का प्रेम तो हृदय की वह निष्ठा है, जो आकर्षण नहीं चाहता बल्कि विस्तरण चाहता है। प्रेम अपने सच्चे अर्थ में ग्रहण नहीं, वह तो दान है, जिसका एक निरविच्छिन्न अडिग उदाहरण तुम हो, और तुमसे ही प्रेम करके मैंने इस रहस्य को समझा है। इस लड़की के प्रति अपने आकर्षण को मैं समझता हूँ, किन्तु वह तो भावना के पहले ज्वार के साथ-ही समाप्त हो जाने वाला है। चन्द्रमा का प्रकाश बड़ा सुन्दर और प्रिय लगता है, किन्तु सूर्योदय होते ही उस प्रकाश की श्री आप-ही-आप लुप्त हो जाती है, वह चन्द्रमा के लुप्त होने की भी अपेक्षा नहीं करती। नहीं क्या?"

"आकर्षण चाहे प्रेम का अन्त न हो, प्रारम्भ तो हो सकता है न। चुनाव में तो सहायक हो सकता है न! भविष्य की कसौटी भी क्या आपको दिखाई देती है?—सम्भव है यही लड़की आपके जीवन की प्राप्य हो! आकर्षण को आप चुनाव का उपकरण तो मानते हैं!"

"उपकरण-मात्र और सामान्य-सा। परीक्षा ही सदैव ज्ञान नहीं होती माया। और परीक्षा के नतीजे के ऊपर ही सदैव निर्भर नहीं किया जा सकता। यदि कभी उससे ठीक परिचय मिल सकता है तो उसी परिमाण में गलत परिचय भी तो मिल सकता है। भविष्य की कसौटी चाहे दिखाई न दे, किन्तु उसका एक सिरा तो वर्त्तमान के हाथ में है।"

"तब दूसरा क्या उपाय है?"

त्रिलोक हँस दिया। बोला, "परीक्षा, और उसके बाद परीक्षण—प्रोबेशन ! नहीं क्या ! परन्तु, तुम जानती ही हो, विवाह-जैसी बात हमारे यहाँ, और कम-अधिक रूप में दूसरे देशों में भी, परीक्षण या प्रयोग की नहीं है, यद्यपि कहीं-कहीं पर तलाक का विधान अवश्य है। तब एक ही बहाना शेष रह जाता है वह है परीक्षा के बाद निरीक्षा का—इण्ट्रोस्पेक्शन का। और इसी तरह मैं जान पाया हूँ माया, कि जिसके नेत्रों में तुम्हारी प्रभा समा चुकी है, वह अंधकार में भी ताराओं के प्रकाश के द्वारा नहीं भुलाई जा सकती। वह अंधकार का वरदान स्वीकार कर लेने के लिए तत्पर है।"

माया ने कुछ उत्तर नहीं दिया। एक दुर्निवार आंधी से उसका अन्तर विक्षुब्ध हो उठा था, उसकी साँस तेज हो उठी। त्रिलोक माया के द्वन्द्व को समझ गया, बोला—

"मैं भी नहीं चाहता कि तुम्हें दुःख देने के लिए यह प्रसंग बराबर बार-बार उठाया जाता रहे। सोचता हूँ कि अस्पताल से निकल कर सब से पहला काम जो करूँ वह नवनीत को कान पकड़कर यहाँ खींच लाऊँ, और बताऊँ कि उसने कैसे रत्न को मिट्टी में मिला रखा है—कम-से-कम राह चलने वाले दिवालियों का मन तो ठोकर न खाय।"

माया बीच ही में बोल उठी, "नहीं नहीं; मैं हाथ जोड़ती हूँ आपके त्रिलोक बाबू ! इस बारे में आप मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दीजिए। हम लोगों के झगड़े में कोई दूसरा पड़े यह मुझसे सहन नहीं होगा।"

और यह कहती-कहती ही वह उठ खड़ी हुई। पकी हुई जगह पर चोट खाकर माया का घाव बह निकला। उसने आँखें छिपा लीं। त्रिलोक ने भी करवट फेर कर मुँह छिपाते हुए कहा—

"तुम्हें देर हो गई माया, तुम जाओ। मैं वायदा करता हूँ कि भविष्य में इस विषय में मेरी कोई दिलचस्पी न रहेगी। मेरा स्वास्थ्य भी अब ठीक हो गया है। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ कि तुमने मेरी इतनी अधिक सम्हाल रखी है !"

माया ने मौन नमस्कार किया। और अपनी आँखों की शून्य सजल दृष्टि को त्रिलोक की पीठ से टकराकर धीर पदों से वह बाहर लौट गई।

त्रिलोक ने कुछ क्षणों के उपरान्त अपने-आपसे कहा,—अभिमानिनी नारी, तू अपने अभिमान को पराए पुरुष के निकट निराहट्त नहीं होने देना चाहती। पराया पुरुष ? ठीक ही तो है। जिसे तू किसी भी रूप में अपना नहीं समझना चाहती; वह क्यों तेरे मार्ग में आकर तेरी यात्रा को विघ्नपूर्ण कर रहा है !

त्रिलोक ने बिजली का बटन दबाया, शीघ्र ही एक नौकर प्रविष्ट हो गया, और उसने सलाम किया ! त्रिलोक ने कहा—"नर्स नं० १८—मिस पद्मा को हमारा सलाम बोलो—आज हम घर लौट जाना चाहते हैं !"

माया घर पर लौटी वितृष्णा से। दुपहर की गरमी उस समय भी प्रारम्भ नहीं हुई थी, किंतु माया तब भी बहुत कुम्हलाई हुई-सी प्रतीत हुई। घर पर कमल किशोर नहीं थे, अतः नौकरों की निगाहों से छिपने की-सी चेष्टा करती हुई वह अपने शयन-कक्ष में पहुँच गई, और बिना कपड़े बदले ही पलंग पर पड़ रही !

उसने जीवन का भविष्य किस दिशा में है ? जिस दिशा में वह अब तक बढ़ती आई है वह, या जिस मार्ग को पीछे छोड़कर वह अभी आगे बढ़ गई है, किन्तु जिस पर जाने के लिए अब भी एक सुविधा पूर्ण पगदण्डी इस मार्ग से अलग फट रही है ?

जिस मार्ग पर वह अब तक बढ़ती आई है, वह मार्ग उसने स्वेच्छा से ही नहीं, ममत्व से ग्रहण किया था। मार्ग की सरलता ही का यदि सवाल हो, तो मानो वह उस मार्ग पर चली नहीं, अनायास ही फिसलती रही हो बिना किसी बाधा के। परन्तु जहाँ यात्रा ही उद्देश्य, हो, वहां गति यदि फिसलने से है, तो उसमें अपनापन कहां रहा ?—चार वर्ष तक नवनीत का सामीप्य उसे क्या दे पाया ? एक अभावुक अवसाद, एक निरपेक्ष दयालुतामय आश्रय—एक अहेतुक सामीप्य ही न ?

नारी, समाज का स्वास्थ्य बताने वाली उसके शरीर की नाड़ी है, जिसकी गति में विक्षेप होने से समाज के शरीर का ढांचा बिखर जाता है आवश्यक है कि उसकी गति संयत और स्वाभाविक हो, उसमें शुद्ध रक्त का अनिरुद्ध प्रवाह निरन्तर होता रहे, और सबसे बड़ी बात, उसकी गति अपनी गति हो !

—किन्तु नवनीत की भूमिका में माया का नारीत्व पंगु होकर रहा, उसके गत जीवन के चार वर्ष दौड़ के वर्ष नहीं थे, वह फिसलन एक पतन-मात्र थी—कौमार्य के शिखर से वह विवाह के गर्त में गिर पड़ी थी। आश्रय के तौर पर नवनीत बुरा नहीं था। हिन्दू नारी के जीवन की सबसे बड़ी दीखने वाली समस्या कदाचित् आश्रय की खोज ही है। माँ-बाप यही तो तलाश करते हैं! परन्तु यह वे भूल जाते हैं कि नारी आश्रय देती है, और यदि कोई उस आश्रय को ग्रहण नहीं करता तो नारी का नारीत्व व्यर्थ हो जाता है। कदाचित् इसीलिए अधिकांशतः नारी को विवाह करना पड़ता है। विवाह के बाद भी वह समझती है कि बिना संतान के—बिना किसी निराश्रय अवश शिशु के मातृत्व के रूप में आश्रय का दायित्व स्वीकार किये नारीत्व—अपूर्ण ही रहता है।

नवनीत से माया को आश्रय तो मिला किन्तु यदि उसे आश्रय देने का अधिकार प्राप्त न हुआ हो तो वह आश्रय नारी के लिए बन्धन से क्या कम है। नवनीत माया का सम्बन्ध माया के विकास में बाधक हुआ है, फिर भी वह नवनीत ही के नाम की माला जप रही है! अपनी अकर्मण्यता को भक्ति का नाम देकर अपमान की तीव्र-ज्वाला को सहते रहना, तेरे सिवा और कौन कर सकता है नारी!—नवनीत ने उसे मन से निकाल दिया, तो भी उसके घर में बने रहने के अपने थोथे दावे ही को तू थामे रहती?—उसके कर का आश्रय ही किस काम का? मन से निकाल दिया—ठीक तो है, जिसने मन में स्थान ही नहीं दिया, उसके लिए क्या दूसरी बात कहनी आवश्यक है?—और अपमान—वह स्वेच्छा से उस घर को छोड़कर आई है; किन्तु वह पत्र!

माया उठी, सामने की दराज खोलकर उसने एक पत्र निकाला, वही पत्र जो माया के पुनर्विवाह का सम्वाद पाकर नवनीत ने उसे लिखा था। माया उसे एक बारगी आवेश में पढ़ गई। पढ़कर उसे फिर पलंग पर लेट जाना पड़ा—पत्र उसी तरह उसकी आँखों के सामने रहा!

यह सोचना सहज है कि पत्र अपमानजनक है, किन्तु यह स्पष्ट करना सहज नहीं कि अपमान की कौन-सी बात इस पत्र में है! एक दुर्निवार आघात को प्राप्त करके नवनीत के हृदय का जो घाव इस रूप में बह पड़ा है, वह यदि छिपा ही रहे, तो माया उस रुधिर को सहज ही वीभत्स समझ लेगी, किन्तु यदि वह घाव भावना की पकड़ में आ-गया तो फिर वीभत्स क्या है?—वह तो एक बड़ा करुण दृश्य है!

'व्यवसाय समेट लेने पर किसी हानि की सम्भावना तो न रहेगी' —या 'सौतिया-डाह जैसी कोई चीज आदमी में तो नहीं होती' उसके हृदय की निश्छल उदारता के ही तो प्रकरण हैं। व्यंग इनमें है ही कहाँ। इस मौके पर भी तो नवनीत अपने पतित्व का दावा सरलता से कर सकता था! परन्तु—

शिकायत और है ही क्या?—पतित्व का दावा, यही तो नारी की चरम इच्छा है!—यही तो नवनीत ने नहीं किया!—यहीं पर तो माया का पत्नीत्व फिसल पड़ा है। चट्टान की नीरव निस्पंद गोद में लेटकर निष्फल अश्रु-निवेदन करने वाली करुण लहरों की भांति उसके हृदय का कितना मधुर भार नवनीत के पाषाण हृदय पर नष्ट हो गया है! रक्षा, आश्रय ये तो खतरे के प्रतिकार हैं, परन्तु जीवन का प्रतिकार—वह कहाँ है?

नवनीत के हृदय की अस्पृश्य-गम्भीरता का पता लगाए बिना उसके ऊपर दोष लगाना न्याय-संगत तो जरूर नहीं! माना कि पत्र अपमान का न था, परन्तु मान का भी तो नहीं है!—अपमान ही का वह पत्र रहा होता, नवनीत ने माया की भर्त्सना की होती, उसे डाँटा-फटकारा होता, उसे अवांछनीय रूप से अन्याय्य रीति से, गलत तरीके

से भी यदि निषेध किया गया होता, तो आज इस दिग्भ्रम में उसे कुछ तो राह मिली होती ! नवनीत के हृदय को चोट लगी है, पर क्या माया का कोमल हृदय चोट अनुभव नहीं करता ? नवनीत को भी तो सोचना चाहिए था कि माया के भी दिल है, और चोट पहुँचाने से उसे भी दर्द होता है। और यदि उसने नहीं सोचा है तो उसे सोचने दिया जाय कि माया के हृदय को उससे कितनी अधिक चोट पहुँची है !

अवश्य ही सम्मुख-सम्मुख अपना दैन्य स्वीकार करना अपने स्वाभिमान को नष्ट करना है, किन्तु पत्र द्वारा भी तो यही बात प्रकट की जा सकती है ! आघात के प्रतिघात का वेग ही बतला देगा कि आघात कितना तीव्र था। उसने उठकर नवनीत को एक पत्र लिखने का संकल्प किया। सुयोग था, भावना थी, अतः वह उसी समय पत्र लिखने बैठ गई।

कई कागजों को फाड़कर भी आखिर उसने पत्र लिख ही डाला। पत्र नीचे लिखे माफिक था—

"महाशय जी, मेरे प्रस्तावित पुनर्विवाह के उपलक्ष में आपकी भेजी हुई बधाई के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। अवश्य ही निमंत्रण भेजकर मैं आशा नहीं करूँगी कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के साथ दमयन्ती का नल भी सारथी के रूप में आ मौजूद होगा। अँधेरे में मुझे मार्ग मिल गया, इस बात की आपको खुशी है, खुशी तो आपको होनी ही चाहिए। जिस दिन मुझे मार्ग नहीं मिला था, उस दिन आपको दुःख कहाँ था ? तब आपकी खुशी का मेरे लिए प्रयोजन ही क्या है ? परन्तु आपकी सदिच्छा के लिए धन्यवाद !

मैं मानती हूँ कि सौतिया डाह-जैसी चीज आदमी में नहीं होती— आप में तो जरूर नहीं है। जिसमें स्व-पत्नी-प्रेम ही न हो उसमें पत्नी-द्वेष तलाश करना मूर्खता नहीं है क्या ? आपने यह विडम्बना कहाँ से प्राप्त कर ली कि इतना सब-कुछ होते हुए भी आपने मुझे अपनी पत्नी मान लिया ?

दुर्भाग्य से मुझे तो आपके किसी नातेदार से सूचना नहीं मिली कि आपका कहीं पुनर्विवाह हो रहा है, नहीं तो इस क्षण-काल के लिए मुझे अपनी पत्नी मानने के आपके पौरुष के घाव पर मरहम के लिए मैं भी आपको साधुवाद भेज देती। और जैसी कि आपने कामना प्रकट की है, यदि उसी के अनुरूप मुझे भी कहीं आपके पुनर्विवाह के उपलक्ष में उत्सव के निकट उपनीत होने का अवसर मिलता, तो कदाचित् मैं समझ पाती कि वन्दिनी नूरजहां चार वर्ष तक जहांगीर की जिस कैद में रही, वह जहांगीर के अपनेपन की कैद थी, परन्तु आपके यहां माया का अपनापन आपको चार वर्ष तक घेरे रहा। तब अपनाने के दावे का सवाल शायद आपका न होकर मेरा होता। परन्तु जिस वस्तु को स्वेच्छा से छोड़ा जाना है; उसके ऊपर लोभ ही क्या?

देखती हूँ कि पुरुष खाली घाव करके ही सन्तुष्ट नहीं होता, वह जब-तब छू-छा कर उस घाव को छेड़ना भी चाहता है। आपके इस पत्र में यदि आपकी यह चेष्टा स्पष्ट हो उठी हो तो क्या आश्चर्य है! मैं एक दुर्बल नारी-मात्र हूँ, पुनर्विवाह का दुर्वाद तो मेरे सहने का साधारण-सा अभिशाप है; किन्तु आपके लौह-पौरुष का जनाजा यदि मेरी अर्थी के साथ ही निकलना हो तो मैं आपके मार्ग को प्रशस्त करने के लिए सर्वथा तत्पर हूँ।

अन्त में यही निवेदन है कि यदि आपको शिकार ही का शौक है तो तीर चलाकर आँखें क्यों बन्द कर लेते हैं? पक्षी की तड़फड़ाहट देखने में बहुत बुरी तो नहीं मालूम देती! और यदि पौरुष को लांछन लगाने की लज्जा न हो तो तीर को सदैव ही तरकश में स्थान रहता है!

यदि आवश्यकता न हो तो दासी को भविष्य में याद न कीजिएगा,—हालाँकि सोचती हूँ, दासी शब्द से मेरी लेखनी भी संकुचित होती है, और शायद आपका दिल भी हड़बड़ा जाय।

"'आपकी, जो कुछ आप समझना गवारा करें, माया!'"

कहना न होगा कि पत्र लिखकर उसने शीघ्र ही पोस्ट करवा दिया। कहीं दूसरा विचार उसे फिर न रोक ले !

दिल का गुबार निकल जाने से माया को बहुत कुछ शान्ति मिली। परन्तु दिल का गुबार निकल जाने पर भी, दिल तो नहीं निकलता, उससे खाना नहीं खाया जा सका। नतीजा यह हुआ कि कारण पूछने के लिए कमल किशोर ऊपर आ धमके।

माया तब भी वही साड़ी पहने थी, जो अस्पताल जाते समय उसके बदन पर थी। आँसुओं की काफी सम्पत्ति व्यय हो जाने से आँखें बड़ी दिवालिए-जैसी दीख रही थीं, जगह-जगह गालों पर आँसुओं की रेखा तक स्पष्ट थी। पिता चिन्तातुर हो गए !

"क्या हुआ माया, तुम्हें ?"

"कहाँ पिताजी ?—कुछ तो नहीं !"

"फिर खाना क्यों नहीं खाया ?—और ये आँखें इतनी लाल क्यों हो रही हैं ?"

"यही कुछ थोड़ा सिर दर्द था। रात से ही था, इसलिए रात को अधिक सो भी नहीं सकी !"

"पर दासी ने कहा कि तू अस्पताल तो गई थी !"

"गई थी, परन्तु वहीं एक दुखिया स्त्री की अपमृत्यु का दृश्य देखकर डॉक्टर के पास भी जाने का साहस न रहा। वैसे ही लौट आई।"

"अरे ! तो फिर यूडी कोलन की पट्टी ही लगवा ली होती !—ठहरो, मैं अभी इन्तजाम किये देता हूँ !"

"नहीं, नहीं, अब तो विशेष दर्द है भी नहीं। आप चिन्ता न कीजिए।"

पिता की चिन्ता घटने के बजाय बढ़ी ही। तापमान जानने के लिए व्यग्र होकर उन्होंने माया की नब्ज देखी सिर पर भी हाथ रखा। सब कुछ ठीक था, कोई विशेष बात न थी।

जवान लड़कियों का दर्दसर बहुत कुछ ताज्जुब की बात नहीं होती। प्रायः यह दर्दसर दर्ददिल ही हुआ करता है। कहीं थोड़ा भी अवसाद हो मन के ऊपर, कहीं जरा-सा भी काँटा लग जाय कि सिरदर्द शुरू हो जाता है। दुनिया देखे हुए पिता से यह बात छिपी हुई नहीं थी। वे तो यहाँ तक समझते थे कि यदि मन की बात किसी कारण से कही भी न जा सके तो भी सिर में दर्द पैदा हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है—और स्वाभाविक तो यह है कि वह दर्द सिर में नहीं, जबान पर होता है। क्या आश्चर्य, माया का सिर दर्द भी ऐसा ही हो; खास कर उसका यह विशेष संक्रमण-काल !

उन्होंने पूछा "त्रिलोक से मिली !"

"जी हाँ !"

"मैं तो आज नहीं जा सका। कल तो उसकी तबियत ठीक थी, आज कैसी है ?"

"आज भी तब तो ठीक ही थी पिताजी !"

पिता ने अनुभव किया था कि माया की चित्त-वृत्ति, त्रिलोक के लिए चिन्ता अनुभव करती है, और वे आशान्वित थे। उनका एक-मात्र उद्देश्य अपनी मातृ-हीना इकलौती पुत्री को सुखी देखना था। यदि नवनीत उसे सुखी नहीं कर सका तो उस त्रुटि का मार्जन किया जाना चाहिए। त्रिलोक के आतिथ्य में यह रहस्य निहित था।

अब तक इस विषय में कमल किशोर ने माया से कोई बातचीत नहीं की थी—इसके लिए उन्हें कोई उपयुक्त समय भी तो नहीं मिला था—किन्तु जब वे त्रिलोक से सारी बात स्पष्टतया प्रकट कर चुके थे तो क्या त्रिलोक ने इसका आभास माया को नहीं दिया होगा ?—समय उपयुक्त है, सोचकर कमलकिशोर ने अन्धेरे में भरे हुए घाव पर फिर हाथ रखा।

"तुमने खाने के लिए जो इन्कार करवा दिया, उससे मेरी चिन्ता और भी बढ़ गई। खैर अब साथ ही खा लेंगे—"

"यानी, आपने अभी तक नहीं खाया ?"

"कहां से खाता ?—पर अब साथ ही खायंगे। अधिक समय भी तो नहीं हुआ; तब तक बैठो, हम कुछ आवश्यक बातचीत ही कर लें !"

आवश्यक बातचीत, वह उसके सिवा हो ही क्या सकती है ?—परन्तु माया अब क्या कर सकती थी ! कमल किशोर कुर्सी खींच कर पास ही बैठ गए। संयत भाव से उन्होंने कहना शुरू किया—

"तीन बरस की थीं तुम जब तुम्हारी मां का देहान्त हुआ था। तबसे इस हाहाकार भरे उजड़े हृदय में मैंने मां की ममता भरी और तुमको इतना बड़ा किया। मेरे जीवन की समस्त साध, सम्पूर्ण सुख और सब आशाएं केवल तुम्हें सुखी बनाने की थीं। उनका सबका विराम, पूर्ण विराम कहो, तुम्हारे विवाह के समय हो गया, मुझ पर से तुम्हारा दायित्व उतर गया। जानती ही हो तुम तो, तभी से मैंने अपने जीवन को अपना न रखा। वह मेरे लिए प्रयोजन-हीन था; मैंने उसे जनता की सेवा में लगाने की चेष्टा की थी। और इस सेवा का मतलब तो समझती ही हो, जो जीवन से ममत्व-हीन खिलवाड़ है ! एक दृष्टि से देखा जाय तो यही जीवन का कर्ममय संन्यास है !"

दुपहर की गरमी तीव्र होती जा रही थी, परिस्थितियाँ उसे तीव्रतर कर रही थीं। कमलकिशोर के मस्तक पर पसीने की बूंदें चमक आईं। माया तब भी शांत, नीरव, नीची दृष्टि किये हुए, पिता की बातें सुन रही थी। माया ने देखा कि बात करने में उन्हें श्रम मालूम दे रहा है, तो वह बोली—

"पिताजी, भोजन तो कर लीजिए। बातें तो हम फिर भी कर लेंगे !"

"न जाने यह 'फिर' कब आए बेटी ! और भोजन तो करूँगा ही। जब से विधवा का अभिशाप लिये हुए सधवा की विडम्बना तुमने स्वीकार की है, तब से कितनी बार मैंने खाना छोड़ा, सो आज मैं खाना न खाऊँगा।"

'विधवा' शब्द-मात्र से मानो माया के कानों पर वज्रपात हुआ; किन्तु वह चुप बैठी रही। कमल किशोर उत्तेजित होकर कहने लगे—

"मैं उस दुष्ट नवनीत की बात को याद करके न दुःखित होना चाहता हूँ, न तुम्हें ही दुःखित करना चाहता हूँ। वह भी एक संयोग की बात थी; किन्तु संयोग से जो त्रुटि मनुष्य से हो जाती है, मैं उसी का मार्जन करना चाहता हूँ। तुम—"

माया अपने-आपको रोक न सकी, बोली, "पिताजी, यदि आपकी बात केवल मेरे लिए ही हो, तो आप इसके लिए चिन्ताशील क्यों होते हैं? मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि जितना आनन्द मुझे इस समय है, उतना कभी न था। यदि कोई त्रुटि थी, तो उसका मार्जन मेरे यहाँ चले आने से ही हो गया है पिताजी! क्या मेरे द्वारा आपके आश्रय को प्राप्त करना आपको प्रिय नहीं है?"

कमल किशोर ने कहा—"विधवा बेटियाँ भी इसी तरह पिता का आश्रय खोजती हैं माया। वह पुत्री की प्रसन्नता नहीं, वह तो एक अकर्मण्यता की खोज है, जिसकी दुरन्त अंधकारमयी गुहा में छिपकर वह अनजाने ही जीवन की अभिशापमयी छाया को खो देना चाहती है। पिता को सुख तब नहीं मिलता; वह तो तभी मिलता है, जब वह प्रकाश की किरणों से रंजित अपने मधुर अधरों से पिता की आँखों को दीप्त कर सके। वही आशा थी, इसीलिए तो तुम्हारे विवाह को अपने जीवन को मैंने पूर्ण-विराम मान लिया था, किन्तु उस दुष्ट ने सारा मज-मून निरर्थक कर दिया।"

माया की आँखें भर आईं; शायद अपने दुर्भाग्य का इतना अधिक विचार न था, जितना बूढ़े के दुःख का। कमल किशोर ने इसे लक्ष्य कर लिया, और कहा—

"यह परिस्थिति ही तुम्हारी रोते रहने की है। तुम यदि कभी हँसोगी तो यह तुम्हारी वास्तविकता न होगी, वह भीतर जलती हुई"

चिता का केवल कदर्य-प्रकाश होगा। और मुझे कहती हो कि मैं तुम्हारी शीर्ण-श्री को समझते हुए भी अपने-आपको तुम्हारे आनन्द में भुलाए रहूँ ? मेरे जीवन का क्या है ? वह आज है, कल नहीं ! फिर क्या होगा तुम्हारे बाप का यह आश्रय ? क्या एक स्त्री केवल स्कूल की अध्यापिका बनकर अपना जीवन बिता सकती है ? यदि नारी के जीवन में इतने मात्र से संतोष प्राप्त हुआ होता, तो कौन नारी गृहस्थ के इस जुए में फँसना पसन्द करती ? तुम नहीं जानतीं माया, कि पुरुष-समाज एक चटोर कुत्तों का समाज है, एक ला-वारिस स्त्री को देखते ही उसकी लपलपाती जीभ से पानी चूने लगता है; और तुम नहीं जानतीं कि अवश नारी एक निर्जीव मांस-पिण्ड के समान ही उनकी लपलपाती जीभ का सुस्वादु आहार बन जाती है—बन जाना पड़ता है उसे !"

कमल किशोर को एक क्षण के लिए विश्राम लेना पड़ा। माया अश्रु-रुद्ध दृष्टि को नीची किये बराबर सुनती रही।

"मैं जीवन की रङ्गीनियों की चर्चा नहीं करता, मैं जीवन के स्वर्ण-स्वप्न की बात भी नहीं करता। मनुष्य को एक चटोर कुत्ता मानकर भी मैं यह स्वीकार करता हूँ कि एक कुत्ते का आश्रय उस मांस-पिण्ड को स्पन्दनशील कर सकता है। कम-से-कम एक व्यवस्था तो है !"

पिता की उत्तेजना देखकर माया आशंकित हो गई। यदि प्रसंग को शीघ्र ही दबा न दिया गया, तो पिताजी और अधिक उत्तेजित हो उठेंगे, और नतीजा, प्रिय-अप्रिय, न जाने क्या हो ! वह बोली—

"उठिए पिताजी, खाना खा लें। इन बातों के लिए तो अभी बहुत समय है !"

"नहीं है बहुत समय बेटी, तू मुझे सदैव ही इस तरह भुलाए रखना चाहती है। परन्तु आज खाना खाने के पहले मैं तुझे यह समझा देना चाहता हूँ कि जहाँ नारीत्व के उत्कर्ष की भारतीय भावना व्यक्तिगत है, वहाँ उसका पतन एक सामाजिक घटना है—

"परन्तु पिताजी, मैं तो समाज की कोर्ट में नालिश करने नहीं जाती।"

"पितृ-भक्त पुत्री है न तू! तुझे अपने दुःख से पिता की लज्जा का अधिक ध्यान है, परन्तु उस लज्जा की दुःखमय दिशा का गौरव तू समझना नहीं चाहती।"

"मैं समझती हूँ पिताजी, आप मेरा पुनर्विवाह करके मुझे सुखी करना चाहते हैं, परन्तु—"

कमल किशोर ने 'परन्तु' नहीं सुना, वे बीच ही में बोल उठे—"आज ही से नहीं, किन्तु जिस दिन से मैंने तुम्हारे आपसी मनो-मालिन्य का हाल जाना है, तभी से चाहता हूँ कि इस मिथ्या पौरुष का दम्भ नष्ट किया ही जाना चाहिए। तुम मेरी पुत्री हो माया, मैं तुम्हें प्रयोग की वस्तु नहीं बनने दे सकता, यदि तुम यह कहना चाहो कि विवाह के बिना भी नारी जीवित रह सकती है।"

"परन्तु पिताजी, वे अपनी भूल समझ भी तो सकते हैं!"

"यौवन के जो रंगीन चश्मे से नवीनता के माधुर्य को नहीं देख पाया, उससे बुढ़ापे में सामंजस्य की आशा करती हो? मैं समझता हूँ माया, शकुन्तला की तरह तुम भी पति-गृह भेजी जा सकती थीं, किंतु उससे यदि तुम्हारे प्रत्याख्यान ही की मुझे आशंका हो, तो बाप होकर भी तुम्हारे अपमान की मात्रा को मैं कैसे बढ़ाना चाहूँगा!"

"परन्तु अपमान तो मन का विषय है पिताजी, यदि मैं उसे अपमान न समझूँ?"

"यही तो गुलामी है, जिसका मनुष्य को सबसे अधिक परिताप होना चाहिए था। मनुष्य से मनुष्य की गुलामी को दूर करने के लिए देश में भयानक संघर्ष मचा हुआ है, परन्तु उससे शत-सहस्र गुनी इस दासता को, जो सम्पूर्ण मनुष्यता को जर्जर किये दे रही है, कोई नह समझता, कोई समझना भी नहीं चाहता। प्रकृति की दी हुई जमीन है, उस पर अपने पैरों निरपेक्ष चलने का मनुष्य-मात्र का दावा है। इस

दावे को साबित करने के लिए कितना रक्तपात मच रहा है, कितनी क्रांतियाँ विश्व की इस यत्किंचित् शांति को नष्ट कर रही हैं !! प्रकृति की दी हुई बुद्धि है। उसके ऊपर किसी दूसरे का अंकुश किस अधिकार से अपना घाव कर देना चाहता है ?"

"पिताजी !" माया आगे नहीं कह सकी।

"मेरी इच्छा को तू समझ चुकी है। पात्र भी मैंने तेरे लिए ठीक कर रखा है; उसे तू जानती भी है, वह है त्रिलोक नारायण। मैं अधिक तुझसे अभी कुछ नहीं कह सकूंगा। मेरा सुख यदि तू जानना चाहती है तो वह एक-मात्र इसी में है कि तेरा त्रिलोकनारायण से पुनर्विवाह हो जाय। एक बात और कह देना शायद अच्छा होगा। समाज का मूल घटक नारी है। यदि मानसिक दासता न हो तो समाज-व्यवस्था का मूल-स्वरूप नारी के नियंत्रण की अपेक्षा रखता है, पुरुष के नियंत्रण की नहीं। यदि नारी होकर तू ने इस बात को नहीं समझा, तो मेरे एक कन्या के पिता होने के दावे में विशेष लज्जा नहीं है, किन्तु नारी होने का तेरा सम्पूर्ण सत्य और तेरी सम्पूर्ण शक्ति व्यर्थ है।"

कमलकिशोर उसी उत्तेजना के झोंक में कमरे से बाहर चल दिए। शर-विद्ध हत-चेतन मृगी की भांति माया अपनी आंखों के आगे छाए हुए शून्य को वाष्प-रुद्ध करने लगी।

हाय रे जीवन की विडम्बना ! निरपराध माया, उसे पति से भर्त्सना मिली, त्रिलोकनारायण से मिली, और मिली उसके पिता से भी। शायद कल का प्रातःकाल उसे विश्व-भर की दृष्टि में व्यर्थ और समाज की आवर्जना साबित कर देगा। क्यों ? केवल इसलिए कि रूढ़ियों की दासता से वह अपने आप को मुक्त नहीं कर पा रही है। —अफीम के नशे में जिस तरह बिस्तर छोड़कर उठना और चलना-फिरना प्रिय नहीं लगता।

पर पलंग पर एक बार और उन्हीं सबेरे के कपड़ों में निश्चेष्ट पड़ रही। दुर्भाग्य से उस दिन पिता-पुत्री दोनों का खाना न हो सका।

(१४)

इतवार की दुपहर सिर पर थी। मुख्तलिफ डाक लेकर अधरलाल बस्ती में बांटने के लिए निकल गया था। इतवार को पोस्ट ऑफिस में इतना ही काम रहता है, अतः पोस्ट मास्टर नवनीत भी ऊपर के मकान में अपने हाथ पैरों को फैलाकर आराम प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था। हरनाम रसोई घर में चूल्हा फूंक रहा था, बरतनों की धरा-पटकी से यहीं से उसके विक्षोभ का परिचय मिल रहा था।

अविनीत आलस्य में पगी हुई नवनीत की समृद्ध-देह आराम कुर्सी को आराम नहीं दे रही मालूम होती थी; सामने पड़ी हुई टी टेबल को भी उसके पैरों का भार वहन करना पड़ रहा था। उँगलियों में फँसी हुई उपेक्षित सिगरेट अपने दग्ध हृदय का निर्विकल काला धुआँ नितान्त शांति के साथ बहा रही थी; धुआं रेशम के विरल तारों के समान निर्गत होता हुआ शून्य के दिगन्त में फैल रहा था। नवनीत की आंख सामने कैलेण्डर पर लगी हुई थीं। यह कहना कठिन है कि वह तारीख गिन रहा था, या कैलेण्डर पर लगी हुई तस्वीर देख रहा था, या फिर मकड़ी की उस दोलायमान नागपाश की ओर उसकी दृष्टि टिकी हुई थी, जो चित्रांकित भगवान् के चरण-कमलों को अपने में उलझाकर पृथिवी के कई क्षुद्र-प्राणियों का सादर आह्वान कर रही थी। गोद में वही माया का लिखा हुआ पत्र और लिफाफा था!

कुछ समय इसी तरह बीत गया। नवनीत ने अन्यमनस्क भाव से सिगरेट ओठों से लगाकर कश खींचा। सिगरेट का हृदय जल उठा था, उसके मुँह पर कालिख इकट्ठी हो गई थी। अपने स्वत्व का अन्तिम अंश नष्ट होते ही उसने नवनीत की उंगली पर दाग कर दिया! दिवा-निद्रा से चौंककर जैसे ही नवनीत ने हिलने का उपक्रम किया, कि निःशेष राख का निस्सत्व भाग उसके दुग्ध निभ कमीज पर झड़ गया! राख की क्षुद्र कालिमा में एक निर्विशेष अग्नि-कण की छोटी-सी निशानी भी उस पर बन गई। राख झाड़ दी गई, नवनीत ने देखा और

किंचित् मुस्करा दिया; और पैरों के अनैतिक दुर्विचार से हड़बड़ाए हुए अखबार को उठाकर उस पर आंखें गड़ाने की उसने चेष्टा की।

हाथ में बेलन लिये स गृहस्थी की लद्दू गाड़ी के थके बैल की भांति हरनाम अपनी रसमय नासिका को ब्रह्म-रन्ध्र में चढ़ाता हुआ अकस्मात् ही आ खड़ा हुआ और बोलने लगा—

"इस घर में इन लकड़ियों का और मेरा बनाव नहीं हो सकता !" हरनाम की ओर देखकर और किंचित् मुस्कराकर नवनीत बोला, "क्या बात है हरनाम ?"

"कह रहा हूँ, पहले उठिए, सूखी लकड़ी लेकर आइए, तभी रोटी मिलेगी।"

नवनीत जोर से हंस उठा, हरनाम को अप्रतिभ हो जाना पड़ा।

"यह तो पत्नी के कलह-पुराण का सर्ग है हरनाम ! इस गृहस्थी में यह आसन तू कब से पा गया ! शासन की इसी अधिकारपूर्ण आज्ञा से अवकाश पाने को तो मैं यह सत्र साधना कर रहा हूँ !"

"यदि आप बहूजी को नहीं लिवा लाते, तो मुझे क्यों छुट्टी नहीं दे देते।"

"वाह ! लकड़ी यदि लंगड़े से कहे कि या तो तू अपना पैर अच्छा कर, या फिर मुझे छुट्टी दे दे ! बड़ा स्वामि-भक्त है रे हरनाम ! और यदि कहीं बहूजी नवाबजादी होतीं तो ?"

हरनाम और अधिक अप्रतिभ हो गया; बोला, "इन गीली लकड़ियों से तो मेरा दम घुटता है !"

"और ढुलमुल स्वभाव के इस गीली तबियत के आदमी से तेरा दम नहीं घुटता ?"

हरनाम को मानो अपनी बात कहने का बल मिला, बोला "दम घुटने जैसी जहाँ हवा हो, वहाँ दम तो घुटता है बाबूजी, मगर फिर भी अपनों ही को तो अपने घर में दम न[illegible]ा जा सकता ! न हो, अगर मुझे छुट्टी दे दें तो बहू रानी को मैं लिवा लाऊँ ?"

"और तेरे लौटकर आने तक अनशन के मारे मैं इस घर का आसन तेरी बहूरानी के लिए—"

"यहाँ के लिए मैं कोई दूसरा अच्छा प्रबन्ध कर जाऊंगा।"

"कि तेरे अभाव में मैं मर नहीं सकूं!—तेरे अभाव में तो शायद मैं बच भी जाऊंगा।" पर अपनी मौजूदगी में, मालूम देता है, तू मुझे जीने नहीं देगा। तुझे रोका किसने था कि तू सूखी लकड़ियाँ न लाए?—और गीली लकड़ियां क्या मैं लेकर आया था?–बड़ी शिकायत लेकर आगया है।"

हरनाम कुछ जवाब न दे सका तो बोला, "उठिए, खाना बन गया है।"

"तो खा ले तू। मुझे भूख नहीं है।

हरनाम ने उत्तेजित होकर कहा, "यदि दण्ड देना है तो मेरा खाना बन्द कर दीजिए; पर सुनूं, आप क्यों न खायंगे?"

"दिमाग मत चाट। मैंने कह दिया, मैं खाना नहीं खाऊंगा।"

"बाबूजी, आप भूल रहे हैं। पुराने नौकर अपने मालिक के बहुतेरी बातों में हुक्माबरदार नौकर नहीं होते।"

"हरनाम, तू मेरा नौकर है, मालिक नहीं। यदि नौकर की तरह नहीं रहना चाहता, तो दुनिया पड़ी हुई है, चला क्यों नहीं जाता?"

"चला जाऊंगा पर आप ही ने तो कहा है—इन्तजाम करके जाऊंगा बाबूजी। चलिए, उठिए, खाना ठण्डा हो रहा है!"

नवनीत खीझ उठा उसने अखबार जमीन पर दे मारा, और गर्जने के स्वर में बोल उठा—

"मैं नहीं खाता, नहीं खाता, नहीं खाता। जा, तेरी बहूरानी को बुला ला। मैं नहीं खाता।"

"आप थाली पर से उठे नहीं कि मैंने बोरिया-बधना बाँधा नहीं। तब आप खुशी से इससे भी ज्यादा नाराज हो लेना!"

नवनीत ने देखा कि हरनाम पिण्ड नहीं छोड़ेगा, तो बोला—

"मर यहां से, परस थालो। क्या नौकर है; न हुक्म मानता है, न मालिक का पिण्ड छोड़ता है। पर अब कभी इस तरह गुस्ताखी करना, सारे महीने की तनख्वाह जब्त न कर लूँ तो नवनीत न कहना। और देख, यदि तनिक भी धुआँ हो गया तो भरी हुई थाली तेरे ही सिर पर फेंक दूंगा।"

"जो चाहे सो कीजिएगा बाद में—" कहकर हरनाम लौटने के लिए बढ़ा, किन्तु जैसे ही दरवाजे पर पहुँचा चौंककर बोला—"ऐं आप?"

मधुर हँसी का आभास-सा हुआ, और उसके साथ ही आरती ने भीतर प्रवेश किया। नवनीत एकाएक घबरा-सा गया। मुस्कराकर हाथ जोड़ते हुए आरती बोली, "नमस्ते पोस्ट मास्टर साहब!"

"नमस्ते भाभी, नमस्ते। मगर अधरलाल तो—देख तो हरनाम, लौट आए हैं क्या?"

आरती हँस दी "बेलन साथ लेकर कहाँ जायगा हरनाम! —बल्कि मुझ ही से क्यों नहीं पूछ लिया? नीचे ही से तो आ रही हूँ। पर क्या हर्ज अगर वे न भी हों! मानपुर का अनाथालय और शिकारपुर की यूनिवर्सिटी एक ही वस्तु नहीं है लाला!"

—और यह कहती-कहती ही वह नीचे बिछी हुई दरी पर बैठ गई। "बड़ी गरमी पड़ रही है! हरनाम, कहीं पंखे की जुगत हो तो दे जा भाई! और यहीं ले आ न इनके लिए खाना!—आखिर गीली लकड़ियाँ हैं धुआँ तो थोड़ा बहुत होगा ही। रहा सवाल गवाही का, सो मैं निगरानी रखूँगी!"

यानी आरती ने नवनीत और हरनाम की बातचीत को सुन लिया है। कहाँ तक? क्या बहूरानी की बात भी? नवनीत और भी संकुचित हो गया!

हरनाम ने कहा, "बहूजी, एक थाली आपके लिए भी ले आऊँ! इस घर पर कृपा ही हो गई है तो—"

"कृपा हो गई है तो प्रसाद लेकर ही जाऊँगी। पर खाना किस बात

का होगा ?--बल्कि जब इनकी बहूरानी को लिवा लायगा, तब खूब खाने के लिए कहना। जा, देर न कर; खाने की बेला तो जा रही है।"

हरनाम जाने को हुआ तो नवनीत बोला, "वहीं जाकर खा लूँगा, हर्ज क्या है। बेचारा अकेला है, पकायगा या परोसेगा ?"

"पर गीली लकड़ियों का धुआँ तो नाक की राह ठेठ दिमाग की खबर ले लेता है, उससे दिमाग काबू में नहीं रहता। नहीं, नहीं हरनाम यहीं ले आयगा ! और लाडले ! विश्वास दिलाती हूँ मैं तुम्हारे मुँह का कौर नहीं झपटूँगी।"

हँसता हुआ हरनाम रसोईघर में चल दिया।

"डर तो नहीं लगता न लाला ?" आरती ने हँसकर पूछा ?"

आधी उठी हुई आँखों से आरती को मानो पीकर नवनीत ने कहा, "सचमुच तो लगता है भाभी !"

"मुझसे ?—क्या यह शकल ऐसी डरावनी है ?"

बड़े साहस के साथ एक बार और उसी तरह ललचाई दृष्टि से देखकर उसने कहा, "बल्कि बड़ी लुभावनी है इसलिए !"

आरती की कनपटियाँ सुर्ख हो गईं। अपने सौंदर्य की श्लाघा पर स्त्री का हृदय धड़कने लगता है। सौंदर्य नारीत्व के दुर्ग का सबसे दुर्बल मोर्चा है। पर आरती ने अपने-आपको सावधान कर लिया, और कहा—

"स्त्री के सौंदर्य से आँखों को बचाना चाहिए लाला ! जिसकी आँखें इस चकाचौंध में मुँद जाती हैं, वे रास्ता भटक जाते हैं। तब उनकी किसी आँख में इज्जत नहीं रहती।"

नवनीत भी एक ओर नीचे फर्श पर ही बैठ गया, और बोला, "आपसे लगने वाला डर बड़ा मीठा है। उसकी बदौलत एक बार तो शिकारपुर के स्नातक की डिग्री मिल चुकी है। आपकी बातों का डरते-डरते भी यदि जवाब न दूँ तो अबकी बार कहीं—अरब का बुद्धू तक तो गनीमत है, कहीं अफ्रीका का लंगूर न कहलाने लग जाऊँ ! रही बात

आपकी आँखें चौंधियाने की, सो इसमें बेचारी आँखों का दोष ही क्या है ! प्रकाश तेज होने पर आँखों के लिए चारा ही क्या है, चाहे सवाल इज्जत का ही क्यों न हो !"

"कहीं तुम इज्जत और बुद्धिमानी को तौलने मत लग जाना।—इज्जत का ध्यान तो लालाजी, रखना ही पड़ता है, नहीं तो इस पोस्ट आफिस के एकान्त घर में चले आने का साहस मुझे ही कैसे होता ? बताओ !"

अपने ही ऊपर आक्षेप सुनकर नवनीत जैसे और अधिक संकुचित हो गया ! तभी हरनाम थाली लाकर रख गया। नवनीत हाथ धोकर खाना खाने बैठा, बोला—"अगर आप भी कुछ खा लेतीं तो—"

"समझते कि तुम्हारा जन्म सफल हो गया है।" हँसकर आरती ने वाक्य पूरा किया। नवनीत को आघात लगा। आखिर यह शोखी, यह दम्भ किसलिए है ? उसने आँख उठाकर आरती की ओर देखा, और बोला—

"जन्म तो खैर, सफल-असफल, कुछ न कुछ होगा ही; वह आपके खाने न खाने से अन्यथा न होगा। पर हां, मुझे आनन्द अवश्य होता।"

आरती ने वह बात स्वाभाविक ढंग ही से कही थी, दर्प का कोई लेश उसमें न था। नवनीत के उत्तर को उसने सहज रूप ही से लिया, और बोली—

"दुःख की कोई बात नहीं लालाजी, तुम खाना खाओ, मैं खा चुकी हूँ। दूसरी बात यह भी तो है कि मैं सोसाइटी गर्ल तो हूं नहीं। हम हतभागिनियों को एक खतरा रहता है न कि कहीं हमारे देवता न रुष्ट हो जायं ! उनका बचा हुआ प्रसाद हो तो ग्रहण करना पड़ता है हमें !"

नवनीत ने उत्तर नहीं दिया, वह खाना खाने लग गया।

आरती की बात पर उसे थोड़ी ईर्ष्या हुई। पति स्त्री के लिए अशेष यत्न की वस्तु है, दुर्भाग्य उसका कि वह उस गौरव से वंचित है।

जब भोजन प्रारम्भ हो गया, तो आरती ने कहा, पर लालाजी, तुम निकले खूब!"

"क्यों?"

"दीखते रहे शिकारपुर के स्नातक ही, पर एक क्षण के लिए भी नहीं मालूम होने दिया कि तुम्हारे बहूरानी भी है?"

नवनीत को आरती की पुरानी मजाक याद आ गई, बोला—"जिस लड़की के हाथ में खुजली चल रही थी, उसीने मुझ-जैसे निकम्मे मर्द का हाथ पकड़ लिया। पर इससे क्या? इससे किसी का कुछ बनता बिगड़ता है क्या?"

"हां कम-से-कम एक प्राणी का तो!"

नवनीत थोड़ा-सा चौंक उठा। क्या मतलब है इस नारी का?—तो क्या वह बीमारी की सेवा–ढोंग ही थी! तो क्या नवनीत के हृदय में इस नारी को देखते ही जो धुकधुकी मच जाती है, वह क्या केवल एक ऐसी ही धुकधुकी का उत्तर-मात्र है?

"धन्य भाग। लेकिन भाभी, आपको तो याद होगा, आपने तो कहा था कि मेरी विवाहिता पत्नी भी शायद ही कह सके कि मैं विवाहित हूँ या कुआरा; तब आज मेरे कहने पर ही आपको कैसे विश्वास हो गया! यह पहलू तो अब भी विवाद का हो सकता है कि मेरे विवाह की घटना दूसरे प्राणी को स्मरण भी हो। कम-से-कम आप तो यही सोचती होंगी!"

"यानी?" आरती ने पूछा

उत्तर देने के प्रयत्न में मुँह का निवाला श्वासनली के मुँह में पहुँच गया। एक भयानक व्याधि खड़ी हो गई। रोकने का प्रयत्न किया तो खाँसी, छींक—और तभी आँख और नाक से पानी बहने लगा।

नवनीत ने आशा की कि आरती उठ खड़ी होगी, और जिस तरह

उसने एक दिन पहले ऐसे ही अवसर पर सरल चित्त से उसका उपचार किया था, उसी तरह वह आज भी व्यवहार कर उठेगी। किन्तु आरती बैठी हुई सब-कुछ देखती रही। जब नवनीत प्रकृतिस्थ हुआ तो बोली–

"बहू की याद आ गई क्या?—वह अगर यहाँ होती, तो शायद उठकर, पीठ पर हाथ फेरती और कहती, "लो गोद में बैठ जाओ, मैं खिलाए देती हूँ! हूँ?"

निवाला उतारकर नवनीत बोला, "याद ही तो है। याद-मात्र से दिल के घाव नहीं भर जाते, बल्कि गहरे ही होते जाते हैं।"

"तो फिर बहू रानी को बुला क्यों नहीं लेते?"

नवनीत फिर एक बार और आरती की ओर देखकर मुस्करा उठा, "बुला लेना क्या आसान है? मैंने कहा न, कि यह कैसे विश्वास किया जा सकता है कि मेरे विवाह की स्वीकृति को कोई लिये ही फिर रहा हो!"

"प्रेम का मामला सदैव ही कोमल होता है, यह मैं जानती हूँ; पर इतनी गहरी निराशा अच्छी नहीं होती देवर जी!"

"निराशा का तो कोई प्रश्न नहीं है भाभी! पर मैं ही इतना ओछा कैसे हो सकता हूँ कि किसी की अस्वीकृति को ही लेकर नालिश करने दौड़ा जाऊँ?"

आरती समझ गई कि मामला गहरा है। अधरलाल की बात ही आखिर सच निकली; नवनीत का जीवन सचमुच रहस्य का जीवन है!

दुपहर की गरमी थी; आरती के हाथ में पंखा था, और अपनी गरमी हटाने के लिए वह उसे झल रही थी। हवा की क्षीण-सी लहरें नवनीत के शरीर को भी छू रही थीं। यदि सामने माया होती, तो लहरों का यह शीतल-स्पर्श केवल उसके लिए होता। पतियों को यह सुख प्राप्त होता ही है, किन्तु केवल नवनीत को नहीं है।

आरती ने पूछा—"बहू क्या लड़कर गई थी?"

"ना; लड़कर तो रहती थी; गई तब तो शांति ही से गई।"

"यानी ?"

"यानी क्या—यही तो कि लड़कर नहीं गई।"

"लालाजी, प्रेम के मामलों में तुम्हारे इस चातुर्य का मुझे पता न था।"

"यदि होता तो ?—शायद परदा करने लग जातीं ! क्यों ?"

"शायद !"

"पर क्यों ?—क्या प्रेमी की नजर ऐसी हाहाकारमयी होती है, कि उससे बचने की ही आवश्यकता हो ?" और तभी नवनीत ने हाथ धो लिए !

आरती ने कहा, "खा चुके ?"

"हाथ तो तभी धोए जाते हैं !"—और कुछ देर बाद तनिक मुस्कराकर बोला,—"रस भरे गुलाब के फूल-जैसे अधरों से यदि नित्य ही थोड़ा आग्रह निकला करे, तो एक रोटी और सरलता से खाई जा सकती है।"

एक बार और आरती के चेहरे पर खून दौड़ आया। लक्ष्य करके नवनीत बोला—

"कहिए, आज कैसे कष्ट किया ? जरूर सोच रही होंगी, मैं आज वाचाल कैसे हो गया ? शायद इसलिए कि आज मुझे अपनी बहू रानी की याद आ गई। आपका मैं बहुत अधिक कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे भाभी कहने का अधिकार दे दिया है। भाभी शब्द ही बहुत मीठा है। इसमें माँ की ममता और पत्नी का माधुर्य दोनों हैं न ?—"

"माँ की याद नहीं आई कि लालाजी ?"

"आती कहाँ से ! उसका तो अनुभव ही नहीं रहा भाभी ! हालाँकि मुझे छोड़कर माँ मरी मेरी पाँच वर्ष की उमर में, किन्तु दूध तो पिलाया एक धाय ने और शिक्षा मिली एक नर्सरी स्कूल से। तब कैसे मालूम हो कि माँ की ममता क्या है ? शायद बीमारी के समय आपके रूप का जो अनुभव हुआ, वह अभूतपूर्व था वैसा ही शायद माँ

का वात्सल्य हो। आज आपने भी इस मोटे-ताजे स्वस्थ व्यक्ति के लिए उस पहले वाले उपचार की आवश्यकता न समझी; शायद इसीलिए माँ की याद नहीं आ सकी।"

नवनीत ने अनुभव किया कि आरती के मुख-मण्डल का हास्य अवकाश ले रहा है; किन्तु इससे आरती के स्वस्थ मुँह पर रक्त की गति कुछ तीव्र हो गई है, और इसलिए उसकी आभा पके सेब-जैसी हो गई है। नवनीत की दृष्टि में उसका सौंदर्य बढ़ गया। किन्तु अधिक खिजाने से अपनी ही हानि समझकर वह बोला—

"या फिर कहीं ऐसा तो नहीं होता भाभी, कि भरे पेट लज्जा लगती ही न हो!"

"दूसरों की बात मैं कैसे कह सकती हूँ!" नितान्त शांति से उसने उत्तर दिया।

"तो अपनी ही कहिए न; आप तो स्त्री हैं, लज्जा जैसी वस्तु का बोझ अधिक तो स्त्री ही को ढोना पड़ा है!"

"पड़ा है तो लम्पट पुरुष से थोड़ी-बहुत रक्षा भी हो जाती है।"

"सच कहिएगा भाभी! क्या पुरुष सदैव सचमुच ही मुँह बाए रहता है?"

"सब तो नहीं; पर कुछ तो अवश्य ही बाए रहते हैं; इसीलिए उनसे लज्जा भी करनी पड़ती है।"

"अहोभाग्य कि आपने मुझे भी वैसा ही नहीं समझ लिया। किंतु क्या सचमुच ही आपको मेरे ऊपर विश्वास है?"

आरती चौंकी। नवनीत का तात्पर्य?—पुरुष के स्वर का श्रुति-मधुर-प्रकंपन नारी के कानों में प्रिय-लगने वाली वस्तु है अवश्य—उससे नारीत्व के तारों में झंकार भी उठ जाती है—किंतु आरती का नारीत्व तो कभी का समर्पित हो चुका है। अतः उस कंपन की स्थूल कदर्य-रेखा ही उसके कानों में मूर्त्त हो उठी। वह बोली—

"घर से बाहर निकलते समय हम गैर पर अपने विश्वास का बोझ

नहीं जानतीं लालाजी,—यह उचित भी कैसे कहा जा सकता है ? वस्तुतः ऐसे ही अवसरों पर नारी धोखा भी खाती है। नवनीत बाबू, मुझे अपने ऊपर विश्वास है; बस इससे अधिक की मैं चिन्ता नहीं करती।"

नवनीत अप्रतिभ हुआ। उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं हो सकी, प्रत्युत अपने अभिमान का एक अंश नारी के पत्थर-जैसे हृदय से टकरा कर निष्फल हो गया। उसके हृदय में, पुरुष के हृदय में नारीत्व के निग्रह की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न आग्रह और अधिक बढ़ गया।

कुछ क्षण चुप रहकर नवनीत बोला—"अच्छा यह कहिए, मेरे भाभी सम्बोधन से आप बुरा तो नहीं मानतीं ?"

"मुझे तो नहीं मानना नहीं चाहिए; केवल एक शर्त्त है, तुम अपनी बहूरानी को जल्दी ले आओ। भाभी की बात तुमने कह दी; देवर की मैं कह दूँ ?—उसमें होता है पति का माधुर्य और पुत्र का वात्सल्य। तुम आज स्वस्थ हो, तुम्हें माता की याद नहीं आई। तुम्हारी बहूरानी का तुम्हें वियोग है, तुम उसकी चिन्ता करने लगे। किन्तु मुझे पति का वियोग नहीं, वह माधुर्य तो मुझे मिल ही रहा है। यदि तुममें पुत्र का भाव स्थापित कर सकूँ तो मुझे सन्तोष ही होगा। और यदि तुम्हारी बहूरानी आ जाय तो—"

"तो ?"

"गोद में बिठाकर तुम दोनों को खिलाया करतीं !"

"बीते युगों में पति को प्राप्त करने के लिए उमा ने तपस्या की थी, शास्त्रों में पति के लिए भी कोई ऐसा ही विधान हो तो बता दीजिए न ! बहूरानी तब शायद प्रसन्न हो जांय !—पर यह तो सब बातें हैं भाभी। आपने यह तो बताया ही नहीं कि आज इस घर को कैसे पवित्र किया ?"

हरनाम आया, बरतन उठाकर चल दिया।

मुस्कराकर आरती ने कहा— "मालूम न था कि मुझमें घरों को

पवित्र करने की शक्ति भी है। नहीं तो इस पवित्र करने का ही थोड़ा बहुत पारिश्रमिक लिया करती। तब शायद, क्यों आई, इस बात का उत्तर देना भी आवश्यक न रहता। नहीं क्या ?"

"परन्तु आज जब पारिश्रमिक लक्ष्य न था ?"

"उसे पूछकर क्या करोगे ? कई दिनों से तुम्हारे ऊपर तरस खा रही थी कि शिकारपुर के स्नातक का योग नष्ट करने के लिए किसी अप्सरा की जुगत बैठ सकती है या नहीं।"

"फिर ?"

"तब मालूम न था कि—"

"एक प्रेतनी उसे पहले ही से बाँधे पड़ी है !"

"क्यों प्रेतनी क्यों कहते हो उसे ?"

"इसलिए कि इस घर में अभी तो उसकी छाया-मात्र शेष है !"

"पर दिल के घर के बारे में भी यही बात कह सकते हो क्या ?"

"अवश्य"—कहकर नवनीत हँस दिया "बुरा तो न मानोगी ? मुझे सिगरेट पीने की बुरी आदत है।" कहकर उसने सिगरेट जला ली।

आरती ने वस्तुस्थिति को किंचित् समझने का प्रयत्न किया, और बोली, "अपने रहस्य को छिपा रखने में तुम कुशल हो ! दीखता है कि तुम उसे छिपा ही रखना चाहते हो, मुझे क्या पड़ी है कि मैं उसका उच्छेद करूँ !"

"लीजिए आप तो नाराज हो गईं ! सच कहता हूँ, मैंने कोई बात आपसे झूठ नहीं कही, न बात को छिपाने का ही मैंने प्रयत्न किया है। आपसे, जिन्होंने मुझे प्राण-दान दिया है—अच्छा देखिए, यह पत्र क्या कहता है ?"

नवनीत ने अभी ही आया हुआ माया का पत्र आरती के सम्मुख पटक दिया। मनोयोग के साथ आरती उस पत्र को पढ़ गई। नवनीत भी, कहना चाहिए, मनोयोग के साथ सिगरेट पीता रहा, परन्तु दृष्टि उसकी आरती के चेहरे पर गड़ी रही।

"यह पत्र है मेरी बहू रानी का। कहिए 'छाया' कहकर मैंने क्या गलत कहा था ?"

किन्तु आरती केवल निश्चल चित्त से पत्र पढ़ती ही रही। उसने उसे एक बार नहीं, कई बार पढ़ा। पत्र के लेख में माया की व्यक्तिगत सत्ता ही नहीं थी, मानो सम्पूर्ण नारीत्व का अभिमान पौरुष के लौह-द्वार पर पड़ा हुआ, इस कागज ही की तरह जड़, सिकुड़ा हुआ, रस हीन हो गया। कितनी भयानक ठेस की प्रतिक्रिया का रूप है यह, आरती अनुमान नहीं कर सकी। किन्तु यह प्रतिक्रिया ही स्वयं इतनी भयानक है कि इसकी गहराई देखने के लिए किसी पैमाने की आवश्यकता नहीं है। स्त्री का कोमल हृदय भर अवश्य गया, किन्तु यदि आँखों की राह वह प्रगट भी हो जाता तो उससे नारीत्व की लांछना बढ़ ही जाती, अतः आरती बलपूर्वक अपने अश्रु-प्रवाह को रोके रही।

नवनीत ने सिगरेट का कश खींचा ; मुँह के धुँए को इस तरह छोड़ते हुए कि वह तनिक आरती के चेहरे को छू ले, वह बोला—

"मुझे स्वयं नहीं मालूम था कि मेरी बहूरानी में एक सफल कवि-का चातुर्य भी है। परन्तु जब कला का विश्लेषण करता हूं, तो देखता हूं कि नारीत्व का तो उससे चिरन्तन सम्बन्ध है, तब आश्चर्य का शमन हो जाता है !"

आरती के हृदय को दबाकर अलक्ष्य में एक लम्बी सांस निकल गई। वह बोली—

"हृदय के छालों को कला समझना नई बात नहीं है !—कम-से-कम जिनका उन छालों से कोई सम्बन्ध न हो, उनके लिए तो वह उपभोग्य है ही। परन्तु इसे भी क्या प्रतिभा का वरदान मानते हो नवनीत बाबू ?"

"भावना के इस ऐश्वर्य को और क्या नाम दिया जा सकता है भाभी ?"

"तो तुम पत्थर हो ! कवि के लिए तो वह प्रतिभा का वरदान है,

वहाँ कला कारण है और इसलिए वह ऐश्वर्य है, —उसके प्रकर्ष का माध्यम रागात्मक सम्बन्ध है ! परन्तु जहाँ यह रक्त की धारा हृदय को फोड़कर निकलती है, वहाँ यह कला नहीं, यह दैव का दण्ड है; भाग्य की कुटिललिपि का यह लेख तब कारण नहीं होता, यह होता है कार्य; यह ऐश्वर्य नहीं होता, यह होता है अभिशाप; और इसका माध्यम तब अधिभाविक नहीं होता, वह होता है आधिभौतिक ।—इसीलिए कविता संवेद्य होती है, किन्तु यह अभिशाप संभोग्य । क्षमा करना लालाजी, आज तक तो तुम्हारे योग ही को नष्ट करने की मुझे चिन्ता थी, किन्तु तुम तो योग-भ्रष्ट ही नहीं भोग-भ्रष्ट भी हो !''

नवनीत आरती के व्याख्यान को सुनता रहा, उसी अलस-भाव से सिगरेट का धुआँ भी बराबर उनके मुंह से निकलता रहा । वह मालूम कर चुका था कि आरती असाधारण विदुषी भी है । किन्तु नवनीत के ऊपर जो अपमान छिड़का जा रहा था उससे उसका मर्म तक तिलमिला उठा । अपने प्रत्याख्यान से माया ने जैसा गहरा घाव इसके हृदय में कर दिया है, उसे यह नारी ही कैसे सम्पूर्ण रूप से समझ सकती है ।

नवनीत वैसे विचित्र स्वभाव का व्यक्ति है । मनस्तत्त्व के सामान्य पैमाने के द्वारा उसे जाँचने में कभी ठीक नाप नहीं मिल सकता । वह उन व्यक्तियों में से है जो सदैव आशा के विपरीत कार्य करते हैं; यही नहीं, वे आशा तक विपरीत किया करते हैं !

मन की स्थिति के अनुकूल एक करारा-सा उत्तर उसके ओठों तक आया, पर उसे वह निगल गया । मुस्कराकर बोला—

''आपको मेरे लिए चिन्ता थी इसके लिए धन्यवाद ! पर क्या अब मैं आपकी चिन्ता का कोई अंश नहीं प्राप्त करता ?''

''जिसने तुम्हारी चिन्ता का अंश पाया, उसके दुर्दैव का इतिहास यह चिट्ठी नहीं बताती क्या ? मैं ही भला तुम्हारी चिन्ता करके क्या पा लूँगी ?''

"निमोनिया-जैसी भारी बीमारी में एक बार मेरी चिन्ता करके आपने क्या पाया था ?"

"तब शायद यह भय तो न था कि तुम किसी दिन अपमान कर बैठोगे !"

"मैंने आपका अपमान किया भाभी ?"

"किया नहीं; पर यह भय तो उत्पन्न कर दिया !"

आरती के उत्तर से नवनीत के हृदय को ठेस पहुँची। उसने चाहा कि माया के सम्बन्ध का सम्पूर्ण इतिहास व्यक्त करके, वह इस नारी के सम्मुख अपनी सफाई पेश कर दे। आरती की सहानुभूति खोना उसने अपने लिए सम्भव नहीं समझा, किन्तु—

नारी की सहानुभूति ?—पौरुष की इससे बड़ी ट्रैजिडी और क्या होगी ?—हो सकता है कि सृष्टि का सौन्दर्य इसी में हो, पर सृष्टि की शक्ति तो इसमें अवश्य नहीं है। माना कि जगत् का सौ प्रतिशत जीवन नारी की सहानुभूति की भीख से पलता है, किन्तु मनुष्य की पराजय के सौ प्रतिशत किस्से भी तो इसी दुर्बलता के कारण हैं ! नारी आकर्षण है, किन्तु इसीलिए तो पुरुष ऊपर नहीं उठ पाता !—नवनीत ने सोचा कि वह पुरुष है, जरूरी नहीं कि वह दुनिया के किसी प्रतिशत या प्रति सहस्त्र के पैमाने में हो। यदि वह पुरुष है, तो इस दुर्बलता को फेंक देना ही उसके पौरुष का पैमाना है, इसके लिए वह अपवाद होना पसन्द करता है। नवनीत चुप रहा; किन्तु उसके चेहरे पर भावों के प्रतिघात से रक्त आया और गया, और आरती ने लक्ष्य कर लिया।

बोली—"क्या सोच रहे हो देवरजी ?"

"यही, जीवन की बिडम्बना को !"

"कैसे ?"

"जिसे आपने अभी 'भय' कहकर पुकारा, वही मेरे सम्पर्क में

आने वाली एकाधिक रमणियों का 'सुख' था। परन्तु भाभी, उसे 'भय' कहकर भी, आप मेरे निकट बैठ कैसे सकी हैं ?"

"अपने विश्वास के ऊपर।"

नवनीत हँस दिया। उसने दूसरी सिगरेट जला ली, एक कश खींचा, धुआँ उगलते हुए उसने कहा—

"यह धुआँ देखती हैं न ?—एक सम्प्रदाय है जो विश्वास का इतना ही मूल्य समझता है !"

"और तुम उस सम्प्रदाय के नेता हो सकते हो। किन्तु मैं उनमें से हूँ, जो इस धुएँ का विश्वास लेकर नहीं चलते हैं। वे चलते हैं अग्नि का विश्वास लेकर; जिसमें कि इस धुएँ का पर्यवसान है। मैं जानती हूँ, धुएँ से तुम लोग नहीं डरते, बल्कि उसके कई खेल भी बनाया करते हो, किन्तु सिगरेट के मुँह को, जहाँ से कि यह धुआँ निकल रहा है, क्या तुम छूने का साहस कर सकते हो ?"

नवनीत फिर अप्रतिभ होगया। क्रोध से उसने अपने ओठ काटे और कहा—

"तब भाभी ! दुनिया में नारी के किस्सों का तो अभाव नहीं !"

"किस्सों का अभाव हो, या न हो, किन्तु किस्सा कहने वालों का अवश्य अभाव नहीं है। पर जाने दो लालाजी, इस व्यर्थ बहस से मतलब ही क्या है ? मुझे क्षमा करना तुम्हारे घरू मामले में एक रहस्य को जानने का मैंने प्रयत्न किया था। मैं समझती थी कि वहाँ रहस्य नहीं है, और इसीलिए मुझसे यह गलती हुई। किसी को दुःख देना या व्यर्थ छान-बीन करना मुझे प्रिय नहीं है।"

"बड़ी प्रिय बनकर आई थीं भाभी, क्या इतनी अप्रियता का भार लेकर चली जाओगी ? आपके निकट तो मैं प्राण दान का—"

आरती उठ खड़ी हुई, और नवनीत को बीच ही में रोककर मुस्कराती हुई बोली।

"प्राण-दान देने से ही किसी को प्राण लेने का अधिकार भी नहीं प्राप्त हो जाता !"

"पर मेरे हृदय पर तो आप एक भार रखकर ही जा रही हैं। आखिर यह तक न जान पाया कि आज अकस्मात् ही आप मेरे घर किस लिए आईं, और आईं तो—"

आरती फिर हँस दी–"निश्चिन्त रहो, मैं सती नहीं हूं कि प्रजापति के यहाँ दक्षयज्ञ की आवृत्ति कर गुजरूँ ! तुम अच्छी तरह जानते हो कि यदि कुटिलता कहीं है, तो वह मुझमें ही है, मेरे पति में नहीं !"

"जले पर नमक छिड़कना स्त्रियों को बहुत आता है। खैर मैं कुछ न कहूँगा।"

"नीलम की भावना से परवश होकर तुम्हारे दरवाजे तक आई थी—"

"नीलम—"

"हाँ, वही नर्त्तकी; वह तुम्हारे अन्तरतम को नहीं पहचान सकी। पहचानती कहाँ से ? परन्तु अब उसे दिखा देना उचित है !"

"नवनीत को फिर चोट लगी, बोला—"उसे मेरे प्रेम ने सता रखा है, यही न आप कहना चाहती हैं ? दुनिया में बहुतेरे आश्चर्य देख चुका हूँ भाभी, बल्कि मुझे तो अब यह धुएँ का विश्वास अपने ऊपर भी नहीं दिखाई देता। मैं प्रेम के झमेले से इतना अधिक आशंकित और आतङ्कित हो गया हूँ कि अच्छा हो यदि आपसे भी मेल-मुरव्वत न बढ़ाई जाय !"

आरती ने भी तमककर उत्तर दिया, "अवश्य ही तुम्हारे लिए तो यही अच्छा होगा।"

आरती दरवाजे की ओर मुड़ी। खड़ा होकर नवनीत ने कहा, "भाभी, नाराज हो गईं ! मानपुर का रिश्ता भी टूटा हुआ समझूँ क्या !"

"रिश्ते बनाए नहीं जाते, वे तो हो जाते हैं, अतः मैं भला उन्हें क्या तोड़ूँगी। मेरी भावना का दरवाजा तो सदैव ही खुला हुआ है देवरजी!"

और बाहर निकल कर आरती नीचे उतरने लग गई। नवनीत बाहर निकला, किन्तु ऊपर ही नीम की छाया में खड़े होकर धीर गति से जाती हुई आरती को देखने लगा।

एक रात को प्रथम प्रहर में माया भी इसी तरह रुष्ट होकर चली गई। चार वर्ष का माया का साथ अब एक न भूला जाने वाला स्वप्न-मात्र रह गया है।—तब आरती का यह प्रथम और अन्तिम उपसर्ग ही क्या महत्त्व का क्षण हो! उसने सिगरेट का जोर से कश खींचा, और एक लम्बा चौड़ा बादल उसके ओठों से बाहर निकल गया।

नवनीत ने आवाज दी, "हरनाम!"

बरतनों को साफ करने की तैयारी में लगा हुआ हरनाम ऊपर आ खड़ा हुआ।

"अभी तक निबटा नहीं?"

"कहिए; न होगा बरतन बाद में साफ कर लूँगा।"

"जा, बरतनों से निबट ले। फिर आना, एक काम है।"

हरनाम रसोईघर की ओर चल दिया, नवनीत अपने कमरे की ओर। अधजली सिगरेट फर्श पर फेंककर वह पलंग पर लेट गया।

अधरलाल एक सामान्य-सा पोस्टमैन है; पढ़ा-लिखा-विशेष न होगा, तभी तो चिट्ठीरसा है? किन्तु—कहा जाना चाहिए, अंग्रेजी विशेष पढ़ा-लिखा नहीं है। हो भी तो भी—सब मिलाकर बहुत बड़ा आदमी नहीं कहा जा सकता। कम-से-कम नवनीत की तुलना में तो नहीं।

किन्तु आरती स्त्री जाति में एक रत्न है, इससे कौन इनकार करेगा! उसके हृदय में पति के प्रति असीम यत्न है, चिन्ता है—और जब ये हैं तो प्यार भी होगा ही। आश्चर्य है कि आरती और अधरलाल में उमर का काफी व्यवधान है—दूसरे विवाह की पत्नी मालूम देती है। रूप गुण-बुद्धि सबमें अद्वितीय। दुनिया के समस्त सम्मिलित पौरुष को भी ठेंगा दिखाती हुई। पा कहाँ से गया ऐसी लड़की अधरलाल? हिन्दू-समाज में ऐसी लड़की। अधरलाल से नवनीत को ईर्ष्या हुई।

नवनीत के भी एक पत्नी है—कम-से-कम एक जमाने में थी तो जरूर। काफी सुन्दर, पढ़ी-लिखी—प्रमाण तो उसके भी सेवा-परायण होने का ही मिला है—और शायद प्रेम भी वह करती ही थी। परन्तु कहाँ अधरलाल का भाग्य और कहाँ नवनीत का भाग्य? अधरलाल एक कुआँ है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई तो आसानी से नापी जा सकती है, किन्तु जिसकी गहराई का पता लगना कभी सम्भव नहीं है। कभी तल का पता लग भी जाय, किन्तु यह आरती उसमें भरा हुआ जल का ऐसा अखूट खजाना है जो कभी उलीचा नहीं जा सकता, जो झरनों के द्वारा बराबर अपनी मर्यादा बनाए रखता है।

स्त्री के सामने झुकना नवनीत के लिए लज्जाजनक है, परन्तु दीखता है कि यह स्त्री तो उसे अनायास ही झुका रही है। नवनीत की चुनौती परिवर्त्तित होकर आखिर उसी पर तो पड़ी। यदि मोम का हृदय होता तो चोट सही जा सकती थी; परन्तु पत्थर के दिल पर या तो चोट टूट जाती है या दिल टूट जाता है। नवनीत बेचैन हो उठा।

स्त्री को प्राप्त करने का प्रयत्न क्या वास्तव में झुकना है? भूख निर्बल ही को लगती हो यह तो कोई बात नहीं। निर्बल उसे पूरा करता है भीख माँगकर सबल करता है, अपनी क्षमता के बल पर। नारीत्व, पौरुष का चिर-प्राप्य है, सृष्टि के आदि काल से वह अपने प्राप्य का उपभोग करता आया है। नवनीत उसका अपवाद कैसे हो सकेगा! यदि वह मार्ग में एक ओर पड़ा हुआ टुकुर-टुकुर देखता रहे, और अपने मन का दमन करता रहे, तो वही तो निर्बलता है, क्लैब्य है। नवनीत और क्लैब्य?

परन्तु—माया—दूसरी ओर आरती, एक जिसे स्वेच्छा से विदा कर दिया, दूसरी जिसका स्वेच्छा से स्वागत—स्वागत?—किसी का प्राप्य छीनना?—यह तो घसीट लाना है किसी को! आरती ने किया भी तो उसके साथ अन्याय ही; बात को उसने समझने की चेष्टा न की, मामला उससे पूरा न सुनना चाहा। केवल अपने बड़प्पन की मिथ्या भावना

में प्रारम्भ से ही उसकी भर्त्सना करती रही, और नवनीत कुछ न कर सका।

हाथ पोंछते-पोंछते हरनाम ने प्रवेश किया।

नवनीत तब लेटा हुआ था। आँखें अध-मुँदी थीं—जब चित्त-वृत्ति अन्तमुँखी हो जाती है, तब वस्तु जगत् से सम्पर्क स्थापित करने वाली हमारी इन्द्रियाँ न केवल निष्क्रिय ही हो जाती हैं, प्रत्युत निश्चेतन भी हो जाती हैं। नवनीत की निष्क्रिय आँखों ने जैसे ही हरनाम का अप्रत्याशित प्रवेश देखा, उसकी भारावनत पलकें वैसी ही पूरी झुक गईं। स्वीकार करना पड़ता है कि भावना की दृष्टि से मुँदी हुई आँखों की अवस्था सुरक्षा की अवस्था है।

हरनाम को बुलाने का नवनीत के पास कोई प्रत्यक्ष बहाना न था। उसका आदेश कि वह बर्तन धोकर यहाँ आ जाय, व्यर्थ ही था। इस प्रकार के अनावश्यक आदेश नवनीत-जैसा अति भावुक (Ultra Sentimental) व्यक्ति प्रायः ही दिया करता है। उसकी दिगन्त विस्तृत गहरी भावुकता के समुद्र में इस प्रकार के गत्यन्तर द्वीप का काम देते हैं। यदि ये न हों तो अपने ही अन्तराल की अतलांत गहराई में डूबते उसे समय ही क्या लगेगा!

हरनाम ने उसे सोते हुए ही पाया। जगाना उचित है या नहीं, इस तथ्य की मीमांसा में उसने कुछ क्षण बिताए, और फिर यह सोच-कर कि आवश्यकता पड़ने पर उसे फिर बुलाया जा सकता है, वह लौट गया।

नवनीत शाम तक आखें बन्द किये लेटा रहा; और जागृत-आंखों के इन दिवा-स्वप्नों में उसने जो विभीषिकाएं देखीं, वे उसके जीवन की दिशा ही बदल गईं!

जीवन के ऐसे ही क्षणों को हम भगवान् की माया, या भाग्य का लेख कहा करते हैं। वास्तव में मनुष्य का उन पर कोई वश नहीं रहता, हालांकि भाग्य का भी उन पर कुछ वश रहता हो, ऐसा नहीं दीखता।

ये क्षण जीवन के सतत प्रवाह के आवर्त्त हैं, जो पैदा होते हैं, नष्ट हो जाते हैं या भीषण रूप धारण कर लेते हैं, यदि उनमें कोई वस्तु पड़ जाय तो वह गर्क हो सकती है, बच भी सकती है। आरती का इस समय का साक्षात्कार नवनीत के लिए ऐसी ही बात पैदा कर गया।

(१५)

रात के दस बज गए थे। कृष्ण पक्ष की अष्टमी के चाँद का पता न था। अलसाई हुई रात क्षीण-दीपकों की अधमुँदी आँखों से सोने की तैयारी-सी करती दिखाई दे रही थी। रह-रहकर पवन उसके बदन को गुदगुदा उठता था, तब उसके अध-मुँदे नेत्रों में ज्योति दीप्त हो उठती थी। पवन का अभिचार उसके कानों में मादक प्रेम का सोता उँडेल रहा था।

असूया से भरी हुई नीलम अपने घर के पीछे के बरामदे में एक पलंग पर पड़ी हुई किसी पुस्तक को पढ़ने में मन लगा रही थी। रह-रहकर वह दरवाजे की ओर भी देख लेती थी, किसी की राह देखने के लिए, किन्तु पुस्तक का आकर्षण भी कम न था। कभी-कभी कुछ पढ़-कर सोचने की मुद्रा में केवल छत की ओर ही देखने लग जाती। धीरे-धीरे नीलम पुस्तक में तल्लीन हो गई। लेखक के आवेश में तादात्म्य प्राप्त करने पर पाठक फिर स्वतन्त्र नहीं रह सकता, उसे अपने अहङ्कार का विसर्जन करना पड़ता है। जिसकी राह देखी जा रही थी, वह नहीं आया, और पुस्तक में उलझा हुआ उसका मन भी उसके हाथ में न रहा।

दीपक सिरहाने, एक हाथ दूर रखा हुआ था, अतः चेहरे पर उस की छाया-मात्र पड़ती थी, किन्तु पुस्तक के सफेद पन्नों से टकराकर प्रकाश की क्षीण किरणें उसकी आँखों पर धूप-छाँह का विचित्र सौन्दर्य बुन रही थीं। आंखों के प्रकाश-परिवर्तन से तथा चेहरे की रेखाओं के चढ़ाव-उतार से पुस्तक की भावनाओं का थोड़ा-बहुत पता मिल जाता था।

एक गम्भीर संवाद पढ़कर नीलम ने पुस्तक अपनी छाती पर रख दी, उसका मन अन्यत्र उड़ चला।

शरच्चन्द्र के 'चरित्र-हीन' उपन्यास की नायिका किरणमयी अपने देवर दिवाकर को नारी के सौन्दर्य का अभिधार्थ बता रही है। नारी का सौंदर्य, यदि किरणमयी की परिभाषा ठीक है, तो कितनी बड़ी दुराशा है ! उसे नारीत्व का मोर्चा—दुर्बल मोर्चा—भी नहीं कहा जा सकता। मोर्चे पर युद्ध होता है; किन्तु यह तो शत्रु का गुप्त भेदिया है जो पौरुष के कानों में नारी की दुर्बलताओं को सूचना देता रहता है। हाय, नारी का सौंदर्य पौरुष के साथ कभी युद्ध नहीं करता, वह केवल युद्ध का दिखावा करता है, उसका खिलवाड़ करता है, और सेक्स की मर्यादा में हम उस कपट को नाम देते हैं 'लज्जा' का—जिसे संस्कारमयी दुनिया नारी का भूषण कहती है, और पौरुष का प्रमाद जिसका उपभोग करता है !

नीलम ने फिर पुस्तक उठाई। लाल पेंसिल से रेखाङ्कित किया हुआ यह वाक्य उसकी आँखों में मानो आग की तरह जल उठा—"सन्तान धारण करने के लिए जो सब लक्षण विशेष उपयोगी हैं, उनकी समष्टि का विकास ही स्त्री का रूप है !"

सन्तान धारण करना—सन्तान धारण करना—क्या खूब ! स्त्री के जीवन की चरम सार्थकता मातृत्व ! समझ में नहीं आता कि विधाता ने अपने उस घड़े के प्रयोग को मातृत्व का ठेकेदार क्यों न बना दिया, जिसमें घी भरकर दुर्योधन जैसे सौ-सौ पुत्र बड़े कर लिये जा सकते। वही नए लिफाफे में पुराना मजमून, गोया स्त्री बच्चा देने की मशीन-मात्र है !

तो फिर सन्तान धारण करने के इन विशेष लक्षणों की समष्टि का विकास समस्त नारी शरीर को क्यों घेरे हुए है ? केशों का विन्यास आँखों का मद, मुँह की भंगिमा, अधरों का रस—आखिर इनमें सहज ध्वंस की क्रांति क्यों मच जाती है, जब कि नारीत्व का बिगुल कपट के शब्दों में दुहाई देता रहता है निर्माण की !

दासी ने आकर कहा, "बाबू अधरलाल आए हैं।"

"और कौन है?"

"अकेले हैं!"

"तो उन्हें यहीं भेज दे। ऊपर की बैठक ठीक तैयार है न! और जो कोई आए उन्हें ऊपर बिठाना। तब तक हम भी ऊपर आ जायंगे!"

"अच्छा" कहकर दासी लौट गई। नीलम उठ बैठी। उसने अपने आप को अच्छी तरह सहेज लिया, कि अधरलाल भीतर प्रविष्ट हुए!

नीलम ने उठकर प्रणाम किया। अधरलाल हँसकर बोले—"क्या आशीर्वाद दूं? अचल सुहाग का? 'अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती' हमारे यहाँ का प्राचीन आशीर्वाद सूत्र है। पसन्द करती हो इसे?"

नीलम के कानों में मातृत्व की विषण्ण-विडम्बना फिर व्याप्त हो गई। मुस्कराकर बोली, "अपने दोनों ही आशीर्वाद अपने ही निकट सम्भाले रहिए, किसी दिन सार्थक तो हो जायंगे! यदि अपात्र को दान दोगे तो उससे मिथ्या का दोष ही लगेगा।"

हँसकर अधरलाल ने उत्तर दिया, "निराश क्यों होती हो। सन्तों के वचन की बड़ी महिमा है। कुछ नहीं तो वचनों के सत्य पर ही विश्वास करके तुम्हें आश्वस्त हो जाना चाहिए।"

"आश्वस्त या आशङ्कित?—माफ करो भैया, तुम्हारे वचन सत्य होने की मुझे उतनी चिन्ता न होगी, जितनी आत्म-रक्षा की!"

"यानी?" अधरलाल ने पूछा।

"बैठो न! अभी तो तुम्हारी सभा का समय भी नहीं हुआ।" कहकर उसने कुर्सी खींची, अधरलाल उस पर बैठ गए तो वह फिर पलंग के एक कोने पर बैठ गई।

"मैं तो तब से राह देख रही थी!"

"यदि आरती को साथ लाना होता तब तो विलम्ब न होता। तुम तो सभी कुछ जानती हो नीलम, अधरलाल को यदि कोई पाश है तो

यह है आरती ! जीवन का लंगर है वह, उसे उठाये बिना कहीं भी गति नहीं प्राप्त की जा सकती !"

"उसे श्रृङ्खला क्यों नहीं कहते फिर ?"

"श्रृङ्खलाएँ तो बाधा होती हैं; किन्तु आरती तो रक्षा है नीलम, बाधा नहीं।"

"छल-कपट के और कितने शब्द आपके कोश में संगृहीत हैं भैया ! उँडेल दो न उन सबको एक बार; जरा देखूँ तो सही !"

"यह कौन-सी पुस्तक है नीलम ! कहीं इसकी भावना की रखवाली तो नहीं कर रही हो ?"

"चरित्र हीन है भैया ! रखवाली तो खैर नहीं कर रही हूँ, परन्तु भारत के तुम्हारे श्रेष्ठ औपन्यासिक का वाक्-वैभव देख रही थी !"

"वाक्-वैभव-मात्र ! भावों की तीव्रता तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकी क्या !"

"भावुकता की भैया, भावों की नहीं। किरणमयी ही की बात ले लो न ! यदि सन्तान धारण करने ही को वह नारी की चरम सार्थकता समझती है, तो उपेन्द्र के प्रेम को स्वीकार करने का ढोंग करने की उसे क्या आवश्यकता थी ! माना कि हारानचन्द्र से उसकी पटरी न बैठी, परन्तु सन्तान धारण करने के लिए दिवाकर उपयुक्त पात्र नहीं था क्या; दुर्बल अवश नारी ही थी वह, सारी शिक्षा को सम्पूर्ण बुद्धि को उसने व्यर्थ कर दिया। यदि प्रेम का ढोंग न होता भैया, तो सम्भव है उसकी चरम सार्थकता भी प्रमाणित हो जाती, और दिवाकर को प्रति हिंसा का शिकार भी न बनना पड़ता।"

"पर तुमने यह भी तो पढ़ा होगा कि प्रेम कोई काम तो है नहीं कि उसके न्याय-अन्याय की मीमांसा की जा सके !"

"तभी तो कहना पड़ता है कि सब शिक्षा और सब बुद्धि व्यर्थ गई। आखिर प्रेम है तो इस शरीर ही का व्यापार, सब उसके ऊपर काबू होना तो अपनी प्रवृत्ति का दास हो जाना-मात्र है !"

"सवाल यह तो नहीं है कि दास हुआ जाय, या स्वामी ! प्रवृत्ति को तुम इनकार तो नहीं कर सकतीं !"

"परन्तु प्रवृत्तियाँ भी तो आखिर संस्कार ही से बनती हैं ?"

"तो उससे क्या हुआ ?"

"भैया, मैं संस्कारों से मुक्त होना चाहती हूँ !"

अधरलाल हँस पड़े, बोले, "यह केवल नीलम के संस्कार नहीं हैं नीलम, ये हैं समस्त मानव जाति के ! यदि तुम मनुष्य हो, तो मनुष्य-समाज का दण्ड तुम्हें सहना ही पड़ेगा। समष्टि के संस्कार एक व्यक्ति की इच्छा पर अन्यथा नहीं हो सकते !"

"तो मैं अपनी मौलिकता को नष्ट न होने दूंगी !"

अधरलाल फिर हँसे, "मनुष्य से इतर सभी प्राणी तो मौलिक हैं ! —कम-से-कम जहाँ तक मनुष्यता का सवाल है ! अच्छा, यही बताओ 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती' के आशीर्वाद में तुम्हें अशुभ क्या मालूम दिया ?"

"आखिर उससे मातृत्व की चिर-बेगार ही को तो नारीत्व का फतवा माना जायगा !"

"तो ?"

"नौ मास तक गर्भ के दुर्वह भार को ढोते फिरना, फिर दो-चार वर्ष तक वात्सल्य की छलना के भीतर अकर्मण्य-जीवन की दाईगीरी करना, जिसमें शिशु की कुशल-कामना, अस्पताल की मिन्नत—यदि वहाँ आश्वासन नहीं मिला, तो पीर-पैगम्बरों के गण्डे धागे या पुजारियों का कण्ठी-प्रसाद—और फिर एक अण्डा पका नहीं उसके पहले दूसरे अण्डे को सेने की बेगार—फिर उसी कर्म योग की पुनरावृत्ति—यही तो मातृत्व की महिमामयी दिनचर्या है ! शायद इन्हीं बातों को देख-सुनकर कुछ प्रोफेसरों ने कहना शुरू किया है कि जब बाजार में शुद्ध और सस्ता घी-दूध मिल जाता है, तो कितनी बड़ी बेवकूफी है कि घर पर भी एक गाय बाँध ली जाय !"—नीलम स्वयं हँस दी।

"सस्ता और शुद्ध घी-दूध बाजार में मिल जाता है क्या ?" हँसकर अधरलाल ने पूछा।

"महँगा ही सही। और यदि 'मेड इन इंग्लैंड' हो, और बढ़िया 'डी लक्स' पैकिंग हो तो उसकी शुद्धि में संशय ही किसे हो सकता है !"

अधरलाल गंभीर हो गए, बोले—"नारी का प्रयोजन ही तो सृष्टि है !"

"पुरुष को कामना-पूर्त्ति का एक साधन चाहिए, यह क्यों नहीं कहते भैया ! यदि नारी का प्रयोजन सृष्टि है, तो सृष्टि का प्रयोजन क्या है ?—शायद बच्चे पैदा करना ही है, क्यों ? मालुम देता है, महापुरुषों को ठीक समय पर कुछ सूझा नहीं। परमेश्वर तक इनकी गति तो थी ही। यही वकालत कर देते तो क्या बुरा था कि स्त्री और पुरुषों की बनिस्बत इस विश्व में जननेन्द्रियों ही का विकास कर दिया जाय ! माफ करना भैया ! इस युग की नारी-विषयक सभी धारणाओं में मुझे पुरुषों की स्वार्थ-लिप्सा दीख पड़ती है, यहाँ तक कि नारीत्व की महिमा का गुणगान भी उनके लिए बेमतलब नहीं है !"

"वह भी तो सुनूँ ?—नारी के त्याग की कथा तो विश्व का आधा साहित्य जाज्वल्य किये हुए है; क्या उसे भी तुम पुरुष ही का स्वार्थ मान रही हो ?"

"निस्संशय भैया ! दासों से निष्कपट सेवा प्राप्त करने का एक ही तरीका नहीं होता। सतीत्व की महिमा, मातृत्व की महिमा—सभी का बखान करने वाली होती तो पुरुष जाति ही है न ! स्त्री की निर्बलता को कोमलता का नाम देना भी किसी को जाल में फँसाने का बुरा साधन नहीं है ! महाशय, वैधव्य का संन्यास, जौहर के अग्नि-स्नान कौमार्य का उत्सर्ग, माँग के सिन्दूर का त्याग—ये सब स्त्रियाँ नहीं करती आई हैं, प्रत्युत निर्बल-नारी से पुरुष जबर्दस्ती वसूल करता आ रहा है। वह नारीत्व का प्रयोजन सृष्टि में स्थापित करता है, वह यौवन की सार्थकता मातृत्व में नियोजित करता है, और उसके सौंदर्य

की सोमा को गर्भ धारण की शक्ति के विकास में निहित करता है। यदि स्त्री इतने बड़े भी पुरुष की उदारता की कायल न हो तो धिक्कार है उसके स्त्री जीवन को, लानत है उसके सौन्दर्य को, थू है उनकी जवानी को !"

—और आवेश में नीलम उठ खड़ी हुई। तभी दासी ने प्रवेश करके कहा, "आप दोनों को ऊपर याद किया जा रहा है !"

"क्या सब उपस्थित हो गए ?"

"जी हाँ !"

"तो चलो, हम आते हैं।" दासी चली गई।

अधरलाल ने उठकर कहा, आवेश में हो नीलम, मैं जानता हूँ कि यह आवेश क्यों है ! अच्छा तुम्हीं कहो, नारी के सौन्दर्य की क्या व्याख्या है ?"

"आवेश में हो सकती हूँ, पर उद्वेग में नहीं भैया !" फिर हँसकर उसने कहा, "इस आवेश का कारण आप जानते हैं, पर वह होगा क्या सिवा पौरुष के किसी गर्व के !—यही न कि मेरी प्रार्थनाएं नवनीत-लाल के रुद्ध-कपाट से निष्फल प्रत्यावर्त्तित हो गईं ?—पौरुष की श्रेष्ठता जन्मजात संस्कार है, इससे मुक्त होने में बुद्धि को थोड़ा समय लगेगा। चलें ऊपर ? देर हो जायगी !"

चलते-चलते अधरलाल ने फिर पूछा—"और मेरे दूसरे प्रश्न का उत्तर ?"

हँसकर नीलम ने कहा, "याद रहे तो फिर पूछ लीजिएगा। और मेरी ही बात तो कोई अन्तिम है नहीं।"

ऊपर बैठक खूब सजी हुई है ! नीलम का यह व्यवसाय-गृह है, दूकान है, अतः जितनी सजावट इसकी हो सकती है, हुई है। दीवाल में लगे हुए सुन्दर चित्रित काँच के दीपाधारों में प्रकाश सहस्र-गुना होकर सारे कक्ष में फैल रहा है।

लगभग आठ-दस व्यक्ति बीच में बैठे हुए हैं। एक सभा का

आयोजन-सा मालूम देता है। कुछ व्यक्ति पहचाने जा सकते हैं; टीकू धीवर को हमारे पाठकों में से सभी जानते हैं। पास के कमरे में लय-ताल के अनुसार वाद्य बजने का आयोजन किया गया है, ताकि राह चलती जनता को विशेष कौतूहल न हो।

मध्य-पद अधरलाल ने ग्रहण किया, और फिर शायद पिछली सभा की लिखित कार्यवाही स्वीकृत की गई।

अध्यक्ष ने कहा—"बन्धुओ! गम्भीर रात्रि की इस नीरव शांति में आप लोगों को कष्ट देने का एक कारण हो गया है। प्रधान कार्यालय लखनऊ से आया हुआ यह गोपनीय पत्र आपके विचारार्थ उपस्थित है।'

अधरलाल ने अपनी जेब से मुहरबन्द एक पत्र निकाला, और कहा—"संयुक्त प्रान्त के पोस्ट मास्टर जनरल की लड़की शर्ली जॉफरी अपने नव विवाहित पति किट्सन रागर्स के साथ हनीमून-सुहागरात-मनाने के लिए अगले माह की तारीख २९ को—आज से ठीक एक माह तीन दिन बाद—यहाँ आयगी। तालाब के किनारे पश्चिम में जो गेस्ट हाउस बना हुआ है सम्भवतः वे वहीं ठहरेंगे। इस बारे में प्रधान कार्यालय से डॉ० रेडियर यह पत्र हाथों हाथ लेकर उपस्थित हुए हैं।"

बाईं ओर एक नए मद्रासी व्यक्ति ने रेडियर के नाम पर अपनी आँखें नीची कर लीं, और सब सदस्यों को प्रकट कर दिया कि वही डॉक्टर रेडियर है। काला रङ्ग, नाटा कद, और उच्चारण का मद्रासी तरीका, ये उसकी पहचान थे; चेहरा नीचे झुका हुआ, यह कहना कठिन है कि उसमें क्या भरा हुआ है। नीचे झुके हुए सिर के बाल बिलकुल उठे हुए, कनपटियों के पास सफेद होने लग गए थे। उमर २९ और ३० के बीच कही जा सकती थी।

अधरलाल उक्त पत्र को पढ़ते जा रहे थे, सदस्यों का ध्यान पत्र की ओर था। डॉक्टर रेडियर ने सिर उठाया, और एक जासूसी दृष्टि सभी उपस्थित सदस्यों पर डाली। जादू की निगाह थी, सबके अन्तर

को वह मानो स्पष्ट देखने लगा। कुछ देर के बाद टीकू पर उसकी आंखें ठहर गईं!

अधरलाल पढ़ रहे थे—"डॉक्टर रेडियर का व्यक्तिगत अपमान हमारे दल का अपमान है। अतः डॉक्टर रेडियर द्वारा लिया गया प्रतिशोध हमारे दल का प्रतिशोध होगा। यह उचित है कि डाक्टर रेडियर के कार्य की जिम्मेदारी दल अपने ऊपर ले। उनके बयान से यहां की शाखा ने पूरी सहानुभूति प्रगट की है, और उनकी कार्य-दिशा का सम्पूर्ण भार दल ने उसके ऊपर निर्णय करने के लिए छोड़ दिया है! मानपुर की शाखा भी इस निर्णय से बाध्य है, अतः यह आशा की जाती है कि डाक्टर रेडियर की उद्देश्य—पूर्त्ति में वहां से पूर्ण सहयोग मिलेगा!"

अधरलाल ने एक क्षण डाक्टर रेडियर की ओर देखा—उनकी आंखों से प्रकाश की एक तीव्र रेखा निकलकर सबके अन्धेरे हृदयों को पता लगा रही थी, उसके काले ओठों के कोने में सूखी-प्रतिहिंसा का भयानक भाव मानो सारे समुदाय को ललकार रहा था। नीलम के मन में भय लहर दौड़ गई।

अधरलाल ने कहा, "पत्र पर लखनऊ कार्यावास की मुहर है, और नीचे प्रेजिडेण्ट के स-तिथि हस्ताक्षर हैं!"

उन्होंने पत्र नीचे रख दिया, सदस्यगण बारी-बारी से उसे देखने और पढ़ने लगे।

मानपुर के एक प्राइवेट स्कूलों के हेडमास्टर युवक रमेशचन्द्र ने पत्र आगे वाले साथी को देकर पूछा, "क्या डाक्टर रेडियर खुद इस बारे में कुछ कहने की कृपा करेंगे?"

अधरलाल ने रेडियर की ओर देखा, रेडियर ने कहना प्रारम्भ किया, "यदि आप लोगों की आज्ञा होगी तो क्यों नहीं कहूँगा!—मैं इस दल के सदस्य के अलावा पायरिया स्पेशलिस्ट एक डेण्टिस्ट हूँ; आप लोग जानते ही हैं कि सौ परसैण्ट बीमारियां दाँतों की वजह से

होती हैं, इससे बढ़कर बढ़िया कोई दूसरी पब्लिक सर्विस नहीं है; मुझे प्राइड है कि मैं लखनऊ के अच्छे पब्लिक सर्वेण्ट्स में से हूँ! हम तीनों, यानी शर्ली, किट्सन और मैं—"इण्टरमीजिएट में एक साथ पढ़ते थे। हम दोनों—किटी और मैं—पास होगए, किन्तु शर्ली रह गई। मैंने भी एक दूसरा ऑप्शनल सब्जेक्ट लेकर इण्टर पढ़ना शुरू किया—"

अधरलाल ने नीलम की ओर देखा, नीलम ने मुस्करा दिया।

नीची दृष्टि किये रेडियर कहता रहा—शर्ली ने कुछ ही दिनों बाद वादा किया कि या तो वह शादी करेगी ही नहीं, या फिर मेरे ही साथ करेगी; मैंने भी ऐसा वादा किया। आप लोग देखते हैं कि मैंने अपना वादा बराबर पाला है—"

रमेश ने बीच ही में कहा, "किन्तु एक अंग्रेज लड़की नहीं रख सकी! डॉक्टर बाबू, आपको इतना हौसला नहीं रखना चाहिए था। आप ठहरे गुलाम देश के काले आदमी; उनकी शिक्षा-दीक्षा, धर्म-कर्म, रीति-रिवाज क्या सभी आपके अनुकूल हो सकते थे?"

डॉक्टर ने कहा—"शर्ली तो अपनी बात पर दृढ़ रही, किन्तु उसका बाप है साहब। उसने यह विवाह स्वीकार नहीं किया!"

टीकू ने कहा, "डॉक्टर साहब, बाप ही को दोष देने से क्या काम चलेगा? यदि छोकरी की तबियत सच होती, तो ऐसे सौ साहब उसको न डिगा सकते! तो जब उसकी शादी किसी दूसरे गोरे से हो गई, तो आप उसका बदला लेने के लिए तैयार हो गए!"

टीकू की बात चुभने वाली थी, रेडियर का मुँह शर्म से नीचे झुक गया। अधरलाल ने पुनः नीलम की ओर दृष्टि डाली, वह तब भी रेडियर की ओर ही देख रही थी; उसके अधरों पर एक मुस्कराहट छा गई; उस युवक डॉक्टर के प्रति वह तुच्छता का भाव था!

किन्तु दूसरे ही क्षण रेडियर ने अपने-आपको सम्हाल लिया। वह बोला, "अवश्य ही यह व्यक्तिगत अपमान है, मैं बाध्य न करूँगा

कि आप लोग इसे राष्ट्रीय अपमान समझें। व्यक्तिगत अपमान का उल्लेख तो मैंने आपके सम्मुख इसलिए किया कि आप समझ सकें कि जो राष्ट्रीय अपमान है उसका प्रतिशोध लेने के लिए मैं व्यक्तिगत रूप से इतना सचेष्ट क्यों हूँ! आप जानते ही होंगे कि किट्सन रॉगर्स हमारे जिला कलक्टर सर कॉमवेल रॉगर्स का लड़का है। कलेक्टर अपने अत्याचारों के लिए प्रख्यात है ही! किन्तु यह लड़का उससे भी दो कदम आगे साबित हुआ है। समाचार-पत्रों में आप लोगों ने पढ़ा होगा कि लखनऊ के पोस्ट आफिस को जला देनेके सिलसिले में जो गोली-काण्ड हुआ उसमें इसी किट्सन का मूल हाथ था। शर्ली की बगल में खड़े होकर इसी मरदूद ने निशाना साधकर गोलियाँ चलाईं, जिसका नतीजा यह हुआ, कि मेरा साथी दयाराम—प्रेसीडेंण्ट का पुत्र—वहीं घटनास्थल पर मारा गया! एक के बाद एक, तीन गोलियाँ उसके सीने में लगीं, और—

"अपने बाएँ हाथ की कोहनी के ऊपर बँधी हुई पट्टी दिखाकर फिर उसने कहा—"एम कुछ चूक गया, एक ही गोली के द्वारा थोड़ा ही रक्त-दान देकर मैं बच गया। गोली चलाने वालों में यह छोकरी भी थी, लोगों ने स्पष्ट देखा कि इसके हाथ में भी रिवाल्वर था। भगवान् जाने किस-किसकी गोलियों ने दयाराम की जान ली। जब भीड़ छँट गई, तो मालूम हुआ कि छः आदमी समाप्त हो गए, तीन आदमी बाद में अस्पताल में समाप्त हुए, और आहत कितने हुए इसका कुछ पता ही न था!"

सभा में शांति छा गई, सभी लोग गम्भीर होकर मामलेकी गम्भीरता को सोचने लगे। पृष्ठ-संगीत तब भी पास के कमरे में बराबर चल रहा था? रेडियर की कथा में पूछने लायक कुछ शेष न था।

धर्मचन्द नामक एक महाजन युवक कुछ क्षण पश्चात् बोला, "यह तो साफ जाहिरा अन्याय है। मेरा खयाल है कि कोर्ट भी ऐसे साफ सुलझे हुए मामले को उपेक्षा नहीं कर सकती। आपने कानून का रास्ता पकड़ना वाजिब नहीं समझा डॉक्टर साहब?"

कुछ व्यक्ति मुस्कराने लगे। टीकू बोला, "सेठजी, आखिर रहे तुम सेठजी ही। यह भी नहीं सोचा कि डॉक्टर की दवा अपने ही घर पर नहीं चलती; इसी तरह कानून भी बनाने वाले पर नहीं लगता! कोर्ट यानी वही अंग्रेज सरकार! पर भूल गया, तुम लोग तो महाजन हो न घर की सेठानी से भी तो ब्याज उगाहना नहीं छोड़ते! शायद यही बात ठीक है! क्यों न?"

सभी लोग मुस्करा उठे, स्वयं धर्मचन्द भी हँस उठा।

नीलम ने बोलने के लिए मुँह उठाया, एक ही क्षण में शांति छा गई। "डॉक्टर रेडियर, जो कुछ आपने सुनाया, वह वास्तव में गम्भीर है, और कार्यालय का यह पत्र आपके वक्तव्य का समर्थन कर रहा है। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि यहाँ पर आपके कार्य की दिशा क्या होगी, और आप यहाँ से किस प्रकार की सहायता लेना चाहेंगे?"

रमेशचन्द्र ने कहा, "किसी प्रकार का निर्णय लेने के पूर्व क्या यह जान लेना उचित न होगा कि दोनों में से प्रकृत-दोषी कौन है?"

एक अधेड़ उम्र का का मुसलमान व्यक्ति, नाम नसीरुद्दीन, जो कि एक मोटर-सर्विस का कण्डक्टर था, बोला, "मास्टर साहब का कहना दुरुस्त है। यकीनन आप नहीं कह सकते कि उस लड़की की गोली से या लड़के की गोली से आप या आपके दोस्त जख्मी हुए!"

रेडियर ने बीच ही में कहा—"जख्मी नहीं भाई जान, एक तो राही मुल्के-बका हुआ; और मेरा घाव—भरेगा तभी भरेगा!"

पुनः उसकी आंखों से चिनगारियां छूटने लगीं; किन्तु वह शांत रहा, देखना चाहता था कि सदस्यों पर उसकी प्रतिक्रिया कैसी हो रही है!

करणसिंह नामक एक राजपूत, जो सिलाई का काम करता था, जरा जोश के साथ बोला, "व्यवसाय-बुद्धि सोचिए, व्यवसाय बुद्धि!

गोली चाहे लड़की की हो, या लड़के की इरादा दोनों का ही बद था, और हमें बदला लेना है सिर्फ इसी इरादे बद का! कारे-बद का तो बदला अब हो ही क्या सकता है; जो मर-चुका है, वह जिलाया जाने

से रहा, परन्तु जो जीवित हैं, उन्हें तो जीवित रहना ही है ? यदि मेरी सम्मति की जरूरत है तो मैं तो दोनों ही का सफाया कर देने की राय दूँगा !"

रेडियर की आंखें चमक उठीं; उसने करणसिंह की ओर देखा, जोश की वजह से उसकी छाती फूल उठी थी—कमीज की पट्टी पर टांकी हुई सुई, सामने के दिए की लौ में बिजली की तरह चमक उठी, मानो अपने दिल में लहराने वाली अग्नि-शिखा का उसने सबूत दे दिया !

टीकू ने नीचे के अधर को ऊपर के दांतों से दबाते हुए कहा, "बहादुरी का काम हो दोस्त, तो मुझे भी शरीक समझना। यह देखना कि यह काम वाजिब है या गैर वाजिब, आप लोगों के तै करने का है।" और यह कहकर ही उसने मानो अपने भार से छुट्टी पाने के लिए टांगें लम्बी पसार दीं, और हाथों को कमर के नीचे जमीन से टिका दिया !

अधरलाल ने तब और लोगों को बोलने का मौका न देकर कहा, "माननीय सदस्यो, आपने संपूर्ण बात-चीत को सुन लिया है, आपने कुछ व्यक्तियों के विचार भी जान लिये हैं। मामला खूब गम्भीर है, शायद यह कहने की आवश्यकता तो नहीं है, मैं सोचता हूं ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर शीघ्रता से कोई विचार कर लेना समीचीन न होगा। डॉक्टर रेडियर ने सम्पूर्ण कार्य का भार अपने ऊपर लिया है, वे इस कार्यावास से केवल सहायता चाहते हैं। अवश्य ही हमारे पास प्रधान कार्यालय का आदेश-पत्र है कि उन्हें सहायता दी जाय, जिसके लिए हम लोग बाध्य हैं ! किन्तु फिर भी हम लोग प्रतिशोध के औचित्य पर विचार तो कर सकते हैं !— "यदि हमारा निर्णय अन्यथा हुआ, तो उसकी सूचना प्रधान कार्यालय को दी जा सकेगी—" रेडियर की मुखमुद्रा में अविश्वास छा गया, उस छाया में वे उछलते हुए स्फुलिंग उन आँखों का और भी भयानक बना रहे थे; अधरलाल कहते रहे—"हम लोग आज से ठीक ७ दिन के बाद शनिवार को फिर इसी समय मिलेंगे, किन्तु

स्थान मिलने का होगा हमारा कार्यालय। आप सब सदस्य तब तक इस समस्या पर गम्भीरता से सोच लें!"

फिर नीलम की ओर अभिमुख होकर उन्होंने कहा—" समय काफी हो गया है, रेडियर रमेश के यहाँ अतिथि है, आपको वहाँ कोई कष्ट तो नहीं न?—क्या उचित नहीं कि हम लोग आज विसर्जित हों!"

आवेश से और समय की अधिकता से सभी घर जाने को उत्सुक हो उठे थे। टीकू तो खड़ा तक हो गया।

अधरलाल ने कहा—"शनिवार को इसी समय—कोई नोटिस अब नहीं दिया जायगा, और ध्यान रहे, सब कार्यवाही गुप्त रहे। बन्दे!"

सभी लोग उठ खड़े हुए, और एक एक कर के बाहर जाने लगे। रमेश के साथ डाक्टर रेडियर भी हो लिया। पीछे रह गए अधरलाल और नीलम; और घर के दास-दासी। पृष्ठ-संगीत तब भी चल रहा था।

नीलम ने अधरलाल की ओर दृष्टि डाली, देखा कि वे उसकी ओर ही देख रहे हैं तो बोली, "प्रतिशोध के औचित्य पर आपका क्या मत है भैया?"

"नीलम, हमारे इस दल का नाम है आतंक-दल! आतंकवादियों में प्रतिशोध तो दूसरी श्रेणियों में आता है—प्रतिशोध के बारे में तो कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता, वे लोग तो आतंक का प्रारम्भ ही अपने से करते हैं!"

"आतंकवादियों का मत तो खैर, मैंने सुन लिया; किन्तु आपका अपना का क्या मत है?"

"नीलम, ठोस कार्य में व्यष्टि की सीमा बन्द नहीं की जा सकती। कारणों की समष्टि से कार्य होता है, और कार्यों की समष्टि से किसी निर्णय का औचित्य परखा जा सकता है। इसी मामले में देखो न; प्रतिशोध का कोई भी रूप मृत दयाराम को पुनर्जीवित नहीं कर सकता; किन्तु याद हैं न करणसिंह के शब्द! मरे हुए को जिलाने के लिए तो

हमारी चेष्टा है नहीं; तब इसे प्रतिशोध कहा ही क्यों जाता है ?—किन्तु जो जीवित हैं, उनकी अकाल-मृत्यु का खतरा तो हमें मिटाना है। तब प्रतिशोध की दृष्टि से तो नहीं, पर आत्मरक्षा की दृष्टि से तो यह कार्य उचित ही होगा !"

"आत्मरक्षा के नाम पर इन राष्ट्रों ने संहारक शस्त्रों का कैसा जमघट लगा रखा है, क्या आपका यह आत्मरक्षा का प्रयत्न वैसा ही धोखे से भरा हुआ सर्वसंहारक प्रयत्न नहीं ?"

"यह कैसे ?"

"नित्य दिखाई देने वाली तो बात है ! राष्ट्रों की यह प्रतियोगिता क्या अन्तर्राष्ट्रीय-अरक्षा का कारण नहीं हुई ? और सभी तो सरलता से सिद्ध करते आ रहे हैं कि मूल प्रयत्न तो आत्मरक्षा का है !"

"इसीलिए तो मैंने पहले कहा था कि कार्यों की समष्टि से ही हम सीमान्त तथ्य का विवेचन कर सकते हैं ! इसलिए ऐसी कोई निरपेक्ष चेष्टा परम सत्य नहीं बन सकती ! और यदि ऐसा हो भी, तो भी सिद्ध है कि ऐसे ही प्रयत्न एक राष्ट्र को जीवित रख सकते हैं, जब कि अन्य राष्ट्र उसे उदरस्थ करने को मुँह बाए खड़े हैं।"

नीलम हँस दी, "इसीलिए आप कहते हैं कि मनुष्य भी मुँह बाए खड़ा रहे ? यदि एक बार किसी ने उल्टा मार्ग ग्रहण कर लिया, तो क्या वही सब लोगों का राजमार्ग हो जायगा ? यह तो कोई बात नहीं भैया, इसी किस्से को ले लो। मैं मानती हूँ कि इनमें से किसी एक की गोली का दयाराम शिकार हुआ है, और दूसरे की गोली ने रेडियर को आहत किया है। परन्तु क्या आप समझते हैं कि रेडियर दयाराम की मृत्यु का या अपने आघात का प्रतिशोध लेने के लिए तैयार हुआ है ? मैं तो नहीं समझती ! ठीक तो यह है कि रेडियर अपने निष्फल प्रेम की ईर्ष्या पर विजय नहीं प्राप्त कर सका।"

"तुम रेडियर के साथ ज्यादती कर रही हो !"

"बिलकुल नहीं। क्या आप सोचते हैं कि दयाराम की अपमृत्यु

की कथा भारत के आज के संग्राम की अकेली घटना है ? जब रेडियर अपने अन्य देशवासियों की इससे भी भयानक अपमृत्यु का दृश्य देख चुका है, और फिर भी दाँत चमकाने के अपने व्यवसाय से बाज नहीं आया, तब क्या किटसन का इस घटना से सम्बन्ध ही उसके व्यक्तिगत आवेश का कारण नहीं ? अपने शरीर में लगी गोली की उस चोट को ही यदि उसने प्रतिशोध का आधार बनाया है, तो क्या आप विश्वास न करेंगे कि इससे भी गुरुतर आघातों को वह चुपचाप पी गया है ? यह चोट गोली की नहीं है, जो उसे प्रतिशोध की प्रेरणा दे रही है, यह दयाराम की हत्या का तकाजा भी नहीं है भैया, विश्वास मानिए, यह शर्ली के प्रेम का प्रत्याख्यान-मात्र है, जो रेडियर के सिर पर चढ़कर बोल रहा है । बल्कि सच मानिये, इस घटना से अज्ञातरूपेण रेडियर किटसन का निकटतम मित्र ही हुआ है, और यह समस्त घटनावली सुन्द-उपसुन्द के युद्ध का आधुनिकतम संस्करण-मात्र है !"

"नीलम, मैं जानता हूं कि व्यक्तियों के व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष इस प्रकार के सामाजिक कार्यों में तूल पकड़ जाते हैं, परन्तु इससे समाज की आवश्यकता भी तो पूरी होती है ! समाज इस प्रकार व्यक्तियों की मनोवृत्तियों को अपनी आवश्यकता के अनुकूल मोड़कर ही तो अपना कार्य साधन करता है ! यह जान रखो कि निर्माण के कार्य की निष्पत्ति समूह के ऊपर निर्भर करती है, किन्तु जहां नाश की आवश्यकता होती है— और स्वीकार करोगी कि विशेष परिस्थितियों में उसकी आवश्यकता होती ही है—तब समूह के ऊपर भरोसा नहीं किया जा सकता, तब व्यक्ति ही कार्य-सिद्धि का दिशा-सूचक बनता है ! अपनी एकता के कारण समाज सहज ही संयोजनशील होता है, परन्तु विच्छिन्नता के सूत्र तो समाज के विच्छिन्न रूप व्यक्ति ही में मिल सकते हैं !"

नीलम के चेहरे पर कुछ व्यथा का भाव-सा उदय हुआ, किन्तु रात्रि के कृत्रिम प्रकाश में वह स्पष्ट न हो सका । एक भारी श्वास छोड़कर वह बोली, मानो आप ही-आप— "नाश की प्रतियोगिता में मनुष्य ही,

अपनी अमरता का शंख फूंकता हुआ उससे जूझ उठता है। समाज की विच्छिन्न सत्ता का नाम देकर ही क्या मनुष्य को नाश का दिशा-सूचक कहना युक्तिसंगत हो जायगा? समाज—समाज क्या एक सापेक्ष्य वस्तु नहीं? यदि किटसन और शर्ली ने गोलियाँ चलाईं, तो क्या वही मनुष्य का प्रकृत रूप है!—इस क्षणिक अपवाद के लिए ही क्या, किटसन और शर्ली के भीतर क्रीड़ा करने वाले मनुष्य को समाप्त कर देना दूसरे वैसे ही मनुष्य का धर्म है? भैया, आप लोगों के ये प्रयत्न तो पाप को जीतने के नहीं, केवल पापी को जीतने के हैं। इनसे क्या लाभ होगा?"

अधरलाल हँस दिए, "रात अधिक जा रही है। यदि छुट्टी दो तो आज जाऊँ। इस प्रश्न पर सोचने वाले हम दोनों ही तो नहीं हैं, और फिर कभी फुरसत के समय अधिक निश्चिन्तता के साथ बातें हो सकेंगी कैसा सोचती हो?"

नीलम ने कहा, "ठीक कहते हो भैया!" और दोनों हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया!

× × × ×

दो तीन दिन के बाद ही रेडियर पोस्ट आफिस की खिड़की के सामने देखा गया। बोला—

'चौदह चौदह आने के चार स्टाम्प, और एक एअरग्राफ फार्म—

नवनीत ने खिड़की में देखकर कहा, "मिस्टर, यह ब्रांच आफिस है! चौदह आने के टिकट तो छोटे टिकटों से पूरे किये जा सकेंगे, परन्तु एअरग्राफ—फेअर ग्राफ यहाँ नहीं मिलेगा!"

"न सही, मगर जी० एल० टी० टेलीग्राम के नियम देख सकूंगा क्या?"

"चार्जिस के बारे में जानना चाहते हैं?"

"हाँ—मगर गाइड देखने दें, तो कुछ और सूचनाएं भी मालूम कर लूँगा—यानी, आपको कष्ट अधिक न होगा—"

"भीतर आ जाइए तो!" नवनीत कुछ-कुछ झल्ला उठा था, उसने गाइड का एक मोटा—संस्करण छोटी-सी टेबल पर पटक दिया।

रेडियर भी तब तक भीतर आ गया था, उसने किताब उठाई, दबी हुई दृष्टि से उसने नवनीत की ओर देखा, और उसे जांचने का प्रयत्न करने लगा—पुस्तक पढ़ने का उसका कोई आग्रह नहीं मालूम दिया।

दुपहरी ढल चुकी थी। अधरलाल पोस्ट-वितरण करने के लिए बस्ती में गया हुआ था। स्वयं नवनीत आवश्यक डाक देख रहा था। यदि यह इल्लत न आ टपकती तो शायद अब तक वह ऊपर चला जाता। कुछ समय इसी तरह बीत गया—नवनीत अपने कागज देखता रहा, और रेडियर नवनीत की शकल, अवश्य ही गाइड में मुँह झुकाकर।

नवनीत ने देखा कि समय काफी हो गया है, तो बोला—"चौदह आने के आपको कितने टिकट चाहिएँ?"

रेडियर ने मानो किताब से मुँह निकाल कर कहा—"रहने दीजिए, अब लखनऊ से ही पोस्ट करूंगा। पर सच कहिए क्या यहाँ की जनता इतनी सामान्य है कि कभी एअरमेल को चिट्ठी ही पोस्ट नहीं होती?"

नवनीत ने गर्दन उठाकर कहा—"मालूम पड़ता है, आप किसी शहर के रहने वाले हैं!"

"जो हां; लखनऊ रहता हूँ। डेण्टिस्ट हूँ, पायरिया स्पेशलिस्ट! तीन दिन से मानपुर में पड़ा हूँ, पर क्या कहूं सोसाइटी के अभाव में ऐसा भार स्वरूप बना दिया है कि एक मिनट भी रहने की तबियत नहीं करती।"

नवनीत ने केवल सम्मति सूचक सिर हिला दिया, फिर केस में से सिगरेट निकाल कर उसे जलाया—

सिगरेट के लिए उससे पूछा तक नहीं गया—देखकर रेडियर को आश्चर्य हुआ, क्या नवनीत घमण्डी है या दुर्विनीत! किन्तु अभी उससे काम निकालना है। रेडियर ने पूछा—"आप भी तो इस गांव के नहीं मालूम पड़ते!"

"जी नहीं।"

"कहां रहते हैं आप ?"

"मुरादाबाद—"

"आइ सी! पर यहाँ आपका समय कैसे बीतता होगा महाशय ?

"या तो वह बीतता है या फिर बरबाद होता है, जैसे कि अभी ! आप-जैसे सज्जनों की वैसे कमी यहां भी नहीं है !"

रेडियर नवनीत के व्यंग्य को न समझा हो, सो बात नहीं, पर मानो कुछ न समझा हो, ऐसे भाव दिखाता हुआ बोला—

"ठीक है, बिलकुल ठीक। समय बीतता तो है ही। कैसा अच्छा है कि कम-से-कम आज तो आपके और मेरे समय का सदुपयोग हुआ। आपके काम में हर्ज तो जरूर हो रहा होगा, पर उम्मीद है आपकी संगति का आनन्द आप मुझे इनकार नहीं करेंगे !"

"नहीं, नहीं; शौक से बैठिये। जब समय बिताना ही है, तो वह आबाद हो या बरबाद, बीत तो जायगा ही।"

नवनीत ने देखा कि आखिर इस आदमी से निवृत्त ही हो लिया जाय। उसने हाथ के कागजों को टेबल के एक किनारे पर रखा और कुर्सी का मुँह रेडियर की ओर कर लिया। सिगरेट के कश बराबर उसके मुँह के भाव को छिपाए रहे।

रेडियर ने मानो नवनीत को अच्छी तरह से देखा, और कहा— "माफ कीजिएगा, आपका चेहरा तो बहुत-कुछ परिचित मालूम देता है !"

नवनीत थोड़ा मुस्कराया, "कहते हैं कि सिगरेट के धुएँ से दाँत खराब हो जाया करते हैं, और उन्हें पायरिया हो जाता है ! किन्तु विश्वास दिलाता हूँ कि जिस वजह से आपकी और मेरी मुठभेड़ हो सकती है, वह इन दाँतों पर कभी मेहरबान नहीं हुई !"

रेडियर भी हँस उठा, "इस सदा बहार चेहरे से बार-बार निकलने वाले ये दाँत किसी भी पायरिया-स्पेशलिस्ट के लोभ का विषय बन सकते हैं। लेकिन सच कहिए, क्या आप कभी लखनऊ नहीं रहे ?"

"क्यों नहीं रहा ? पर वहाँ तो समय ही नहीं मिलता था भाई ! तब उस बरबाद करने या बरबाद करने वालों की जुगत ही कैसे बन पाती ?"

"वहाँ जनरल पोस्ट-आफिस में ?"

"नहीं; वहाँ पी०एम०जी० के ऑफिस में मैं सुपरडण्ट था !"

"देअर यू आर ! मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं। क्या इन्हीं पी०एम०जी० मिस्टर ज्याफ्री के टाइम में थे ?"

"जी हाँ !"

"ओह, तब तो आपको उन लोगों की सभी बातें मालूम होंगी !"

"कौन-सी ?" उत्सुकता से नवनीत ने पूछा।

"यही कि उनकी लड़की का विवाह जिला कलेक्टर के लड़के के साथ हो गया है। शायद कुछ दिनों में कहीं हनी मून के लिए भी जाने वाले हैं !"

"मुझे मालूम है ! और हनी मून के लिए वे लोग यहीं पर आ रहे हैं !"

"यहीं पर ?" जैसे रेडियर ने यह बात पहली बार सुनी हो !—"ताज्जुब होता है किसी ने यह एकान्त और पुराना स्थान क्यों चुना ?—भला यह तो बताइए ठहरेंगे कहाँ वे लोग ?"

नवनीत ने एक क्षण-भर के लिए रेडियर की ओर देखा, रेडियर जैसे सम्हल गया और बोला, "माफ कीजिएगा, भावुकता में मैं भी कहाँ पहुँच गया। इन लोगों का सारा प्रबन्ध तो 'कन्फीडेन्शियल' (गुप्त) रहता होगा। बात यह है कि किटी—किट्सन रोगर्स दूल्हेराम मेरे क्लास फेलो रह चुके हैं, इसलिए उनके बारे में थोड़ा उत्साह स्वाभाविक है।"

"किट्सन के आप सहपाठी रहे हैं ! तब तो इस लड़की के भी—"

"जी हाँ, वह भी हमारी ही क्लास में थी, उसे भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तो फिर आप तो सभी बातें जानते होंगे। अच्छा, वे कहां

ठहरेंगे इसे, जाने दीजिए; पर यह तो बता सकेंगे कि वे कौनसी तारीख को यहाँ आ रहे हैं ?"

"देखता हूँ कि आप तो मित्र हैं, आपसे क्या छिपाया जाय ? यहाँ का तालाब तो आपने देखा होगा ?—उसके पश्चिम में जो गेस्ट हाउस बना हुआ है न, वहीं ये लोग ठहर रहे हैं। और आयेंगे ये लोग नेक्स्ट मन्थ (दूसरे माह) २९ तक।"

"उन्तीस को ? गुड गाड !" रेडियर ने मानो बड़ी प्रसन्नता का भाव प्रकट किया—क्या मौका है। तब तो उन लोगों से मिल सकूँगा। तब तक तो यहीं हूँ। बल्कि रहना ही पड़ेगा।"

इतना कहकर ही रेडियर उठ खड़ा हुआ। वह बड़ा चालाक है, नवनीत को अपनी इच्छा के अनुकूल गढ़ने में उसे समय लगेगा—काफी समय है भी ता० २९ तक। आशा है कि वह कृतकार्य हो जायगा। उसने नमस्ते की, और उसका समय लेने के लिए माफी माँगी !

नवनीत ने सिगरेट जलाई; देखा कि पाँच बज रहे हैं, तो अँगड़ाई लेकर आफिस बन्द करने के लिए वह भी उठ खड़ा हुआ !

× × ×

रविवार था, जब कि पोस्ट-आफिस में सिर्फ बाहर से आई हुई डाक बाँटने का ही कार्य रहता है, और शेष कार्यों के लिए छुट्टी ! अतः नवनीत ऊपर चारपाई पर लेटा हुआ कोई उपन्यास पढ़ रहा था, तभी अधरलाल पास आकर बैठ गए !

अधरलाल ने कहा, "गेस्ट हाउस को एक बार देख लेते—"

"अजी क्या देखा जाय ! जैसा काम चल रहा है, चलने दो। नौकरी है, नहीं तो इन हरामजादों को पूछता ही कौन है ?"

अधरलाल ने कहा, फिर भी अफसर हैं, अपनी जिम्मेदारी से तो अपने को बरी कर लेना चाहिए ?"

नवनीत बमक उठा, "इन ऐरों-गैरों के रहने का प्रबन्ध करने का दायित्व लेकर नौकरी की जा रही है क्या ?"

"माना कि यह राजकीय कार्य नहीं, किन्तु इसमें एक ही विभाग के कर्मचारियों की सौहार्द्र भावना का प्रश्न तो है !"

"इस सफेद चमड़ी में काली जाति के लिए सौहार्द्र भावना ! खूब कहा भाई ! साँप के पेट में अमृत की खोज कर रहे हो। तुम इस जाति को और इन लोगों को नहीं जानते अधरलाल !"

"परन्तु यह तो कोई दलील नहीं कि इसीलिए हम कर्त्तव्य-पालन से विरत होजायं !"

"कर्त्तव्य-वर्त्तव्य कुछ नहीं है यह ! यह है केवल अधिकार का अनधिकार-प्रयोग। मेरा वश चले तो—"

अधरलाल ने उत्सुकता दबाते हुए, बात काटकर कहा, "जाने दो भाई ! दीवारों के भी कान होते हैं। जमाना बुरा है, तुम नहीं जानते !"

"तुम्हीं लोगों ने इस जमाने को नपुंसक बना रखा है, आज तुम जैसे शांतिप्रिय समाज ने ही भारतवर्ष की गुलामी को सहनीय बनाकर उसकी मृत्यु के मौके कम कर दिए हैं; नहीं तो चालीस करोड़ भेड़ों को भी एक जगह वश में कर लेने की बात पर सहसा कोई विश्वास नहीं कर लेता। तुमने एक ही विभाग के कर्मचारियों के सौहार्द्र का नाम लिया न ! पर तुम तो जानते हो मैं हेड आफिस में आफिस-सुपरडण्ट था, और तनज्जुल होकर मेरे यहाँ आने का कारण सुनना चाहते हो ? इसी लड़की की प्रेम-याचना का मेरे द्वारा तिरस्कार ! यदि यह न होता, तो मैं भी आज एक बड़ा अफसर हो सकता था ! दायित्व, सौहार्द्र, कर्त्तव्य, भक्ति—कुछ नहीं, ये सब इस गुलामी के मजमून को सुरक्षित रखने के लिए तुम लोगों द्वारा लगी हुई मुहरें हैं !"

अधरलाल आश्चर्य में डूब गए। नवनीत के रहस्याच्छन्न हृदय का एक कोना प्रतिभासित-सा हुआ, किन्तु अधरलाल उन व्यक्तियों में से नहीं है, किसी के आवेश का अयुक्त-लाभ उठाकर उसके रहस्य जानने की अपनी उत्सुकता का शमन करें !

उन्होंने उसी शांति के साथ कहा—"तुम्हारा कथन ठीक है नवनीत

बाबू ! किन्तु जिस कार्य को हम एक बार स्वीकार कर लेते हैं, उसे एक बार तो पूरी तरह से सम्पन्न कर देना स्वस्थ पुरुष का आवश्यक कर्त्तव्य है। तुम्हारी व्यक्तिगत बातें क्या हैं, यह तुम्हीं जानो, तुम्हारी उत्तेजना ही कह रही है कि इस जाति की अस्वाभाविक कृतघ्नता से तुम्हारा बहुत अधिक अपकार हुआ है। कितना अच्छा हो कि जब किसी को विचारासन से अपनी सम्मति देनी हो, तो अपनी शुद्ध बुद्धि को वह इन व्यक्तिगत विकारों से मुक्त रखे !"

"प्रकृति में बड़ा विरोध है अधर बाबू ! दूध पीकर विष उगलने वाले साँप के दृष्टान्त तुम चाहे जितने प्राप्त कर सकते हो, किन्तु विष पीकर दूध उगलना —"

"वह मनुष्य ही कर सकता है, जानवर नहीं। मनुष्य के पास बुद्धि का रसायन जो है ! अच्छा, मुझे डाक बाँट आनी है, समय हो गया। गेस्ट हाउस की सफाई हो गई है, कल उसकी पुताई शुरू हो जायगी, फिर जैसा कुछ हो सके उसे फर्निश करना बाकी रह जायगा। पर फर्निश करने का काम आपका रहेगा ! हम इस दिशा में समझें ही क्या ?"

नवनीत ने लेटे-लेटे ही कहा, "सन्ध्या को आओगे भाई ? जरा घूमने चला जाय तो कैसा हो ?"

"जरूर आऊँगा !" कहकर अधरलाल चल दिए।

× × ×

दूसरे दिन, सोमवार की संध्या को ६ बजे अधरलाल नीलम के यहाँ पहुंच गए। नीलम ने बड़े आदर से उनकी अभ्यर्थना की ! कहा— "कल तो खूब राह दिखाई भैया। क्या आरती बहन—"

"नहीं नहीं, उसे क्यों दोष देती हो ? कुछ ऐसा फँसा रहता हूं कि उसके पास भी अधिक नहीं बैठ सकता। दो दिन से फिर उसका सिर का दर्द बढ़ गया है !"

"फिर बढ़ गया ?—अब बुखार तो नहीं हो जाता न ?"

"नहीं बुखार तो नहीं होता, पर कमजोरी अभी बहुत है! कुछ समय अभी लगेगा ही !"

"तो फिर कल थे कहाँ ?—मैं तो आपकी शनिवार की सभा का हाल जानने के लिए बेचैन थी। यही भी सोचा कि घर तलाश करूँ पर वहाँ तो बातचीत की नहीं जा सकेगी !"

"कल पकड़ लिया गया तुम्हारे नवनीत बाबू द्वारा !"

"अरे ! आरती की बीमारी को जानते हुए भी उन्होंने अवकाश न दिया ?—इतनी जल्दी वे भूल गए कि—"

"नहीं नीलम, आरती की बीमारी की बात तो वह जानते ही नहीं वे भी तो व्यस्त हैं ! यदि उन्हें कहता, तो वे भी खामखा चिन्तातुर हो उठते ! मैंने उनको आरती के अस्वास्थ्य की खबर ही नहीं दी है।"

"फिर ?"

"फिर क्या उनके साथ घूमने जाना पड़ा, पर बातें बहुत मालूम हुईं नीलम !"

नीलम ने उत्सुकता दबाकर कहा—"हुई होंगी, मुझे उससे क्या ! आप तो सभा की बात कीजिए ! क्या तै हुआ ? यदि आरती की बीमारी न होती, और आपका जाना अत्यावश्यक न होता, तो मैं कभी अनुपस्थित न रहती ! अपनी अनुपस्थिति मुझे तो बहुत ही खटकी !"

"खटकना चाहिए नीलम, यदि राष्ट्र को तुम-जैसी दो-चार सजग कन्याएँ प्राप्त हो जायं, तो राष्ट्र की आत्मा धन्य हो उठे !"

नीलम मुस्करा उठी, दुनिया में सभी आपका दृष्टिकोण लेकर नहीं सोचते भैया ! और कोई कारण नहीं कि उनको अपनी बुद्धि के प्रति सजग क्यों न कहा जाय !—पर हटाइए इन बातों को, आपतो कहिए, परसों क्या क्या तै हुआ ?"

"तै क्या होता ? यही कि आंग्ल-दम्पत्ति द्वारा किये हुए नृशंस कार्य का प्रतिविधान करने के रेडियर के मन्तव्य में पूर्ण औचित्य है !"

"आप भी इसी पक्ष में थे ?"

अधरलाल ने हँसकर कहा, "तुम्हारी अनुपस्थिति हम लोगों के लिए वरदान सिद्ध नहीं हुई। वणिक् पुत्र धर्मचन्द ने धर्म की दुहाई देकर इस कार्य को अन्त तक गर्हित ही ठहराया; किन्तु एकाध को छोड़-कर लगभग सभी ने उसको स्वीकार कर लिया !"

"कार्य किस तरह सम्पन्न होगा ?"

"तीन व्यक्तियों की एक योजना-समिति बनी है; रेडियर संयोजक, और दो उसके द्वारा चुने हुए उसके विश्वास के व्यक्ति धीवर टीकू, और करणसिंह !"

नीलम घबरा-सी उठी, "ये तीनों ही ? क्या ऐसे उग्र व्यक्ति पर किसी के प्राणों का भार छोड़ा जा सकता है ?"

"बड़ी सरलता से नीलम, नहीं तो उस भार को ठिकाने कौन लगाय ? एक बार जब कार्य का औचित्य स्वीकार कर लिया गया, तो जिम्मेदार सदस्य को अपने विश्वास के व्यक्ति चुनने की स्वतंत्रता दे देनी पड़ी !"

"किन्तु—"

"चौथा मैं भी इस नृशंसमण्डल में को-आप्ट किया जा रहा हूँ। मैंने तो तुम्हारे कोआप्शन के लिए प्रस्ताव भी किया था, किन्तु रेडियर को भाया नहीं। उसने कहा, और ठीक ही कहा कि, भारतवर्ष की स्त्रियाँ शर्लो नहीं हैं, नहीं तो पार्श्व में उन्हें स्थान देकर गोली मारने-जैसे अप्रिय-वीरता के कार्य का उद्यापन भी विशेष क्षोभ का विषय होता ! परन्तु जब वह बात नहीं है, तो इस माने में हमारे आर्ष मुनियों का मत, कि जिम्मेदारी के काम में स्त्री की छाया से भी दूर रहना चाहिए, कम-से-कम इस कार्य में तो सम्मान्य ही है !"

"देखती हूँ कि बहुमत का नाटक भी एक नाटक से तनिक भी ऊपर नहीं उठ सका। अभी मनुष्य की बुद्धि का इतना विकास नहीं हुआ है कि उसके ऊपर से नियंत्रण हटाकर उसके मत को ही अन्तिम मान

लिया जाय। जब तक मनुष्य उस सतह तक नहीं आ जाय, तबतक उसके ऊपर बौद्धिक तानाशाही की जरूरत तो अभी दूर नहीं हुई।"

"नवनीत की जबानी एक और बात मालूम दी है।"

"कौन-सी ?"

"रेडियर की कथा तो तुमने सुनी ही है। मालूम हुआ कि रेडियर और नवनीत में सौहार्द्र स्थापित हो गया है।"

"इन दोनों में ?—वह कैसे ?" आश्चर्य से नीलम ने पूछा।

हँसकर अधरलाल बोले, "एक ही पंख के दो पच्ची, एक ही थैली के चट्टे-बट्टे निकले, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? नवनीत की दृष्टि का पहला शिकार तुम्हीं नहीं हो नीलम, एक अंग्रेज-लड़की ने भी उसे अपने बाहुपाश में बाँधने का गौरव ग्रहण करने की इच्छा की थी, किन्तु शिला के चरणों को पछार या आघात पहुँचाकर भी लहरों को निष्फल लौट जाना पड़ता है।"

"वह अंग्रेज-लड़की—?"

"यही शर्ली है। इसी का पिता तो पी० एम० जी० है जिसके दफ्तर में नवनीत सुपरडेण्ट था; और इसीलिए उस बेचारे को यहाँ तबदील होकर आना पड़ा। और आज भी नवनीत की अनासक्ति को शर्ली माफ नहीं कर सकी।"

"तो रेडियर को यह बात कैसे मालूम हो गई ?"

"नवनीत ने कहा होगा ! जब रेडियर ने अपनी समस्त दुःख-गाथा उसे कह सुनाई, तो नवनीत अपनी आपबीती भी उसे सुना दे इसमें क्या आश्चर्य है ?—बल्कि, जब एक ही पंख के ये दो पच्ची आपस में मिल गए हैं, तो क्यों नहीं तुम भी अपने ही समान कटे हुए पंख वाली शर्ली से साठ-गाँठ कर लेती है ?"

नीलम ने अधरलाल का अन्तिम व्यंग्य मानो सुना ही नहीं; बोली, "तो अब आपने स्नेह-सम्बन्ध को प्रदर्शित कर वह नवनीत के हृदय

को जलाना चाहती है ?—परन्तु इससे क्या होगा ?—यदि नवनीत को उससे सम्बन्ध ही नहीं !"

"ठीक कहती हो, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि उसने एक गुप्त पत्र नवनीत के नाम भी भेजा है ?"

"शर्ली ने ?—यह आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"स्वयं नवनीत के मुँह से। लिखा है उसने कि वह नवनीत को अब भी उतना ही प्यार करती है, बल्कि यहाँ आने का उसका मतलब ही यह है कि वह अपने पुराने प्रेमी का दर्शन कर सके। हनी मून तो बहाना है। है न तुम्हारे शास्त्रीय प्रेम की टक्कर का प्रेम ?"

'नीलम अधरलाल के परिहास में योग न दे सकी, बोली, "और वे क्या कहते हैं इस बारे में ?"

"कहेंगे क्या ? शास्त्र का विधान अस्वीकार किया जा सकता है ?-उसके अभिसार को स्वीकार करना पड़ेगा।"

"आपने तो कहा था कि शिला के चरणों से ही लहरों को लौट जाना पड़ता है।"

"सो तो अभी भी कह रहा हूँ ! पर जब लहरें लौटती हैं, तो आना तो उन्हें पड़ता ही है न ! नहीं समझी ?—परन्तु तुम्हारी उत्सुकता—"

नीलम लज्जित हो उठी, उसके संयत कपोलों पर रक्त का फुहारा बिखर गया, परन्तु तत्क्षण ही उसने कहा—"भैया, आपके निकट अपनी दुर्बलता को मैंने कभी अस्वीकार तो नहीं किया। नयनों का लोभ उनकी सौंदर्य-लिप्सा, आँखें रहते भी कोई अन्यथा कर सकता है क्या ?"

"नयनों का सौंदर्य ही नहीं, हृदय का सौन्दर्य भी ऐसा अन्यत्र कहाँ मिलेगा नीलम ?—अब तक तो वह शर्ली से नफरत ही करता था, किन्तु जब रेडियर की जवानी उसके भीषण-काण्ड में शरीक होने का वर्णन भी उसने सुना, तो उसका पौरुष तिलमिला उठा। यह भी

मालूम हुआ कि सिनेमाघर के किसी होटल में एक अंग्रेज द्वारा अपमान पाकर भी उसकी आत्मा इन विदेशियों के प्रति रोष से भर गई है। नवनीत ने मुझसे कहा था कि, क्या करूँ, शर्लो स्त्री है, नहीं तो मिलने के लिए बुलाकर उसके इस विष-पूरित हृदय में छुरी भोंक देने से ही मुझे संतोष होता !' मैं तो ऐसे जितेन्द्रिय की प्रशंसा ही नहीं, श्रद्धा भी करता हूँ नीलम ?"

नीलम की आँखें सिक्त हो गईं, किन्तु साथ ही उसका मन भी हलका हो गया। वह बोली, "परन्तु भैया ! रेडियर तो बड़ा खूँखार व्यक्ति है। उसकी संगति में पड़कर कहीं वे अपने चरित्र की महत्ता तो नष्ट नहीं कर देगें ?"

"मैं तो नहीं सोचता। नवनीत उस धातु का नहीं कि जिधर चाहो उधर मोड़ लो। उसके द्वारा कभी कोई हीन कार्य नहीं हो सकता !"

"पानी पिओगे ?—नहीं ?—तो एक मिनिट माफ करना, मैं पी आऊँ।"

अधरलाल समझ गए कि दिल का भारीपन हट जाने से थकावट दूर करने का बहाना है।

आते ही नीलम ने पूछा, "आपकी योजना-सम्मिति की बैठक नहीं हुई ?"

"आज सवेरे ही हुई थी। तै हुआ है कि चांदनी रात में नाव की सैर के लिए उन्हें निमन्त्रित किया जाय, और नाव को डुबा दिया जाय !"

"पर इससे तो वे तैरकर निकल सकते हैं।"

"नहीं। नाव तो स्वाभाविक तौर पर डूबेगी, यानी किसी दुर्घटना से जिससे अन्य लोगों का कौतूहल नष्ट हो जाय, किन्तु शराब पिलाकर उनकी हत्या की जायगी, वेश बदले हुए टीकू और रेडियर द्वारा। पानी में किसी को मालूम भी नहीं पड़ेगा। लाशों से पानी के मगर-

मच्छों को दो जून का आहार भी जुट जायगा। पर देखो, बातचीत गुप्त रहे।"

नीलम आपादमस्तक कांप उठी, बोली, "तुमसे तो छिपा नहीं है अधर भैया, हत्या के दृश्य मेरे लिए नए नहीं हैं; न कभी किसी हत्या को मैं कभी भूल ही सकी हूँ। किन्तु अब तो युग बीत गया है उन बातों को। तब मनुष्य का केवल एक ही पहलू तो मैं जानती थी, और इसीलिए उसके नाश पर मुझे दुःख नहीं होता था। किन्तु आज तो मनुष्य के विविध रूप मेरी आँखों के सामने हैं। वह प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ विभूति है, उसकी इस प्रकार की कदर्य-समाप्ति की कल्पना-मात्र से मेरी ऊर्ध्व सांस चलने लगती है भैया।"

"देखता हूँ कि इस काण्ड के बाद ही इस संगठन का—कम-से-कम मानपुर के संगठन को या तो दूसरा रूप देना पड़ेगा, या फिर कोई दूसरा ही संघ स्थापित करना पड़ेगा। मैं भी स्वीकार करने लग गया हूँ कि इससे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है। घर चलोगी? तुमने कहा भी तो था न?—समय हुआ, आरती घर पर अकेली है। मैं सवेरे से घर नहीं गया हूँ।"

"एक मिनट बैठिए, मैं तैयार हो लेती हूं।"

(१६)

"भीतर आ सकता हूं भाभी?"

"कौन, नवनीत बाबू?—आओ न। क्या हरनाम ने इजाजत लेकर आने के लिए कहा था?"

"आत्मीयता के दरवाजे पर यदि पहरा बिठा दो तो इजाजत तो लेनी पड़ेगी।"

"हरनाम को भेजकर जो मुझसे इजाजत माँगी गई थी, वही क्या पूरी नहीं थी?"

"पराएपन में विश्वास कहां से लाया जाय! तब भी यदि फूँक फूँककर पैर न रखूँ तो?"

"बातों का मतलब लगाने के लिए हर व्यक्ति स्वतंत्र है लालाजी; बल्कि मैंने तो तभी कहा था कि मेरी भावना का दरवाजा तो सदैव ही खुला हुआ है ! इतने पराएपन के साथ आना तो थकावट पैदा करने वाला हो जाता है। अगर मेरी बात हो, तो मैं तो बल्कि नहीं जाना पसन्द करूँगी। बैठो न, खड़े कब तक रहोगे !"

एक कुर्सी खींचकर नवनीतलाल बैठते हुए बोला, "आपके प्राण-दान का ऋण है न !

"तुम्हारे प्रतिदान का अवसर पाना न मैं ही चाहता हूं, और न शायद तुम ही चाहोगे। परन्तु इस बेगार का लोभ इस युग में तुम भी पालते हो देवरजी ? सिगरेट पीना छोड़ दिया क्या ?"

"पीता तो हूं।"

"धुएँ के विश्वास को कब से सच मानने लग गए ?"

"आप बीमार हैं भाभी ! पहले पूछ लूँ कि आपकी तबियत अब कैसी है ? हो क्या गया था आपको ?"

आरती ने मुस्कराकर कहा--"मुँह से न कहते, तब भी मैं यही समझती कि लालाजी मेरी तबियत का हाल-चाल पूछने के लिए ही आए थे। और स्त्रियों को होता ही क्या है भला ? यह तो ज्यादती है तुम्हारे भैया की कि डॉक्टर को बुला लाय। और डाक्टर तो जानते ही हो तीन का तीस न बनाए तो खाए क्या। कह दिया कि टायफाइड है। बस—मगर देखो—हूं न भली चंगी ? कुछ बीमार-जैसा दीखता है क्या ?"

नवनीत ने उसके चेहरे पर कुछ देर तक दृष्टि गड़ाए रखकर कहा—"चेहरा तो आपका उतर गया है भाभी !"

"अरे, उतरेगा तो सही ! डाक्टर कह गया कि सिवा दूध के कुछ खाना मत। भला तब भी कोई चेहरा चढ़ा रह सकता है ?"

"तबियत आपकी जब पूरी तौर से ठीक हो ले तो खूब खाइयेगा। मुझे बड़ा दुःख हुआ जब सुना कि आप अस्वस्थ हैं। आपके अस्वास्थ्य का उतना नहीं जितना इस बात का कि आपने मुझे खबर देने योग्य भी

नहीं समझा ! यदि उस दिन क्रुद्ध होकर मेरे घेरे से चले आकर आप अपने अविश्वास का आभास मुझे न देतीं, तो शायद मैं बता सकता कि जितना कृतघ्न आप मुझे समझती हैं, उतना मैं नहीं हूं !"

"कैसी बात कर रहे हो लालाजी ! मैं तुम्हें कृतघ्न समझूँगी ? मैंने तो किसी को भी कभी कृतघ्न समझने की आवश्यकता ही नहीं पाई ! भगवान् ही मेरे ऊपर एक बार के सिवा कभी कुपित नहीं हुआ। तब जब पिता मुझे छोड़ जाने को विवश हुए, परन्तु तभी भगवान् ने फिर तुम्हारे भाई के रूप में आकर हाथ पकड़ लिया ! एक हिन्दू स्त्री को अपने पति के रहते कभी किसी को कृतघ्न समझने की जरूरत नहीं होती।"

नवनीत को ईर्ष्या हुई। अधरलाल किस बल पर यह राज-विभव उपभोग कर रहा है ! वह बोला—"मेरा आप अविश्वास तो नहीं करतीं ?"

"क्यों करने लगी नवनीत बाबू !—आत्मा के सत्य का वर्म व्यर्थ नहीं धारण किया जाना ! परन्तु, आखिर यह बात कह क्यों रहे हो ?" तुम तो विश्वास को मानते नहीं, कम से कम यही तो कहा था तुमने उस दिन ?"

"हर बात के लिए तो नहीं। जो मन में है उसे शायद न समझा जाए, पर जो आँखों से दीखती है, उसका तो विश्वास करना ही पड़ेगा न !"

"मेरा अविश्वास क्या तुम्हें आँखों से दीखता है ?"

"आँखों से अविश्वास तो नहीं, किन्तु आपका सौंदर्य तो देखता ही हूं, और उसकी बात करते ही तो आप क्रुद्ध हो जाती हैं।"

"यह तुम्हें किसने कहा देवरजी, स्त्री अपने सौन्दर्य की बात सुनकर कभी क्रुद्ध हुई ? किन्तु, यह सच है कि स्त्री का सौन्दर्य अग्नि का सौन्दर्य है। उससे समझ-बूझकर व्यवहार रखने ही में भलाई है।"

"स्त्रियों के सौन्दर्य को मैं जानता हूँ भाभी !"

"जानते हो ? तब तो मालूम पड़ता है, माया ही अकेली तुम्हारे आखेट का अभिशाप नहीं सह रही है ! और किसका अहेर कर चुके हो ?"

नवनीत तिलमिला उठा, पर संयम के साथ बोला, "माया का अहेर करने की भी मैंने तो कभी इच्छा नहीं की थी भाभी ! आ फँसी एक साधारण-से संयोग से, और स्वयं ही पिंजरे का मोह छोड़कर उड़ चली ! सच पूछो तो नवनीत के संकल्प का लोहा नारीत्व के किसी भी प्रयत्न से नहीं गलाया जा सका। उसे आप अहेर क्यों कहती हैं !"

'नारी की आग का तुमने अनुभव नहीं किया लालाजी ! उसे तुम नारी का सौन्दर्य मत कहो, वह तो एक प्रसाधन है, जाल है जिससे पुरुष खिलवाड़ करता है, और फँस जाता है, उससे पुरुष खिलवाड़ भी कर सकता है। किन्तु नारीत्व ,की अग्नि में संसार की सब कठोरताओं का वज्र भी गल जाता है !"

नवनीत ने मुस्कराते हुए कहा—"उस आग की थोड़ी-सी झलक आपके सौन्दर्य में है भाभी ! सचमुच ही आप को देखकर सोचना पड़ता है कि नारी में पौरुष के सिंहासन को डिगा देने की पर्याप्त शक्ति है !"

आरती स्थिर होकर लेटी रही, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। नवनीत ने आरती का मौन देखकर कहना शुरू रखा, "किन्तु स्त्री का सौन्दर्य भी तो पुरुष के आखेट के लिए भटका करता है ! जाल कहा न आपने अभी इसे ? फिर जो फँस जाता है, वह इसे क्या समझे कि वह प्रसाधान है या सौन्दर्य ! शिकार तो सदैव ही बलि होता है, चाहे सौन्दर्य की आग में, चाहे प्रसाधन और नखरों के जाल में—सच है कि सौन्दर्य की बात सुनकर स्त्री क्रुद्ध नहीं होती; किन्तु जब वह क्रुद्ध होती है, तो क्या उसे मिथ्या नहीं कहा जायगा ? और कितनी आश्चर्य की बात है कि स्त्री पुरुष से कहे कि वह आत्मा के सत्य का वर्म व्यर्थ नहीं धारण करती !"

आरती का स्वर कुछ उग्र हो गया, लेटे-ही-लेटे वह बोली—"तो माया के बाद दूसरा आखेट कदाचित्—"

नवनीत ठहाका मारते हुए बोला—"सोच रही हैं कि आपका नाम लेकर वाक्य पूरा कर दूं?—नाराज हो उठेंगी न!—और बीमार भी तो हैं आप! किन्तु भाभी, आपके इस सौन्दर्य के इन्द्रजाल को कोई अस्वीकार कैसे कर सकता है! काँच तो आप देखती ही होंगी।"

"पति की आँखों में महाशय, तुम्हारी आँखों में नहीं!"

"मेरी आँखों के काँच में यदि कभी अपनी मूर्त्ति देखेंगी तो आप को अपनी ही आँखों पर विश्वास न रहेगा, वहाँ तो सौन्दर्य की दिवाली में आप प्रतिष्ठित हैं भाभी! पर आप ही ने तो कहा था कि स्त्री सौन्दर्य की बात सुनकर क्रुद्ध नहीं होती?"

"पर याद रक्खो, हाथ रखने पर आग जला ही डालती है।"

"रखने पर ही क्यों?—न रखने पर भी जला डालती है। अभागा पुरुष हर जगह तो इसका साक्षी है।"

"परन्तु इस सौन्दर्य में भी तुम्हारी स्वीकृति पाने का प्रयत्न किया है क्या?"

"न सही भाभी! इस में क्रुद्ध होने की क्या बात है! मानता हूँ कि भिक्षा से भी झोली भर जाती है; किन्तु कुछ व्यक्ति अपने प्राप्य को सरलता से छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं होते, न वे दान की ही अपेक्षा करते हैं।"

"दस्यु-वृत्ति नहीं कहोगे उसे?—कानून इसी वृत्ति की तो चिकित्सा करता है। नहीं जानते क्या?"

"दस्यु-वृत्ति ही सही; और कानून की कँटीली-बाढ़ भी चारों ओर से घेरे हुए हो, किन्तु इस निर्विकल्प सत्य को किसने चुनौती दी है कि स्त्री का सौन्दर्य सदैव पुरुष की इच्छा पर समर्पित होता आया है।—पुरुष ने कभी अपना प्राप्य छोड़ा नहीं भाभी!"

"वैसे ही कानून भी उन्हें कभी छोड़ता हो, ऐसा नहीं देखा गया।"

"देखा गया है भाभी, देखा गया है। आखिर कानून का प्रयोग करने वाला भी होता तो पुरुष ही है। परीक्षा है यह तो। जो बिना अध्ययन के इस दिशा में आगे बढ़ता है, वह गिर जाता है। स्त्री के इस सौन्दर्य को देखने वाली आँखें चाहिएं। बाजारू भाषा में सुना जाय तो कोई ऐसी बातों को 'अदा' कहेगा। मैं पठित सभ्य हूँ, सौन्दर्य का विभ्रम कहने से आपको क्रुद्ध नहीं होना चाहिए!"

"मेरे घर आकर तुम मेरा अपमान कर रहे हो!"

"नहीं, नहीं भाभी, इतना बड़ा दोषारोपण न कीजिए। आदेश देंगी, तो उठकर चला जाऊँगा; पर मुझे मेरी प्रार्थना तो रख देने दो!"

"तुम्हारा यहाँ से चला जाना ही अच्छा है।"

"अच्छा हो सकता है; किन्तु अच्छी घटनाएं ही तो जीवन में सदैव घटा नहीं करतीं; जीवन तो विषमताओं का ही मेल है! देखिए न; अभी ही कह रहा था—जरा काँच देख लीजिये, इस रोष के कारण आपके चेहरे की दीप्ति सौ गुना बढ़ गई है भाभी! यही आग तो नारी पुरुष के बुभुक्षामय हृदय में जगा देती है।" और एक लम्बी साँस भी नवनीत की छाती को दबाकर निकल गई।

आरती ने क्रोध के मारे अपना ओठ ही काट लिया। वह सभीत दृष्टि से केवल छत की ओर देखने के अतिरिक्त कुछ न कर सकी!

कुछ क्षण चुप रहकर नवनीत ने कहा—"इस रूप का प्रयोजन ही क्या रह जायगा यदि इसने पौरुष के साथ कन्धा भिड़ाकर बादलों में इन्द्रधनुष नहीं रच दिया? जलबिन्दु के समान ही लुढ़क जाने वाले इस सौन्दर्य को नारी ने नहीं समझा हो सो बात नहीं है भाभी; अविवाहित पुरुषों के बहुतेरे उदाहरण तुम्हें मिल जायंगे, किन्तु अविवाहित स्त्रियों की संख्या तो बहुत ही विरल है; नगण्य-सी!"

"नवनीत बाबू! क्या आज तुम्हें यह भी याद दिलाना पड़ेगा कि मैं विवाहित हूँ?"

"अधरलाल की बात कह रही हो? भाभी, गंगा की शोभा का स्थान विश्व का सर्वोच्च मस्तक हिमालय ही हो सकता है—"

"मेरे पति के महत्त्व से अपने ओछेपन की तुलना करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती? चले जाओ मेरे घर से। सती के अभिशाप से तुम्हारा सत्यानाश ही जायगा।"

"हँसी आती है कि पुरुष ने स्त्री को कितनी मूर्खा बना दिया है। जिसे आप सतीत्व के नाम से पुकारकर गर्व का कारण समझती हैं, वह कितनी बड़ी विडम्बना की वस्तु है! नारी के चतुर्दिक् विकास का विरोध यह सतीत्व पुरुष के एकछत्राधिकार की शृङ्खला है, इसे आप कभी न समझेंगी। हिन्दू-समाज की रीति-नीति के इस सङ्कीर्ण सींखचे में बन्द रहकर आपने शायद यह कभी सोचने की आवश्यकता नहीं समझी कि पुरुष और स्त्री के आदान-प्रदान में जब कभी किसी प्रकार का वैषम्य उपस्थित हो गया है, तो ये शृङ्खलाएं भी उनको बद्ध न रख सकीं। पुरुष ने भी एकाधिक बार मर्यादा तोड़ी है और नारी ने भी। इतिहास तो बहुत दूर की बात होगी, किन्तु जिन पुराणों ने इन नियमों का विधान किया है, वे ही ये रहस्य बता देंगे। आपने तो पढ़े होंगे न पुराण!"

"अपनी ही बीवी को क्यों नहीं बुला लेते; न हुआ थोड़ी नाक ही कट जायगी!—वैसे नाक तुम्हारी रही ही हो, यही कैसे कहा जाय?"

"महत् के प्रति ही तो महत् की श्रद्धा होती है। इसलिए तो आपको विवाहित होते हुए भी ये बातें सुना रहा हूँ!—इसलिए तो जो बात मैं माया से नहीं कह सका, वह आपसे कह रहा हूँ। नीलम से नहीं कह सकूँगा, किसी से नहीं कह सकूँगा भाभी! इसलिए नहीं कि मेरा पौरुष अपदार्थ है, वरञ्च इसलिए कि नारीत्व की जिस सत्ता के सम्मुख मैं हूँ, वह भी उतनी ही महान् है।"

अपनी महानता का गर्व कर रहे हो अपदार्थ पुरुष! सभ्य महिलाएं तुम्हें अपने घर की ओर झाँकने भी देंगी या नहीं, यह भी कभी सोचा

है ? महानता का लक्षण तो क्या खूब है कि एक नारी की फटकार खाकर भी कुत्ते की तरह पूँछ हिलाते हुए उसके दरवाजे पर खड़े हुए हो ! – कहो तो तुम्हारी महानता का ढिंढोरा पिटवा दूं ?"

नवनीत ने कहा, "इन गालियों को मैं विभ्रम कहकर ही स्वीकार करता हूँ। किन्तु अपने मन के चोर को शह नहीं देनी चाहिए भाभी ! उससे हृदय की दीवार में सेंध लग जाती है, और उसका सम्पूर्ण स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। गालियोंके दरवाजोंसे नारी किस तरह अपने हृदय के भाव को छिपाने की चेष्टा करती है, यह मुझे न समझाओ।"

आरती लेटी हुई थी, पैंताने ओढ़ने की चादर रखी हुई थी, उसने उसको अपने ऊपर खींच लिया। दुःखावेग से उसकी आँखों में आँसू भर आए।

देखकर नवनीत ने कहा, "स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध ऐसी घृणा का सम्बन्ध नहीं है कि उस पर आँसू बहाए जायं ! परन्तु आँसू शब्द कोमलता का प्रतीक है न ?—इस आयुध को ग्रहण करके समरांगण में नारी ने अवश्य विजय प्राप्त की है।"

"अरे कृतघ्न, कम-से-कम कठिन समय में की हुई मेरी सेवा ही का ध्यान रखकर तू चल देने की कृपा कर !" आरती ने चादर के भीतर ही से सिसकते हुए कहा—

नवनीत ने उत्तर दिया, "उसी को ध्यान में रख कर ही तो आया हूँ। यदि आज सम्मुख आने से इतना डर गई हो तो, तब सेवा का बहाना करके मुझे भुलाती क्यों रहीं ? आज मेरे हृदय में प्रलय की अग्नि जलाकर खुद सतीत्व का गर्व लिये बैठी रहोगी ? मेरे जीवन को मिट्टी में मिलाकर तमाशा देखने का खूब मौका जुटाया है ! तब मुझे मरने क्यों न दिया ?—सेवा करके पुण्य कमाने की इच्छा थी तो सच-मुच ही किसी कोढ़ी के अस्पताल की शरण क्यों न ली ! और आज कहती हो, मैं चला जाऊँ ?"

"तो डूब क्यों नहीं मरते किसी तालाब में !"

"तुम साथ रहोगी ?—यह भी कर दिखाऊँगा। नहीं ?—"

नवनीत ने अपनी जेब से एक छुरी निकाल कर आरती के सम्मुख रखी, और कहा—"उठो, यह तो कर सकती हो न ! खुला हुआ है मेरा सीना; तुम्हारे प्राण-दान का प्रतिशोध हो जायगा। उठो ?—"

आरती ने छुरी को उठा लिया, नवनीत आगे बढ़ गया।

आरती ने कहा—"स्त्री की कोमलता को छलना चाहते हो ?—तुम्हारी आत्मा तुष्ट होगी, लो मैं ही अपना नाश किये लेती हूँ।"

आरती ने हाथ उठाया, किन्तु तभी नवनीत ने उठकर उसे पकड़ लिया और कहा—"अपने हृदय के अविश्वास पर इतनी शीघ्र कातर हो उठीं ?—लो मैं जाता हूँ। परन्तु सुन्दरी, तुम भूल गई कि यह शरीर तुम्हारा नहीं, अधरलाल का है, और वह इसका दावा करने के लिए अभी जीवित है।"

आरती ने कहा, छुरी फेंकते हुए—"मेरी अपेक्षा यह बात तुम्हें अधिक स्मरण रखनी चाहिए।"

"मुझे ?—अच्छा रखूँगा। किन्तु सुन्दरी, सृष्टि में जिसे अमृत कहा जाता है, उसे स्त्री कैसी अज्ञानता से छोड़ देती है, यह देखकर मुझे तो तरस आता है। एक सामाजिक विधान को मूल मानकर चलने वाली यह अंध भक्ति कब नष्ट होगी ? इस पितृसत्ताक व्यवस्था की अपनी दासता ही को ध्रुव और कल्याण समझने वाली अबोधिनी, यदि मातृसत्ताक व्यवस्था की अपनी स्वतंत्रता की तुझे कल्पना भी होती, तो मेरे इस अमृत शब्द का तथ्य तू समझ पाती। मनुष्य-जीवन का अमृत किसी समुद्र को मथकर नहीं निकाला जाता, वह तो नर और नारी के इसी समन्वय से सन्तति-प्रवाह के रूप में उत्पन्न एक सत्य वस्तु है। पर जाने दो, तुमने उसे मिथ्या कहा है। मैं जानता हूँ कि तुम मुझे माफ न करोगी, परन्तु मैंने तुम्हें कष्ट में नहीं डालना चाहा है, शर्म में चाहे डालना चाहा हो। अभी तुम इसे नहीं समझोगी, किंतु जब मैं यहाँ से निष्फल आशा की शिला से टकराए अपने कठोर हृदय

के टुकड़े लेकर यहाँ से चला जाऊँ, तो अपने हृदय पर हाथ रखकर पूछना कि किसने वस्तुतः किसको कष्ट में डालने का प्रयत्न किया है।"

नवनीत जाने के लिए दरवाजे की ओर बढ़ा, कहते-कहते—"स्वस्थ होओ आरती, यह अन्तिम भेंट भी आज समाप्त हो रही है, अब इस देहली का दर्शन मुझे न होगा। परन्तु एक बात है, आज से तुम्हारा मेरे ऊपर कोई एहसान न रहा। जिस स्थान पर एक दिन मेरे टूटे हुए शरीर के रक्तकण एक होकर संचरित हुए थे, आज वहीं पर रक्त संस्थान का केन्द्र अपना हृदय चूर-चूर करके जा रहा हूँ। मेरे मरुस्थल में केवल तुम्हारे सौंदर्य की मरीचिका झलकी थी, परन्तु आज वह झलक भी बुझ गई। इस तप्त मरुस्थल का भार अपनी छाती पर उठाकर मैंने अब तक खिलवाड़ किया है; तो अब भी मैं अपनी ही आग से घबराए हुए धूमकेतु-सा फिरता रहूँगा सुन्दरी! माया के जीवन की निष्कृति को आज तुमने पूरा कर दिया।"

नवनीत घर के बाहर निकल गया। किवाड़ की आवाज सुनकर आरती ने आँखें खोलीं।—उसकी आँखों के सामने एक सोने का संसार मिट्टी में मिल गया। वह नवनीत को खूब पहचानती थी!

कितना अच्छा होता कि वह अपने ही शरीर का नाश कर पाती! अवश्य ही ये प्राण उसकी सम्पत्ति नहीं हैं। किन्तु आखिर इतना दुस्सह दुःख भी कभी क्या उठाया जा सकता है?—तकिए के निस्पन्द हृदय पर कितने आँसू उसने व्यर्थ कर दिए, यह कौन कह सकता है!

नवनीत घर से बाहर निकला, सचमुच ही निष्फल-आशा की शिला से टकराए हुए अपने हृदय के टुकड़े लेकर। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया, वह अँधेरा जिसमें मृत्यु की महान् विभीषिका छिपी पड़ी रहती है, जो जीवन के क्षण-जीवी प्रकाश का आवरण भेदकर सौम्य-स्थिरता का गंभीर रूप सामने कर देती है, जहाँ न स्पन्दन है, न गति है; जहाँ प्रकृति की सम्पूर्णता का निषेध यह मानव-तत्व ही जड़ होकर पुञ्जीभूत हो गया।

नवनीत का व्यक्तित्व शेष समूह से कई बातों में भिन्न है। वस्तुतः उसका हृदय सम्पन्न है, अतः किसी दूसरे हृदय के निकट सामान्यतः वह किसी बात के लिए उपयाचक नहीं होता। पुरुषों द्वारा प्रभावित होने की बात जाने दी जाए, साधारणतया नारी का प्रभाव भी, जो कि नवनीत जैसे पौरुष-सम्पन्न व्यक्ति के लिए बहुत अधिक महत्त्वशील है, उसके लिए अपरिचित रहा है। माया और नीलम स्त्री जाति में कम महत्त्व की व्यक्तियाँ नहीं, किन्तु नवनीत के सम्पन्न-हृदय का हिमालय, बादलों की वर्षा या विद्युत के वज्र-निपात से बहुत परे है; वह सम्पूर्ण पृथिवी के जड़ और चैतन्य जगत में अपना मस्तक बड़े गर्व के साथ ऊपर रख सकता है और रखता है। माया और नीलम के स्निग्ध-प्रश्वास उसकी पद भूमि की कठोर शिलाओं पर ही मूर्छित होजाएँ तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ?

परन्तु महत्व के इस विशाल काय रूप को जिस भूकंप की लहरें विशीर्ण कर सकती हैं, वे पृथिवी ही के गम्भीर उदर में उड़ती हैं ! महत्व के इस स्तूप का नीचे गिर जाना या टूट जाना भी साधारण घटना नहीं; उसका नाश भी उतना ही बड़ा है, और गिरे हुए हिमालय को उठाने की शक्ति ही किसमें है ?

नवनीत के महत्व का हिमालय भी आज आरती के हृदय में उठी हुई भूकंप की लहर से धराशाई हो गया। नवनीत न जाने किस विद्युत शक्ति से अपने देह-यंत्र को आगे चला रहा था, उसके परम-पौरुष का उस पर कोई वश नहीं था। पैरों की चेतना स्वतंत्र होकर कार्य कर रही थी, बस्ती के उत्तरी छोर पर वह कैसे पहुँच गया, स्वयम् नहीं जानता। बस्ती की शेष-सीमा में खेतों की पंक्ति खड़ी थी, उसी के हृदय के समान शून्य; केवल कुछ पशु, उसके हृदय का अधिकार जमाने वाली पाशव-वृत्ति के समान ही, दिन की डूबती हुई स्वर्णाशा में घर लौटते हुए, उन खेतों में धान का शेष-कण खोजने का निष्फल-प्रयास कर रहे थे।

आगे बढ़ने की राह विशद न थी। बाएँ हाथ के खेत की सीमा में एक कुआँ भी था, जिसकी जगत बँधी हुई थी। शायद यह भी इस बस्ती का एक वैसा ही पनघट था। नवनीत के पैर स्वतः ही उधर मुड़ गए; जगत पर कोई न था, उसी के एक छोर पर वह बैठ गया। पैर उसने कुए में लटका दिए।

कुए की जगत अच्छी है, प्रयोग में भी आती है, पत्थरों के सभी सिरों पर रस्सी के घर्षण का चिह्न बना हुआ है। घर्षण के ये चिन्ह कम महत्व के नहीं हैं। बोपदेव के जीवन को पलट देने वाले इन चिन्हों में इस गम्भीर कूप का ही स[illegible]स नहीं छिपा, बल्कि गांव के इस अँचल की रमणियों के समस्त आमोद-प्रमोद, पुंजीभूत आशा-निराशाएँ, उनसे सम्मिलित हृदयों का अमृतत विष सभी भरा हुआ है। किन्तु मूर्ख बोपदेव को महान् विद्वान् बना देने वाले ये रज्जु के उत्कीर्ण-लेख नवनीत के चैतन्य-हृदय को अबोध ही बनाए रहे।

देखकर, नवनीत से अपने वश के छूटे हुए मस्तिष्क में एक और पनघट की स्मृति लौट आई। मानपुर के अपने प्रथम-प्रवेश को स्मृति में उस पनघट का इन्द्रजाल आज भी धुँधला नहीं हुआ है। आरती की उस दिन की रूपच्छटा में आज भी उसी यौवन के भोलेपन का उन्माद है, किन्तु क्या उसी उन्माद के पीछे नवनीत का हृदय पागल हुआ था? नहीं; आशीर्वाद की उसकी अशेष ममता, जिसके विशाल स्नेहमय आँचल के नीचे मानव का महानतम पौरुष भी आश्रय पा सकता है, जिसकी करुणा की कुछ चिन्ता-सरिताएँ ही समस्त-भूमि को आप्लावित कर सकती हैं, उसी ममता ने नवनीत को लुब्ध किया है! पनघट की उस शोख लड़की ने अपनी डोल कुए में गिरा दी थी; निकली या नहीं, यह वही जाने; किन्तु अपनी मन्द मुस्कान में भरकर नवनीत के मन को उसने किस अँधेरे कुए में डाल दिया, उसे स्वयम् नवनीत नहीं जानता!

धीरे-धीरे नवनीत को मालूम होने लगा कि वह इसी दुनियाँ में है;

संध्या घिर गई है, अंधेरा फैल रहा है, ठण्डी हवा चल रही है, और वह एक कुए की जगत पर पैर लटकाए हुए बैठा है—पैर लटकाए हुए—? यदि थोड़ा भी नहीं संभला, तो दम से कुए के भीतर; पास—पड़ोस में कोई दीखता भी नहीं जो उसे गिरते हुए देख ले ।

"धत्तेरे की !" अचानक ही अपनी दुर्दशा का स्मरण कर उसके मुँह से निकल गया । किन्तु तभी उसने अपने पैर भी ऊँचे समेट लिए । हायरी दुराशा !

कुए में गिर पड़ता । कोई निकालने वाला मिलता ही कहाँ से ? यही लाश सवेरे फूल कर पानी पर तैरने लग जाती—शव की सड़ाँध ही सब को पता बता देती ! अरे अभागे तू तो मरता ही, इस पनघट का पानी भी अपवित्र कर जाता । गांव के इस आंचल की जनता तुझे कितना कोसती ? आत्महत्या की सस्ती-सी चादर ओढ़कर यह गौरव पूर्ण स्थूल देह फूक दी जाती ! और क्या आरती नहीं सुनती यह सम्वाद ? नहीं समझती वह, कि हृदय के पश्चात्ताप की खाई में आप ही गिरकर, उसने अपने किए हुए पाप की क्षमा मांगी है ?

किए हुए पाप की क्षमा मांगेगा नवनीत, और आरती से ?—अब भी यह दम्भ ?

पाप ? नवनीत ने क्या कभी पाप को सोचा है ? नवनीत के महत्व की मर्यादा क्या अभी क्षीण है कि उसमें विश्व के जन-साधारण की समस्या, पाप का वेश धारण करके उसकी समस्या बन जाएगी ? जो कि चिरकाल से पौरुष का प्राप्य और भोग्य रहती आई है, उसे प्राप्त करने की चेष्टा को नवनीत भी पाप समझेगा ? क्या नवनीत का अनुभूति-क्षेत्र इतना क्षुद्र है ? और नवनीत के प्रायश्चित्त का खयाल कर वह नारी अपने दुरतिक्रम्य-सतीत्व की महिमा गाती फिरे ? अच्छा हुआ नवनीत, कि तू कुए में नहीं गिरा । मर्त्य-शरीर की सम्भावित सड़ांध ही तूने नहीं बचाली, प्रत्युत अपने अमर यश:शरीर को भी कलुषित होने से तूने बचा लिया !

नवनीत ने सिगरेट निकाली और उसे जला लिया, वह जगत पर और थोड़ा पीछे हट गया—और अधिक सुरक्षित होगया !

बच गया, परन्तु शेष क्या पाकर ? एक टूटा हुआ हृदय, एक उजड़ा हुआ भविष्य, एक कुचली हुई आशा ! इनको लेकर जीवित रहा जा सकता है क्या ? नारी, पौरुष का चिर भोग्य है, किन्तु भोग्य मान लेने मात्र से तो भूख की समस्या हल नहीं हो जाती !

दुनियाँ का दस्तूर भी अजीब है। संयम, सदाचार, सतीत्व—तमाम कानून बने पड़े हैं, जिनके विकृत सांचों से मनुष्यता की पहचान की जाती है। इन लादे हुए उपसर्गों को यदि कोई हटा पाता है, तो व्यभिचारी, कामुक आदि विशेषणों में से गालियां देकर उस पर थूँका जाता है।—इस व्यवस्था में एक व्यभिचारी, कामुक का कलंक लेकर जीवित रहेगा नवनीत ? कुआ, इच्छा-मृत्यु के वरदान की भांति, मानों अपने असीम-हृदय का दरवाजा खोले उसके पैरों के नीचे है। केवल एक क्षण लगेगा; सीढ़ियां नहीं, पास कोई मनुष्य नही—नीरवता के साम्राज्य में ऐसी शांत और शीतल मृत्यु बहुतेरों के भाग्य में शायद लिखी हुई नहीं होती। प्रातःकाल ही अधरलाल की तीव्र भर्त्सना उसे सुनाई देगी; सम्भवतः इस क्षुद्र मानपुर का समवेत अभिमान इस हतभागे के ऊपर टूट पड़ेगा, लज्जा से उसकी आँखें तक ऊपर नहीं उठ सकेंगी। परन्तु—

सामने ही धुएँ से काली पड़ी हुई हँडिया की एक लालटेन के प्रकाश में एक दूकान चल रही है। दूकानदार के सामने एक टूटे हुए देवदार के डेस्क पर तीन चार बोतलें रखी हुई हैं। सामने ही एक बेंच पड़ी हुई है, जो खाली है। दूकान के भीतर जरा सी नाम मात्र की आड़ में एक और टूटी-सी बेंच पड़ी हुई है, जिस पर बैठे दो तीन ग्राहक मिट्टी के कुल्लड़ से अपनी प्यास बुझा रहे हैं, और दुनियां के मसलों पर बड़ी ही गरमा-गरम बहस कर रहे हैं।

नवनीत ने देखा कि ग्राहकों के बदन पर जो कपड़ा है, वह बहुत

ही मैला और उससे भी अधिक फटा हुआ—सुई-धागे की पहुँचसे बहुत दूर,—एक आदमी तो लगभग नग्न ही है, केवल दो हाथ लम्बी एक चिथड़े की पट्टी लपेटे है; किन्तु उनकी बहस का कोई भी भाग इस दारिद्र्य के प्रभाव से ठण्डा पड़ गया नहीं मालूम देता।

दैत्य की इस भीषण अवस्था का दायित्व, इन्हीं समाज की नाक कहलाने वालों के ऊपर है—ठीक नाक के नीचे भरे हुए पुरीष-पुंज की तरह वह किसी को दिखाई ही नहीं देता! मानव की उन क्षुद्र दुर्बलताओं के कौड़ियों के व्यवसाय पर— जिन्हें दुर्बलताएँ क्यों कहा जाए, जबकि वे उसकी नितान्त आवश्यकताएँ हैं—उन्होंने सदाचार, संयम, सतीत्व आदि की गृद्ध-दृष्टि जमा रक्खी है, किन्तु सम्पूर्ण मानवती की मुहरों के इस नाश पर वे कान तक देना नहीं चाहते। निष्क्रिय आलस्य में पड़े हुए शतरंज खेलते-खेलते वे इस दुनियाँ को भी एक शतरंज समझ लेते हैं, और सोचते हैं कि प्यादे से लगाकर राजा तक उनके अँगुली-निर्देश का मुहताज है। काश! यह मनुष्य भी शतरंज का निर्जीव मुहरा ही होता! तब दारिद्र्य के कोड़े खाकर भी मदिरा पीने के उत्सव में अपनी शेष कमाई खो देने के लिए प्रकृति सर्वश्रेष्ठ विभूति का यह प्रतीक, इस तरह कुत्ता न बन जाता!

शराब के ये मुट्ठीभर पैसे बच भी जाते, तो क्या उससे पाँच गज की धोती मुहय्या हो जाती?— और पाँच गज की धोती ही का सवाल है क्या? उसकी जोरू क्या इसी तरह अर्द्धनग्न न होगी? उसके बच्चे क्या वस्त्र के अभाव में ग्रस्त न होंगे? क्या उसका और उसके कुटुम्ब का पेट इसी तरह दाने-दाने को तरसता न होगा? इन आठ-दस पैसों से मान लीजिए उसके पेट का गड्ढा भर ही जाता, किन्तु अपनी पत्नी का हाहाकार के शून्य से खोखला उदर, अन्य प्राणियों की नग्न प्राय देह, अपनी असामर्थ्य का भीषण चित्र, भाग्य-देवता का निष्ठुरतम अन्ध परिहास—इस बहुमुखी अभाव के ये भयानक पिशाच क्या उसे स्वस्थ छोड़ सकते थे? इस एक चुल्लू ने

उन तमाम अभावों पर विजय प्राप्त करली है—अब वह निर्विकार चित्त से अपनी पत्नी की नग्न-लज्जा को मनोरंजन के साथ देख सकता है, भूख से तड़पते हुए कंकाल-सार बच्चों के श्रांत-आँसुओं में, अपने निष्ठुर ओठों की हँसी मिलाकर इन्द्र-धनुष देख सकता है, और इन अघाए हुए अति-तृप्त निर्दय-समाज के मुंह पर आनन्दातिरेक से थूँक सकता है ! तब फिर बच्चे के पेट काटने का सवाल ही क्या ? क्या यह शराब की बचत किसी के पेट को कटने से बचा सकती है ? नहीं नहीं; यह शराब उसकी समस्त लज्जा को, उसकी अनन्त अक्षमता को, उसके असमाप्य मनस्ताप को नष्ट कर देने वाली एक मात्र वस्तु है। इस जीवन को घोट देने वाली सामाजिक अवस्था के भीतर भी, भीषण दैत्य के मृत्युमय हाहाकार में भी, इसी अमृत को पीकर वह जीवित है। जो उसे इस शेष-प्रयत्न से छुड़ा देगा वह क्या पाएगा, सिवा इस चेतना शील अस्थिपंजर की मृत्युमय निर्व्याज शांति के ?

नवनीत ने देखा कि दोनों ग्राहकों ने अपना अन्तिम कुल्लड़ समाप्त कर लिया। दोनों ही घर चलने के लिए उठे, दोनों के पैर लड़खड़ा रहे थे। जिस शक्ति के द्वारा उन्होंने इस सम्पूर्ण संचित मानवीय सभ्यता को चुनौती दी है, उसका भार साधारण नहीं होता, कि वे सरल सामान्य गति से चलफिर सकें।

दूकान से उतरते ही एक व्यक्ति धक्का खाकर नीचे गिर पड़ा। दूसरे साथी ने उसकी राह न देखी; उसने कहा, "खूब तकदीर है भाई ! जहां जी चाहे, राजा का जमाई बन कर सो सकता है। एक मैं हूं कि जिसके बाप का जमाई हूँ, वह भी दरवाजा नहीं खोलेगी।" और आगे की राह ली।

अंधेरे में गिरी हुई लाश को देखकर सूंघता हुआ एक कुत्ता पास आया, तो उसने अपने क्षीण हाथों को धीरे से हिलाते हुए कहा, "अरे भाई, पहरा ही देना है, तो दरवाजे पर बैठ कर दे न ! राजा का जमाई बनना भी क्या आफत है, पहरेदार भी ठीक तरह से नहीं सोने देता !"

किन्तु अंधेरे के कारण, और दूरी की वजह से नवनीत न तो यह सब कुछ देख ही सका, न सुन ही। केवल वितृष्णा से वह कभी-कभी उस दूकान की ओर देख जरूर लेता था।

तब तक काफी समय बीत चुका था। खेतों के उस पार सियारों के चिल्लाने के स्वर सुनाई दे रहे थे, और इधर शहर की ओर से किसी-किसी गली से कोई मनचला कुत्ता उनकी ललकार का नितान्त उपेक्षा से जवाब दे देता था। किन्तु नवनीत ने उठकर घर लौट चलने का कोई उपक्रम नहीं किया!

उसने कोई अपराध नहीं किया, उसने कोई अनैसर्गिक बात नहीं की, किन्तु फिर भी कल का प्रातःकाल उसके लिए साधारण शांति का प्रातःकाल न रहेगा। अधरलाल रोष प्रदीप्त चेहरा लेकर आएगा, समाज की व्यवस्था के नाम पर उसे डाकू, लुटेरा, इन्द्रियदास आदि न जाने किन किन शब्दों में याद करेगा, और नवनीत सिवा सुन लेने के और क्या करेगा? क्या कहेगा कि वह जोर-जोर से बोलकर भीड़ इकट्ठा न करे? क्या कहेगा वह कि उससे अपराध हुआ है, और वह क्षमा कर दिया जाए?—वह कहेगा कि अब भविष्य में उससे ऐसी गलती न होगी, और वह अपदार्थ पोस्टमैन अपनी जवान पत्नी के सौंदर्य का अभिमान लेकर उसे धिक्कारता रहेगा!—कैसे लौट चले नवनीत अपने उस घर में?

यदि आज का दिन उसके जीवन के इतिहास में से कोई निकाल दे! क्या आज के दिन के इस खाते पर लाल स्याही नहीं फेरी जा सकती? यदि यह सम्भव हो, तो लाल स्याही के लिए वह अपने प्राणों का रक्त दे सकता है! क्या कोई भी इस घटना को स्वप्न की भ्रांति नहीं दे सकता, अन्यथा नहीं कर सकता?

क्या पता; यदि दुष्टा माया उस दिन इसे इस तरह मँझधार में एकाकी निराधार छोड़कर न जाती, तो उसकी नाव इस शिला से क्यों टकराती! पति-पत्नियों का झगड़ा, कोई झगड़ा है? अधिकार क्या माँगने से मिल

जाता है ?—नवनीत पर उसका अपना ही अधिकार न था, वह उसे माया को कहाँ से दे देता ? क्यों न उसने स्वयम् ही नवनीत को स्वायत्त कर लिया ?--अब भी—पर अब है ही क्या ? प्रति-दिन वह दूर होती जा रही है। जीवन की संध्या का सूर्य अस्त हो गया, असंख्यों ताराओं के उदय से भी अब क्या हो सकता है ?

नवनीत ने देखा कि सामने की दूकान का ठाठ उठ रहा है। बोतलें और डैस्क वह पहले ही भीतर रख चुका था, नीचे पड़ा हुआ बेंच उठाया जा रहा था। एक मिनिट लगेगा, फिर कंदील भीतर लेकर किवाड़ लगा लेगा, उसका सवेरा वैसा ही निर्द्वन्द्व, निरीह होगा, इसका उसे विश्वास है। वह चैन की नींद सोएगा।

नवनीत ने एक लम्बी साँस ली। अलक्ष्य में उसे एक आदेश-सा मालूम हुआ, वह उठा, और उस दूकान की ओर चल पड़ा। दूकान का दरवाजा बाजू में नहीं खुलता था, वह खुलता था ऊपर की ओर; एक बाँस खड़ा करके उसको ऊपर रोक दिया जाता था, दिन को दूकान के बाहर भी कुछ दूर तक उससे छत का काम मिल जाता था। नवनीत जब दूकान पर पहुँचा, तो दूकानदार उस बांस को समेटने की कोशिश कर रहा था। नवनीत को देखकर वह रुक गया।

"बहुत बढ़िया शराब है ?"

"है सरकार !" दूकानदार ने नवनीतलाल को पहचान लिया। कस्बे में पोस्ट-मास्टर को सभी कोई जानते हैं !

"कितनी देर में नशा आजाएगा ?"

"सरकार, यह तो पीनेवाले के ऊपर है !"

"यदि कोई बिलकुल नया शुरू करे ?"

"एक पेग का नशा पन्द्रह मिनिट बाद, या ज्यादा से ज्यादा आध घण्टा बाद।"

"और दो पेग का ?"

"अगर एक साथ पीले, तो पांच मिनिट बाद ही समझिए ?"

"अच्छा तो जल्दी से दो पेग दे दो। क्या दाम होंगे ?"

नवनीत ने दाम गिन दिए। एक दूसरी लम्बी साँस छोड़कर (मानो इस तरह उसने अपने पेट में जगह कर ली) वह एक साथ ही दोनों पेग गटक गया। कड़वाहट तथा तुर्शी के कारण उसके कपाल की नसें तक फटने को होगईं, किन्तु उसके साहस ने जवाब नहीं दिया। बिना कुछ कहे सुने नवनीत बस्ती की ओर चल दिया।

शराब की गरमी गले के नीचे उतरते ही दिमाग में चढ़ गई। मस्तिष्क के सेल सुस्त पड़ने लग गए, स्मृति की रेखाएँ धुँधली पड़ती गईं। किन्तु सेलों के कुछ संस्थान चंचल हो उठे, उसी तरह जिस तरह वृश्चिक-दंशन से कोई बन्दर चंचल हो उठता है! अतः मस्तिष्क की जो धारा गतिशील हो उठती, वह परिस्थितियों के बदल जाने पर भी चलती ही रहती।

नवनीत सोच रहा था, "आरती स्त्री-समाज का रत्न है, और नवनीतलाल पुरुष-समाज का। दोनों की एक-दूसरे को समर्पण की चेष्टा को कौन मूर्ख अवैध कह सकता है? ज्ञान के इस युग में भी जो इस तरह का कुतर्क करता है, उसका सर कुचल देना चाहिए, तभी समाज का कल्याण हो सकता है। यदि कोई उसका सर न कुचलेगा तो मैं कुचलूँगा, मैं!"

एक पान की दूकान बन्द हो रही थी, दूकानदार ने पोस्ट-मास्टर को आते देखकर कहा, "पोस्ट-मास्टर साहब, नमस्ते आज तो बहुत देर हो गई ?"

पोस्ट मास्टर के कानों ने सुना कि उसे टोका गया है, किन्तु मस्तिष्क उसका सोच रहा था वही आरती की प्राप्ति की बात, अतः पान वाले की बात के उत्तर में उसके मुँह से निकला, "यदि वह मनुष्य तुम्हारी ओर मुँह बाए हुए दौड़े—

दूकानदार घबराया। पोस्ट-मास्टर साहिब बड़ी गंभीर प्रकृति के मनुष्य हैं। उसने डर कर कहा—"मैंने आपसे नमस्ते की—"

नवनीत को चरित्र एक दम्भी मनुष्य के समान है। अशोक

नवनीत के सुप्तवान सेल में एक ठोकर लगी, झट उन्हें याद आया कि वह शराब पीकर आ रहा है, ऐसा न हो कि कहीं यह बात प्रकट हो जाए, किन्तु तभी वह सेल फिर सुप्तप्राय होने लगा। नवनीत ने चेष्टा की, चेतना और अचेतना के इस सन्धिस्थल पर उसने हँसकर कहा, "अरे भाई, पान की कह रहा हूं। अगर कोई मनुष्य मुंह बाए तुम्हारी ओर दौड़े तो क्या उसे पान भी न दोगे?"

दूकानदार ने कहा, "दूकान लगाई ही इसलिये है बाबूजी! दूँ एक पान?"

नवनीतलाल पान नहीं खाया करता था, किन्तु जब उसने कोई उत्तर नहीं दिया, तो दूकानदार ने एक पान बनाकर उसके हाथ में थमा दिया। दूकानदार ने देखा कि पोस्ट-मास्टर साहिब की आंखें लाल सुर्ख़ हो रही हैं। न जाने वे क्रोध की हैं या, वह दूर हट गया।

नवनीत जोर से अट्टहास करता हुआ बोला, "इस पान में आँखों ही का रंग है न? सुना है न 'मद भरे तोरे नैन!' और हम कहते हैं 'मद भरा तोरा पान!" उसने फिर अट्टहास किया, और वह आगे बढ़ गया। पान के पैसे देने की बात ही उसे याद न रही, दूकानदार को कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ।

कुछ ही देर बाद नवनीत का घर और आफिस आया, और निकल गया। अँधेरा था, हरनाम ऊपर सो रहा होगा। वह जानता है, नवनीत जब कभी देर से आता है, तो साँकल बजा कर उसे जगा लेता है, और वह दरवाजा खोल देता है। आज भी वह भीतर से सांकल बन्द कर ऊपर सो रहा है, उसके नाक की आवाज नीचे भी सुनाई दे रही है।

किन्तु नवनीत के पैर अपने आप चल रहे हैं। वह सेल जिसमें घर की स्मृति भरी हुई है, शायद टाँग फैला कर हरनाम के समान ही खर्राटे ले रहा है; अतः नवनीत चलता गया,—घर पीछे छूट गया, बाजार में कोई न था, अतः नवनीत अपनी ही अशांति की चंचल सवारी पर

आरूढ़ मानपुर की गलियों में अशोक चक्कर लगाने लगा—एक किसी पहली रात के समान ही जब कि नीलम से उसका परिचय हुआ था।

इस शांत वातावरण में उसके सोए हुए सेलों में फिर एक ठेस लगी जब कि कानों की राह संगीत के स्वर उसके मस्तिष्क में प्रविष्ट हुए। वह खड़ा रह गया, एक नई रेखा उसकी स्मृति में स्पष्ट हो उठी—

"ओह, वही गाने वाली नीलम है; नीलम है जो नवनीत पर मरती थी। नवनीत पर मरती थी?—नहीं नहीं, मुझ पर मरती थी, मुझ पर! नवनीत पर तो मैं मरता हूँ मैं! वाह, खूब हो दोस्त! नवनीत पर कब से मरने लग गए? अरे, वह तो खुद ही मर गया!"

इसी तरह बड़बड़ाते वह नीलम के घर के दरवाजे पर पहुँच गया। संगीत के स्वर तब भी बराबर मचल रहे थे, किन्तु आज कोई गजल न थी, किसी नए वैष्णव कवि का एक गीत था अपने प्रियतम के प्रति अपनी आत्म-वृत्ति के उपसर्जन का!

नवनीत ने कहा—"गाने वाली! हम पर मरती हो न! हऽऽ तुम हम पर मरती हो, और हम तुम पर जीते हैं। ठीक है? अच्छा, किवाड़ खोलो, ओ गाने वाली!"

आवाज ठीक तौर से ऊपर नहीं पहुँची, गाना चलता रहा।

"धत्तेरे की; बोलती भी नहीं? ऊहूँ; बोलती तो है; अगर बोलती न होती तो गाती कैसे!—सुनती नहीं सुनती; अरी नीलम!" नवनीत आवाज देकर नीचे बैठ गया। सहज-संस्कार से ही मानो उसके हाथ उसकी जेब में पहुँच गए। सिगरेट निकाल कर उसने उसे जलाली!

"नीलम; बोलती है, पर सुनती नहीं; सुनती नहीं, पर बोलती है! भई वाह! क्या खूब बला है; बोलती है, पर सुनती नहीं। सुराहीदार गला है, पर गधेदार लम्बे कान नहीं। ठीक है न? खूब हो जी नीलम बाई!"

तभी गाना सम पर आगया था। नवनीत के अन्तिम शब्द नीलम के कानों पर जा लगे, उसने शीघ्र ही गाना बन्द कर दिया!

"अरे, अब तो बोलती भी नहीं। छुट्टी हुई, बोलती नहीं और सुनती भी नहीं। तो फिर लेट ही क्यों न जाया जाए ! कैसे बेहूदा आदमी हैं, एक बिछौना बिछाए रखने तक की नहीं सोच सके। पर नहीं जानती तुम नीलम देवी, कि हम भी 'तेरे दर पे धूनी रमा के' बैठेंगे ही नहीं, लेट भी जाएँगे !"

नवनीत लेट गया। तभी दरवाजा खुला; एक साफ कन्दील का शुभ्र प्रकाश एक दम नवनीत की आँखों से जा टकराया।

लेटे लेटे ही वह बोला, "चीअरो नीलम ! तब तो तुम सुनती भी हो ! भई, पहले यह बताओ कि बोलती भी हो या नहीं ?" उसके बाद ही उसने सिगरेट का एक गहरा कश भी खींच लिया।

नीलम आश्चर्य में डूब गई। नवनीत, और इस अवस्था में !

किन्तु जब नीलम ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया, तो नवनीत ने कहा, "माफ किया; पर आयन्दा यदि जल्दी ही दरवाजा खोलने का इरादा न हो तो दरवाजे पर एक बिस्तर की व्यवस्था हो ही जानी चाहिए।"—परन्तु तब भी वह उठा नहीं, लेटा ही रहा।

"आप लेटे क्यों हैं ? क्या आपकी तबियत ठीक नहीं है ?"

"कौन कहता है कि ठीक नहीं है ? तबियत तो आखिर तबियत ही है, वह कैसे खराब हो सकती है ?"

"फिर आप लेट क्यों गए ?"

"लेट गया ? अँ ? तभी तो कह रहा था कि एक बिस्तर जरूर बिछा देना चाहिए। खैर, कोई चिन्ता नहीं, तुम अब भी बिस्तर ले आओ। न होगा, मैं उठ कर फिर लेट जाऊँगा।"

"पर यहाँ क्यों लेटते हैं ? ऊपर चलिए न ! आज आप को क्या हो गया है ?"

"ठीक तो है। यहाँ क्यों लेटता हूँ। चलो ऊपर ही चलें ! नीलम, हाथ पकड़ लो थोड़ा; दुनियाँ के अँधेरे में ऊपर की राह अकेले तै नहीं

की जा सकती !" नीलम ने हाथ बढ़ाया, जरा शक्ति लगा कर नवनीत बैठ गया, फिर खड़ा भी हो गया।

नीलम के हाथ को पकड़ते हुए वह बोला, "इन कोमल हाथों पर कहाँ तक भरोसा किया जा सकता है ! जीवन का बोझ, दुरारोह चढ़ाई और मुक्त बाधाएँ—गिरा तो न दोगी नीलम, सम्हाले रह सकोगी ?"

नीलम की नाक में नवनीत के प्रश्वास ने बता दिया कि आज वह नशा किए हुए है ? उसकी लाल रंग की चौपट आँखें भी। यही कह रही हैं, यहाँ तक कि उसके पैर तक सीधे नहीं पड़ रहे हैं ! आखिर नवनीत ने आज यह कर क्या डाला ! उसने पहले तो कभी नवनीत के शराब पीने की बात सुनी नहीं।

ऊपर चढ़ते ही इधर-उधर देख कर नवनीत ने कहा—"मकान तो सजा हुआ है सुन्दरी !—सजी हुई तुम भी तो हो, अगर इतने ज्वलन्त रूपकी चिनगारी से किसी को अपना शरीर स्पर्श न करने दो ?—कोई चिन्ता नहीं; पैसे तो हैं। सुन्दरी, एक इसी तरह का 'सजा हुआ गाना नहीं दे सकती ?"

नीलम ने व्यस्त होकर दुहरा दिया, "गाना ?"

लड़खड़ाते हुए स्वरों में नवनीत हँस उठा, "गाना ही तो ! वीणा, सितार, मृदंग सभी तो रखे हैं। जितना मांगोगी, मिलेगा; न होगा तो घर से भी मंगा लूँगा—पर गाना जरूर बढ़िया होना चाहिए। मुक्त-हस्त पैसा लुटा दूँ न ?—तुम मुक्त-कण्ठ गाना सुना दो। देख क्या रही हो ?"

"देख रही हूँ कि आज तो आपका व्यवहार बिलकुल अप्रत्याशित है, आपको पहले तो कभी इस तरह आपे से बाहर होते नहीं देखा।"

"तो आज देख लो ! आज शरीर घर से बाहर है, और क्या कहा ? मैं खुद आपे से बाहर हूँ। और जब तुम गाना गाओ नीलम, तो स्वर-लहरी की रेलगाड़ी पर बैठकर तुम भी आपे से बाहर हो जाना ! आपे से बाहर हो जाना—अरे पगली, जब तक मनुष्य आपे से बाहर नहीं हो

जाता, तब तक उसे भगवान् मिलते हैं क्या ? आपे से बाहर हो गया हूँ, तभी तो तुम जैसी सर्वांङ्ग सुन्दरी मिल सकी है। और मुझे पाना चाहती हो तो तुम खुद—पर क्या करोगी मुझे पाकर ? मेरे पास है ही क्या ? सचमुच सुन्दरी, एक गाने की कीमत तो चुका दूँगा, परन्तु दूसरे गाने की ?–ना ना–"

नवनीत ने फर्श पर ही बैठने का उपक्रम किया तो नीलम ने कहा, "आइए, पलंग बिछा हुआ है, उस पर लेट जाइए।"

नीलम नवनीत को एक एकान्त कमरे में ले गई। यह कमरा अपेक्षाकृत साफ और सादा था। एक ओर टेबल पर कुछ पुस्तकें रखीं थीं, दूसरी टेबल पर फूलों का स्तवक खिल रहा था। मालूम देता है, नीलम का शयन-गृह था, पलंग पर सादा किन्तु साफ बिछौना बिछा हुआ था।

नवनीत ने कहा, "पर गाना सुनाओगी न ? मेरे हृदय का मधुर-मृग बंधन छुड़ा कर भाग गया। उसे पकड़ा दो न सुन्दरी !"

नीलम ने कन्दील एक ओर रख दी, फिर कहा, "आप बैठ जाइए; मैं जरूर गाना सुनाऊँगी !"

नवनीत ने कहा—"चादर मैली हो जाएगी सुन्दरी ! फर्श ही पर लेटजाने दो न। इस कमरेका शुभ-सौंदर्यतो तुम्हारे सौंदर्य का पायन्दाज है। बिहारी का भूषण-पायन्दाज वाला दोहा पढ़ा है ?—सफेद चीज पर धब्बा बहुत बुरा दीखता है !"

किन्तु नीलम ने जबरदस्ती नवनीत को खाट पर बिठा दिया। तस्मे खोलकर उसने बूट भी उतार दिए, कोट उतार दिया फिर बोली—

"खाना खाकर निकले थे ?—पर कहाँ से खाया होगा—"

"खाना नहीं नीलम, गाना सुनूंगा, गाना। तुम पहले गाना सुना दो, फिर दूसरी कोई बात सुनाना। न हो, चला चलूँ उसी कमरे में ! एक आग-सी लग रही है। कुछ शांति पहुँच जाने दो।" —कहकर वह पलंग पर लेट गया, नीलम उठ कर दूसरे कमरे में चली गई।

नवनीत अस्फुट स्वर से कुछ कहता ही रहा, तबतक नीलम तानपूरा लिए हुए इसी कमरे में लौट आई। एक नौकर भी गिलास लिए पीछे ही पीछे उपस्थित हुआ। नीलम ने कहा, "पानी पी लीजिए, कुछ शांति मिल जायगी।"

"पानी! नीलम, तुम्हारी आँखों से भी तो अमृत का एक झरना गिर रहा है! कवि भी कैसे पागल होते हैं, उसी को विष और मद का झरना कहते हैं, फारसी में तो इनको शराब की प्यालियों ही से याद किया जाता है। पर—नहीं नहीं, मैं तो शराब नहीं पीता। ब्राह्मण हूँ सुन्दरी। ले जाओ इसे, मुझे क्या पागल समझ रक्खा है? मैं शराब नहीं छूता।

नीलम ने इशारा किया, नौकर पानी का गिलास टेबल पर रख कर बाहर हो लिया, उसके इशारे से नौकर ने दरवाजा भी बन्द कर लिया।

"मैं नशे में नहीं हूँ बीबी जान! तुम मेरा अपमान कर रही हो। हटाओ इन शराब की प्यालियों को।"

उत्तेजना से क्षुब्ध होकर वह उठ बैठा, और कहने लगा, "तुम्हारी सांस में विष है, तुम्हारी नजर में विष है, तुम सारी ही विष में बुझी हुई हो। मैं खूब जानता हूँ तुम्हें। एक ओर शर्ली बन कर तुम हत्या का व्यवसाय करती हो, उधर आरती बन कर सभ्य पुरुषों को फँसाती हो। मगर मैं रेडियर नहीं हूँ जो शर्ली के सौंदर्य की प्यास लेकर उसके प्रेमी की हत्या करने के लिए यहां तक दौड़ा आए। मैं खुद शर्ली की हत्या करूँगा, मैं स्त्रियों से नहीं डरता।"

नीलम ने घबराकर कहा, "आप शांत रहिए, लेट जाइए; देखिए, आपकी आज्ञानुसार मैं आपको गाना सुनाती हूँ।"

नवनीत फिर लेट गया, और लेटे ही लेटे बोला, "माफ किया, गाओ, हम सुनेंगे।"

नीलम ने बातचीत करना उचित नहीं समझा। वह समझ गई कि

नवनीत बाबू ने आज पहली बार नशा किया है, अतः उसकी गर्मी को वे सहन नहीं कर पा रहे हैं। यदि एक बार उन्हें नींद आजाए तो वे शांति से रात बिता देंगे! उसने पास के एक ताख से सुवासित अगर की सलाइयां निकालीं, और जलाकर नवनीत के सिरहाने रख दिया। क्षण भर में ही उनका सुवासित स्निग्ध धूम्र सम्पूर्ण कमरे में फैल कर एक अनिर्वचनीय आनन्दमय वातावरण की जाली बुनने लगा। लेटा हुआ नवनीत केवल आँखें खोलकर इस सम्पूर्ण व्यापार को देख रहा था। इसके बाद तानपूरा लेकर सामने फर्श पर नीलम गाने की मुद्रा में बैठ गई।

उल्लसित-स्वर में नवमीत बोला, "अवध के नवाबों की कहानी सुनी है न नीलम? किसी बांदी से कहो, अम्बीरी तम्बाकू भरकर गुड़-गुड़ी की नली थमा जाये। मलक-ए-आजम गायेंगी, और मां बदौलत सुनेंगे।"

नीलम की आंखें चमक उठीं! शराब की तुर्शी से नवनीत के कंठ का स्वर विकृत होगया था, किन्तु फिर भी इस स्वर में कितना संगीत भरा हुआ है। नीलम का हृदय झंकृत हो उठा। वह बोली—

"बांदी की खता माफ हो! मांब्दौलत की हुजूर से एक सवाल का जवाब मिलेगा?"

"हम खुस हुए। तुम खुशी से सवाल कर सकती हो।"

नीलम ने धड़कते हुए दिल से पूछा, "मांबदौलत ने अभी जिस खतावार मुसम्मी आरती का नाम लिया, उसकी क्या खता है?"

"किसका नाम लिया तुमने? आरती का?" तड़प कर नवनीत ने पूछा।

"जहांपमाह?" मीलम डर गई।

"खबरदार, अब कभी उसका नाम माँबदौलत के सामने जीभ पर न लाना!"

"बाँदी इसकी वजह जान सकती है?"

"क्या करोगी उसे जानकर ! माँबदौलत उससे नफरत करते हैं, माँबदौलत दुनिया भर की औरतों से नफरत करते हैं।"

"कनीज की गुस्ताखी माफ हो, क्या हजूर कनीज से भी नफरत करते हैं ?" उसका दिल धड़कने लगा।

"हमने सुना है कि नीलम हम पर मरती है; मगर क्यों ?—क्या वह हमें जिन्दा नहीं रहने देना चाहती ?"

"अगर ऐसा है तो वह जहाँपनाह की जिन्दगी ही चाहती है, तभी तो वह खुद मर मिटना पसन्द करती है !"

"पसन्द कर सकती है, पर मरती नहीं—औरतों ने माँबदौलत को यही सबक सिखाया है नीलम ! एक लौंडिया ने मांबदौलत के साथ शादी की थी। शादी के सभी सिलसिले सभी दस्तूर बल्कि बिरहमन की पाक साफ जबान भी गवाह हैं इस शादी के, मगर एक दिन—जाने दो परी, इन बातों में क्या रक्खा है ?—हम औरतों से नफरत करते हैं, तुम से नफरत करते हैं तुम गाती क्यों नहीं ? हम सोना चाहते हैं; कोई ऐसा गाना हो जो हमारे दर्द को बहलाकर उसे सुलादे। मांबदौलत तुमको आधी सल्तनत बख्शते हैं। लेकिन बाखुदा, अब हम और कोई बात नहीं सुनना चाहते, बस सिर्फ़ एक गाना, गाना !"

नवनीत ने करवट बदल ली, नीलम का दिल भर उठा, उसने अलक्ष्य में एक लम्बी सांस ले ली। फिर रूमाल से अपना मुँह पोंछा—और कपाल का पसीना और आंखों के आँसू ! फिर उसने तानपूरे के तार झंकार दिए।

एक साधारण-सा फिल्मी गाना, जिसे नीलम ने ग्रामोफोन पर सुना था—नवाब फिल्म का जो एक ऐसे ही मौके पर गाया गया था—"ऐ चाँद, छिप न जाना, जब तक मैं गीत गाऊँ।"

इस सामान्य से गाने में कितना सौंदर्य हो सकता है, यह नीलम को आज ही मालूम पड़ा। सचमुच मानो स्वरों की अप्सराएँ संगीत से निकल कर सोनेवाले के क्लांत शरीर को सहला रही थीं। नव-

नीत की आँखों पर पलकों का बोझ भारी होता गया, और धीरे-धीरे उसकी दीखने वाली चेतना सोगई। नीलम ने अपने हृदय और कण्ठ का समस्त माधुर्य, सम्पूर्ण सौरभ उसके चरणों में उड़ेल दिया। गाना समाप्त हो जाने पर भी मानों निभृत स्वरों के रेशे अगरु के धुएँ के साथ सारे प्रकोष्ठ में व्याप्त हो रहे थे—सोया देखकर नीलम ने तानपूरा नीचे रख दिया।

संगीत के परिश्रम से उसके माथे पर पसीने की बूंदें चमक आई थीं। मुक्त-केशों का एक गुच्छा चिपककर उसकी दृष्टि को अवरुद्ध करने का प्रयत्न सा करता दिखाई दिया। नीलम ने हाथ से उसे पीछे हटा दिया!

रात आधी जा चुकी थी—स्थानीय कचहरी में घड़ियाल बजकर घण्टे और आध घण्टे का समय बता देती है,—मालूम देता है, आज पहरेदार भी सोगया है, बहुत देर से घंटा बजा मालूम नहीं देता। जो हो समय काफी बीत गया है।

नीलम उठी, पलंग के पास जाकर देखा। कितना सुन्दर मुँह है, कैसे अदम्य-उत्साह की लाली झलक रही है, आत्म-विश्वास का काठिन्य इन बन्द आंखों से भी मानों झलका पड़ता है! परन्तु—

जिस शिला के चरणों को अपने नीरव अश्रुओं से पखार कर भी लहरों को निष्फल लौट जाना पड़ता है, वही यह शिला है। न जाने किन किन नयनों के आँसू इस चट्टान पर व्यर्थ हो गए, न जाने कौन से धूलि कणों के युगों के संचय का फल इस चट्टान को खड़ा कर पाया, कौन जानता है? एक लौंडिया जिससे ब्राह्मणों के पवित्र वेद मन्त्र की साक्षि में गठबन्धन हुआ था, न जाने क्यों छोड़कर चली गई! शर्ली की निष्फल-प्रेम की प्रतिक्रिया ने और कौन-सी ठेस पहुँचाई कि उसका फल नीलम तक को भुगतना पड़ रहा है! सचमुच भुगतना तो पड़ रहा है! दृष्टि और दृश्य के बीच में जब बिजली का सम्भार आ घिरे तो दिखाई क्या देगा!

नीलम नवनीत के चेहरे पर झुकी, शराब की बू का एक झोंका उसके नाक पर मानों एक थप्पड़ मार कर लौट गया। मुँह बनाकर उसने अपना मुँह ऊपर खींच लिया। नशा किए हुए है नवनीत। नशा बुरी चीज है, नीलम जानती है। किन्तु नशे की बदौलत ही तो नवनीत बिना बुलाए उसके घर आकर उसी के पलंग पर लेटा हुआ है! जबतक यह नशा है, वह यदि नवनीत को एक बार चूम सके तो क्या उसके जन्म जन्मांतर का असह्य संताप शीतल न हो सकेगा? एक क्षण के सिवा इस विश्व में है ही क्या? यदि एक क्षण ही, यदि एक क्षण का एक हजारवां हिस्सा भी सुख का अनुभव कर सके तो?

नीलम फिर झुकी; शराब की बू ने फिर 'सावधान' कहकर पहरे का कर्त्तव्य पूरा किया, किन्तु नीलम की दस्यु वृत्ति को नहीं रोका जा सका। उसने चाहा कि अपने पिपासा-दग्ध अधरों को नवनीत के अधरों पर रख कर एक बार यदि अमृत की एक बूँद भी पाई जा सके, तो वह अपने असंख्यों जीवनों की मृत्यु को ललकार सकती है—कि निद्रित नवनीत के अधर फैल गए, स्वप्न-सरवर का मधुर-हास्य उसके अधर-पल्लव पर शतदल होकर बिखर गया। नीलम ने अपना मुँह पीछे हटा लिया।

क्षीण-स्वर में नवनीत की वाणी मुखरित हो उठी, वह बोला—स्वप्न के उस राज्य में निद्रा के दूत नहीं पहुंच सके।

—"मेरा जो प्राप्य है, उसे कौन छीन सकता है?—अधरलाल, अधरलाल"—निद्रा के दूसरे प्रवाह में स्वर निःशेष हो गया! नशे में विश्राम नहीं मिलता। मस्तक के सेलों में उससे गड़बड़ी जरूर मच जाती है। दृश्य-जगत से सम्बन्ध रखने वाले सेल, जो सबसे अधिक क्रियाशील होते हैं, वे निस्पंद हो जाते हैं, इसलिए शराबी को वस्तु-जगत से सरोकार नहीं रहता। दूसरी श्रेणी में वे सेल होते हैं, जो व्यक्ति के ऐसे अनुभवों को सुरक्षित रखते हैं, जिससे उसके जीवन का प्रभाव बनता है या बिगड़ता है। इनका स्थान प्रथम प्रकार के सेलों से

नीचे का है, ये अधिक क्रियाशील तो नहीं होते, किन्तु अधिक शक्ति-शाली अवश्य होते हैं, अतः शराब का नशा सबसे अधिक इन्हीं को छेड़ता है। ये तत्व एकदम चंचल हो उठते हैं, और सामने आकर प्रथम स्थान ग्रहण कर लेते हैं। इनका अनुभव या इनकी क्रियाएँ अवास्तविक या मिथ्या नहीं होतीं, पर वे निरपेक्ष होती हैं, अतः मनुष्य का 'अहम' वहाँ पर नष्ट हो जाता है। तीसरे सेलोंका एक और कोष होता है; वह होता है स्मृति और संस्कारों का कोष, परन्तु नशे की पहुँच वहाँ तक नहीं जाती। यही कारण है कि शराबी नशे की अवस्था में अपने समस्त रहस्यों को बड़े मजे से उच्छिन्न कर देता है, परन्तु वह कहाँ जा रहा है, क्या कर रहा है, या क्या देख रहा है, इसका उसे किंचित भी ज्ञान नहीं रहता। यहाँ तक कि जो सेल शराब के कारण चंचल हो उठते हैं, वे व्यक्ति के सो जाने पर भी जागृत रहते हैं—नवनीत इसी अवस्था में है। कैसी विडम्बना है कि व्यक्ति शराब पीकर शान्ति प्राप्त करना चाहता है!

नीलम का आश्चर्य बढ़ ही गया, प्रारम्भ ही से वह समझ रही थी कि आरती ने नवनीत के जीवन में प्रवेश किया है—किस तरह, यह वह अभी तक नहीं जान सकी, किन्तु स्पष्ट है कि वह प्रिय लगने वाली बात नहीं है। अभी फिर नवनीत ने अधरलाल का नाम लिया। बात क्या है ?

रहस्य से आच्छन्न यह युवक, कदाचित् इन विभिन्न से रङ्गों के संयोग से ही इस प्रकार इन्द्र धनुष के समान सुन्दर हो उठा है; और क्यों न इन सब रङ्गों की पृष्ठ भूमि में शुद्ध शुभ्र निष्कलंक श्वेता हो ! तब क्या इस विश्वास के साथ छल करना नीलम को शोभा देगा वह निर्बल है सही, पर क्या इतनी तुच्छ है कि दूसरों की निर्बलता का लाभ उठाए ?

उसने पश्चिम-दीवार की खिड़की खोल दी, पैरों पर एक चादर डाल कर दरवाजा खोल बाहर आ खड़ी हुई।

एक दिन पहले भी नवनीत उसके घर महमान हुआ था, और बिना उसे दर्शन दिए हुए ही चोरी से लौट गया था। उस दिन में और आज में कितना अन्तर है!—अपनी उस दिन की परेशानी का अनुमान कर नीलम ने बाहर से दरवाजा बन्द कर लिया, और फिर दरवजे पर ही एक दरी बिछाकर वह लेट गई—सो सकी या नहीं, यह कौन जाने?

× × ×

मथुरा, अगस्त १६४२.

आकाश साफ था, किन्तु दूरक्षितिज के ऊपर हलके लाल बादलों की एक क्षीण रेखा मचल-मचल कर घनो होती जा रही थी। उसमें कभी-कभी जो बिजली कौंध उठती थी, उससे दिगन्त का शून्य अन्तर तक जल उठता था। एक भयानक आँधी के चिन्ह स्पष्ट प्रतीत हो रहे थे, सम्पूर्ण देश इसे समझ रहा था।

भारत की कर्णधार राष्ट्रीय महासभा ने आँधी के इस स्पष्ट संकेत की चुनौती को स्वीकार किया। ७ अगस्त की रात्रि को भारत की महानगरी बम्बई में एक विराट सभा हुई, जिसमें महात्मा गांधी से लगाकर छोटे-बड़े सभी राष्ट्रीय नेता सम्मिलित हुए—यह विचार करने के लिए कि इस आँधी का सामना कैसे किया जाए!

अधिकारियों का कथन है कि इसके बाद जिस प्रकार से भयानक आँधी सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई, उसके लिए इस सभा में सम्मिलित होने वाले कांग्रेस के ये ही नेता उत्तरदायी हैं। वे कहते हैं कि इस सभा में अग्नि वर्षा के समान जोशीली वक्तृताएँ हुईं, वायुमण्डल में मानों वज्र-निपात का गम्भीर घोष गुंजरित हुआ। यदि इस भयानक आँधी के अग्रदूत तक सहस्रों गाँधियों के टिड्डी-दल को सरकार बन्दी न बना लेती, तो एक ही सप्ताह में सारा भारतवर्ष भयंकर रक्त-प्रवाह में निमज्जित हो जाता; पूर्व के द्वार को तोड़-फोड़ कर जापानी हत्यारे अग्नि और हत्या का नृशंस ताण्डव भारतवर्ष में मचा देते, और युद्ध की विभीषिका अनिश्चित काल के लिए दीर्घ हो उठती।

महाप्रभुओं का उद्देश्य भी पूरा हुआ, और उनकी-आशंकाएँ भी! कहते हैं, कर्कशा विधवा के वचनों का बड़ा प्रताप है, उनमें डाकिनी की सिद्धि फलित होती है। राष्ट्र के ये शुभ-चिन्तक उसी डाकिनी दृष्टि के शिकार हुए, और राष्ट्र का भविष्य उसी की विचारणा का। इससे किसी भले व्यक्ति को रोष न होना चाहिए। सर आगा खाँ का प्रसाद बड़ा ही भव्य है, और फिर सरकार का अयाचित आतिथ्य! त्रुटि ही क्या रह सकती है। भारत की इस प्रकार की अविशेषणीय-हितैषिता को भी यदि कोई भारतीय संशय को दृष्टि से देखे, तो फिर उसे राम ही देखेगा! अन्याय की भी आखिर कोई सीमा होती है।

उसी सप्ताह में भारतवर्ष रक्त-प्रवाह में भी निमज्जित हुआ, किन्तु अपना ही रक्त बहाकर। हँसी आने जैसी बात है ही। एक नाबालिग लड़के ने अपने पिता की हत्या करदी; जब गिरफ्तार करके विचारक के सामने लाया गया, तो उसने क्षमा के लिए प्रार्थना की और कहा—

"हुजूर, मुझे क्षमा कर दिया जाए, क्योंकि मैं तो अनाथ लड़का हूँ।"

भारतवासी ऐसे ही हैं, मजिस्ट्रेट को क्या दोष दिया जाए।

अग्नि और हत्या का नृशंस ताण्डव भी मचा ही—अवश्य ही जब वह पूर्व के फाटक को तोड़-फोड़ कर आने वाले जापानियों द्वारा नहीं हुआ तो, वचन की रक्षा के लिए शुभ्र हिम देशवासी सत्यनिष्ठ गौरांग-महाप्रभुओं ने ही शंकर का यह प्रलयंकर रुद्र नृत्य ठानने की सोची। सो इसमें अस्वाभाविक और अनैतिक हुआ ही क्या? आंग्ल-विचारों के प्रमुख कला-प्रतिनिधि शेक्सपीअर ने अपने विश्वविख्यात नाटक मेकबेथ में डाकिनियों के भविष्य-कथन का जो रौद्र-सत्य दिखाया है, वह यहाँ पर चरितार्थ हो गया। गाँधी जी केवल कहते ही रहे कि "यह अंग्रेजों की बड़ी मूर्खता है। मैं वायसराय से वार्तालाप करने ही वाला था।"—सो मूर्खता तो है ही!

सन् १८५७ में भी ऐसे ही कुछ बिगड़े दिमाग भारतीयों ने इन्हीं भारत-हित-चिन्तक महाप्रभुओं के विरोध में 'बलवा' खड़ा कर दिया था। मिलिटरी के सिपाही ही तो ठहरे, उनके दिमाग में यदि थोड़ी बहुत खराबी न हो, तो बैठे-बिठाए लड़ने के लिए जाएँ ही क्यों! खैर बलवा दबा देना तो सामान्य सी बात है, वह हुई ही; मगर सफाई तो देखिए कि साँप भी मर गया और लाठी न टूटी। सात समुद्र पार से आकर एक राजभक्त साहब बहादुर ने अपनी आँखों भारतवर्ष की तत्कालीन अवस्था देखकर लिखा था—भारतवासियों के कारनामों की तुलना में हमारा कार्य बहुत साधारण था; और यदि कहीं पर इक्की-दुक्की लोमहर्षण घटनाओं का जिक्र आता है तो उनके करने वाले (Executioners) ये ही भरतीय हैं!।" भला बताइए, अब आप दोष ही किसे देंगे!

सात अगस्त की रात को होने वाली कांग्रेस की मीटिंग के ऊपर किसी तरह का अभियोग लगाना सामान्य बात है। महाप्रभुओं को मीटिंग प्रारंभ होने के बहुत पूर्व ही मालूम हो गया था कि मीटिंग के गर्भ में उसका काल आठवाँ पुत्र है, अतः प्रसव पीड़ा के पूर्व ही यदि उसे जच्चा-खाने भेज दिया गया तो क्या हर्ज है?—कहते हैं नंदगोप की कूटनीति की जय हो, बच्चा तो बाहर सकुशल पहुँच गया, और आठवीं संतति के रूप में कंस के हाथ जा पड़ी बिजली! जरूरी तो थी कि देश के भाग्य पर वह कड़के; और वह कड़की। कोई करता भी क्या?

नतीजा यह हुआ कि जो अतिवादी थे वे बच गए। कांग्रेस के नेता जेल के कमरे में सुरक्षित रहे, दूसरे अतिवादी सरकारी कर्मचारी बड़े-बड़े अधिकारों से विभूषित होकर सुरक्षित हो गए। सहज ही ऑनरेरी मजिस्ट्रेट आदि बन कर अपने ही भारतीय भाइयों के अरक्षित गले की कीमत आंकने वालों की ऐसी संख्या ही कितनी बड़ी थी, यह विश्वास करने लायक न थी। -अतः मरने के लिए अब केवल वे ही

साधारण प्रजाजन रह गए, जो न तो कांग्रेसी थे, और न उनके दुर्भाग्य ने बेकारी के युग में भी कभी उनको राज कर्मचारी बनने दिया था। सचमुच ही भारत-भूमि का भार हलका हो गया।

कमल किशोर ने सरकारी आतिथ्य का अनुमान करके भूमिष्ठ (underground) हो जाना अधिक उत्तम समझा, वस्तुतः उनकी कन्या माया उनके इस बाह्य संसार के संबंध की कड़ी बन गई—माया के ऊपर किसीका संशय करना साधारणतया संभव न था। उधर त्रिलोक-नारायण को स्पेशल कमीशन मिला। वे डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन्स जज के अधिकारों से अभिषिक्त करके मथुरा भेजे गए। माया को अपने कार्य में और भी सुविधा मिली—कमल किशोर भूमि-गर्भ के दृढ़-बंधन में भी स्वतंत्रता की सांस लेने में समर्थ हो सके।

पर देश की बात जाने दीजिए, मैं आपको माया की बात सुनाता हूँ।

इसी अगस्त की एक अवसादमयी धुँधली संध्या में दिन भर के परिश्रम के उपरान्त जब माया घर लौटी, तो गहरी क्लांति से उसका मन और शरीर दोनों ही बेबस हो गए थे। मकान की छत पर बैठ कर वह वर्षा के बादलों से भरे हुए आकाश को शून्य दृष्टि से देखने लगी।

पश्चिम की गौरवपूर्ण दिशा में सूर्य कुछ ही समय पूर्व अस्त हो चुका था। सजल श्याम बादलों का निबिड़ घटाटोप सूर्य के दृश्यमान वैभव को अपनी गोद में छिपाने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु अनन्त सौभाग्य की वह स्वर्णिम-श्री बादलों के रन्ध्रों से फूट-फूट कर दिगन्त में फैल रही थी। कहीं-कहीं पर लूटे हुए सोने के उस वैभव को अपने सिर पर धारण करके बादलों ने अपने सौभाग्य का प्रदर्शन भी प्रारंभ कर दिया था। माया हारे हुए चित्त से अपने आपको बादलों की इस माया में उलझाने का प्रयत्न कर रही थी, किन्तु रह रहकर उसका चित्त दिन भर के श्रांत प्रयत्नों की आलोचना में फँस ही जाता था।

माया के पिता एक आतंकवादी दल के सदस्य थे। दल का प्रधान कार्यालय लखनऊ में था, किंतु तत्कालीन विशेष-परिस्थितियों में वह

मथुरा बदल दिया गया है। लखनऊ कार्यालय की तलाशी हुई; सौभाग्य से इसकी आशंका सदस्यों को पूर्व ही हो चुकी थी अतः आवश्यक कागज-पत्र हटा लिए गए थे, उस तलाशी का कोई खास नतीजा नहीं निकला।

दल के प्रधान इन दिनों विश्राम ले रहे थे, कुछ ही दिन पूर्व, उनका एक मात्र पुत्र दयाराम, एक पोस्ट आफिस को जला देने के प्रयत्न में विरोधी-दल की गोली का शिकार हो गया था। अतः इस मानसिक व्याधि की दुरन्त पीड़ा को सह सकने के लिए अवसर प्राप्त करके अध्यक्ष महोदय जब कुछ दिनों के लिए जन-सेवा से पृथक हो गए, तो इस भयानक क्षण में कर्यालय को मथुरा भेज देने के समान अन्य कोई सुन्दर प्रस्ताव न था। दो ही दिन हुए उस दफ्तर ने यहाँ पैर रक्खा है!

परन्तु मथुरा की शाखा पहले ही सरकार की नजरों में शूल हो रही थी। यहाँ के अध्यक्ष सरकारी महमान हो चुके थे, और उप सभापति कमल किशोर के नाम वारण्ट जारी हो चुका था, जिससे कि उन्हें भूमिष्ठ हो जाने की आवश्यकता पड़ गई थी। दफ्तर के यहाँ आते ही आवश्यकता हुई अध्यक्ष के चुनाव की, और जब माया ने इस पद के लिए अपनी सम्मति दी, तो सर्व सम्मति से उसका भी चुनाव हो गया था। इसलिए यदि अपनी जिम्मेदारी के बोझ से आज उसे कुछ थकावट मालूम दे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

अराजक दल का इस विस्फोट के युग में नेतृत्व करना साधारण बात नहीं है। किसी नारी का इसे स्वीकार करना तो और भी असंभाव्य है! यदि कभी यह हो भी गया, तो सभा का उसे अपनी अध्यक्षा स्वीकार करना, सिवा अध्यक्षा की मजाक के और क्या कहा जा सकता है! फिर भी माया सर्व सम्मति से गम्भीरता से चुनली गई, तो इसके कई कारण थे।

माया की ओर से जो कारण थे, वे ये थे; माया के पिता इस दल

के एक अधिकारी थे, अतः उनके कार्य के प्रति उनका संतान का विशेष अनुराग होना स्वाभाविक था। दूसरे, यह जमाना ही ऐसा था कि लगभग सभी युवकों के रक्त में उबाल आ जाए। अन्तिम कारण यह था कि उसकी मानसिक स्थिति ऐसी अस्थिर थी कि बिना किसी अविश्रांत-प्रकार के कार्य के वह शांति अनुभव न करती। वह चाहती थी ऐसा कार्य जिसमें वह सदैव उलझी रहे, उसके हृदय के घाव को हरा होने का अवसर न मिले। इस नेतागिरी में वही आश्वासन था।

सभा ने भी माया को सभानेत्री स्वीकार कर लिया। कमलकिशोर के उग्र विचारों से सम्पूर्ण सभा अवगत थी। उन्हीं की सन्तान को मूर्द्धाभिषिक्त करने में स्पष्टतः कमलकिशोर ही के महत्त्व की स्वीकृति थी। स्वयम् माया भी अपने उग्र विचारों के लिए प्रख्यात थी—बल्कि कुछ सदस्य तो उसकी प्रशंसा में यहाँ तक कह गए कि उसने एक सत्य की रक्षा के लिए पति तक का त्याग कर दिया है। अन्य कारण मनोवैज्ञानिक है; पुरुष प्रगट में तो नारी का स्वामी बनना चाहता है, किंतु उसकी चंचल प्रवृत्ति के लिए उपयुक्त यह होता है कि वह नारी की अधीनता स्वीकार करे। दल के अर्द्ध चेतन मन का यह सत्य जब सशरीर होने लगा, तो माया अनायास ही स्वीकार कर ली गई। और अन्तिम बात यह थी कि इस भयानक क्षण में पतवार पकड़ने का साहस अन्य किसी व्यक्ति में नहीं था—कोई इस पद के लिए आगे नहीं बढ़ा।

सो, आज इस अराजक दल की प्रथम महिला सभानेत्री श्रीमती माया देवी संध्या के चंचल-नभ के नीचे बैठकर अपने अतीत का कुछ कच्चा चिट्ठा स्मृति की गैलरी में बिखरा पाए तो कौन आश्चर्य करेगा!

वह अराजक दल की सभानेत्री है। मन की या शरीर की साधारण कमजोरियों से उसका आसन बहुत ऊँचा है। सम्पूर्ण भारतवर्ष की स्वाधीनता का कच्चा सूत्र उसके हाथ में है, उसे सावधानी से उस सूत्र को संचालित करना पड़ेगा। अपनी चिन्ताएँ अपनी बाधाएँ या अपनी दुर्बलताएँ समष्टि की गणना में कोई स्थान नहीं रखतीं। आज से अब

उसे अपना व्यक्तिगत जीवन ही समाप्त कर देना चाहिए। श्रीमती मायावती नवनीतलाल अब इस दुनियाँ में नहीं रहीं, अब तो वह है केवल अराजक दल की कर्मठ सभानेत्री—अराजक दल की, जिसका काम ही, अराजकता और आतंक के द्वारा देश के सौभाग्य को लौटा लाना है।

विचाराधीन मामलों में उसे आज ही एक मामला मालूम हुआ है। मामला था, लखनऊ के पोस्ट ऑफिस को जला देने का। उसमें गोली-चार्ज हुआ था, और जिला-कलेक्टर के लड़के किट्सन रागर्स के हाथ से भूतपूर्व सभापति के लड़के दयाराम को अपनी जान गंवानी पड़ी थी। वही युवक किट्सन विवाह सम्पन्न करके अपने नव विवाहित पत्नी शर्ली के साथ हनीमून के लिए मानपुर गया है, और साथ में गया है, प्रतिशोध लेने के लिए इस अराजक दल के तत्वावधान में एक युवक डाक्टर रेडियर, जो वहाँ की स्थानीय शाखा से सहायता प्राप्त करके इस नव दम्पति का काम तमाम कर देगा। खबर आई है कि तारीख २६ अगस्त तक सब कार्य सम्पन्न हो जाएगा। २६ अगस्त को अब भी आठ दिन शेष हैं।

किट्सन और शर्ली की हत्या! जीवन की अनन्त आशाओं को साथ लेकर बेचारे जब कि मधु-यामिनी के स्वप्न देख रहे होंगे, तभी मृत्यु की भीषण-विभीषिका का वह रक्त-रंजित संकेत उनकी दोलायमान आँखों के सम्मुख आ उपस्थित होगा। समर्पणोत्सुक नारी के बुभुक्षित-हृदय की कन्दरा में जब कि तृप्ति का स्पन्दन चल रहा होगा, तभी किसी क्रूर के हाथों में मृत्यु की मूर्तिमान् कराल दाढ़ के समान भीषण-तीक्ष्ण कृपाण चमक उठेगी। घबरा कर जब वह निर्बल नारी, अपने शेष और निःशेष अवलम्ब पति के फैले हुए वक्ष में अपने मस्तक को रख कर अभय के आश्वासन का रक्त-संचार सुनेगी, तब या तो उसकी अस्तमान् आँखों के सम्मुख हो असिधारा का मर्माघात उस आश्वासन को उसके कानों से छीन लेगा, या फिर उसके पूर्व ही उसके कानों की

शक्ति ही कील दी जाएगी, और वह शून्य मस्तक उस शून्य विस्तीर्ण वक्ष में लटका हुआ निष्फलता के रक्त के आँसू चुआता रहेगा।

माया ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढंक लिया, उसके आगे के दृश्य की कल्पना भी उससे नहीं हो सकी।

किन्तु वह अराजक दल की सभानेत्री है। कोमलता के ये अभिनय अब उसे शोभा नहीं देते। अब वह युगों की लांछित प्रताड़ित नारी नहीं है। रक्त से सिंची हुई मनुष्य की हड्डियों से देश की स्वाधीनता का जो प्रासाद खड़ा किया जाने वाला है, उसकी वह शिल्पदर्शिका है। इस सामान्य रक्त-पात की कल्पना से अब वह विचलित नहीं होगी।

जिस प्रकार एक सुन्दर चित्र के ऊपर अकस्मात् कोई रंग की प्याली लुढ़क कर सम्पूर्ण सौंदर्य को आत्मसात् कर लेती है, उसी प्रकार पश्चिम से उस रंजित क्षितिज पर एक काला बादल उठ कर चारों ओर फैलने लगा; मानो उस पार डूबे हुए सूर्य की वह मूर्तिमान छाया थी, जो भीषण वेग से समस्त नभोमण्डल में फैल जाना चाहती थी। हवा के पंखों पर बैठकर उसका जादू दिग्दिगन्त में बोल रहा था। एक भयानक तूफान की कल्पना करके पक्षी भी अपने कोटरों में छिप कर नीरव हो गए थे। केवल हवा की सनसनाहट और झिल्ली की झनकार सुनाई दे रही थी, और कभी-कभी कहीं-कहीं पर रह-रह कर निष्फल क्रोध में बादल भी गरज उठता था।

माया अराजक दल की सभानेत्री है इसमें कोई संशय नहीं; किन्तु क्या इतने मात्र से वह नारी भी नहीं रही? इसका शरीर अब भी तो नारी ही का है, उसकी नस-नस में अब भी तो नारी ही की मर्यादा भिद रही है, उसके शरीर के समस्त यंत्रों में अब भी तो नारी ही का कोमल गठन है, और उसकी समस्त चेतना में, अराजक दल की सभानेत्री होने के उपरान्त भी, कोमल नारी ही की सत्ता का तो जय-घोष हो रहा है।

फिर भी उसने नारीत्व के सभी बन्धनों को जलाञ्जलि देदी है। सृजन-

शक्ति द्वारा विश्व की अमरता का एकाधिकार उसने छोड़ दिया है। स्नेह, करुण आदि नारीत्व के चरम उत्कर्षों को धता बता कर आज उसने आतंक दल का सभानेतृत्व स्वीकार किया, यह भी क्या उतना ही सत्य नहीं ?

नारीत्व के मंगलमय साम्राज्य से चलकर कहाँ आगई माया तू ? यह यात्रा तेरी विजय की है या पराजय की ? इसे प्रगति कहा जाए या पलायन ? पिता के वचन उसके कानों में मँडराने लगे—'समाज का मूल घटक नारी है। यदि मानसिक दासता न हो तो समाज व्यवस्था का मूल स्वरूप नारी के नियंत्रण की अपेक्षा रखता है, पुरुष के नियंत्रण की नहीं।'—माया ने इस नियंत्रण का सूत्र दूसरी तरह से अपने हाथ में ले लिया है। नारी होने की उसकी सम्पूर्ण शक्ति और सम्पूर्ण सत्य व्यर्थ नहीं हुए।

और पुरुष की दासताही में तो नारी की पराजय है ? उस बन्धन को वह तोड़ चुकी है; नवनीत लाल के समान आत्मवंची युवक अब उसके ऊपर अपने मिथ्या स्वामित्व का दम्भ नहीं कर सकेगा। उसकी विजय यात्रा का यह निश्चिय ही मंगल-दिन है।

नवनीत की स्मृति, दूर क्षितिज में डूबे हुए सूर्य की स्मृति के समान अब भी कहीं छिपी हुई हो, किन्तु बादलों के निबिड़ जाल में संध्या का वह शेष स्वर्ण बिन्दु भी सो चुका था। केवल इन दुर्द्ध ष बादलों के अभिसम्पात में किसी रन्ध्र से कोई क्षुद्र तारिका हँस देती थी अपनी ही क्षणिकता के ऊपर। माया ने देख कर लम्बी सांस ली। दूसरेही क्षण वह तारिका लुप्त हो गई।

'प्रकृति की दी हुई बुद्धि है। उसके ऊपर किसी दूसरे का अंकुश किस अधिकार से अपना धाव कर देना चाहता है ?' उसके पिता ने कहा था कि यह बौद्धिक दासत्व ही मनुष्य के पराजय का कारण है। इस बन्धन को नष्ट करने के लिए ही उन्होंने आदेश दिया था कि माया त्रिलोकनारायण से विवाह करले।

त्रिलोक के साथ विवाह ? किन्तु उसे विवाह का नाटक तो खेलना है नहीं, केवल एक भूल का परिष्कार—नवनीत के साथ विवाह कर लेने की उत्कट भूल का परिमार्जन मात्र कर लेना है। उसे क्या यदि वह त्रिलोकनारायण ही हो या कोई अन्य मांस-पिण्ड वह केवल दुनियाँ के सम्मुख उदाहरण रखना चाहती है कि वह समाज की विवाह नामक दासता की कायल नहीं; आज की नारी को इस दासता से मुक्त होना ही चाहिए।

पुरुष के श्रेष्ठत्व की अपेक्षा अभावशीला नारी ही करती है, माया नहीं। अतः त्रिलोकनारायण के अभावों की आलोचना से माया का आता जाता ही क्या है ? यह सत्य है कि एक दिन त्रिलोकनारायण ने उससे उसकी कृपा की याचना की थी, और वह भीख माया ने नहीं दी थी। आज अपने हृदय-देवता को तुष्ट पाकर क्या उसके हृदय में कृतज्ञता का नाटक भी खेलना रह गया ? उसने सोचा, तुच्छ पुरुष, नारी के एक तुच्छ कौतुक को तू अपने जीवन का ध्रुवतारा मान बैठेगा। नारी की क्रीड़ा होगी, और तू उसे अपने भाग्य का उदय समझेगा; और फिर भी कहेगा कि नारी की तुलना में तू श्रेष्ठ है !

तभी ऊपर के निबिड़-अन्धकार को भेद कर वर्षा की एक बड़ी बूंद ने उसकी विचार-धारा को रुद्ध कर दिया। अवश चित्र से उसने चारों ओर देखा, उसे पता ही न था कि घने अन्धकार को चीरकर बिजलियाँ कभी इधर कभी उधर कौंध रही हैं, बादलों का दुन्दुभी-घोष एक भयानक क्षण की सूचना दे रहा है, और हवा के तीन झोंके बादलों को मानो झकझोर रहे हैं, अभी उनका सारा पानी झड़ जाएगा !

माया ने जैसे ही उठने का उपक्रम किया, बिजली की चमक में उसने देखा कि नौकरानी चली आ रही है। उसने पूछा—

"नीचे रोशनी की ?"

"जी; करदी है एक साहब अभी आये हैं, नीचे बैठे हैं; आपसे मिलना चाहते हैं।"

"इस समय ? कह नहीं दिया कि मैं थकी हुई हूँ ?"—किन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा, वह आतंक दल की सभानेत्री है। उसका उत्तरदायित्व अब बहुत बढ़ गया है। इस मौसिमसे भी कोई अधिक भयानक कार्य हो सकता है, जो उसकी सम्मति की अपेक्षा करता हो। उसने दासी की ओर देखा, भयानक अँधेरे में भी दासी ने माया के मर्मस्पर्शी नेत्रों की ज्वाला का अनुभव कर लिया।

वह बोली—"जी, कोई बड़े आदमी हैं। अपना नाम त्रिलोक बाबू बतलाते हैं। बिलकुल नई-सी मोटर में आए हैं।"

"त्रिलोक बाबू ?" आश्चर्य से उसने कहा। मन-ही-मन बोली - शैतान की याद करो, और शैतान तुम्हारे सामने है। प्रगट में कहा—"सत्कार में गलती तो नहीं की न ?"

"नहीं बाई साहब, आपके पढ़ने का कमरा खोल दिया है, वहीं बैठे हैं। चाय के लिए पानी चढ़ा दूँ ?"

"हाँ, हाँ, जा चढ़ा दे !"

और माया और दासी दोनों ही नीचे उतरे, तबतक बूँदों से प्रारम्भ हुई वर्षा धारा में बदल चुकी थी।

चाय, नाश्ता और बहुतेरी इधर-उधर की बातों में बहुत कुछ समय बीत गया। त्रिलोक उसी ठाठ के साथ बैठा हुआ था, सिगरेट ओठों में दबी हुई थी। उधर एक मासिक पत्रिका के पन्ने उलटती हुई माया उससे बातें करती जा रही थी। थोड़ी देर पहले का जड़ भाव अब उसके चेहरे पर न था; उसके स्वर में उत्सुकता थी; बाहर वर्षा का वेग पूर्ववत बना हुआ था।

"तो अब स्पेशल ड्यूटी पर मजिस्ट्रेट बन कर यहाँ आये हैं !—अच्छा ही हुआ, मेरा भी अकेले मन न लगता !" माया ने कहा।

"तो सचमुच तुम अपने पिताके बारे में कुछ नहीं जानती ?"

"सचमुच कुछ नहीं जानती। न जाने वे स्वेच्छा से भूमिगर्भ में छिप

गए हैं, या इन महाप्रभुओं ने ही इन्हें कहीं भेज दिया है। माफ करना —इन महाप्रभुओं की निन्दा तो आप शायद न सह सकें !"

मुस्कराकर त्रिलोक ने कहा, "माया, कुर्सी पर बैठकर आलोचना करने में और क्षेत्र में उतरकर कार्य करने में बड़ा अंतर है। हम भारतीय इस अन्तर को समझने की चेष्टा नहीं करते, और इसीलिए शासक दल को बहुत कुछ बुरा भला सुना दिया करते हैं—"

बात काटकर माया बोली, "अब तो आप अंग्रेजों के प्रतिनिधि बन गए हैं, आपने अवश्य ही इसे समझा है, किन्तु भारतीय होने का चिन्ह भी अंग्रेजियत में खोगया है क्या ?"

"भारतीय होने में यदि कोई गौरव है तो मैं भारतीय ही हूँ, और यदि उसमें कोई अ-गौरव है तब भी भारतीय तो हूँ ही ! किसी के व्यंग्य, आक्षेप या इच्छा से भी बदला नहीं जा सकता। किन्तु यदि ब्रिटिशर्स की कोई अच्छी बात हो तो भी भारतीयों के लिए वह अनुकरणीय होगी, यह तो कोई बात नहो है।—मैं तो इसे नहीं मानता।"

"मानना भी नहीं चाहिए त्रिलोक बाबू ! अंग्रेजियत के अनुकरण से बढ़कर तत्काल फल देने वाला इस कलियुग में और कोई व्रत अनुष्ठान तो दिखाई नहीं पड़ता। मजिस्ट्रेट तो बन ही गए हैं, जब तक कि इस समारोह का उद्यापन हो, तब तक प्रयत्न कीजिए न कि कहीं कमिश्नर हो जाएं।"

"आशीर्वाद दो; असम्भव तो नहीं है।

"बलि कितने की चढ़ाइयेगा ? तै हो जाए पहले से। जिनके हाथ में तलवार रहती है, उनकी 'अति' से डरना पड़ता है। लोकनीति क्या कहती है ?"

"तुम्हारी बातों से प्रतीत होता है, तुम इस समय देश में फैली हुई अग्नि की वकालत कर रही हो। अच्छा यह बताओ, क्या इस क्रांति से कुछ लाभ होगा ?"

"आप क्या सोचते हैं ?"

"माया, जहाँ शक्ति की समता होती है, वहीं पर युद्ध का श्रीगणेश किया जाता है। अंग्रेजों की तुलना में भारतीय कितने निर्बल हैं यह किसी से छिपा नहीं। तुम देख ही रही हो कि ये प्रयत्न हमारी ही कितनी हानि कर रहे हैं !"

हानि के बिना तो कोई नया कार्य होता ही नहीं महाशय !"

"किन्तु हानि की संभावना का निराकरण तो किया जाना चाहिए, उसे निमंत्रण तो नहीं दिया जाता !"

"सो कौन देता है ? किन्तु इस भय से नया कार्य प्रारम्भ ही न किया जाए, यह कायरों का तर्क है।"

"किन्तु माया, भारतीयों के इस समय के कार्य तो हानि ही का आह्वान कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि अंग्रेज-सरकार इन प्रदर्शनों से डरेगी नहीं।"

"आप जैसे बहादुर जो उनके साथ हैं। बल्कि हमीं लोगों को डराएगी !"

"इसके अतिरिक्त उनकी युद्ध-योजना में बाधा डालकर हम क्या मानवता के साथ विश्वासघात नहीं कर रहे हैं ?"

"अवश्य, अवश्य त्रिलोक बाबू, यदि प्रतिदिन अखबार पढ़ने वाला भी यह बात न समझेगा तो समझेगा कौन—आप या मैं ? मानवता के साथ विश्वासघात--गोया सारी मानवता का प्राकृतिक विधान एटलांटिक चार्टर, या माल्टा-सम्मेलन के प्रस्तावों ही में तो भरा पड़ा है ! अखबारी दुनिया के स्रष्टा आजकल के विश्वामित्रों के प्रबल पराक्रम के आगे राजनीतिज्ञों की बुद्धि घास छीलने लग जाए तो कौन आश्चर्य करेगा ? समझ नहीं पड़ता आजकल लोग अपने घर में नमक-तेल का अभाव कैसे सच मान लेते हैं, क्योंकि यह सम्वाद न तो व्हाइट हाऊस से घोषित होता है, न १० डाउनिंग स्ट्रीट से, और न ही नई दिल्ली के वायसराय-भवन में सेन्सर की खराद पर चढ़कर प्रचारित होता है !

उनकी फूहड़ भारतीय पत्नियों में तो उस अभाव को समझने की शक्ति है नहीं ! पर नमक का अभाव तो राजनैतिक मसला है । है न ?"

माया स्वयं ही अपने कथन पर हँस दी, त्रिलोक भी अपनी हँसी न रोक सका !

"जब तक तुम्हारे ऊपर किसी वस्तु का उत्तरदायित्व नहीं आपड़ता, उसकी गुरुता और गम्भीरता को तुम नहीं समझ सकती, मजाक चाहे जरूर कर सकती हो !"

"वस्तु की न सही, पर मजिस्ट्रेटी की गुरुता और गंभीरता से डरने का अभ्यास तो सभी भारतवासियों को है ।"

त्रिलोक ने हँसकर कहा—"तो यह वाग्-युद्ध श्रीमती मायादेवी और त्रिलोकनारायण के बीच हो रहा है, यही समझा जाए न ?"

"नहीं नहीं, मैं तो भारतीयों की बात कह रही हूँ, और चूँकि मैं भी एक उन्ही में से हूँ, इसलिए उतनी ही यह बात मेरी भी हो सकती है !"

त्रिलोक ने फिर हँसकर कहा—"और मुझे तुमने अपना प्रतिद्वन्द्वी ब्रिटेन का रहने वाला अंग्रेज मान लिया !"

"साहब तो हैं ही आप ! सच कहती हूँ, 'साहब' शब्द में ही एक ऐसे पुण्य का प्रभाव है कि जिसकी कल्पना स्वर्ग ही से की जा सकती है । घबराइये नहीं, उस पुण्य के प्रभाव का उपभोग करनेके लिए स्वर्ग जाने की आवश्यकता नहीं है, चाहे वह संदेह ही क्यों न हो—बल्कि इन महाप्रभुओं की कृपा का धन्यवाद कीजिए, सदेह स्वर्ग ही यहाँ मजिस्ट्रेटी के रूप में उतर कर आगया है !"

"तुम्हें तो अधिकार के आनन्द ही दृष्टिगोचर होते हैं माया, उसकी जिम्मेदारियाँ, और उन जिम्मेदारियों से उत्पन्न चिन्ताएँ, जो न केवल आनन्द ही को घर डालती हैं, किन्तु अधिकारियों के सामान्य जीवन ही को कंटकित कर देती हैं, तुम्हारे ध्यान में नहीं हैं !"

"अधिकारियों के ध्यान में वे चिन्ताएं रहती हैं क्या ? यदि आपका कहना ही सच हो, तो अधिकार के इस दर्दे-सिर से लाभ ?

"कभी अधिकारी बनकर देख लो न !"

माया हँस पड़ी, "अधिकार ही की तो लड़ाई है त्रिलोक बाबू ! यदि अधिकार देने की इच्छा शतांश में भी सच होती, तो इन विग्रहों की आवश्यकता ही क्या पड़ती ?"

"माया, यह युद्ध काल है, विशेष समय, इस युग की आवश्यकताओं को तुम सामान्य युग की आवश्यकताओं से नहीं देख सकती। क्या अंग्रेजों ने यह वादा नहीं किया कि युद्धकाल के समाप्त होते ही, वे भारतवर्ष की आजादी के बारे में अपना अंतिम निर्णय दे देंगे ?"

"यह वादा तो वे कई बार कर चुके हैं। वादा करने में किसी को कुछ लगता नहीं, कठिन है तो केवल उसका पूरा होना। और चाहे युद्ध-काल हो या शांतिकाल; यदि वे भारतीयों का विश्वास नहीं कर सकते, तो भारतीय उनका विश्वास क्यों करने लगे ?"

"यदि वे भारतीयों का विश्वास नहीं करते तो इसके कारण हैं, वे बेबुनियाद नहीं।"

"बुनियाद मैं भी सुनूँ ?"

"कांग्रेस के बुलेटिन नहीं देखे क्या ? वे जापानियों के स्वागत की सम्मति देते हैं, उनके प्रति अपनी सहानुभूति दिखलाते हैं, अभी दो दिन पहले एक बुलेटिन निकला है जिसमें उन्होंने प्रचारित किया है कि जापानियों का इरादा भारतवर्ष को विजय करने का नहीं है, वे केवल ब्रिटिश लोगों को यहाँ से भगा देना चाहते हैं !"

"यह असत्य है क्या ? जहाँ-जहाँ जापानियों ने युद्ध किया है, इसी इरादे से तो कि ब्रिटिशर्स—"

"किन्तु इसके गूढ़ अर्थ के बारे में तुम ने कभी नहीं सोचा—"

"गूढ़ अर्थ तो आप जैसे वकीलों के लिए है, साधारण जनता के

लिए नहीं। किन्तु जाने दीजिये न इन बातों को! हाँ, अतिथि के स्वागत का यह तरीका देखकर क्रुद्ध नहीं हो सकेंगे, यह कहे देती हूं।"

"अतिथि का स्वागत माया, तुम खूब कर सकती हो, इसका मुझे विश्वास है। यदि कभी भूल जाता हूँ तो कन्धे के ऊपर से झांक कर एक निशान बतला देता है कि माया देवी के निकट आतिथ्य की कमी नहीं रहती!"

"इसी बात को स्मरण रख सके हैं आप? क्या माया का सम्पूर्ण भाव आपके निकट इसी एकाकी रूप में ही वर्तमान रहा? कदाचित् तब तो अब तक आप को रोके रखकर आप के साथ अन्याय तो नहीं किया?"

माया ने बाहर की ओर देखा। वर्षा पहले से धीमी पड़ चुकी थी, किन्तु एक दम बन्द नहीं हुई थी। हवा का वेग वैसा ही तीव्र था।

त्रिलोक ने मुस्कराकर कहा, "अपने 'इष्ट' को याद रखने के बहुत बहाने रहते हैं। नहीं क्या? उनकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों ही भक्त के लिए कल्याणकर होती हैं। नहीं जानती—"रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे!"

"आप भी इन बातों पर विश्वास करते हैं क्या?"

"जीवित हूं तब तक तो करता हूं। इस विश्वास के बिना मुझ जैसा कोई जीवित भर रह सकता है क्या?"

"पर इंग्लैंड की सरकार तो अब तक इस विश्वास के अभाव में ही जीवित है!"

"माया, मैं नहीं समझता, तुम मुझे भारतीय ही क्यों नहीं मानतीं?"

"इसलिए कि शायद आप नाराज हो जाएँ!"

"यही तो मुसीबत है! जब हम किसी की आलोचना करने बैठते हैं, तो उसका केवल एक पहलू देखकर ही हम राय बना लेते हैं। पर जाने दो, अब फिर विवाद का क्षेत्र तैयार हो जायेगा। जब कि इस

संक्रान्ति काल में मैं यहां अधिकार का सूत्र संचालित करने के लिए आया हूं, तो यह समझता हूँ कि विवाद के क्रियात्मक और सच्चे रूप का मुझे सामना करना ही है। और माया, यदि इस घर में आया हूँ, तो निश्चय ही यह आशा लेकर कि मैं अपनी क्लान्ति का यहां परिमार्जन कर सकूँ। यह आशा तो कर सकता हूँ न ?"

"अवश्य ही, अवश्य ही। बल्कि यदि आज्ञा दें, तो एक प्रार्थना करूँ ?"

"क्या ?"

"क्या मुझे आप मेरे पूर्व पाप का प्रायश्चित्त करने का अवसर दे सकेंगे ?"

"कैसे ?"

"आप ठहरे हुये कहाँ हैं ?"

"अभी तो सीसिल होटल में हूँ—किन्तु मेरा अनुमान है शीघ्र ही गवर्नमेंट बंगला खाली हो जाये !"

"देखिये, इस बड़े भारी घर में मैं अकेली हूँ। मन न लगने ही की बात नहीं, देश की इस अस्थिर अवस्था में मेरी आशंकाएँ भी बढ़ गई हैं। यदि मेरे पिता यहाँ होते, तो आपका अन्यत्र रहना असम्भव हो जाता। क्या वही प्रार्थना मैं आप से नहीं कर सकती ?"

त्रिलोक को माया के स्वर में कृत्रिमता का लेश भी नहीं मालूम दिया, बोला, "बड़ी सरलता से प्रार्थना तो तुम ने रख दी, क्या उत्तर मैं भी उतनी ही सरलता से दे सकता हूँ ?"

"क्यों नहीं ? आप को क्या कठिनाई है ?"

"मुझे कठिनाई न होगी, इससे दूसरों की कठिनाई तो कम नहीं हो जाती !"

"दूसरों की किस की ?"

"मेरे सिवा सभी की, बल्कि मेरी भी ! तुम्हारे पिता घर पर नहीं

उनकी कार्य-दिशा से सभी परिचित हैं। एक मजिस्ट्रेट तुम्हारे घर आ कर रहे, तो तुम्हारे पिता के प्रशंसक क्या कहेंगे ?"

"पिता के प्रशंसकों से कन्या डरे यह तो कोई बात नहीं, यह भी आवश्यक नहीं कि कन्या के विचार पिता के विचारों के अनुकूल हों ही। हाँ, आपके प्रशंसक क्या कहेंगे, यह तो अवश्य विचारणीय है, नई और बड़ी नौकरी ठहरी।"

"तुम तो ताने कसती हो केवल, वस्तुस्थिति को नहीं समझती। सच बात ही सुनना चाहो तो यह है माया, कि मुझे लोकापवाद का डर है! तुम इस घर में अकेली हो, और यदि मैं यहाँ रहूँ—"

"तो दुनिया क्या कहेगी, यही न ? मैं जानती हूँ कि ऐसी बातें देखते ही दुनिया के बेकार दिमाग में खुजली चलने लग जाती है। पर (माया किंचित हँस कर बोली) क्या आप भी लोकापवाद से डरते हैं ?"

"नहीं डरता हूँ, ऐसा कहा कभी याद तो नहीं पड़ता।"

"पर कर दिखाए से भी इनकार करते हैं क्या ?"

त्रिलोक निरुत्तर हो गया, किन्तु दूसरे ही क्षण उस ने कहा, "वह अवस्था दूसरी थी माया, तब सोचता था कि तुम मुझे प्राप्त करना चाहती हो, तुम्हारी प्राप्ति की आशा पर ही मैंने लोकापवाद का मूल्य स्वीकार किया था। आज बात दूसरी हो गई। वह लोकापवाद मेरे लिए न भी हो, पर तुम्हारे लिए तो है! और तब तुम्हारे पिता भी अनुपस्थित नहीं थे।"

माया ने देखा कि त्रिलोक की बात सही है, बल्कि आगे जिरह करने से तो विपक्ष का स्पष्ट प्रमाण तक पेश किया जा सकता है। एक क्षण चुप रह कर वह सोचती रही। उसने अनुभव किया कि यदि यह समय निकल गया, तो फिर दूसरा समय उसे प्राप्त नहीं हो सकेगा !

बाहर वर्षा धीमी हो गई थी, बल्कि रह रह कर बरस पड़ने वाली एकाध फुहार के सिवा कुछ नहीं था, समय भी एक पहर के लगभग

बीत चुका था। त्रिलोक ने माया की ओर देखा, तब भी वह नीची आँखें किए कुछ सोच रही थी।

त्रिलोक ने कहा, "दुःखित होने की बात नहीं है माया, जब कि मैं यहीं हूं, और एक दायित्वपूर्ण पद पर हूँ तो न तो तुम्हें भयभीत ही होना चाहिये, और न यह ही सोचना चाहिये कि मुझे किसी तरह का कष्ट होगा। अच्छा, आज चलूँ, पानी भी थम गया है। साढ़े नौ हो गये, बेहरा राह देख रहा होगा—"

माया ने हँस कर, "डिनर के लिए पहले ही कह चुकी हूं। होटल का लुत्फ शायद न हो, पर पेट तो भर ही जाएगा!"

"यह तुम ने क्या किया, पूछा तक नहीं?"

"पर अब तो उसके बिना मुक्ति मिलेगी नहीं।"

"तुम्हारी ही सही; पर देख लो जरा—भूख लग रही है।"

"मैं अभी आई।" कहकर माया बाहर चल दी। त्रिलोक ने सिगरेट लगा कर दिगन्त में आँखें गड़ा दीं!

कुछ समय बीत गया। लौट कर माया ने कहा, "कह दिया, यहीं खाना लगा दे। ठीक है न?"

"बहुत ठीक।"

उसके दो मिनिट बाद ही दासी आई, एक ही टेबल पर वह दो थाल परोस गई। दोनों आमने-सामने खाने बैठे।

खाते खाते माया के पैर अनायास ही त्रिलोक के पैर से छू गए। त्रिलोक ने पैरों को हटाना चाहा, माया के पैरों ने जरा रोक लगाई, त्रिलोक के पैर रुक गये। माया पूर्वत खाती रही, त्रिलोक ने भी कोई भाव प्रदर्शित नहीं होने दिया!

माया ने कहा, "कल एक पुस्तक पढ़ रही थी। लेखक ने लिखा था कि स्त्री के हृदय की कथा बड़ी गूढ़ है, उतनी ही गूढ़ है उसकी अभिव्यक्ति: वह कहती कुछ है, या बतलाती कुछ है और उसके हृदय में कुछ और ही होता है!"

"अच्छा ! तुम्हारी क्या राय है ?"

"सोचती हूँ उसने गलत तो नहीं लिखा ।"

त्रिलोक ने हँसकर कहा, "स्त्री बड़ी चतुर होती है । दोनों ही पक्षों में अपनी विजय चाहती है, यदि बात 'चित' हुई तो भी उनकी और 'पिट' हुई तो भी उनकी !"

माया ने कनखियों से त्रिलोक की ओर देखा, वह खाने में दत्त-चित्त था । माया के पैर आप ही आप हिलकर त्रिलोक के पैरों से टकराने लगे, किन्तु त्रिलोक खाता ही रहा ।

माया ने कहा, "फिर भी गूढ़ता जैसी कोई बात स्त्री में दीखती तो नहीं !"

"कैसे ?"

"जैसे मेरा ही उदाहरण ले लिया जाए ! क्या मैं किंचित् भी दुर्बोध्य हूँ ?—चटनी मंगवा दूं ? कुछ तेज है, पर चटनी तो चटपटी ही चाहिए ! है न ?"

"ना, चटनी की मुझे जरूरत नहीं है ।"

"मेरे प्रश्न का क्या उत्तर है ?"

"उत्तर माँगा था क्या ? मुझे हंसी आती है माया ! तुम कहती हो कि तुम दुर्बोध्य नहीं हो, पर किसके लिए ? एक व्यक्ति जब वह बात कहता है, तो अपने ही अन्तःकरण को समझ कर कहता है, दूसरे के अन्तःकरण को समझ कर नहीं ।"

"यह कहना चाहते हो कि तुम्हारे लिए भी मैं दुर्बोध्य ही मालूम देती हूँ ?"

'दुर्बोध्य' शब्द के लिए आवश्यक नहीं कि वह 'अबोध्य' शब्द का अर्थ भी वहन करे । किन्तु माया, कभी-कभी यह भी तो होता कि जब हमअपने आपको सुबोध समझते हैं, तो शायद हम अपने आपको ही न समझे हों !"

"क्या ऐसा सम्भव है !"

"बल्कि यही तो सम्भव है ! जैसे तुम्हींने अभी कहा है कि तुम दुर्बोध्य नहीं हो, कम-से-कम अपने निकट तो अवश्य नहीं । किन्तु आज की हमारी बातचीत, मुझे अपने यहीं ठहराने का तुम्हारा आग्रह, यह भोज यह घनिष्टता—इन सबको देखकर भी क्या कोई विश्वास करेगा कि तुम्हींने एक दिन पिस्तौल की गोली द्वारा मेरे विश्वासघात का प्रतिशोध लिया था ? उस लेखक ने ऐसे ही व्यापारों को सामने रखकर नारी की दुर्बोधता का उल्लेख किया होगा ।"

"किन्तु मेरा वह काम तो अर्द्धचैतन्य का था, क्या आपने इस पर विश्वास नहीं किया ?"

"मैं तो, यदि उसे अचेतन का भी कहो, तो भी मान लूँगा ! किन्तु यही तो स्थिति है, जब मनुष्य अपने आपको भी नहीं समझता !"

"मैं तो इस अर्द्धचैतन्य को सत्य मानने के लिए तैयार नहीं, जबकि पूर्ण चैतन्य के साथ हमारे पास बुद्धि तथा विवेक का पर्याप्त सम्बल साथ रहता है ।"

"उचित तो यही है; और यदि इसी बात पर जोर दिया जाए, तो कोई कारण नहीं कि अर्द्धचैतन्य के लिए भी यही बात लागू न हो !—ना, अब कुछ न लूँगा । खूब पेट भर चुका है; अन्याय होगा ।"

"तो फिर मेरी पिस्तौल वाली घटना तो सत्य नहीं मान बैठिएगा ?"

त्रिलोक ने हँसकर कहा, "उस घटना को तो मैं उसी दिन असत्य मान गया ।"

दोनों ही का भोजन समाप्त हो गया था, किन्तु दोनों ही उसी तरह कुछ क्षण तक चुप बैठे रहे ।

कुछ देर बाद माया ने कहा, "अच्छा, जब कि हम दोनों के मन साफ हो चुके हैं, तो मैं पूछना चाहती हूँ कि क्या सचमुच ही आपने पिता जी के पत्र को मजाक नहीं समझा था ?"

"किस पत्र की कह रही हो माया ?"

"उस पत्र की, जिसके बल पर आपने मेरा दावा किया था !"

"ओह, अपने विवाह वाले पत्र की कह रही हो। पर यह कहो, कि मैं उसे मजाक समझता ही क्यों ?"

"इसलिए कि आपको मेरी वितृष्णा की स्थिति मालूम थी, इसलिए कि यह आपको मालूम था कि मैं हिन्दू-कन्या हूँ, और हिन्दू-कन्या का विवाह एक बार से अधिक नहीं होता !"

"इस भूल का दण्ड तो मुझे मिल चुका है न। किन्तु—"

"सच तो है। आपने शायद यही सोचा कि एक शिक्षित लड़की के लिए सर्वथा सम्भव है कि वह अपने आपको इन संस्कारों के व्यर्थ जाल से ऊपर उठाए। कैसी लज्जा की बात है त्रिलोक बाबू, कि इस दशा में मेरी शिक्षा व्यर्थ ही रही।"

"व्यर्थ रही हो यह बात तो नहीं है। पुरानी बातें सभी व्यर्थ होंगी, यही बात तो शिक्षा नहीं बताती।"

"खैर, यह बात जाने दीजिए। यह बताइए कि क्या आप एक हिन्दू-कन्या के दो विवाह होना सम्भव समझते हैं ?"

"क्यों नहीं ?—सम्भव ही नहीं, मैं तो इसे आवश्यक ही समझता हूँ—कम-से-कम इससे मनुष्य-समाज में जो विषमता फैली हुई है वह तो नष्ट होगी। इसी परिस्थिति का लाभ उठाकर तो पुरुष स्त्री के साथ स्वेच्छाचारिता का व्यवहार करता है।"

आप ठीक कहते हैं त्रिलोक बाबू, मैं समझती हूँ कि मेरे दुर्भाग्य के लिए अधिकांशतः मैं ही जिम्मेदार हूँ।"

"यह तो तुम्हारे ही सोचने की बात है माया; किन्तु यह सत्य है कि यदि नवनीत को आशंका भी होती कि तुम उसकी अवहेलना कर सकती हो, वह कदापि तुम्हारी अवहेलना नहीं कर पाता।"

"शायद आप सच कह रहे हैं; परन्तु—"

"कहो न ! 'परन्तु' क्या ?"

"समाज की बुराई-भलाई को—उसकी समालोचना को भी तो आसानी से दरगुजर नहीं किया जा सकता !"

"यहाँ पर तो शिक्षा की आवश्यकता है। यदि शिक्षा उसे आश्वस्त न कर सके, तो फिर उसकी शिक्षा अवश्य व्यर्थ हो गई।"

"हाँ—"

माया कुछ क्षण चुप रही। कोई विचार उसके ओठों पर आ आकर रुक रहा था।

त्रिलोक ने कहा—"बोलती नहीं?—आज्ञा हो तो उठें?"

माया ने एक लम्बी साँस ली, और कहा—"कभी-कभी व्यक्ति अपने-आपको अधिक-से-अधिक सुबोध बनाने की चेष्टा करता है, किन्तु एक सीमा के आगे उसके प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं—तब उस पर 'दुर्बोधता' का लांछन तो लगाया जा सकता है, पर क्या उस लाँछन को न्याय लाँछन कहा जाएगा?"

"मैं तुम्हारी बात नहीं समझा माया !"

"समझने की चेष्टा भी आपने नहीं की।"—कह कर माया उठ खड़ी हुई—उसका कण्ठ स्वर भारी हो चुका था।

त्रिलोक ने कहा, "बैठो माया, कुछ देर और बैठो। मैं समझने का प्रयत्न करता हूँ, पर तुम्हीं स्पष्ट क्यों नहीं कर देती?"

माया पुनः बैठ गई और बोली, "स्पष्ट करने को अब रहा ही क्या है? जिस स्पष्टता तक नारी की जीभ पहुँच सकती है, उससे आगे और क्या सुनना चाहते हैं?—नारी के लिए क्या वह सम्भव भी है?"

माया ने गर्दन नीची करली। त्रिलोक ने देखा कि बिजली की प्रतिलिपि में माया की नत दृष्टि चमक उठी है।

कुछ क्षण चुप रह कर त्रिलोक बोला, मैंने कहा न था कि व्यक्ति कभी-कभी अपने ही निकट अबोध्य तक बन जाता है! वह नहीं समझता कि वह क्या कह रहा है!"

"यानी, आपका तात्पर्य?"

"यही कि जिस अवस्था में पहुँच कर, तुमने मुझे पिस्तौल मारी थी, उसी अवस्था में तुम आज फिर पहुँच गई हो। तुम्हारी बातों को मैं प्रारंभ ही से आशंका-युक्त देख रहा हूँ, और आश्चर्य करता रहा हूँ कि मैं माया से बात कर रहा हूँ या किसी और से!"

माया किंचित् हँसकर बोली—"मैं वास्तविक माया ही हूँ त्रिलोक-बाबू, समस्त विवेक बुद्धि और चैतन्य के साथ।"

"जब तुम कह रही हो तो सच मानना ही पड़ेगा।"—कहकर त्रिलोक फिर चुप हो गया।

माया ने अपनी लज्जा की भावना को यथा साध्य दूर करके कहा, "संस्कारों का बन्धन बड़ा दृढ़ होता है त्रिलोक बाबू! शिक्षा का कवच भी उसके आघात नहीं सह सकता, यह मैंने सोच देखा है। केवल अहेतुक संकल्प ही इसकी विश्व-विजयी केतु को झुका सकता है। किन्तु वह संकल्प भी साधारण व्यक्ति प्राप्त करे कहाँ से? समाज का भय, लोगों की निन्दा, आत्मीयों की भर्त्सना—किन्तु मैंने स्थिर कर लिया है, नारी के पतन में मैं एक धक्का और न दूँगी। इन समस्त बंधनों को छिन्न करके ही तो नारी उत्थान के पथ पर आगे बढ़ सकती है।"

"समझ रहा हूँ। आगे तुम कहोगी कि जिस समय मैं विवाह का प्रस्ताव लेकर तुम्हारे निकट उपनीत हुआ था, उस समय तुम इसी संकल्प को प्राप्त करने की चेष्टा कर रही थी, और आज तुमने वह संकल्प प्राप्त कर लिया है। ठीक न? किन्तु—"

"कहिए, रुक क्यों गए?"

"सोच रहा हूँ कि कहूँ या न कहूँ। अर्द्ध चैतन्य में तुम विश्वास करती नहीं, तुम विश्वास करती हो सम्पूर्ण चैतन्य में—"

"यानी, कि मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह बनावटी है?"

"बनावटी नहीं। किन्तु जैसा कि मैंने कहा था कि व्यक्ति कभी-कभी स्वयम् अपने आपको नहीं समझ पाता। उस समय आवश्यक है कि जो उसे समझा हो, वही उसे भी ठीक तौर से समझा दे।"

"त्रिलोक बाबू, दुर्बोध्य तो आप ही अधिकाधिक बनते जा रहे हैं आपका मतलब में नहीं समझी।"

"उसकी बहुत अधिक आवश्यकता भी नहीं है। मैं मानता हूँ कि अपना संकल्प रख कर तुम संस्कारों से ऊपर उठ रही हो, किन्तु क्या यह सही है? जिसे संस्कारों से ऊपर उठना कहते हैं, वह तो बिलकुल ही दूसरी बात है। संस्कारों से ऊपर उठना वह किसी बात की प्रतिक्रिया नहीं होती, वह स्वयम् अपने आपमें एक प्रेरणा है! यदि संस्कारों का बन्धन न होता, तो आज तुम नवनीत से मुक्त होकर दूसरे खूँटे से बँध जाना कभी पसन्द नहीं करती। तुम्हारे हृदय की बुभुक्षित-नारी तो अभी वही संस्कारशील अबला दासी है। यह मत समझो कि मैं तुम्हारी भर्त्सना कर रहा हूँ। तुम जानती ही हो कि एक दिन यही सम्वाद मेरे लिए अत्यन्त आनन्द और गौरव का होता; और आज भी होता यदि मैं तुम्हारे भविष्य के सुख की कल्पना से आँखें मूँद लूँ।"

"त्रिलोक बाबू!"

"कातर न होओ माया! हिन्दुओं के विवाह में चाहे भावुकता ही हो, किन्तु वह भावुकता ही तो मनुष्य-जीवन की खुराक है, इसके बिना वह जी नहीं सकेगा। मृग तृष्णा में जल ढूँढ़ने से कुछ लाभ नहीं होता, जो वस्तु तुम्हें प्राप्त है, केवल एक गलतफहमी से उसे खो देना कभी बुद्धिमानी नहीं है। मेरा कहा मान कर तुम एक बार अपना समस्त अभिमान धो-पोंछ कर नवनीतलाल के निकट जाओ, तुम देखोगी कि वह भी तुम्हारी ही भाँति चरम-बुभुक्षा में तड़प रहा है।—तुम चाहो तो मैं ले चलूँ तुम्हें?"

माया ने कहा "धन्यवाद; मैं शकुन्तला-प्रत्याख्यान का नाटक नहीं दुहराना चाहती शाङ्गरव!"

"किन्तु उसी को पाकर दुष्यन्त धन्य हुए थे माया!"

"रहे ये बातें त्रिलोक! यह कहिए, मैंने सुना कि आपका पन्ना के साथ विवाह हो रहा है, यह सच है?"

"अभी तक तो मैंने स्वीकृति नहीं दी; पर तुमसे माँग कर अब उसे दे दूँगा।"

"तो यह क्यों नहीं कहते, इतने शब्दों का छल तो अपेक्षित न होता।"

"यह तुम्हारी क्रोधित होने की बात है। मैंने कहा न कि पद्मा को अभी तक मैंने कोई आशा नहीं दी। अब भी उसे केवल इसलिए देना चाहता हूँ कि तुम मेरे भ्रम से मुक्त हो सको।"

"जरूर होऊँगी त्रिलोक बाबू! जब वे ही नहीं बाँध सके, तो और क्या कोई बाँध सकेगा!" यह कहते ही उसकी आँखों में एक अभूत पूर्व गर्व चमक उठा। फिर बोली, "समय बहुत हुआ। मैं उठूँ?" माया उठ खड़ी हुई; त्रिलोक भी उठ गया।

माया ने हँसकर कहा, "महाशय, माया प्रयत्न करेगी कि वह इन क्षुद्र संस्कारों से ऊपर उठे, प्रतिक्रिया के रूप में नहीं, प्रेरणा के रूप में। किन्तु यदि बहन समझ कर भी आप कभी-कभी दर्शन दे जाया करें, तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।"

माया ने पान की तश्तरी आगे बढ़ा दी। हँसते हुए त्रिलोक ने कहा, "धन्यवाद, पर इतनी जल्दी भूल गई? मैं पान कहाँ खाता हूँ!" फिर उन्होंने जेब से सिगरेट निकाली और मुँह में दबा कर उसे जला लिया।

"क्षमा करना माया, यदि मैंने तुम्हारे हृदय को चोट पहुँचाई हो। यदि ऐसा हुआ हो तो सचमुच मुझे खेद है; परन्तु मैं ठीक तरह समझता हूँ मैंने तुम्हारे सम्मान को अक्षुण्ण ही रक्खा है। अच्छा नमस्ते; फिर दर्शन करूँगा।"

त्रिलोक बाबू नीचे उतर गए, दूसरे ही क्षण मोटर के घर्र-घर्र शब्द के साथ भोंपू की आवाज हुई, और मोटर चल दी।

माया ने एक क्षण अपनी ओर दृष्टि डाली; ड्रेसिंग टेबल के सामने जाकर दर्पण में उसने अपना प्रतिबिम्ब देखा, और वह सिहर उठी।

"डूब क्यों नहीं गई माया, तू यमुना के अतल जल में!—अपने मुँह से प्रेम की भिक्षा, और पुरुष का यह दम्भ कि वह भर्त्सना कर

के चला जाए ! पतन को और कौनसी क्षुद्रता का पता लगाना शेष है नारी !—पर नहीं, ऊपर, पुरुष के इस दम्भ से ऊपर उठना होगा !" उसके आर्द्र नयनों में बिजली का प्रतिबिम्ब उद्भासित हो उठा था, उसने आँसू पोंछ लिए। सम्मुख टेबल पर नवनीतलाल का आवक्ष चित्र रखा हुआ था, उसे उठा कर उसने फर्श पर फेंक दिया, फिर पैर से दबा कर चूर-चूर कर दिया; कुछ देर तक शून्य दृष्टि से उसकी ओर देख कर फिर उसे खिड़की के नीचे फेक दिया।

अराजक की सभानेत्री माया देवी ने क्रोध के मारे दाँतों से अपने ही ओठ काट डाले। बालों की लटें आप ही आप मुक्त हो गईं, मानों संपेरे को पिटारी में से क्रुद्ध नागिनें डसने को निकल पड़ीं। कुछ देर बाद जब वह कुछ प्रकृतिस्थ हुई, तो अराजक दल के आवश्यक कागजों में एक घटना का मनन करने लगी—मानपुर की घटना का।

मध्याह्न का तेजस्वी सूर्य कुछ मन्द हो गया था। वर्षा के सजल गम्भीर बादलों से निर्मुक्त आकाश अधिकाधिक गहरा नीला होता जा रहा था, और कुछ पश्चिम की ओर झुके खण्ड में सूर्य के प्रखर प्रताप की तूती इस समय भी प्रचण्ड-स्वर में उद्घोष कर रही थी। कहना कठिन है कि ग्रीष्म का यह उच्छ्‌वास वर्षा के आगमन का पुरोहित था, या उसके अतीत-साम्राज्य का वैभव पूर्ण सन्यासी !

सुदामापुरी के ऐश्वर्य-बहुल समाज में इस समय अपेक्षाकृत शांति थी। समस्त-स्नेह के लीला-सन्दोह भगवान् अपने राज भोग से निवृत्त होकर सुख-शैया में शयनावृत थे, अतः राजगृह के सभी अधिकारी-कर्मचारी भी निद्राकुल थे. या अब तक की परिचर्या की क्लान्ति से मुक्ति पाने के लिए किसी सावकाश-प्रकोष्ठ में विश्राम कर रहे थे।

आलान के दक्षिण-पार्श्व में एक सुन्दर कमरे में सखी समाज की विशिष्ट अधिकारिणी तीन महिलाएँ—ललिता, चन्द्रावली और विशाखा—एक ओर अलस शांति में बैठी हुई थीं, और उनके सामने ही नीलम और आरती अपनी आँखों और हृदय में उत्सुकता भरे हुये उन

की ओर ताक रही थीं। अतिथियों के स्वागत के हेतु ही धूप का सुवासित धूम सारे प्रकोष्ठ को आवृत किये हुये था। सम्पूर्ण प्रकोष्ठ किसी जादू के शिल्प से सज्जित दिखाई देता था—संगमर्मर के फर्श पर एक बहुत बढ़िया दरी बिछी हुई थी, उस पर काश्मीर का गलीचा पड़ा हुआ था; एक ओर दुग्ध-निभ गाव तकिये रखे हुये थे, बीच में सेमल की रुई से भरे मखमल के छोटे-मोटे चित्रित तकिये इधर-उधर बिखरे पड़े हुये थे। नील रंग से दीवारें रंगी हुई थीं, और उनके ऊपर चारों ओर कृष्ण-लीला के कई चित्र शोभित थे—छत में बिलकुल शीर्ष पर एक रासलीला का बड़ा ही भाव पूर्ण चित्र अंकित किया हुआ था, और बीच बीच में कई कड़ियों से कांच के झाड़ लटक रहे थे, जिन में रात्रि के समय कई प्रकाश-रश्मियाँ विद्युल्लेखा की भांति चमक उठती थीं।

तीनों देव दासियाँ भी यही शब्द इन के लिये उपयुक्त मालूम देता है, इस ऐश्वर्य की चका-चौंध से अछूती नहीं हैं। उनका आज का शृङ्गार उस रात्रि जैसा पागल बना देने वाला नहीं, किन्तु नयनों को रंजित करने वाला पवित्रता और उल्लास से पूर्ण है। स्निग्ध कृष्ण-चिक्कण कचभार में आज चन्द्रक चर्चित सीमन्त रेखा स्पष्ट नहीं है—निरायास बँधे हुए जूड़े के मूल में केवल कुछ कुन्द की कलियाँ प्रसन्नता से हँस रही हैं। कोमल कलाइयों में मणि बन्धों की जगह सोनजुही के गजरे पड़े हुए हैं। हृदय के ऊपर उल्लास से नाचता हुआ आज वह रत्नों का हार भी नहीं है, प्रत्युत कोमल किशलयों की गोद में सोए हुए उत्फुल्ल पाटल की वनमाला ही उनके गलों में झूल रही है। कन्धों पर आधृत उनकी कौषेय साड़ी अपने हरित रंग में प्रकृति के मुखरित आनन्द का परिचय दे रही है। तीनों युवतियाँ वनकन्या के समान ही वर्षा के पूर्ण यौवन में निखर रही थीं।

उनके सहज-स्वभाविक रूप में भी कोई प्रभूत प्रयत्न न था, किंतु वह सहज गौर कांति किसी आयास की अपेक्षक भी नहीं थी। अपराह्न के सूर्वोज्ज्वल प्रकोष्ठ में उनका वह निराभरण रूप, स्नेह की दीप्त कांति

से, लहरों के ऊपर तैरते हुए प्रफुल्लित पद्म के समान अपनी ज्योति फैला रहा था। कहना न होगा, तीनों युवतियाँ थीं, यौवन के ज्वार पर।

सामने बैठी हुई अन्य दो नारियाँ—नीलम और आरती—अपने सौन्दर्य को अपने ही में समेट कर नितांत शान्ति का व्याज मुँह पर धारे हुए इन तीनों असाधारण रमणियों से बात-चीत में रत थीं। इनके ऐश्वर्य की परिधि का संकोच वस्तुतः उन देव दासियों के प्रकीर्ण सौंदर्य के कारण न था—प्रत्युत कुण्डलीकृत सर्प की आत्म-निविष्ट कांति की भांति उनके ऐश्वर्य की दीप्ति बाहर नहीं फैलने पाती।

इन सुरूपा, ऐश्वर्य-प्रभूता देवकन्याओं के इस अहेतुक त्याग को अपनी सहज उत्सुकता का आधार बनाकर जब आरती और नीलम ने यहाँ तक आने का कष्ट स्वीकार किया और इन से बात-चीत प्रारम्भ की तो इन नारियों ने भी, जो सांसारिकता में इतनी रंगी जाकर भी अपना पृथक् अस्तित्व रखती आई हैं, उनके प्रति अपना समस्त अन्तर स्पष्ट कर दिया। अवश्य ही अन्तर कोई रहस्य की बात नहीं थी। तीनों के विषय में लगभग एक ही बात थी कि उनके आत्मवृत्त का गवाह उनके गुरु के अतिरिक्त और कोई नहीं है। उनके माता-पिता निश्चय ही उच्च-कुल संभूत हिन्दू रहे होंगे, उन्होंने इनको चैतन्य-लाभ करने के पूर्व ही देव सेवा के लिए इन गुसाइं जी को समर्पित कर दिया था। वे इसी वातावरण में इन्हीं महात्मा द्वारा पाली-पोसी और बड़ी की गई हैं—बल्कि विशाखा जो इन सब में छोटी है, अभी तो तेरह वर्ष की बालिका ही है, जीवन के विविध बोधों को ओर उसका चैतन्य अभी जागृत ही नहीं हुआ है।

नीलम ने अपने व्यंग्य को यथा साध्य छिपाकर कहा—"तुम बड़ी सौभाग्यवती हो बहन, जो इस तरह अनायास ही देव सेवा में नियोजित होने का अवसर प्राप्त कर सकी हो। पर सच कहो, क्या हम रे इस महिमामय संसार की तुम्हें याद ही नहीं आती? विशाखा की

बात जाने दो, किन्तु तुम्हारा चैतन्य तो जगत् के विविधि-बोधों की ओर जागृति अनुभव करता होगा ?"

नीची दृष्टि ही से ललिता ने कहा—"सच है कि जीवन और जगत् के विविध-बोधों से हम अनभिज्ञ नहीं, किन्तु बहन, यह सम्पूर्ण शरीर, उन बोधों से युक्त या वियुक्त, सब अवस्थाओं में भगवान् के निकट उत्सर्ग हो चुका है। ये सभो विबोध अनुभव होते हैं, किन्तु उन्हीं पूर्णात्पर गोपीजन वल्लभ की सोमा के भीतर।"

"क्रोधित न होना बहन, तुम्हारे इन गोपीजन वल्लभ कृष्ण का यश तो बहुत सुना है। किन्तु क्या इस स्थूल-मांसल शरीर की अदम्य आकांक्षाएं दमन करने में भी तुम समर्थ हो जाती हो ? वस्तुतः, यह उन्निद्रमान् यौवन, और इसकी ज्योति को सहस्रमुख करने वाला यह विलास, विश्रब्ध-विश्राम के ये विपुल उपकरण—"

सचमुच ही ललिता क्रोधित नहीं हुई। उसने संयत चित्त से कहा 'विलास' और 'विश्रब्ध-विश्राम' शब्दों का प्रयोग तुमने पवित्र-भाव से नहीं किया बहन ! किन्तु इसके लिए हम तुम्हें दोष नहीं देतीं। कुछ वैष्णव मठों का शायद ऐसा ही पापाचार पूर्ण वर्णन तुम्हें सुनाई दिया हो मैं यह नहीं कहती कि उसमें कुछ गलती है, किन्तु एक ही पैमाने से सब वस्तुओं को नापना अवश्य गलती है। सचमुच तो हम किसी की गन्दी मनोवृत्ति की चिन्ता नहीं करतीं, हमें दुनिया से सरोकार ही क्या ? किन्तु देखती हूँ कि आप दोनों के दिलों में इस स्थान के प्रति थोड़ा मनोनिवेश है, इसलिए मेरी प्रार्थना है बहन, कि तुम किसी भी राय को अनायास बिना विचारे अपने मन में स्थान न दो। यदि थोड़ा-बहुत भी तुम मन को स्वच्छ रखकर हमारे कार्यों की समीक्षा करो, तो तुम्हें इस आश्रम की पवित्रता के बारे में सन्देह न रहेगा।—यदि मन के निर्लिप्त-भाव से आप कोई प्रश्न करेंगी तो उसका उत्तर स्पष्ट और सत्य शब्दों में निवेदन कर दिया जायेगा।"

ललिता के इस स्पष्ट कथन का आरती पर गहरा प्रभाव पड़ा,

किन्तु नीलम के चेहरे पर ऐसे किसी भाव का दर्शन न हुआ। आरती ने सोचा कहीं नीलम ललिता की बात का प्रतिवाद न करने लग जाए, इसलिए वह बोल उठीः—

"इस जलमुँही की बातों का बुरा न मान जाना दीदी! अकल-वकल तो इसमें कुछ है नहीं; ढेर की ढेर अंगरेजी पुस्तकें जरूर पढ़ी हैं! परन्तु एक हाड़-मांस के आदमी तक को समझने में धोखा खा गई। यह क्या समझेगी कि भगवान् किसे कहते हैं! हम जैसे पठित मूर्खों को ईश्वर, धर्म और दर्शन में अन्तर ही कैसे मालूम हो!—ईश्वर यानी वैराग्य, घरबार छोड़कर वनवास—इसलिए यहाँ पर भगवान् के निमित्त यह जो ऐश्वर्य इकठ्ठा हो गया, इसी असङ्गति को यह गरीबिन देख नहीं सकी—और यही—क्या मैं भी इसे समझ सकी होऊँ, सो बात नहीं है। समझा दो न हमें दीदी?"

ललिता ने कहा—"यह बताओ, यह वैराग्य-वृत्ति जिसका अभी तुम ने उल्लेख किया है, प्रत्येक व्यक्ति सरलता से स्वीकार कर लेता है?"

"प्रत्येक तो नहीं, पर कोई कोई तो कर ही लेता होगा। परन्तु सरलता से तो कोई स्वीकार करता सम्भव नहीं दीखता।"

"क्यों ऐसा क्यों है बहन?"

"शायद इसलिये कि इसमें कठिनता है। मनुष्य का मन सुख और सरलता ही चाहता है न।"

"यानी मनुष्य की सहज चेतना सुख और सरलता की अनुगामिनी है, यही न?"

"हाँ दीदी।"

"मनुष्य की इस सहज-चेतना को हम सत्य मानते हैं। तब बताओ मनुष्य-मन के स्वभाव के विरुद्ध जो कृच्छ्र-साधना की जाती है, वह असंगति है, या यह कार्य जो उसके अनुकूल है?"

नीलम ने कहा, "किन्तु दुनिया की चीजें तो दुनिया ही में घसीटेंगी न!"

"दुनियां में पैदा होकर क्या दुनिया से बाहर जाया जा सकता है? मृत्यु के पहले तो वह सम्भव नहीं दीखता।"

नीलम ने कहा, "इसीलिए तो मैंने कहा था बहन, कि इस मांसल-शरीर की अदम्य वासनाएँ, जो कि इस दुनियां में रहने से स्वभावतः ही पैदा होती हैं, तुम कैसे शमन करती हो! या तुम्हारा मतलब है कि वे तुम्हारे हृदय में उत्पन्न ही नहीं होती?"

"जो बात होती है उसे हम अस्वीकार नहीं करते। किन्तु क्या मैंने यह नहीं कहा कि हम इन वासनाओं के साथ ही अपने अहम् को इस महादेवता के चरणों में विसर्जित कर देती हैं?"

"क्या उस विसर्जन से वासनाओं का विसर्जन भी सिद्ध हो जाता है?"

"नहीं बहन, किन्तु यह भी तो मैंने कहा था कि इन समस्त वासनाओं की लीलाभूमि भी वह परमात्मा ही है।

मालूम नहीं, परमात्मामें संतुष्टि की कितनी क्षमता है बहन! किन्तु हम मूर्ख जनों को तो भाव के शून्य क्षेत्र के आगे परमात्मा की केवल यह कुलिश कठोर प्रस्तरमूर्ति ही स्पष्ट दिखाई देती है। इनके इस शिथिल-स्पर्श से आकांक्षाओं का हृदय तो रोमांचित नहीं हो सकता।"

पीछे से चन्द्रावली में कुछ गति-सी प्रतीत हुई—नीलम ने अपनी दृष्टि की अनुवीक्षणता से शीघ्र ही समझ लिया कि चन्द्रावली के हृदय में उसके प्रश्न से रोष की दीप्ति हो उठी है। किन्तु ललिता ने इशारे से चन्द्रावली को रोक दिया और कहा—

"मैं तुम्हारे कथन से रुष्ट नहीं हुई हूँ, यद्यपि हम हमारी साधना के स्वामी के प्रति इस प्रकार के भावहीन सम्बोधनों का प्रयोग होना पसन्द नहीं करतीं।"

आरती भी नीलम के उत्तर की कड़वाहट से तिक्त हो उठी, उसे इन सरल-सौम्य युवतियों से बन्धुत्व होगया अनुभव हुआ। किन्तु इस के पहले कि वह कुछ कहे, नीलम बोल उठी, मैंने भी वह बात रुष्ट

करने के लिए नहीं की बहन, एक साधारण तटस्थ प्रेक्षक का जो विचार हो सकता है, वह शुद्ध निरपेक्ष भाव से तुम्हारे सम्मुख मैंने रख दिया है। यदि तुम्हारी भावुकता को चोट पहुँची हो, तो मैं क्षमा चाहती हूँ।"

विशाखा, तेरह वर्ष की लड़की, जीवन की इन गम्भीर समस्याओं में योग नहीं दे सकी। वस्तुतः यह उनके दिवा-निद्रा का समय था। और दिन तो वह सदैव जागती रहकर इनकी दिवा-निद्रा का विघ्न बना करती थी, किन्तु जब वे आज स्वयं ही जाग रही हैं, और जागकर उसकी जागृति के आनन्द का विघ्न बन रही हैं, तो वह स्वयं ही लेट गई, और लेट कर सो भी गई।

ललिता ने कहा—"दिखाने के लिए तो हमारी साधना है नहीं बहन, वह तो आत्म-प्रसादन के लिए है। अतः कहकर न हम ही तुम्हें प्रतीति करा सकती हैं, न तुम ही उसे समझ सकोगी। शायद हमारे गुरू तुमको अधिक बता सकें। पर वे भी कहते हैं कि विश्वास बहुत बड़ी चीज है इस मार्ग में।"

आरती ने कहा,—"बहन सामान्यतः हमारे यहाँ बातचीत के लिए उचित विशेषण 'आप' है। 'तुम' शब्द का प्रयोग या तो बहुत अधिक निकटता के सम्बन्ध में प्रयुक्त होता है, या फिर बहुत ही अधिक छुटाई-बड़ाई के अवसर पर। इस समय तो समझ ही नहीं पड़ता कि हमारे बीच यह 'तुम' शब्द किस बल से घुस आया, किन्तु राग-द्वेष से ऊपर तुम्हारी इन भावनाओं को देख कर मुझे संकोच हो रहा है कि हमें, सामान्य परिस्थितियों की बात छोड़ दी जाए, तो भी तुम्हारे प्रति आदर की भावना से 'आप' शब्द का ही प्रयोग करना सर्वथा उचित था। अब तो प्रसन्नता ही होती है कि इस 'तुम' शब्द ने हमें तुम्हारे अधिक निकट ही पहुँचा दिया है। कहे देती हूँ, क्रुद्ध न हो सकोगी। एक बात और भी है। ज्ञान के मार्ग में हमारा प्रवेश पहला ही समझो बहन! —अतः यदि कोई प्रश्न ठीक तौर से न रक्खा जाए तो यही समझना

कि वह हमारे अज्ञान के कारण है, हमारे हृदय के मालिन्य के कारण नहीं।"

ललिता ने हँसकर उत्तर दिया, "बहन कह चुकी हूँ; सो नाराज होने के लिए नहीं। वैसे तो रुष्ट होने की शिक्षा हमें गुरु से मिली ही नही, बल्कि अवसरों पर उपस्थित होनेवाले रोष को दबा देना ही मुझे सिखाया गया है। उसे शमन करने का थोड़ा-बहुत अभ्यास भी होगया है, तब तुम्हारे हृदय के निर्माल्य पर ही क्यों अविश्वास करूंगी।"

नीलम अप्रतिभ होगई, नत दृष्टि ही से उसने उत्तर दिया, "धन्य-वाद!"

आरती ने पूछा, "तो बहन, अपनी भावना की मोटी मोटी बातें ही बताओ न? मैं विश्वास का मर्म समझती हूँ।"

ललिता ने कहा, "तो तुम्हारा कल्याण होगा। सम्भव है संसार में ऐसे बहुतेरे व्यक्ति हों जिनका भगवान् के अभाव में काम चल जाता हो, किन्तु अभी भी दुनिया में इतना राग-द्वेष है, इतना पाप-पुण्य है, इतना सुख-दुःख है, कि यहां एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता है जो इन भावनाओं से ऊपर हो। यदि तुम इसे कल्पना मानती हो तो ईश्वर ऐसी ही एक कल्पना है; और यदि सत्य मानती हो तो वह एक ऐसा ही सत्य है।"

"पर यदि उसे कल्पना ही माना जाए तो उसका महत्व?" नीलम ने पूछा।

"जो महत्व कल्पना का होता है।"

"परन्तु वह महत्व तो कुछ नहीं हैं, कम-से-कम उसमें सत्य तो नहीं होता!"

"तुम विदुषी हो नीलम बहन! ढेर की ढेर पुस्तकें पढ़ चुकी हो, तुमसे छिपा हुआ शायद ही कुछ हो, परन्तु क्या यही मानती हो कि कल्पना में सत्य नहीं होता!—सचमुच यही मानती हो?"

"इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं। शायद कविता की बात

हो, तब तो उसमें कल्पना का महत्व स्वीकार करूंगी; किन्तु इस दैनिक जीवन में कल्पना का महत्व कैसे दिखाई देगा, यदि उसमें सब कुछ कल्पना ही हो ?"

नीलम के कथन में जो ज्ञान के गर्व की गन्ध थी, उसे ललिता ने दरगुजर कर दिया, जिससे कि उसके ओठों पर एक क्षीण हास्य की रेखा भी प्रस्फुटित हो गई। आरती ने इस हास्य-रेखा को भी लक्ष्य कर लिया, किन्तु नीलम ने ध्यान नहीं दिया।

ललिता ने कहा—"यही तो कठिनाई है कि जब तुम मेरे जीवन के बारे में पूछना चाहती हो, तो मेरे जीवन की धारा ही को ध्यान में नहीं लाती। मैं मानती हूँ, तुम लोगों के जीवन में भावुकता को स्थान नहीं हो सकता है, किन्तु मैं तो तुम लोगों के जीवन की बात नहीं कह रही हूं, मैं अपने जीवन की बात कह रही हूँ, जिसका अथ और अन्त कल्पना और भावुकता पर ही निर्भर करता है सखी! यह तुम बाद में जान सकती हो कि तुम्हारे जैसे भौतिक शरीर से बंधी होकर भी हम कल्पना की खुराक पर कैसे जी लेती हैं! वैसे तो जानती ही होगी, सारा ही तो भविष्य कल्पना के ऊपर निर्भर करता है। और क्या बिना भविष्य के ऊपर दृष्टि रक्खे वर्तमान का एक पदक्षेप भी सम्भव है ?"

नीलम ने कहा, "यदि मुझ में अपने 'वर्त्तमान को अपने अनुकूल बनालेने की क्षमता है, तो मैं भविष्य की तनिक भी चिन्ता नहीं करूँगी। पर जाने दो, अपनी ही बात कहो बहन !"

अब तक चुप बैठी हुई चन्द्रावली अब अधिक चुप न बैठ सकी। उसने कहा, "यदि आप हमारा उपहास करने आई हैं, तो हम आपको दोष न देंगी। किन्तु यदि इस पथ में आपको श्रद्धा ही नहीं है, तो आपकी ये जिज्ञासाएँ क्या आपकी उपहास-लालसा को शमित कर देंगी? किसी की भद्रता का दुरुपयोग करना यही क्या नागरी सभ्यता का उपजीव्य है ?"

ललिता ने आँख के स्निग्ध संकेत से उसे आगे बोलने से रोक दिया

फिर कहा—"इसकी बातों पर कान न देना बहन ! जरा अधिक स्नेह ने इसे असहिष्णु बना दिया है। मैं इस की ओर से क्षमा मांग लेती हूँ।"

आरती ने कहा,—"बल्कि क्षमा हमें ही मांगनी चाहिये। मैं एक बात बता दूँ दीदी, इससे हमारे हृदय की पवित्रता में तुम्हें सन्देह न रहेगा। बात यह है कि हम दोनों ही मनस्ताप के मारे अशांत होकर आपके आश्रम में आई हैं। यदि यहाँ पर हमारी चित्तवृत्ति से सन्तोष के लिए कोई मार्ग मिल जाए तो हमारा ही कल्याण होगा। इसलिए यह कष्ट दे रही हैं—हम।"

ललिता की अप्रतिहत नम्रता से नीलम प्रभावित न हुई हो, यह बात नहीं; किन्तु आरती के इस दैन्य-दर्शन से वह कम लज्जित हुई हो, यह बात भी नहीं। ललिता ने तभी कहा—

"तुम लोगों के मनस्ताप की बात सुनकर मुझे सचमुच ही शोक हुआ है आर्ये! किन्तु तुम्हारे स्पष्ट-कथन का अविश्वास करूँगी, यह प्रतीत तुम्हें कैसे हो गई। मुझे तो गुरु से मनुष्य-मात्र का विश्वास करने की शिक्षा मिली है। रही तुम लोगों की चित्त-वृत्ति के सन्तोष की समस्या, वह हम अज्ञाओं की बातों से कैसे हल होगी, विशेषकर उस अवस्था में जब कि तुम-जैसी सुसंस्कृत-विदूषियाँ सामने हों।"

चन्द्रावली ने विशाखा को जगाकर कहा, "मैं जानती हूँ दीदी, सायाह्न-पूजा का आयोजन प्रारम्भ करना है—" इसके बाद ललिता की आँखों का क्षीण संकेत समझ कर वह अतिथियों की ओर मुड़ी, "यदि आप आज्ञा दें तो आप के सन्ध्या-प्रसाद का प्रबन्ध यहीं कर दिया जाए। कदाचित आप को लौटने में विलम्ब हो।"

ललिता ने अनुरोध भरे स्वर में कहा—"यदि आप आई हो, तो हमारे व्यस्त जीवन का यह अंश भी देख लो, और सच कहती हूँ, भगवान् का प्रसाद स्वीकार करने से मेरे गुरुदेव को अमित प्रसन्नता होगा।"

नीलम ने कहा—"कष्ट न करो बहन। हम ठीक समय पर घर पहुँच जाएंगी।"

"इस में कष्ट क्या है। वस्तुत: यही जीवन तो हमारी सार्थकता का जीवन है। जाओ चन्द्रावली, दोनों आयुष्मतियों का प्रसाद यहीं होगा।"

चन्द्रावली और विशाखा दोनों बाहर चली गईं। प्रकोष्ठ में अब केवल ललिता ही इन दोनों तेजस्विनी महिलाओं के प्रश्नों का समाधान करने के लिए बैठी रही, किन्तु इसके मन का आन्तरिक प्रकाश ललिता के चेहरे को उज्ज्वल किये हुए था, उनकी तेजस्विता के सम्मुख इसकी शीलता ही कमरे में अधिक प्रभविष्णु हो रही थी।

ललिता ने कहना प्रारम्भ किया, "कहते हैं कि मनोविज्ञान ने कल्पना के बारे में कुछ शोध किए हैं, तुम जो जानती ही होगी उन्हें नीलम?"

"कहती जाओ।" नीलम ने कहा।

"शायद वे कहते हैं कि जब स्थूल जगत् में मनुष्य की इच्छाओं की अपने आदर्श के अनुकूल पूर्ति नहीं होती, तो उन इच्छाओं का समूर्त्त निरूपण स्वप्न के रूप में, या कविता के रूप में—और कभी २ अन्य न समझे जाने वाले कुछ रूपों में भी सिद्ध होता रहा है। क्या यह ठीक नहीं?"

"ठीक है। कभी कभी वे अतृप्त इच्छाएं विकृत-रूप में भी प्रदर्शित होती हैं।"

ललिता ने थोड़ा हँसकर कहा, "हाँ, यह मैं भूल गई थी। तो नीलम यह तो तुम मानोगी ही कि इच्छाओं द्वारा गढ़ा हुआ यह आदर्श बड़ा शक्तिशाली होता है, चाहे यह काल्पनिक ही हो! और काल्पनिक तो होता ही है, प्राप्त किया जाने वाला आदर्श भविष्य की कन्दरा ही में तो अवस्थित है। रही कल्पना की बात, सो तभी तक तो वह कल्पना है जब

तक कि वह कार्य में परिणत नहीं हो जाती, नहीं तो उसे सत्य कौन न मानेगा ?"

नीलम ने जाहिर किया कि वह आगे सुनने को उत्सुक है। आरती ने सिर हिलाकर उस मन्तव्य को स्वीकार किया।

ललिता कहती रही, "शास्त्र क्या कहते हैं, सो शायद हम लोगों के समझने की बात नहीं, किन्तु वृहत् मनुष्यों के एक शाश्वत-आदर्श की कल्पना के रूप में उस शक्तिशाली ईश्वर का सत्य हमारे सामने है। हमारी वासनाओं का संसार वह अभावमय दूरी है, जो इस शक्ति के सीमित पुतले मनुष्य और सर्व शक्तिमान् परमात्मा के बीच में अतृप्ति की शून्यता में अवस्थित है। जिसे इस जगत में पाप कहकर पुकारा जाता है, वह है उस अतृप्ति की विकृति, और जिसे पुण्य कहा जाता है, वह है उस आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न! बस, एक भौतिक दृष्टि से इससे अधिक ईश्वर के बारे में सोचना मैंने नहीं सोचा है बहन।"

ललिता चुप हो गई। कहा नहीं जा सकता कि यह सर्वथा नया सिद्धान्त नीलम को ग्राह्य हुआ या नहीं, किन्तु जिस नारी को वह अभी तक एक सामान्य अज्ञनारी समझती आई है, उसकी प्रतिभा का सिक्का उसे स्वीकार करना पड़ा।—ललिता अभी तक भरसक अपने आप को छिपाती आई है, उसने दर्शन के निगूढ़ सिद्धान्तों का आधार भी लिया है, किन्तु ज्ञान के गर्व में नहीं, प्रत्युत प्रज्ञा की विनय में। और मनस्तोष के लिए उसकी यह व्युत्पत्ति निर्बल भी नहीं है।

ललिता ने कुछ क्षण चुप रहकर कहा—"यदि ईश्वर को कोई इतना स्वीकार करले, तो वह इस 'मोक्ष' के रहस्य को भी समझ सकता है। ईश्वरमय होने का अर्थ ही 'पूर्णमिन्दम्' होता—अपने आदर्श को प्राप्त होना—है, और उस पूर्णता को प्राप्त करने के पश्चात् ही जीवन को निरिच्छ, निर्विकार, निराभय कहने में किसी को आपत्ति ही क्या हो सकती है ?"

सूर्य पश्चिमाकाश में आगे बढ़ गया था, उसकी असह्य गरमी शीतल होती जा रही थी; पवन का पंखा मानो स्वयम् सूर्य की गरमी को हलका करता जा रहा था।

बाहर देखकर ललिता ने कहा—"चलो न, बाहर बगीचे में जरा टहल आएँ। देवपूजा के लिये कुछ फूल भो चुन सकूँगी, और तुम दोनों से बातें भी होती रहेंगी। भीतर बैठे २ जो भी ऊब उठा होगा। सन्ध्या हो रही है। क्या कहती हो?"

आरती ने उल्लसित होकर कहा—"जरूर चलो दीदी! बल्कि यदि बाधा न हो तो हम भी इस सेवा में कुछ योग दें। मैं तो कहने वाली भी थी कि हमारे कारण यहाँ के कार्य-क्रम में कुछ गड़-बड़ी न पैदा हो जाये।"

तीनों खड़ी हो गईं। नीलम ने मुस्कराते हुए कहा,—पहली बार यह सम्बोधन उसके मुँह से निकला—"दीदी, क्या तुम्हारे भगवान् हमारे हाथ की सेवा स्वीकार करेंगे?"

"यदि सच्चे मन से करना चाहोगी, तो भगवान् की सेवा से तुम्हें कोई विरत नहीं कर सकता, स्वयम् भगवान् भी नीलम!"

पीछे २ चलते हुए नीलम ने कहा, "क्या यह सम्भव समझती हो कि मैं कभी हृदय से किसी की पूजा कर सकूँगी?"

"और किसी की कर सकोगी या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकती पर भगवान् की पूजा क्यों नहीं कर सकोगी? जब भगवान् का अनुग्रह होता है बहन, तो फिर भक्त के वश की बात नहीं रह जाती। वैष्णवों की साधना में इस अनुग्रह का बहुत महत्व है, और भगवान् का यह अनुग्रह सभी पर होता है।"

परकोटे से बाहर निकल कर तीनों युवतियाँ बाहर पश्चिम की ओर खुले मैदान में आईं, पर इसे मैदान नहीं कहा जा सकता। बड़े-बड़े वृक्षों के बीच बरसात की घनी घास चारों ओर छाई हुई है, और उन्हीं के बीच कई पुष्पों के पौधे जगह-जगह पर लगे हुए हैं। असंख्यों सुग-

न्धियों का आवरण छेद कर सम्पूर्ण बन-प्रान्त डूबते हुए सूर्य को अपने वैभव का अर्घ्य दे रहा है। सामने ही एक साधारण-सा नाला, जो इस समय एक छोटी-मोटी नदी के समान फैल गया है, अपने मधुर संगीत से पत्थरों के कठोर हृदय को सिक्त करता हुआ बहता चला जा रहा है, और वृत्तों के विरल-रन्ध्र में से छन-छन कर आती हुई अस्तंगत सूर्य की किरणें मानों इस नाले के संगीत की स्वर लहरियों में अप्सरा बन कर नाच रही हैं।

ललिता ने फूल चुनना प्रारम्भ कर दिया। आरती अन्यमनस्क होकर सूर्य के अस्तमान सौंदर्य को देखने लगी।

नीलम ने ललिता को टोंका—"पर सच कहो दीदी, क्या तुम्हारे प्रेम की भूख ये भगवान् शमन कर देते हैं ? मैं दार्शनिक उत्तर नहीं चाहती, मैं सचमुच जानना चाहती हूँ कि क्या इससे हृदय की जलन नष्ट हो सकती है ?"

नीलम का कण्ठ-स्वर एकदम बदल चुका था, ललिता किंचित् मुस्कराई, "प्रेम की भूख, हृदय की जलन—ये क्या कभी नष्ट होते हैं, और इन्हें क्या नष्ट किया जा सकता है ?"

"अभी ही तो तुम कह रही थी कि मनुष्य अपने उसी आदर्श को प्राप्त करना चहता है, जहाँ उसके जीवन को पूर्णता प्राप्त हो जाए—उसी निरिच्छ, निर्विकार—"

ललिता ने कहा, "पत्थर के इस टुकड़े को देखती हो न ? इसके शरीर से टकरा कर नाले के अधरों से संगीत के स्वर झंकृत हो रहे हैं, किन्तु क्या इससे पत्थर की हृदय-भूमि भी शीतल हुई है ?—इसीका भाई, वह दूसरा पत्थर जलती हुई धूप में दिनभर से पड़ा है, क्या उसके हृदय में कोई जलन है ?—जिसके हृदय में प्रेम की भूख या जलन न हो, वह न केवल पत्थर का हृदय लिए हुए है, बल्कि स्वयम् पत्थर है ?"

"परन्तु तुम्हारा परमात्मा दीदी,—"

"जिसे निरिच्छ, निर्विकार आदि कहा जाता है, वह तो यह निरा पत्थर ही है बहन, बल्कि यही तो सभी जगह उस ईश्वर का प्रतीक है। कई मन्दिर तो हैं, जहाँ उनकी मूर्तियों का महत्व वहाँ की सीढ़ियों से तनिक भी अधिक नहीं है। जिस निर्बाध गति से एक श्वान उसकी सीढ़ियों पर चढ़ जाता है, उसी निर्बाध-स्वच्छन्द गति से वह परमात्मा की उस मूर्त्ति के ऊपर भी चढ़ सकता है, हालाँ कि मनुष्य-देहधारी किसी श्वपच को उन सीढ़ियों पर मत्था टेकते देखे जाने पर हिन्दुओं के परमात्मा की नाक कट जाती है। वह भी परमात्मा ही है बहन—"

"किन्तु—"

"जहाँ मनुष्य के हाथ उस परमेश्वर का अभिषेक नहीं करते, वहाँ पर वह पत्थर ही है, निर्विकार, निरीह, निर्गुण—एक निराकार को छोड़ कर सभी कुछ है जो कि शास्त्रों में उसके लिए कहा गया है। ईश्वर के आदर्श को मैंने इसीलिए पहले कल्पना कहा था, कि इस आदर्श का स्वरूप अपने आप बनाना पड़ता है और उस स्वरूप को प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। बहुतेरे दार्शनिक जो परमात्मा के इसी स्वरूप को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ते हैं, वे सचमुच क्या प्राप्त करते हैं, इसकी मुझे खबर नहीं, किन्तु सुना है कि एक आकार और किंचित चेतना, जिसे भी समाधि में प्रविष्ट कर प्रायः ही नष्ट कर दिया जाता है, इनको छोड़कर पत्थर में और उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता।"

"तुम तो दीदी, एक ही साथ विरोधी बातें बता रही हो, ये भला कैसे किसी की समझ आ सकेंगी ?"

"मुझे तो अपनी साधना की बात कहनी है न! हमारी साधना का केन्द्र परमात्मा नहीं है बहन, प्रत्युत मनुष्य है—यानी हम परमात्मा के आनन्दपद को नहीं प्राप्त करना चाहतीं — उसके आनन्द-पद की प्राप्ति, जिसकी व्याख्या में तुम हमारे जीवन की व्यस्तता का उदाहरण देखो।"

नीलम ललिता की ओर देख रही थी, उसकी भाव-भंगी को देखकर सहसा विश्वास नहीं होता था कि वह ललिता के कथन को समझने का प्रयत्न कर रही है। किन्तु ललिता ठीक समझ रही थी कि नीलम सभी कुछ केवल समझ ही नहीं रही है, बल्कि आत्मसात भी करती जा रही है!

आरती की भावाविष्ट चेतना अभीतक प्रकृति के इस रम्य-उत्सव को देखने में लगी थी। दूर पश्चिम में, ठीक सूर्य के सम्मुख एक पहाड़ी पर जाते हुए एक चरवाहे और कुछ गौओं की छायाकृतियाँ उसकी दृष्टि का लक्ष्य थीं। ईश्वर के स्वरूप को समझना उसके लिए उस समय अधिक महत्व का न था।

ललिता ने मन्दस्मित से आरती की ओर देखा, फिर नीलम को लक्ष्य कर बोली, "वेदान्तियों की बातें तो अवश्य सुनी होंगी? यदि उनके प्रयत्नों को देखा जाए, तो सच मानों, वे मनुष्य को पत्थर ही बनाकर छोड़ेंगे। एक चेतनाशील प्राणी को उससे रोष क्यों न होगा?—मनुष्य-जीवन के जो विशिष्ट-उपकरण हैं, केवल जिनके कारण ही वह अन्य प्राणियों से अबतक अपने आप को श्रेष्ठ मानता आया है, उन्हीं का विनियोग—इच्छा का परिहास, प्रेम की समाप्ति, चेतना का अन्त, बुद्धि का भ्रम—आदि ये सब हैं क्या? क्या इनके नाश से मनुष्यता की पौध पर प्रहार नहीं होता?"

"वस्तुतः ये ही तो बातें हैं, जिन्हें समझ कर आज का भौतिक मनुष्य आध्यात्मिकता को दूर से ही नमस्कार करता है।"

"उसे करना चाहिए। वेदान्त आदि ग्रन्थ जिन तत्वों को मनुष्य की कमजोरियाँ मानते हैं, वे ही तो मनुष्य की विशेषताएँ हैं, और हमारी साधना उनको वैसा ही मानती है, बल्कि उन गुणों का चरम-उत्कर्ष ही हमारी साधना का लक्ष्य है। समझी न तुम? हमारी साधना का केन्द्र वैराग्य नहीं, 'अनुराग' है, और इस अनुराग के सूत्र का दूसरा छोर

हम प्रतिष्ठित करते हैं, उस पूर्ण पुरुष प्रेममय परमेश्वर में, जिसके अनुग्रह की सदैव कामना किया करती हैं। हमारा परमेश्वर एक निखिल स्नेह की मूर्त्ति, इच्छा और वासना की संपृक्त, असीम सौंदर्य और रंजन मूर्त्ति है, जिनके अभिसंधान में न केवल हमारे राग-द्वेषों का, हानि-लाभ का और सुख-दुख का विसर्जन होता है, प्रत्युत हमारे सम्पूर्ण जीवन में चमता का, निरानन्द जीवन में आनन्द का, और असुन्दर जीवन में सुन्दर का प्रतिष्ठान होता है। किन्तु सखी, सूर्यास्त होने में अब विलम्ब नहीं है। हमें चलना है।"

आरती को प्रकृति-दर्शन से विरत किया गया, और तीनों महिलाएँ मन्दिर के दालान में प्रविष्ट हुईं।

सुदामापुरी में तब नवजीवन जागृत हो चुका था। लगभग आठ-दस महिलाएं दौड़-धूप कर रही थीं। प्रत्येक के सुपुर्द एक-एक काम था, और प्रत्येक अपने-अपने कार्य को सम्पन्न करने में अत्यन्त व्यग्र मालूम देती थी।—एक ओर रन्धनशाला से सोंधी महक उठ रही थी। दो एक महिलाओं को वह कार्य सुपुर्द था। सभी व्यस्त थीं; कोई चन्दन तैयार कर रही थीं, कोई पुष्प माला, और कहीं पर परमात्मा के लिए विशिष्ट-परिधान सहेजे जा रहे थे।

जैसे ही तीनों भीतर प्रविष्ट हुईं दौड़ती हुई विशाखा ने आकर सम्वाद दिया कि आज गुरुदेव की तबीयत ठीक नहीं है।

ललिता ने कहा, "गुरुदेव का स्वास्थ्य ठीक नहीं, इसका तात्पर्य है कि षोड़शी-पूजा का भार मेरे सिर पर रहेगा। बुरा न मानना बहनो! इधर-उधर कुछ देखो, मैं शीघ्र ही निवृत्त होकर आपको ले चलूँगी।

नीलम ने कहा—"दीदी! भार कहती हो तुम भी इसे?"

हँस कर ललिता ने उत्तर दिया, "रिवाज अतिथियों की भाषा में बात करने का है न! तो मुझे छुट्टी दे रही हो न?"

नीलम ने कहा—किंचित मुस्कराकर—"वंशी की ध्वनि है दीदी! हमारे रोकने को गिनोगी क्या?"

ललिता ने भी हँसी से इसका उत्तर दिया, जल्दी में थी, इसलिए बिना कुछ कहे ही एक ओर चल दी।

आरती ने कहा, "मालूम देता है, तू तो अपने प्रियतम को तलाश करने आई है, पर मुझे क्यों घसीट लाई?"

नीलम ने कहा, "गवाही के लिए। प्रियतम के नाम पर अब तक तो केवल मिला है धोखा, सोचती हूँ कि इस दुनियाँ में शायद प्रेम और प्रियतम के नाम पर यही तो अन्तिम लब्धि नहीं है! अनुराग के मार्ग पर फैली हुई इस शाश्वत-प्रवंचना को देखकर ही तो घबराकर मैं सोचती हूँ कि आखिर वैराग्य का मार्ग ही क्यों श्रेयस्कर नहीं है?"

"और फिर वैराग्य के धोखे में आ फंसी अनुराग की जाल में! किन्तु अनुराग की भूख क्या वैराग्य से मिट जाएगी?—भूख का उपाय कहीं उपवास होता है क्या?"

"प्रेम क्या भूख है बहन?—वह जीवन का एक अभिन्न अंश नहीं बाहर से आई हुई तीसरी वस्तु है।—प्रेम क्या व्यक्ति-सापेक्ष्य नहीं होता?—उसे दुर्निवार समझना केवल अपनी दुर्बलता है।"

"परन्तु नीलम, तुम तो व्यक्तिवादी नहीं हो। यदि नवनीत से श्रद्धा न रही हो तो किसी अन्य योग्य व्यक्ति को खोजो न!"

"इसी कठिनाई के लिए तो मैंने कहा था कि प्रेम व्यक्ति-सापेक्ष्य होता है, वह निरपेक्ष नहीं होता। प्रेम के कारण किसी व्यक्ति विशेष का चुनाव नहीं होता, प्रत्युत व्यक्ति को देखकर ही प्रेम उदय होता है। —इसके अलावा भी एक बात है आरती!"

"वह क्या?"

नीलम ने एक बार चारों ओर देखा। समुदाय लगभग पूर्ववत ही व्यस्त था, प्रत्युत यदि कुछ था, तो अधिक ही व्यस्त दिखाई देता था। मन्दिर के पार्श्व में ही दो खड़े पत्थरों के ऊपर एक पत्थर रखकर जो आसन बना लिया गया है, उसी पर दोनों बैठ गईं।

नीलम ने कहा—"वह बात न पूछो आरती ! उससे हृदय को दुःख पहुँचता है, बल्कि हम दूसरी ही बात करें ।"

"पर तुम्हारे न कहने से तो मेरा दुःख बढ़ हो जाएगा । तुम मुझे अभी भी पराया समझती हो ?—मैं तो—"

"मैं जानती हूँ कि तुम मुझे बहुत अधिक प्यार करती हो बहन, और तुमने अपने अन्तर के सबसे गंभीर घाव को भी मुझे व्यक्त कर दिया है । किन्तु इसीलिए तो मैं तुम्हारा अपमान करना नहीं चाहती ।"

"अपनों की बातों से किसी का अपमान होता है पगली ? बल्कि अगर मेरी भूल के सुधार की संभावना हो तो क्या तुम उसे मुझे न बताओगी ?—मालूम देता है, तुम नवनीत के बारे में कुछ कहना चाहती हो ।"

"मैं मानती हूँ बहन, कि तुम्हारे साथ उसका व्यवहार बिलकुल पशु का हुआ है । उस दिन तुम्हारी बात सुनकर मुझे अपने ही ऊपर अत्यन्त घृणा होगई थी, इसलिए कि मैं एक ऐसे तुच्छ पुरुष के प्रणय-पाश में अनायास ही बँध गई । अपने मन की चेतना के विपरीत इस प्रकार किसी दुर्गन्ध-पूर्ण गढ़े में गिर जाने की इच्छा के समान नारीत्व का और क्या पतन होसकता है, किन्तु—"

"किन्तु क्या नीलम ?"

"मर्मान्तिक लज्जा और पीड़ा की वह रात भी खत्म होगई आरती ! हृदय का भार कुछ कम हुआ, इस संतोष से कि मन के अंधेरे तहखाने में छिपी हुई बात के बाहर प्रगट होने के पहले ही सावधान होगई । सोचा कि अपने हृदय का द्वार बन्द कर देने से ही काम चल जाएगा । पर वह सब नहीं हुआ । जिस मन्दिर में एकबार मूर्तिप्रवेश हो जाता है, वहां की मूल वस्तु उस मूर्ति का तिरोधन ही बन जाती है ! और सब नवनीत के विचार को उसी मोड़ पर नहीं छोड़ सकी, उसे आगे तक वहन करना पड़ा ।"

"फिर ?"

"फिर क्या है बहन ! उसके जीवन का इतिहास भी तो तुम्हींने बताया था, मेरे निकट तो उसकी निराशा का गवाह भी तो तुम्हीं हो। हृदय की जिस शून्यता से मेरे नारीत्व का मार्ग बुद्ध हो गया है, उसी शून्यता को लेकर किसी का पौरुष क्यों किसी विपथ में न भटक जाए, यही मैं सोचती रही हूं। नवनीत के पौरुष की दृढ़ता कितनी अधिक सजीव और मोहक है, उसकी चाह की उत्कटता भी उतना ही अधिक गम्भीर है। आज दुर्भाग्य से उसके हृदय की कामना, पद्म पत्र-स्थ जल-बिन्दु के समान, यदि तुम्हारी ओर ढरक पड़ी, तो यह नवनीत का पतन क्यों हो जायगा ? आज की समाज-व्यवस्था का ढोल पीटकर इस प्रवृत्ति को बुरा कहा जा सकता है, किन्तु सृष्टि में यह पतन ही सामंजस्य की रक्षा करता है। यह बात इससमय नहीं समझी जासकती इसलिए कि मनुष्य के ऊपर इस समय धर्म का राज्य है, मनुष्यता का नहीं।"

"तो फिर तुम्हारा यह वैराग्य—"

नीलम ने किंचत् मुस्कराकर कहा—"नवनीत के हृदय में मैं स्थान नहीं पा सकी, उसकी आशा भी अब नहीं है। रही दूसरे पुरुषों की बात; उनकी अपूर्णता के सन्मुख मेरी क्षमता का महत्व सिर झुकाना नहीं चाहता सखी !"

"चलो छुट्टी हुई; चैन की साँस तो ले सकोगी। किन्तु इस वैराग्य की खोज से क्या होगा ?"

"सुदामापुरी के इस छाया से किए जाने वाले प्रेम को समझ लूँ, तभी तो तुमसे कुछ कह सकूँगी।"

"अच्छा, यह बता, इनकी बातों में कुछ सचाई दिखाई देती है ?"

"विश्वास करना बड़ा कठिन है बहन ! परन्तु जैसा आज हमारे निकट ललिता का अन्तर स्पष्ट प्रतिभासित हुआ है, उससे यह असंभव भी तो नहीं मालूम देता।"

"तू स्वयम् क्या सोचती है नीलम ?"

"सच बात को भी न मानूँ, क्या यह कहलाना चाहती हो ? समाज के दृष्टिकोण से इस जीवन की उपयोगिता शायद न मालूम दे, किन्तु जहाँ व्यक्ति के स्वयम् के जीवन का प्रश्न है, वहाँ कल्पना की इस ऊँचाई पर पहुँच कर शायद संतोष प्राप्त किया जा सके।"

"परन्तु उसके फल से समाज कैसे दृष्टि हटा लेगा ?"

"इसके लिए समाज को दोष भी नहीं दिया जा सकता। फल—अच्छा या बुरा—जब किसी कार्य का निश्चय परिणाम है, तो उसे सोच-कर नहीं चलने के तो कोई मानी नहीं, चाहे निष्काम-कर्म का ढोल ही क्यों न पीटा जातारहा हो। किन्तु प्रेम जैसी वस्तु जहां साधन न होकर सिद्धि ही हो, वहां पर और किस फल की अपेक्षा रह जाती है ? और कौन उस चिन्ता को करेगा ?—दुनिया में ऐसे भी तो कार्य हैं जो प्रति-योगिता के दौड़ के मैदान नहीं हैं। ललिता के इस प्रेम का यही आदर्श दीखता है सखी ! वस्तुतः इसीलिए प्रेम के अभिनय में भी इन्हें सत्य का अभाव नहीं प्रतीत होता !"

"प्रेम-विषयक यह रस्साकशी जिसके भाग्य में न जुटे, उसे सौभा-ग्यशाली समझना चाहिए। पर तू मुझे इस दुर्भाग्य में जबरन क्यों घसीट लाई ? तू तो घर से मुक्त है, किन्तु मैं यहाँ रातभर कैसे रह सकूंगी ?"

"जिस तरह मैं रहूँ। विश्वास दिलाती हूँ, घर पर आजरात को तुम्हारे लिए आँखें बिछाए कोई न बैठा मिलेगा।"

"क्यों उनके लिए कहीं अन्यत्र व्यवस्था करदी है क्या ?"

"तभी तो ! जानती नहीं—२९ अगस्त है आज। किटसन, शर्ली, तुम्हारे शिकारपुर के स्नातक, तथा मित्रों के भी दांत उखाड़ देने वाला डाक्टर रेडियर—भूल गई क्या ?"

"अरे ? आज ही ?"

"हमारे कानों को वह लाभ कल प्रातःकाल होगा। बल्कि आज

चाहो तो ललिता के साथ ही नीलम के कीर्तन से भी अपने कानों को तृप्त-पवित्र कर सकोगी।"

सचमुच तुम गाओगी आज?—२६ अगस्त को?"

"क्यों नहीं! जबकि चन्द्रमा के इस अमृतमय हास्य में एक ओर कहीं विष से बुझी हुई छुरी रक्त का स्नान करेगी, तो क्या हर्ज है, दूसरी ओर मेरे अधरों पर संगीत का फौव्वारा विलसित हो, और तेरे कानों में अमृत की फुलझड़ियाँ बरसें।"

"नीलम, तुम्हें विश्वास है, कुछ अनिष्ट तो न होगा?"

"किंचित्-सा! बहुत हुआ तो फिटसन और शर्मा के प्राणों का अभाव।—और बहुत क्या, कम-से-कम भी यही होगा! यदि कहीं अधरलाल या नवनीत के वस्त्रों पर रक्त के छींटे बिखर जाएँ, तो शायद हम लोगों को साफ करने की बेगार करनी पड़े। इससे अधिक तो कोई अनिष्ट दिखाई नहीं देता।"

दोनों को चुप हो जाना पड़ा, क्योंकि विशाखा इन्हींकी ओर चली आ रही थी। पूर्णिमा का चाँद ऊपर आकाश में चढ़ रहा था, उसकी पीली आभा सफेद होती जा रही थी—अखाड़े में उतरने वाले पहलवान के समान, जिसे धीरे-धीरे जोश पैदा हो रहा हो।

"मन्दिर में चलिए। दीदी ने आपको बुलाया है। पूजा नहीं देखिएगा?"

"क्यों नहीं देखेंगी विशाखा, जब हम यहाँ ठहरी ही इसीलिए हैं। परन्तु क्या पूजा एकदम शुरू हो ही रही है?"

"नहीं, एकदम तो नहीं; किन्तु सामग्री सब तैयार हो गई है। आधी घड़ी से अधिक नहीं लगेगा।"

"अच्छा, चलते हैं। पर विशाखा, एक बात तो बताओगी?"

"पूछिए!"

"तुम्हारा यहाँ मन लग जाता है?"

"क्यों नहीं लगता? हमारी दीदी बड़ी अच्छी है। सवेरे लिखना-

पढ़ना सिखाती है, दिन को गाना-बजाना और नाचना सिखाती है। और संध्या को मैं खेलती भी हूँ।"

"दिन भर तुम्हारी दीदी क्या करती है विशाखा ?"

"जब भगवान् की पूजा से छुट्टी पाती हैं, तो या तो गुरुदेव के पास बैठकर बातें करती है, या संस्कृत के मोटे-मोटे पोथे पढ़ा करती है।

"वह नाचना भी जानती है ?"

"बहुत ही अच्छा। गुरुदेव कहा करते हैं कि हमारी दीदी राधा की प्रमुख सखी ही नहीं, उन्हीं का प्रत्यक्ष अवतार हैं, और ये सब कलाएँ तो उनके जीवन का आधार पाकर विकसित होती हैं।"

"याची ?"

"समझूँगी तो क्या मैं खुद इस बात को। पर ये कहा करते हैं कि कला बचपन में इनकी माँ थी, और अब इनकी सौत है।"

"और बुढ़ापे में क्या होगी, यह नहीं बताया !"

"बताया है न। कहते हैं कि दीदी जैसे-जैसे बड़ी होती जाएँगी, वैसे-वैसे कला उनकी कन्या का स्थान लेती जाएगी।"

नीलम को किंचत् ईर्ष्या हुई, उसने पूछा, "अच्छा यह बताओ, तुम्हारी दीदी और भी किसी से मिलती है ?"

"सभी से, जो भी यहाँ आजाए।"

आरती लड़की की सरलता पर मुस्करा उठी। नीलम ने ध्यान न देकर पूछा, "मेरा मतलब है, उनका कोई मित्र-वित्र है ?"

"यहाँ की सभी सखियाँ उनको बहुत मानती हैं, उनका व्यवहार सबके साथ मित्र-जैसा ही है।"

"नहीं समझी। यह कहो, कोई अच्छा सा जवान पुरुष--स्त्री नहीं—कभी उनसे मिलता रहता है ?" नीलम ने एक व्यंग्य की दृष्टि आरती पर भी डाली। आरती को यह प्रश्न अच्छा नहीं लगा।

विशाखा ने कहा, "सुदामापुरी में जितने भी पुरुष हैं, उन सभी से उनका काम पड़ता ही है। किन्तु अच्छा सा जवान पुरुष—यह तो मैं

समझी नहीं। पर अब तो चलिए न, विलम्ब हो जाएगी—वह देखिए घण्टियाँ बजने लग गईं।"

विशाखा ने इनकी स्वीकृति की राह न देखी, और आगे चल दी, नीलम और आरती ने भी पीछे-पीछे पैर बढ़ाए।

मन्दिर की सजावट का वर्णन करने का कोई प्रसंग नहीं है। पाठक जानते हैं, वे एक बार पहले जन्माष्टमी की रात्रि को इस मन्दिर का दर्शन कर गए हैं। प्रकाश और कालागुरु की सुगन्धि की होड़ में मन्दिर के शंख, घण्टे, घड़ियाल, झाँझर, नगारे का गुरु-घोष, और दूसरी बात सुदामापुरी का समस्त जन-समुदाय वहाँ पर उपस्थित था। केवल अपेक्षाकृत दूर एक प्रकोष्ठ में अस्वस्थ राधिका रंजन अपने न आ सकने की असमर्थता पर दुःख पा रहे थे। किसी भी गोपिका को एक क्षणकाल के लिए भी भगवान् की इस प्रसाद-पूर्ण सेवा से विरत करने का उनका उद्देश्य न था।

एक ओर रमणी समुदाय खड़ा था। लगभग १८-२० नारियाँ, जिनमें सभी उम्र, और सभी शक्लें शामिल थीं, बड़े ही भक्ति-भाव से भगवान् कृष्ण की लीला-पुरुषोत्तम झाँकी को मुग्ध-दृष्टि से देख रही थीं। कुछ के हाथ में करताल थे, एक के हाथ में काँसे की घड़ियाल थी, दूसरी के हाथ में झाँझ—शेष अपने करताल का प्रयोग कर रही थीं।

इनकी वेश-भूषा भी बड़े यत्न से सजी हुई थी, उसमें समानता प्राप्त करने का पूरा प्रयास किया गया स्पष्ट दिखाई देता था। सारा परिच्छेद हरे रंग का था, और आभूषणों के स्थान पर कुसुमाभरण शोभा पा रहे थे। साड़ी पहनने के गौड़िए-ढंग से मस्तक की स्निग्ध-वेणी अपने ही मूल पर कुण्डली मारे बड़ी भव्य लग रही थी, जूड़े को चारों ओर से घेर कर कुन्द की कलियों ने सघन-मेघाडम्बर में विद्युल्लेखा का सम्भार उपस्थित कर दिया था। कंचुकी की वल्ला स्कन्ध प्रदेश को शोभित कर रही थी, अतः दीप्त प्रकाश में उनकी और भुजाओं का मूल-देश चमक-चमक कर देखने वालों की दृष्टि को अनायास ही आकर्षित कर लेता था।

सामने दाहिनी ओर पुरुष वर्ग, घड़ियाल, शंख आदि लेकर भगवान् के इस सम्मिलित विराट्-नाद के मूर्त्त-नृत्य में योग देने के लिए प्रयत्नवान् था। कुछ की दृष्टि देव-विग्रह की ओर थी और कुछ की सम्मुख खड़ी महिलाओं की ओर। कुछ व्यक्ति अपनी पृथक् और विभिन्न वेश-भूषा से स्पष्टतः समागत अतिथि मालूम दे रहे थे। नीलम और आरती दोनों आकर पीछे खड़ी हो गईं, कम-से-कम इस तरह वे अन्य उपस्थित जन-समुदाय की दृष्टि का शिकार तो होने से बच गईं।

और फिर सम्मुख ही इन समस्त आयोजनों का केन्द्र, वह देव-मूर्त्ति भी उतनी ही भव्य थी। उस मूर्त्ति में देवत्व जागृत करने का केवल मनुष्य का सीमान्त प्रयत्न ही मूर्त्ति के रूप में भव्य नहीं हो उठा था, प्रत्युत प्रतिवर्त्तित प्रभा की रश्मियों में उसकी चमक की अमर प्राकृतिक कांति भी उतनी ही दिव्य प्रतीत हो रही थी। अतः उस मूर्त्ति में न केवल प्राण, प्रत्युत अनुग्रह और दाक्षिण्य की पूरी शक्ति के विश्वास की जागृति भी थी, जिसे देखकर दर्शक-समुदाय के हृदय का उल्लास कूल नहीं पा रहा था।

और एक जार्जेट की श्वेत-साड़ी में दर्शकों की ओर पीठ किए, ठीक देव-मूर्त्ति के सम्मुख, नीरांजन, धूप, दीप आदि पूजा का उपस्कर लिए हुए, मुक्त-कुन्तला ललिता, अपनी सहज-भक्ति के आवेश में सोलह सहस्र गोपियों की विरह-पीड़ा को अपने हृदय पर उठाए भगवान् की आरती उतार रही थी। कहना कठिन है कि समवेत-दर्शकों की स्थूल आँखों का लक्ष्य भगवान् बने हुए पत्थर की मूर्त्ति में अटका हुआ था या मानवी होकर भी पत्थर बनी हुई इस जीवना-प्रेम मूर्त्ति राधिका की ओर।

तुमुलनाद के साथ पूजा सम्पन्न हुई। भक्तों के ऊपर भगवान के स्पर्श-जल का अभिसिंचिन किया गया, आरती की ब्लैयाँ ली गईं, उसके बाद सारा समुदाय तुलसी-चरणामृत ग्रहण करने के लिए नीचे उपविष्ट हो गया। चन्द्रावली और विशाखा ने यह क्रिया भी सम्पन्न करली।

ललिता ने पश्चात् मन्द स्वर में कहा—"आज बड़े स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, अतः कीर्त्तन की बैठक नही जुड़ सकेगी।"

आरती ने नीलम की ओर देखा, नीलम की दृष्टि नीचे ही उलझी हुई थी, उसने कुछ भी प्रगट नहीं होने दिया।

तात्पर्य यह कि कुछ ही समय में सभी बाहरी समागत दर्शक विदा होगए। केवल सुदामापुरी की गृहमण्डली ही, जिसमें तीन-चार गुसाँइयों को भी स्थान था, पूर्व शांति के साथ बैठी रही, या फिर नीलम और आरती ने भी वहाँ से उठने का कोई आग्रह नहीं दिखाया।—तभी ललिता भी अपने सेवा-कार्य से निबट कर इनके पास आ बैठी।

आरती ने धीरे से पूछा—"क्या सचमुच ही आज कीर्त्तन का समाज नहीं जुट सकेगा दीदी?"

ललिता ने कहा, "बहन गुसाँई जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। हम दोनों में से एक को तो वहाँ रहना ही होगा। अकेले से शायद कीर्त्तन जम ही न सके।"

आरती ने कहा, "यदि दीदी, तुम रहो और प्रारम्भ कर सको, तो नीलम को मैं कहूँ तुम्हें सहयोग दे सकेगी।"

ललिता ने नीलम की ओर लक्ष्य करके कहा—"नीलम?"—फिर वह किंचित् मुस्कराई, गोया नीलम के लिए यह क्या सम्भव था?

नीलम ने समझ कर कहा—"अवश्य ही कला की पुत्री, सौत या माता बनने का सौभाग्य तो मुझे प्राप्त नहीं है, किन्तु भगवान् के दरबार में शायद कला का उतना अधिक मूल्य न भी हो।"

ललिता को दुःख हुआ कि उसकी हंसी लग गई, बोली, "भगवान् के दरबार में कला का अधिक मूल्य न हो, यह तो कोई बात नहीं बहन, परन्तु वहाँ भावना या भावुकता का तो उससे भी ऊपर का मूल्य है। सच तो यह है कि मनुष्य की भावुकता के रंजित—विकास का नाम ही तो कला है। किन्तु तुम्हारा तो भावुकता में विश्वास है नही नीलम!"

"भावुकता में नहीं, पर भावों में तो है। और जैसा कि सुन चुकी हूँ, भगवान् के अनुग्रह के बिना कदाचित् भावुकता की प्राप्ति हो न हो।"

"पागल बहन मेरी! तुम्हारे ऊपर भगवान् का अनुग्रह न होगा तो होगा किस पर! तो अवश्य ही कीर्त्तन का आयोजन होगा! किन्तु फिर भोजन के लिए बहुत विलम्ब तो नहीं हो जायगा?"

आरती ने कहा, "वाह अभी तो संध्या हुई ही है।

ललिता ने साजिन्दों को आदेश दिया। एक गुसाँई मृदंग लेकर बैठे, ललिता ने तानपूरा चन्द्रावली की ओर बढ़ाते हुए कहा—

"चन्द्रावली, तुम प्रारम्भ करो, तबतक मैं गुरुदेव से निवेदन कर आऊँ कि आज हमारे अतिथि कीर्त्तन का भार बँटा रहे हैं।"

ललिता उठी, और एक ओर चली गई। चन्द्रावली ने स्वर साध कर सूरदास का एक पद सुना दिया।

उपस्थिति केवल सुदामापुरी ही के सदस्यों तक सीमित थी, किन्तु चन्द्रावली के संगीत के स्वरों ने सम्पूर्ण वातावरण को स्तब्ध कर दिया। आरती और नीलम को भी आश्चर्य हुआ कि चंचल स्वभाव की इस नारी के कण्ठ में ऐसा और इतना स्थिर सौंदर्य हो सकता है। सहज शिक्षा का अध्यवसाक, प्रतिभा की पवित्र-सरसता और हृदय की भावुकतामई निश्छल विह्वलता से ओत-प्रोत गीत में जिस माधुर्य की सृष्टि हुई, वह समस्त उपस्थित मण्डली के हृदयों में व्याप्त होगई।

संगीत समाप्त हो जाने पर चन्द्रावली कुछ क्षणों तक नीरव बैठी रही, फिर नीलम की ओर उन्मुख होकर उसने कहा—

"बहन तो अभी तक आई नहीं। आप कहेंगी, या मैं ही कहूँ?"

अपना आग्रह छिपा न रहा, देखकर नीलम को कुछ संकोच हुआ, किन्तु उसे दूर कर उसने कहा—

"भगवान् का गुणानुवाद है। एक मैं कह दूँ, तबतक तुम विश्राम ले सकोगी चन्द्रावली!"

"अवश्य ! वैसे यदि आप चाहें तो हारमोनियम भी है—मँगवा दूँ !"

"नहीं,— तानपूरा मुझे दे दो—देखूं"

चन्द्रावली ने तानपूरा आगे बढ़ा दिया; किन्तु जब नीलम उसके तारों को किसी दूसरे ग्राम पर सस्वर करने लगी, तो चन्द्रावली को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "और मृदंग।"

"उसे भी बजने दो न !" और मृदंग वाले गुसाँई से कहा— "मिला लीजिए मृदंग को !"—चन्द्रावली देखती रह गई।

वागीश्वरी के स्वर नीलम के कण्ठ से निसृत होने लगे। नीरव संध्या की सकरुण-श्यामल-आभा में जिस तरह शरद् के प्रपात का मधुर ध्वनि-स्रोत प्रकृति के पत्ते-पत्ते पर नाच उठता है, नीलम की वाणी भी उसी तरह धीर गम्भीर गति से मन्दिर के प्रकोष्ठ में थिरकने लगी। कण्ठ में कहीं किंचिन्मात्र भी संकोच न था, किसी प्रकार की जड़ता न थी; झरने के समान ही मुक्त, गंभीर, निश्छल और सहज स्वर में उसके कण्ठ की मन्दाकिनी प्रवाहित होने लगी। उसने गाया—

"आजु रैनि नहिं नींद परी।
जागत गनत गगन के तारै रसना रटत गुविंद हरी !
वह चितवनि वह रथ की बैठनि जब अक्रूर को बाँह गही,
चितवति रही ठगी सी ठाढ़ो कहि न सकी कछु काम दही।—"

हंस-पृष्ठ पर आरूढ़ वीणा-वादन-परा सरस्वती के समान उसकी भावाविष्ट-दृष्टि अपने ही पैरों पर पड़ी हुई थी। रात्रि की अनिद्रा का सम्पूर्ण अवसाद उसके चेहरे पर खिंच कर गीत के भाव को समूर्त्त करने लगा; विरह-विजड़िता राधा की कोमल-विधुर भावनाएं उसके मधुर मुख-मण्डल पर छाने लगी। उसकी लालसामयी भावुक चितवन सम्मुख खड़ी देवमूर्त्ति के ऊपर जम गई सचमुच ही मानो भगवान् के मथुरा प्रस्थान का समय निकट आँखों के सामने उपस्थित था,

और तब प्राणराधा की साश्रु कोमल भाव लहरी ही नीलम के पार्थिव शरीर में स्फीत हो उठी थी—

"—इतने मन व्याकुल भई सजनी आरज पंथ हुतैं बिडरी
सूरदास प्रभु जहाँ सिधारै कितिक दूरि मथुरा नगरी।
आजु रैनि नहिं नीद परी।"

निस्संग निषाद में विषाद के ये स्वर धीरे-धीरे शांत होगए।—मानो बालुका-विस्तृत चन्द्रिका में सजल करुण नदी का गम्भीर-प्रवाह कहीं खो गया। स्वयम् नीलम की आँखों में रस की धारा खिंच गई थी। आरती तक को विश्वास न हुआ कि यह गीत उसकी प्रिय सखी नीलम ने गाया है। वह संगीत नहीं था, हृदय की वेदना, कला का मोहक परिधान लेकर वीणा के तारों पर गूंज उठी थी—ऊपर शीर्ष के चित्रों में पुष्पहार-शोभित अप्सराओं ने मानों इन्हीं स्वरों को गूंथकर भगवान् कृष्ण के लिए उन पुष्पहारों को तैयार किया था।

नीलम ने जैसे ही तानपूरा नीचे रक्खा, और अपनी आर्द्र आँखें पोंछने का उपक्रम किया, वैसे ही देखा कि सामने ही वृद्ध राधिका रंजन ललिता के कन्धों का सहारा लिए हुए खड़े हैं। उन्हें कोई सुधि नहीं है आँखों के आँसू उनके सिक्त-कपोलों पर से लुढ़क कर उनके वक्ष-प्रान्त का अभिसिंचन कर रहे हैं।

ललिता ने कहा, "सखी आचार्य गुसाईं अपनी रुग्णावस्था की भी चिन्ता न करके, तुम्हें आशीर्वाद देने के लिए आए हैं!"

नीलम ने उठकर उनके चरण छुए। भावुकता के इस अतिरेक को देखकर आरती तक स्तम्भित हो गई।

वृद्ध ने कहा, "प्रेममूर्ति माँ मेरी, कहाँ छिपी हुई थी अब तक! देखती नहीं हो, प्यारे कन्हाई तुम्हारे विरह में राह देखते हुए इसी कुंज में व्याकुल हो रहे हैं माँ! देखो न, तुम्हें आया जानकर उनके ओठों पर बरसों से नहीं देखा हुआ वह पुराना हास्य खिल उठा है!—आओ माँ

राधिके श्रीकृष्ण की वरद माला को अपने हृदय पर धारण करके उनके आग्रह को शमन करो !"

वृद्ध ने नीलम का मस्तक अपनी अश्रु सिक्त विशाल छाती में छिपा लिया।

रुद्ध कण्ठ से नीलम बोली, "मैं संसार की माया में फँसी हुई पापिनी हूँ आचार्य, मुझ से नहीं हो सकेगा।"

"पगली, तुझ से नहीं हो सका, तो फिर किसी से नहीं हो सकेगा। संसार की माया, वह क्या भगवान् की माया नहीं है ? अरे, उसी माया के प्रभाव से तो तू प्रेम के इस विराट् प्रवाह को अपने हृदय में धारण कर सकी है ! गंगा के इस प्रलय प्रवाह को माँ, भगवान् शंकर की जटा के सिवा कहीं स्थान नहीं मिल सकता था। धन्य हो गया आज प्रभो !"

वृद्ध के नीरव आँसू नीलम के गले में गिरने लगे, उसे प्रतीत हुआ मानो व्रजजन वल्लभ का वरद-हस्त उसके गले में लिपट गया है। आँसुओं से विद्ध उसकी दृष्टि में मानों सामने की मूर्त्ति का अचंचल हास उसके अधरों पर मधुर-स्निग्ध-प्रश्वास प्रक्षिप्त करने लगा—एक क्षण भर में ही उसके जीवन की सम्पूर्ण चेतना नष्ट हो गई, वह पृथ्वी पर बेसुध हो कर गिर पड़ी।

१६

तालाब के पश्चिमी किनारे पर बसे हुए गेस्ट हाउस पर भी उस संध्या का चाँद उसी वैभव के साथ उदय हुआ, जिस वैभव के साथ वह सुदामापुरी के ऊपर उदय हुआ था, बल्कि तालाब की प्रतिच्छायित छवि उस चाँद को और भी चार चाँद लगा रही थी। रात्रि का यह प्रारम्भिक अतिरिक्त-प्रभापूर्ण ऐश्वर्य भविष्य की तिमिस्रापूर्ण घटना का यदि एक सूक्ष्म-द्रष्टा को आभास दे, तो इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। शायद इसीलिए इतने अधिक ऐश्वर्य का महत्व है। साँप के शरीर पर यदि अमित सौन्दर्य का जाल बिछा हुआ न हो, तो कदाचित उसका विष इतना मारक न होता।

गेस्ट हाउस ठीक तालाब के ऊपर बना हुआ है। उसके दो मार्ग हैं, एक पश्चिम की ओर स्थल मार्ग, दूसरा पूर्व की ओर जल मार्ग है। काफी गहराई तक सीढ़ियाँ बाँधकर उसे नाव के प्रयोग के लिये उपयुक्त बना लिया है। अभी अभी ही इमारत की पुताई हुई है। लबरेज भरे हुए तालाब के दर्पण में अपने सौन्दर्य के निखार को देखकर इठला उठने वाली नवयुवती के समान ही यह इमारत भी मानो इठला रही थी!

सूर्य अस्त हो चुके थे, पश्चिम के दरवाजे पर कुछ कुछ लालिमा अवश्य शेष थी, किन्तु पूर्व का नभ चन्द्रमा की वर्द्धमान कौमुदी में मुस्कराता जा रहा था।

कमरे से बाहर निकलते ही मुक्त दालानमें दो तीन टेबलें सजी हुई रखी हैं। एक पर कुछ पुष्पाधारों के बीच काँटे छुरी चम्मच और चीनी की खाली रकाबियाँ शोभित हैं, दूसरी पर गमलों के बीच कुछ रंगीन बोतलों का वैभव नाच रहा है। इसी बँगले में एक अंग्रेज नव-दम्पति—किट्सन और शर्ली—अपनी हनीमून के लिए ठहरे हुए हैं। नवनीत बाबू ब्रांच पोस्ट मास्टर की ओर से एक डिनर की व्यवस्था की गई है।

टेबल के चारों ओर चार कुर्सी रखी हुई हैं। पश्चिम की ओर मि० किट्सन, दक्षिण की ओर मि० नवनीतलाल और उत्तर की ओर मिस शर्ली—अब मिसेस रोगर्स—बैठी हुई हैं, पूर्व की कुर्सी रिक्त है। इन लोगों की साधारण बातचीत की ध्वनि के अतिरिक्त और कोई मानवीय ध्वनि का वहाँ आभास न था। केवल सीढ़ियों से बँधी हुई किसी नौका से टकराने वाली लहरों की थपथपाहट, या नौका में बैठे हुए दो मल्लाहों की क्षीण फुस्फुस,—इनके अतिरिक्त सब कुछ नितान्त नीरव था। अवश्य ही कभी-कभी किसी रास्ता भूले हुए पक्षी की फड़फड़ाहट, या माँ की गोद का आश्रय खोजने वाले किसी विहंग-शिशु की कातर-चीत्कार तालाब की लहरों के संगीत में विक्षेप कर देती थी।

आज अनायास ही आकाश बड़ा साफ है। पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की

भव्य चाँदनी चारों ओर निर्बाध बिखर रही है, और पारद से भरे हुए तालाब में चन्द्रमा और आकाश के अन्य नक्षत्र मानों हँस-हँस कर एक-दूसरे को गुदगुदा रहे हैं। शीतल पवन मानों अपने हाथों से तालाब की लहरों को सहला रहा है। सौंदर्य के इस स्फीत वैभव में सन्देह नहीं इनकी यह डिनर आनन्द पूर्वक समाप्त होगी !

तब अतिथि और आतिथ्यक के बीच बातचीत का परिच्छेद प्रारम्भ हुआ। महाशय किट्सन का हिन्दी से परिचय न था, अतः बातचीत अंग्रेजी ही में चली। हिन्दी के पाठकों को अंग्रेजी में बोली जाने वाली भाषा का माधुर्य इसलिए अधिक मालूम देता है कि उसकी समता वे जंगल में शोर मचाने वाले पक्षियों की 'टिटविट' आवाज से बड़ी सरलता से कर लेते हैं। किन्तु जबकि पक्षीगण भी इस समय नीरव हैं, मैं उनकी बातचीत का आवश्यकतानुसार प्रांजल अनुवाद दे देना नाकाफी नहीं समझता।

किट्सन ने कहा, "शर्ली की जबानी यह जानकर कि आपकी और उसकी पुरानी जान-पहिचान है, मुझे सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी वजह से हमारा आनन्द भी बहुत बढ़ गया है।—हम आपके बहुत बहुत आभारी हैं।"

"आपकी सदिच्छाओं के लिए धन्यवाद मि० रोगर्स ! शर्ली मेरे अफसर की कन्या हैं, मैं उन्हें भी अपना अफसर मानता हूँ।"

शर्ली ने आँख का कोना दबाते हुए कहा, "यह आपकी दयालुता है मि० नवनीत। "फिर किट्सन को उद्देश्य कर बोली, "इससे भी बढ़कर डीयर, ये मेरे खेल के साथी भी रह चुके हैं।"

"मुझे याद न था कि बड़े आदमी इतना याद रख सकते हैं। मैं कृतज्ञ हूं मिसेस रोगर्स !"

"शर्ली मि० नवनीत," शर्ली ने कहा।

"साथिन होने पर भी आपका अदब तो मुझे रखना ही चाहिए।

किट्सन ने कहा, "आप ठीक कहते हैं मि० व्यास! मनुष्य को अपनी सीमा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। दुःख की बात है भारतीयों में इस बात का बोध नहीं पाया जाता।"

क्रोध से नवनीत ने अपना नीचे का ओठ ही काट लिया, परन्तु चुप मार गया।

उसके बाद पीने की नौबत आई। नवनीत ने शैरी, ब्रैण्डी, ह्विस्कीं आदि सबका प्रबन्ध कर लिया था, जो कमी थी वह साहब के साथ आए हुए भाण्डार ने पूरी कर दी। खासी पार्टी जुड़ चली। नवनीत ने दोनों को खूब पिलाया; शर्ली स्वयम् किट्सन को बहुत अधिक पिलाने का आग्रह कर रही थी। नवनीत हिन्दू और ब्राह्मण होने से बच गया, किन्तु यहाँ पाठकों को बतलाने में कोई हानि नहीं कि वह पहले ही अपने उदर का प्रसाधन कर चुका था। उसके बिना उसे शान्ति की प्राप्ति कैसे होती?

चाँद आकाश में ऊपर चढ़ गया था, संध्या की बची-खुची रेखाएँ भीं छिप गई थीं। केवल किनारे के पूर्ववर्ती पत्तों के आकार में छिपीं हुई काली रेखाही, पूर्व के दिगन्त में आकाश को सफेदी को तालाब की सफेदी से पृथक् कर रही थी। चन्द्रमा को गम्भीर चाँदनी में सारा वातावरण बेसुध हो रहा था!

नवनीत ने कहा—"जैसे-जैसे चन्द्रमा ऊपर उठता जा रहा है, तालाब के हृदय में उससे मिलने की उत्कण्ठा बढ़ती जा रही है। हाथ उठा कर ये लहरें न केवल चन्द्रमा ही का, किन्तु इस नाव के यात्रियों का भी आह्वान कर रही हैं! क्या हम नाव पर चलने की तैयारी न करें?"

"शर्ली ने कहा, "यस किटी! अब तो बहुत अच्छा टाइम है। फुल मून (पूर्णचन्द्र)! नवनीत, डिनर तो—"

"नाव में ही होगी! ड्रिंक्स' भी साथ जाएँगे।"

"इनके बिना नाव का लुत्फ ही क्या रहेगा!—किटी, गरम सूट

पहनलो । तालाब की 'कोल्ड ब्रीज' (ठण्डी हवा) से तुम्हें बचना चाहिए !"

"ओ के (ठीक है)" कह कर किटसन ने एक प्याला और चढ़ा लिया, और फिर कपड़े बदलने भीतर चल दिया । बाहर शर्ली और नवनीत दोनों ही रह गए ।

शर्ली ने एक तीक्ष्ण अपांग दिया, रात्रि की नीरवता में उसकी तीक्ष्णता नवनीत से भी नहीं सही गई ।

शर्ली ने कहा—"डियर, तुम्हें मेरा पत्र मिल गया था न ?"

"मिल गया था मिसेज़ रोगर्स !"

"हेल मिसेस रोगर्स—कहो शर्ली, शर्ली अलोन (केवल) डीयर !"

"शर्ली, जोर से न बोलो । किट्सन सुन लेगा ।"

"आइ केअर हेल ! (मैं चिन्ता नहीं करती) अत्यन्त शराब के कारण अब उसमें होश नहीं है ।"

नवनीत ने मुस्करा कर कहा, "और तुम ? तुममें होश है क्या ?–तुम भी तो नशे में बहुत ऊँची चढ़ गई हो ।"

"शराब में ही नहीं नवनीत, मैं जीवन में भी ऊपर चढ़ना चाहती हूँ !—तुम्हारे प्रेम का शराब ही तो मुझे खींच लाया है ।"

नवनीत ने सिगरेट जलाली, धुएँ का बादल शर्ली के मुँह पर छोड़ते हुए बोला, "तभी तो कुछ दिनों से मेरी आँखों के सामने अँधेरा छाया रहता था !"

शर्ली कुछ नहीं समझी, बोली, "इस चाँदनी रात में कितने सुन्दर दीखते हो नवनीत ! पर मैं भी क्या उतनी ही सुन्दर नहीं दीखती ! सच कहना !"

"चाँदनी रात में सभी कुछ तो सुन्दर दीखता है शर्ली !"

"और क्यों जी, क्या तुम्हें भी मेरी बराबर याद आती रही ? सच कहती हूँ, मैं तो तुम्हें एक दिन भी नहीं भूल सकी ।"—कह कर शर्ली कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई, और पीछे से जाकर नवनीत के वृष स्कन्द

पर दोनों हाथ टिका दिए। नवनीतने नीचे उतारने के लिए अपने दोनों हाथों से उन हाथों को पकड़ कर उसने कहा, "शर्ली, देखो यह भीतर क्या कहेंगे ?"

"ये तुच्छ नौकर ?—इन्हें बख्शीस देने से काम चल जाएगा। मैं इन्हें खूब समझती हूँ। तुम इनसे मत डरो।"

"परन्तु शर्ली—"

"कहो, क्या कहना चाहते हो ? एक बात कहे देती हूँ ! किट्सन बेवकूफ है, और शराब में बहुत जल्दी अपने को भूल जाता है। फिर भी तुम बहुत जल्दी मेरा प्रणयप्रसाद नहीं पा सकते। निश्चित रहो,-हम एक सप्ताह तक यहाँ ठहर रहे हैं, तब तक तो बहुत मौका मिलेगा। एक पत्र भी नहीं दिया नवनीत, नहीं तो तुम्हें फिर तुम्हारे पूर्व-पद पर प्रतिष्ठित करके ही दम लेती !"

"भूल गया था शर्ली, पर याद रहता, तब भी पत्र लिख सकना शायद मेरे से न होता।"

शर्ली ने सीना फुला कर कहा, "सुनती हूँ भारतीय बड़े कृतज्ञ होते हैं, उन पर किए हुए अंग्रेजों के उपकार भी तो अद्वितीय हैं ! मेरी ही बात देखो न। मैं अपने पिता के एक सामान्य कर्मचारी से प्रेम करती हूँ, क्या इतने पर भी मुझे कोई 'कलर-प्रेज्यूडिस' (वर्ण-भेद) या अवस्था-भेद का दोष दे सकता है ? लिखकर मुझे तकलीफ न देने के तुम्हारे इरादे की मैं प्रशंसा करती हूँ नवनीत !"

"किट्सन आता होगा शर्ली !"

"नहीं, अभी नहीं। तुम उसे नहीं जानते। उसने इतनी पीली है कि बिना बेहरे की मदद के वह कपड़े भी नहीं बदल सकेगा। और बेहरा समझदार है !" शर्ली मुस्कराई।

"तो भी मैं समझता हूँ, हमें जल्दी करनी चाहिए।"

"ओह तो ! सारी ही रात तो हमारे लिए है। कहो तो, किट्सन को कुछ पिलाया जा सकता है, सारी ही रात बेसुध रहेगा। परन्तु,

पहली हनीमून है बेचारे की; बहुत में से थोड़ा उसे भी मिल जाए। बहुत बुरा तो नहीं मालूम देगा न ? किन्तु यह तो तुम्हें जान ही लेना चाहिए कि हम भारत की पुतलियाँ नहीं हैं कि जो एक पुरुष के धागा खींचते ही नाचने लग जाएँ।"

"जरूर-जरूर शर्ली, बल्कि आज की रात उसे और तुम्हें दोनों को मुबारक हो, इसीलिए तो मैं कह रहा हूँ कि न हो तो तुम जाओ !"

"मैं उसके लिए बहुत अधिक अधीर नहीं हूँ। अच्छा नवनीत, एक बात बता सकते हो ?"

"कहो !"

"किट्सन किंग्स कमीशन (एक फौजी पद) के लिए कोशिश कर रहा है, यदि वह नहीं मिला तो विलायत लौट जाना चाहता है। अगर मुझे भी उसके साथ जाना पड़ा, तो हमारे प्रेम का क्या होगा ?

"कुछ नहीं।"

"उसे खत्म हो जाने दोगे ?"

"उसकी नौबत ही नहीं आएगी शर्ली।"

"क्यों ?—उसके बारे में तुम मुझसे अधिक कैसे जानते हो ?"

"जानता हूँ। मालूम नहीं भारतवासी जादूगर होते हैं ?"

"मैं जादूगरों पर विश्वास नहीं करती।"

"और जादू पर, क्या उस पर भी विश्वास नहीं करती ?"

"बिलकुल नहीं।"

"तब तो मैं बच गया शर्ली।"

"कैसे ?"

"तुम तो जानती ही हो; लखनऊ में भी मैं तुम्हें उतना अधिक तो पसन्द था नहीं—"

"नहीं नहीं; नवनीत तब भी मैं तुम्हें इतनी ही सरगर्मी से प्रेम करती थी।"

"तो शायद मेरी बात का उल्टा हो—यानी तुम्हीं मुझे कम पसन्द

होगी। परन्तु आज जब तुमने मेरे कन्धे पर हाथ डाले, तो मैं समझा तुम मुझ पर जादू कर रही हो।"

शर्ली खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली, "यू आर टू प्रेटी फॉर थिस डेम्हिलिशं इनोसन्स (इस मूर्खतापूर्ण भोलेपन के कारण तुम और भी सुन्दर हो गए हो !)"

"तो फिर मेरा यह खयाल गलत नहीं है कि यह सब चाँदनी रात का भ्रम है।"

"तुम्हारा मतलब ?"

"यानी चाँदनी रात में सभी सुन्दर दिखाई देता है। देखती हो न, कुछ देर पहले जो वृक्ष काले थे, वेही चन्द्रमा के ऊपर चढ़ जाने के कारण अब सफेद दिखाई देने लग गए हैं। उनका प्रकाश भी अब भला मालूम देता है।"

"यस, यू आर राइट। (तुम ठीक कहते हो) हां, यह तो तुमने बताया नहीं कि क्यों हम लोगों की विलायत जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी ?"

"मामूली सी बात है। ऐसे ही कह दिया था। भारतवासी यदि जादूगर नहीं, तो ज्योतिषी तो होते ही हैं। और यदि तुम इसे भी 'ट्रैश' (व्यर्थ) मानती हो तो यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि वे भाग्यवादी तो होते ही हैं।"

शर्ली ने हँसकर नवनीत के गाल पर एक हलकी-सी चपत लगादी और कह दिया 'हुश' फिर बोली "तो तुम भी ज्योतिष जानते हो ? लो मेरा हाथ देखो, क्या लिखा है इसमें ?"

नवनीत ने कहा, "यह ज्योतिष नहीं। यह पामिस्ट्री (हस्त सामुद्रिक) है, मैं इस विद्या को नहीं जानता।"

"नहीं जानते ? झूठ बोलते हो। अच्छा लाओ, तुम्हारा हाथ दो, मैं पामिस्ट्री जानती हूं।"

नवनीत को अपना हाथ बढ़ाना पड़ा। शर्ली उस पर कुछ झुकी,

श्रौर उसने शीघ्र ही उस हाथ को चूम लिया। फिर नवनीत की श्रोर देखकर खिलखिला पड़ी, बोली, "ठीक पढ़ सकती हूं न तुम्हारा हाथ! यह पढ़ना तुम नहीं जानते? जरूर जानते हो; परन्तु श्रपनी पुरानी शरारत से बाज श्राना तुम पसन्द कहां करते हो?"

"मैं दुनियाँ में बहुत कम वस्तुएं पसन्द करता हूँ शर्ली। जैसे मुझे पुरानी शरारत से बाज श्राना पसन्द नहीं है, वैसे ही प्रेम करना भी मैं पसन्द नहीं करता। परन्तु पसन्द-नापसन्द से होता ही क्या है? जो पसन्द हैं वे भी सताती हैं, जो नापसन्द हैं वे भी सताती ही हैं। वैसी श्रवस्था में तो 'रोलिंग स्टाक' भरतपुरी होना क्या ज्यादा फायदेमन्द नहीं?—श्राजकल वही होने की कोशिश कर रहा हूँ। केवल पसन्द है यह सिगरेट, जिसका धुश्राँ कई श्रलकाश्रों की सृष्टि किया करता है, श्रौर क्षणभर में संवरण भी कर लेता है। तुम्हारी श्राँखों में जो श्राग जलती है, उसमें भी ऐसा ही धुँश्रां है शर्ली, परन्तु उस धुएं में—पर जाने दो, मिस्टर किटसन श्राखिर श्रा ही गए।"

नेव्ही का गरम सूट डाटे हुए किटसन चले श्राए, श्राते ही उन्होंने भी एक सिगरेट जला लिया, तथा शर्ली के हाथ में हाथ देकर कहा—

"हम लोग चलें?"

"यस।" कहकर नवनीत ने टीकू को पुकारा, नाव से निकल कर एक व्यक्ति ने साहब को सलाम किया।

टीकू की वेश-भूषा विचित्र थी। प्राचीन धीवरों के समान ही उस का मल्लाही वेश श्रौर मल्लाही बोली किसी विशेष प्रयोजन को सूचित कर रहे थे।

टीकू के दूसरे साथी को समझदार बेहरे का हुक्म मानना पड़ा। दोनों ने मिलकर वह टी-टेबल नाव में रखी, सोडे श्रादि की बोतलों के श्रलावा कुछ श्रन्य रंगीन श्रापानक भी सजाए गए। उसके बाद एक २ करके तीनों ही नाव में उतरे। शर्ली, उत्सव की गवी के समान मध्य श्रासन पर सुशोभित हुईं, श्रौर दोनों श्रोर किटसन तथा नवनीत श्रपनी

अपनी सिगरेटों का धुआँ उड़ाते हुए उसके पार्श्व की शोभा बढ़ाने लगे। तीनों ही के बीच में सुशोभित हुई वह कादम्ब घटा, जो टी-टेबल पर सजी हुई थी, और जिस पर चन्द्रमा की किरणें क्षिप्त होकर प्रकाश का एक नया इन्द्रजाल उपस्थित कर रही थीं।

सामने की ओर दोनों मल्लाह बैठे। एक टीकू था, और दूसरे को भी हमारे पाठक, आसानी से नहीं, पर पहचान सकते हैं। उसका नाम है करणसिंह, जो राजपूत है, और मानपुर में कपड़े सीने का व्यवसाय करता है।

माँझी ने दो तीन डाडें मारी. किनारा छोड़कर नाव ने गंभीर जल की ओर मुँह किया, और शीघ्र तालाब की ऊँची लहरों में झूलती हुई वह आगे बढ़ने लगी।

फिर गिलासें भरी जाने लगीं। किटसन ने मुंह फुला कर एक अंग्रेजी ट्यून बजाना शुरू कर दिया। हवा के झखोरे उस विदेशी स्वर लहरी को दूर-दूर तक ले जाने लगे।

शर्ली ने कहा, "हम हिन्दी में बातचीत कर सकते हैं नवनीत, हमारा पड़ौसी हिन्दी नहीं जानता!" फिर किटसन की ओर मुंह करके उसने अंग्रेजी में कहा, "डीयर, तुम्हें कोई उज्र तो न होगा अगर अपने पुराने मित्र से हिन्दी में बातचीत करके मैं अपना हिन्दी का ज्ञान जाँच लूं।"

"सर्टनली नाट! (कदापि नहीं) और किटसन ने दूसरी गिलास भरना शुरू कर दिया।

नवनीत ने धीमे स्वर से कहा, "शर्ली, तुम्हारी शीघ्र और उपस्थित बुद्धि की दाद देता हूं, पर अब केवल हम दोनों के बीच करने की बातें ही क्या रह गई हैं? हमारा पड़ोसी न समझे, पर ये दूसरे मल्लाह—"

"इट्स नानसेन्स—सारी— (यह मूर्खता है, मुझे दुःख हुआ,)

डरने की बात नहीं है नवनीत ! नौकर लोग बख्शीस के भूखे होते हैं; वे साहब लोगों की और बातों में दखल नहीं देते ।"

"परन्तु मैं तो साहब नहीं हूं ।"

"कोई पर्वाह नहीं । किन्तु नवनीत, तुम्हारी इस टालमटूल से एक आदमी को शक नहीं हो सकता, कि तुम मेरी उसकी आधी भी पर्वाह नहीं करते, जितनी मैं तुम्हारी करती हूं ।"

"तुम्हारी पर्वाह करने वाले कम नहीं हैं शर्ली !"

"मगर मुझे तो उन सब की पर्वाह की जरूरत नहीं है ।"

"मेरी पर्वाह की भी नहीं होना चाहिये ।"

"तुम्हारा 'मूड' (स्वभाव) बड़ा 'कम्प्लेक्स' (जटिल) है । समझ में नहीं आता कि तुम्हारे ऊपर भरोसा किया जाए या नहीं !"

नवनीत हंसकर बोला, "भरोसा नहीं करना ही अच्छा है शर्ली ! हम तो जिन्दगी तक का भरोसा नही करते !"

"यानी, तुम्हारा मतलब ?

"यही कि मौत जैसी चीज पर किसी का भी वश नहीं है । क्या मालूम अभी ही कुछ ऐसा हो जाए कि—"

"तुम्हारा यह फटलीजम (भाग्यवाद) आखिर किसी मर्ज की दवा भी हैं ?"

"है क्यों नहीं शर्ली ! एक मर्ज होता है, भारतीय भाषा में उसे कहते हैं विश्रब्ध-नारी-संयोग रोग कम-से-कम उसका तो यह आजमूदा नुस्खा है ।

"यह क्या रोग होता है ?"

"तुम उसे समझोगी नहीं । वैसे तो यह औरतों ही का रोग है, पर अब भी यह किसी को न होता हो, सो बात नहीं है !"

"खैर होगा ! लेकिन नवनीत, यह तो तै है कि तुम मुझे उसी तरह प्रेम नहीं करते, जिस तरह मैं करती हूँ ।"

"तुम मुझे किस तरह प्रेम करती हो, यह मैं क्या जानूं ?"

मैं" तो जानती हूँ, और उसे कह भी सकती हूं ।"

"जरूर कह सकती हो। पर हमारे यहाँ कहते हैं कि कहना और करना एक बात नहीं होती।"

"तो तुम्हारा मतलब है कि मैं जैसा कहती हूँ, वैसा तुमसे प्रेम नहीं करती ?"

"मेरा मतलब तो कुछ नहीं है। मगर ठीक तो यह है, कि प्रेम करना एक बात है, और कहना दूसरी बात। जैसे मैं नहीं जानता कि मुहब्बत करना किसे कहते हैं, पर कहना खूब जानता हूँ, तुम लोगों को देख-देखकर सीख गया हूँ।"

"पर जरूरी यह है कि तुम जो कुछ कहो, वह सच हो।"

"माफ करना शर्ली, मुझे तो आखिर प्रेम में कोई सच नहीं दीखता। तुम कहो तो तुम्हारे पड़ोसी से ताईद करवा लूँ ? वे कहेंगे कि तुम्हारी उनके लिए जो प्रेम है, वह सच ही है,कहो तो उन्हें समझा दूँ कि उसमें सच नही है ?"

"प्यारे, इसीलिए न, कि मैं तुम्हें बहुत ज्यादा प्यार करती हूँ ?"

"यह भी कह दूँ ?—मि० किट्सन तुम्हारे प्रेम के झूठेपन को और भी आसानी से समझ जाएँगे !"

"किट्सन' का नामोल्लेख होते ही किट्सन ने अंग्रेजी में पूछा, "कहिए, मेरे बारे में क्या बात हो रही है ?"

झट से शर्ली ने उत्तर दिया, "नवनीत कह रहे हैं कि रात का यह समय किट्सन को बहुत भा रहा है। भा रहा है न ?"

"निश्चय ही मि० व्यास ! इस प्रबन्ध के लिए बहुत धन्यवाद।"

नवनीत ने हँसकर शर्ली से हिन्दी में कहा—"तुम्हारी शीघ्र-बुद्धि की मैं पहले ही दाद दे चुका हूँ। जी तो चाहता है कि तुम जैसी अकलमन्द लड़की से प्रेम न सही, प्रेम का नाटक ही कर पाता। क्यों शर्ली, मेरा खयाल है, तुम लोग शायद नाटक के ऊपर ही तो भरोसा करती हो ?—दिल से प्रेम करने का तो शायद तुम्हारे यहाँ सवाल ही नहीं है।"

"कैसे नहीं है ?"

"तुम्हीं ने तो थोड़ी देर पहले कहा है कि तुम भारत की पुतलियाँ तो नहीं हो कि जो एक पुरुष के धागा खींचते ही नाचने लग जाओ !—ऐसी लड़कियों को हम लोग पुतलियाँ तो नहीं कह सकते, पर 'तितलियाँ' शब्द का प्रयोग हमारे यहाँ भी चालू हो गया है। तितलियों से प्रेम करने के नाटक हम लोगों में भी रिवाज चालू हो गया है।"

"मंजूर करते हो न कि तितलियों के सामने पुतलियों की खूबसूरती कुछ नहीं है ?"

"खूबसूरत ही नहीं शर्ली, तितलियाँ फुदकती भी खूब हैं, चहकती और उड़ती भी खूब हैं—है न ? पर पुतलियाँ तो बेचारी धागा हिलाने पर ही हिल सकती हैं।"

"जानते हो न—'वूमन इज़ दी कन्जूमेट फार्म आफ ब्यूटी' (स्त्री सौंदर्य का चरम रूप है)—और अगर खूबसूरती में जान न हो, तो मार्बल स्टेचू (संगमर्मर की मूर्त्ति) क्या बुरा है ?"

"शर्ली, मार्बल स्टेचू का जो सौंदर्य है, उसे कलाकार की आँख ही पहचानती है। अजायबघर में जीवित मूर्त्तियाँ नहीं रखी जातीं, क्योंकि उनका सौंदर्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। कलाकार की कला जिस सौंदर्य को स्थायित्व देती है, वह सौंदर्य चेतना से ऊपर की वस्तु है। और जिसे तुमने नारी का रूप कहा है, वह तो उस अमर सौंदर्य की एक क्षणिक-छाया मात्र है, जो नारी के शरीर पर कुछ समय के लिए झलक उठती है। शिशु के सरल अधरों पर स्फीत हो उठने वाली मुस्कान का मूल्य तुम्हारे नारी के सौंदर्य से कुछ कम नहीं है। अगर तुम केवल अपनी आँखें ही खोल कर इस चाँदनी की ओर देख सको, तो 'ब्यूटी' (सौंदर्य) का तुम्हारा यह 'कन्जूमेंट फॉर्म' (चरम-रूप) लज्जा से झुक जाएगा शर्ली ! परन्तु तुम दुनियाँ देखना नहीं जानती, खाली काँच देखना जानती हो। पर याद रखो, एक दिन झुँझला कर तुम काँच ही को फोड़ डालना चाहोगी; तब भी इस तालाब पर ऐसी ही चाँदनी रात

में आकर देखना, इसके अनावृत-सौंदर्य में कहीं झुर्रियाँ नहीं दिखाई देंगी !"

"नवनीत, इन लम्बी-चौड़ी बातों का एक मतलब तो साफ है कि तुम मुझे प्रेम नहीं करते।"

"मुझे खुशी है, कि तुमने आखिर मेरे मतलब का कुछ मतलब तो निकाला। मेरा खयाल है मैंने तुम्हें अब तक कोई ऐसी बात तो नहीं कही थी, जिसका उल्टा मतलब लगाया जा सकता। बात यह है कि बात तो सदैव सीधी होती है, रहा सवाल मतलब का; वह लगाने वाले की इच्छा पर है—उल्टा भी लगाया जा सकता है, सीधा भी। तुम्हारी बात का मैंने सीधा मतलब लगाया, और मेरी बात का तुमने लगाया उल्टा!"

"नवनीत, केवल मेरी बात न मानने ही से तुम्हें इस 'कण्ट्री लाइफ' (देहाती जीवन) की तकलीफें सहना पड़ रही हैं !"

"जानता हूँ शर्ली, और इसी कण्ट्री लाइफ की वजह से कुछ जवानी और मुटापे के रोग ने घेर लिया है। लेकिन तुम्हारी बातें नहीं मानने का तुम्हारा आरोप जँचा नहीं; क्योंकि मैं यह मानता रहा हूँ कि तुमही मेरी बातें नहीं मानती रही हो। पर खैर इस लड़ाई से कोई फायदा नहीं। आज जब कि हम दोनों एक दूसरे का मतलब साफ-साफ समझ गए हैं, तो अच्छा यही है कि हम अपनी-अपनी गलतफहमी खतम कर दें।"

शर्ली चिढ़ गई, उसने उग्र स्वर में कहा—"मि० नवनीत, अंग्रेज औरतें बहुत जल्द पीछा नहीं छोड़तीं। मायूस होने की हालत में वे बड़ी कीनासाज हो जाती हैं। मेरा खयाल है तुम समझ बूझ कर मुझे उत्तर दोगे।"

नवनीत ने सिगरेट जला कर शांति से हँसते हुए अंग्रेजी में कहा, "मेरा ख्याल है कि आज के इस मालूली-से प्रबन्ध से मेरा जो आत्म-भाव प्रकट हुआ है, उससे तुम्हें किसी तरह नाराज होने का कारण नहीं है। आप क्या खयाल करते हैं मि० किट्सन ?"

किट्सन ने बिस्कुट का टुकड़ा चबाते हुए कहा—"हम आपके प्रति इसके लिए शुक्र गुजार हैं। आपका आभार मानने में मैं अपनी पत्नी के साथ हूँ।"

"आप लोगों की सेवा करके मैं बहुत आनन्दित हुआ।"

शर्ली ने व्यंग्य से कहा, "लखनऊ पहुँचने पर मैं अपने पिता से सिफारिश करूँगी कि तुम्हें एक अतिरिक्त तरक्की मिले।"

नवनीत ने उससे भी दूने व्यंग्य से उत्तर दिया, "मैं परम-पिता से प्रार्थना करता हूँ कि तुम शीघ्र ही अपने पिता के पास पहुँचो!"

किट्सन ने हँसकर कहा, "फिर भी हम एक सप्ताह तक तो यहां ठहर रहे हैं!"

नवनीत ने कहा, "मैं कामना करता हूँ कि आप यहाँ से जाएँ ही नहीं!"

किट्सन ने कहा, "शर्ली के प्रति तुम्हारी वफादारी देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई!"

नवनीत ने उत्तर दिया—"मगर मि० किट्सन! दुःख है कि उसे मेरी वफादारी से सन्तोष नहीं है। अगर आप सिफारिश कर दें—"

किट्सन ने शर्ली को लक्ष्य कर कहा—"डार्लिङ्ग—"

शर्ली ने बात काट दी, और उत्तर दिया, "नवनीत शरारती है डियर, उसकी कोईबात न सुनो। वह मेरा क्लासफेलो रह चुका है, मैं उसे कभी माफ नहीं करूँगी।"

किट्सन ने अट्टहास करते हुए कहा, "सर्टनली नाट, सर्टनली नाट, (कभी नहीं कभी नहीं!) क्लास फेलो कभी माफ नहीं किए जा सकते नवनीत!"

इन लोगों की यह गम्भीर या हलकी बातचीत चल रही थी, किंतु सामने बैठे हुए मल्लाह वास्तव में बड़े गंभीर दीख रहे थे। उनकी दृष्टि रह-रहकर सामने वाली तट भूमि से टकरा उठती थी।

करणसिंह ने कहा, "क्या बात है ? अब तक तो उन्हें आजाना चाहिए था।"

टीकू ने उत्तर दिया, "चारों ओर शांति भी तो हो गई है। ना ना, नाव उधर नहीं आनो चाहिए। बीच ही में रक्खो करणसिंह, ताकि किनारे पर कोई हो तो कुछ समझ न पाए।"

करणसिंह ने दो चार डाँड मारे, दिशा बदल गई, नाव बीच तालाब की ओर मुड़ चली, किन्तु वे लोग बराबर सामने की ओर देखते रहे।

करणसिंह ने कहा, "कहीं उन लोगों का इरादा तो नहीं बदल गया ?"

"मुमकिन तो नहीं है, रेडियर कभो शांत हो जाए, ऐसा संभव नहीं दीखता।"

"बल्कि अगर वे न ही आएँ, तो क्या हमी लोग काफी नहीं हैं ? क्या कहते हो टीकू ?"

"काफी तो क्यों नहीं हैं ? पर जिस आदमी के दिल पर घाव लगा हो, जब वही न बोले, तो हमारा बोलना क्या अच्छा मालूम देगा ?"

"यह क्या एक ही के दिल का घाव है ?—हिन्दुस्तान हमारा देश है, और इस प्रकार का अन्याय सारे देश का घाव है टीकू !—यह खतरा जो हम मोल लेने जा रहे हैं, क्या एक आदमी की बात रखने के लिए है ?"

"तुम्हारी बात सच तो है भाई, पर हमारी जिम्मेदारी काम के प्रति नहीं, दल के प्रति है; हमारे कामों का अधिकार नायकों से सम्बन्ध रखता है। हम सिपाही हैं, सिपहसालार नहीं।—पर देखो, सामने कुछ हिलता-सा दिखाई देता है,—जरूर नाव है। वह देखो, वृक्षों की छाया में चाँदी-सी उछलती हुई आगे बढ़ रही है। करणसिंह, सावधान हो जाओ, अवसर आगया है।"

सचमुच ही सामने से लहरों के जाल को उच्छिन्न करती हुई एक

नाव क्षिप्रगति से इधर ही आती हुई दिखाई दी। गति के वेग से मानो भागते हुए घोड़े के समान उसके मुँह से फेन गिरने लग गया था।

सब से पहले शर्ली की दृष्टि उस ओर गई, नवनीत का हाथ पकड़ कर कर उसने कहा, "देखना, कोई नाव ही है न सामने?—नहीं क्या?"

"दीखती तो नाव ही है। पर आश्चर्य है, यह आई कहां से? सभी नावों का ठेका तो इसी टीकू ने ले रखा है।—अरे टीकू!"

टीकू हाथ जोड़कर खड़ा होगया, बोला, "सरकार"

"यह नाव किसकी है?—तुमसे कहा था न कि आज और किसी से नाव का सौदा न करना?"

"नाहीं सरकार, ई नाव तो मोर नाहीं। मैया की सौं।"

"तो क्या इस तालाब में और लोगों की नावें भी हैं?"

"का जानी सरकार! या बाजू माँ कछु मछुअन ने नाउटियन कौ रूजगार चलायौ तो है। साइन तिन मैं तैं काहू की होई!"

नवनीत ने कहा, शर्ली से, "ये नीच जाति के बड़े लोभी होते हैं! मालूम पड़ता है शहर के किसी रईस को ज्यादा पैसे के लोभ में इन्होंने नाव दे दी है। मैं जरूर इसकी पूरी तलाश करूंगा।"

किट्सन ने उत्तर दिया; "मगर मि० व्यास, क्या हर्ज है अगर कोई दूसरा भी इस चन्द्र-प्रकाश का आनन्द लूटना चाहता हो, निश्चय ही हम लोगों ने ही तो इसका एकाधिकार नहीं लिया है।"

शर्ली ने कहा, "तुम ठीक कहते हो किटी, इसे प्रयोग करने का सबको अधिकार है।"

नाव तब तक और पास आगई थी। ऐसा मालूम देता था मानो कोई राजहँसिनी अपने पंखों को फैला कर पानी की छाती पर तैर रही हो।

शर्ली ने कहा, "काफी तेजी से आ रही है। कहीं समुद्री डाकू तो नहीं है नवनीत?"

नवनीत ने हँसकर कहा, "वह पुराने जमाने की बातें हैं पगली, न तो यह तालाब ही समुद्र है, न हमारी यह नाव ही किसी व्यापार का जहाज है। देखती नहीं ?—दो से ज्यादा आदमी तो हैं नहीं उस नाव पर।"

किट्सन ने मुस्कराते हुए कहा—"शर्ली अब उस बीते हुए इतिहास के जमाने में रहती मालूम देती है। सुन्दरियों का स्थान वैसे इन्हीं स्वप्न-भूमियों में है। नवनीत, शर्ली का सौंदर्य और क्या सोचने की प्रेरणा देगा ?"

नवनीत ने सिर हिलाकर कहा, "बिलकुल ठीक कहा, किट्सन !"

नाव और भी पास आगई थी। उसमें केवल दो ही व्यक्ति थे—एक व्यक्ति चला रहा था, दूसरा पीछे बैठा हुआ था। उसके बैठने के ढंग से साफ जाहिर होता था कि नाव उसी के हुक्म से चलाई जा रही है। तब भी उसको पहचान सकना सहज न था।

शर्ली ने कहा, "यह आदमी तो बेवकूफ मालूम देता है।"

"क्यों ?" किट्सन ने पूछा

"देखो न डार्लिङ्ग, प्रकृति का यह सौंदर्य क्या अकेले उपभोग किया जा सकता है ?"

"सर्टनली नाट, सर्टेनली नाट, मुझसे ईर्ष्या करने का उसके पास ठीक कारण है।"

"मेरे लिए क्या कहोगी शर्ली ?"

शर्ली ने हिन्दी में कहा, "तुम भी गर्व कर सकते हो नवनीत, यदि कुदरत की खूबसूरती में लिपटी हुई मेरी आँखों के कटाक्षों को अपनी आंखों की कोरों से स्वीकार कर सको ?"

नवनीत ने अंग्रेजी में कहा, "ए गुड काम्प्लीमेण्ट इण्डीड (एक वास्तव में सुन्दर विशेषण) ! किट्सन, शर्ली मुझे बड़ा बेवकूफ बना रही है।"

"तुम्हें मिसेस नवनीत को साथ लाना चाहिए था !" किट्सन ने कहा।

"मिसेस रोगर्स भी चाहती थी कि इस स्थान की पूर्ति हो जाती, लेकिन—हाउ बिग फूल आई कुड बी ? (तब मैं इतना (या कैसे) बड़ा बेवकूफ बन सकता था ?)" —शर्ली नवनीत द्वारा प्रयुक्त श्लेष को समझ गई।

किट्सन ने कहा, "नवनीत, तुम बहुत ही पसन्द आने वाले स्वभाव के व्यक्ति हो।"

"धन्यवाद किट्सन, लेकिन—"

सामने वाली नौका निकट आगई। नाव में जो व्यक्ति मल्लाह की जगह बैठा हुआ था, वह सिर पर एक बड़ा सा बेतरतीब से साफा लपेटे हुए था, बड़ी-बड़ी मूँछें; शरीर का रंग आबनूस जैसा, चाँदनी रात में और भी अधिक भयानक दीख रहा था। जो व्यक्ति मालिक के स्थान पर बैठा हुआ था, वह कोई काठियावाड़ी मालूम देता था; उसके मस्तक पर काठियावाली छज्जेदार पगड़ी बँधी हुई थी, जिसकी छाया में उसका सारा चेहरा छिपा हुआ था, किन्तु वह फिर भी ऊँची श्रेणी का व्यक्ति मालूम देता था। तीनों व्यक्तियों की दृष्टि उधर ही खिंच गई।

टीकू ने चिल्ला कर कहा, "तोहर फूट गई की ? तनी बाजू तैं लई हती—"

टीकू की बात पूरी नहीं हो सकी कि उस नाव के मल्लाह ने चिल्ला-कर कहा, "खुदा कसम, मुँह सम्हाल कर बोल; तालाव तेरे बाप का है ?"

टीकू ने कहा, "और कहूँ नैक टक्कर जौ लगती तौ—"

"अगर बचा कर नहीं चलेगा तो खुदा कसम, टक्कर क्या लगेगी, नाव उलट जाएगी !"

सब ने देखा कि सामने वाली नाव इस नाव की अपेक्षा अधिक सुन्दर और मजबूत है। उसकी गति भी तबतक धीमी कर दी गई थी।

करणसिंह ने कहा, "मालूम पड़ता है तुम यही तै करना चाहते हो कि यह तालाब हम दोनों में से किसके बाप का है?—या अब भी सीधी तरह से अपने रस्ते लगोगे?—तालाब कोई इतना छोटा नहीं है।"

नवागन्तुक नाव में बैठे हुए भद्र व्यक्ति ने अपने नाविक से कहा—"अरे झगड़ा क्यों करते हो भाई! न हो, इधर से निकाल लो!"

नाविक ने कहा, "निकाल तो लेता ही, इन जैसा जाहिल थोड़े हूँ। पर यहाँ, मानपुर तालाब के ये मल्लाह बड़े ही नीच हैं, किसी दिन इनको सबक तो सिखाना ही पड़ेगा।" और फिर मानो अपनी नाव को कुछ मोड़ने का उपक्रम करते हुए उसने मल्लाह से कहा—"समझे, आज तो छोड़ देता हूं, पर और किसी दिन तुम्हारी इस जहालत का बदला जरूर लूँगा।"

टीकू ने व्यंग्य से कहा, "जाऊ लाला, जननी के अँचरा तैं तनी दूध पी आऊ!"

किट्सन ने पूछा, "यह क्या बेवकूफी है?"

शर्ली ने उत्तर दिया, "उस नाव का माँझी बड़ा जंगली मालूम देता है!"

नवनीत दूसरी नाव के अधिकारी भद्र-पुरुष को संबोधित कर बोला, "सेठजी, इस गँवार माँझी के साथ, मालूम पड़ता है, तुम भी गँवार हो गए हो—"

मुड़ती हुई नाव वापिस ठहर गई। माँझी बोली, "कसम खुदा की, मेरे मालिक के लिए जो गँवार लफ्ज का इस्तैमाल करे, उसका खून पी जाऊँ। मालूम देता है कि मानपुर गाँव के मल्लाह ही नहीं, तमाम बाशिन्दे भी अक्ल से खारिज और उल्लू के पट्ठे हैं!"

करणसिंह को क्रोध हो आया। पास ही लकड़ी का एक बड़ा-सा कुन्दा रखा हुआ था, उसने पतवार छोड़ दी और उस कुन्दे को उठाकर सामने वाली नाव का लक्ष्य कर जोर से फेंक दिया, वह माँझी के कान से बाल-बाल बच कर पानी में जा गिरा।

'सेठजी' ने नवनीत को सम्बोधन करके कहा—"हमारा माणस को तुम यूँ तंग क्यूँ करता है ? तुम गैर जबान मत बोलो, गुस्सा हमको वोत आवड़ता है ।"

मुसलमान माँझी ने उस पानी में पड़े हुए कुन्दे को उठा लिया, और कसकर करणसिंह की ओर फेंकते हुए बोला—

"कसम खुदा की, काफिर को जिन्दा न छोड़ूँगा। नाम बदल दूं, अगर कहर न बरपा कर दूँ ।"

मालूम दिया, जैसे करणसिंह उस वार को बचा गया। शर्वी ने भय से आँखें बन्द करलीं, अगर करणसिंह उस वार को न बचाता तो उसके सिर की खैर न थी ।

लड़खड़ाते हुए खड़े होकर किट्सन ने ज़ेब से पिस्तौल निकालली, और नवनीत से कहा, "मि० नवनीत, इन लोगों से कहो कि साहब के पास पिस्तौल है, यदि वे हट नहीं जाएंगे तो उन्हें मौत का सामना करना पड़ेगा ।"

नवनीत ने यह बात चिल्ला कर सबको सुनादी। साहब बहादुर ने भी अपना पिस्तौल वाला हाथ ऊँचा उठा कर सब लोगों को जाहिर कर दिया कि उनके पास सचमुच पिस्तौल है ।

टीकू ने इसी बीच अपनी नाव को उस नाव के पीछे लगा दिया। उसने अकस्मात् ही ऐसा जाहिर किया मानो अपनी लग्गी से वह सामने वाली नाव को उलट देगा, और चिल्ला कर बोला, "मियां जी, हमार कह्यौ ना मानी, तौ इहै छठवों का दूध याद करौ; ई तौहरी नाउ गंगा मैया माँ जात है—"

परन्तु मालूम दिया कि वह नाव सम्भल गई, एक मामूली सा धक्का खाकर दूर हट गई। आगन्तुक नाव का वह भद्र अधिकारी खड़ा हो गया, और चिल्ला कर बोला—"साब का पिस्तौल से डर नहीं जाएगा हम। गवर्मेंट सरकार राज करती है, मजाक नहीं। हमारा माणस का कोई कसूर नहीं था।"

मुसलमान माँझी ने तब तक पीछे जाकर पूर्व नौका को एक जोर से टक्कर दी। नतीजा बड़ा मजेदार रहा। कई तरह की रंगोली बोतलों से सजी हुई टेबल लुढ़क गई, बोतलों ने सत्याग्रह किया, वे लुढ़कीं, नाव के फर्श पर गिरीं, और टकरा कर चूर-चूर हो गईं, शराब की तेज बू ने हवा के चांचल्य को भी मात कर दिया, वह शीघ्र चारों ओर फैल गई। माँझी ने और सेठ ने अपने नाक पर हाथ रख लिया। माँझी के मुँह से निकल पड़ा—"तौबा, तौबा! तुम पर शैतान का कहर नाजिल हो।"

नवनीत ने किट्सन से कहा, "आप पिस्तौल काम में न लें। इन माँझियों की मूर्खता से थोड़ी सी बात बढ़ गई है, मैं खत्म किए देता हूं।"

नवनीत आगे बढ़ा। शर्ली ने किट्सन से कहा, "किटी, पिस्तौल जेब में रख लो। इसकी वजह से हम एक बार काफी बदनाम हो चुके हैं। जानते तो हो, इंडियन्स के दिमाग में तो आजकल रिबेल (बलवे) की हवा चल रही है। जेब में ही रहने दो पिस्तौल को फिर!"

किट्सन ने कहा, "आइ केअर हेल फार द इण्डियन्स' (मैं भारतीयों की तनिक परवाह नहीं करता) मैं फौजी आदमी हूं, इट्स माइ गेम' (यह मेरा खेल है।)"—कहते हुए उसने पिस्तौल जेब में रखली। फिर नीचे झुक कर एक नहीं फूटी हुई बोतल को उठा लिया, और मुँह को लगा लिया, यदि बोतल के कारागृह से अंगूरी-अप्सरा को मुक्त होने की इच्छा ही है, तो उसे व्यक्ति के बुभुक्षित-हृदय के निकट उदरासन से अच्छा आसन कहाँ मिल सकता है?

नवनीत दौड़ कर दूसरी नाव पर कूद पड़ा, उसने कड़क कर नाविक से कहा, "क्या चाहते हो तुम, लड़ना?" फिर सेठजी को लक्ष्य कर उसने आगे कहा—"मैं यहाँ का पोस्ट-मास्टर हूं, और नाव में बैठे हुए साहब फौज के एक बड़े अफसर और इस जिले के कलेक्टर के लड़के हैं—"

सेठ ने कहा, "जिला कलेक्टर के लड़के—? लखनऊ में जिन्होंने गोली चलाई थी—"

उसके बाद की बातचीत नहीं सुनी जा सकी, क्योंकि तभी उस नाव में दूसरी घटना घट गई।

साहब बहादुर बोतल से मुँह लगाए हुए थे कि उन्हें एक जोर का धक्का लगा। किरण सिंह दौड़ कर उस नाव पर पहुँच जाना चाहता था। हाथ जोड़ कर बोला, "माफी, हुजूर, साहब, जल्दी में खयाल नहीं रहा—"

किन्तु, किरणसिंह के खयाल न रहते हुए, साहब बहादुर नीचे फर्श पर गिर पड़े। शराब ने उनकी समस्त चेतना और शक्ति को बेकाबू कर दिया था। सामने खड़ी हुई शर्ली ने जब यह काण्ड देखा, तो वह जोर से चिल्ला पड़ी, और हिन्दी ही में नवनीत से बोली, "नवनीत, धोखा हुआ। यह सब मल्लाह मिले हुए हैं, देखो इसने मि० ज्याफ्री को गिरा दिया।"

किरणसिंह ने कहा, "नहीं, मेम साहिब, नहीं; मुझसे गलती हो गई। मैं तो पोस्ट मास्टर साहिब की मदद के लिए जा रहा था कि—"

नवनीत तब तक सेठजी से ही बातें कर रहा था। मुसलमान माँझी ने अपनी नाव छोड़ दी, और दौड़ कर वह इस नाव पर कूद पड़ा। साहब बहादुर जब गिर पड़े तो बोले, अंग्रेजी में ही, हालाँकि शर्ली को भी उनकी बात समझने की फुरसत न थी—

"सचमुच, सोने का समय हो गया है!"—और इसी असम्बद्ध बात में उन्होंने कितना दर्शन व्यक्त कर दिया था!

माँझी ने धीरे से कहा, "खबरदार किरणसिंह, शर्ली को हाथ न लगाना—नवनीत ने चाहे जो कहा हो।"

किरणसिंह ने कहा—"रेडियर, मौका है। तै हुआ था कि इसी समय लड़की और साहब को पानी में डाल दिया जाए। टीकू छुरा लिए तैयार है। फिर शायद नाव उलटने का मौका न मिले!"

रेडियर ने कहा, "शर्ली मरने के लिए नहीं है बेवकूफ, उसे मैं प्यार करता हूँ। जाओ तुम उस छोकरे को पानी में डाल दो, और इस छोकरी को मेरे हिस्से में छोड़ दो।"

किरणसिंह ने कहा, तुम्हारे दोस्त के तौर पर मैंने इस काम में हाथ नहीं डाला, बल्कि इसलिए कि मेरी भी इस काम में जिम्मेदारी है। यदि जरूरत पड़ी तो मैं तुम्हारी दुश्मनी को भी न्यौता दे सकता हूँ।"

"मैं तैयार हूँ किरणसिंह, पर ध्यान रहे मेरे पास शस्त्र हैं।"

"मेरे पास भी हैं रेडियर !"

किन्तु रेडियर ने उसे अधिक कहने का अवसर नहीं दिया, वह किरणसिंह पर टूट पड़ा। किरणसिंह इसके लिए इतना शीघ्र तैयार न था। मानो नाव को एक जोर का धक्का लगा, किरणसिंह भी फर्श पर गिर पड़ा।

शर्ली ने समझा कि उसका रक्षक किरणसिंह पदस्थ हो गया, तो वह चिल्लाई—

"नवनीत बाबू, हमारा मल्लाह गिर पड़ा।"

रेडियर घबराया। वह नहीं चाहता था कि नवनीत वहाँ आ पहुँचे। उसने शर्ली के पास जाकर धीरे से कहा, "शर्ली, नवनीत पर विश्वास न करो, आज तुम्हारे विरुद्ध षड्यंत्र किया गया है। यदि तुम चुप रहोगी, तो मैं तुम्हारा उद्धार कर सकूँगा।"

शर्ली घबराई। षड्यंत्र है, यह तो ठीक है, पर कौन शत्रु है, कौन मित्र ?—वह पहचान न सकी, पूछा, "तुम कौन हो ?"

"बाद में मालूम पड़ जाएगा, अभी नहीं।"—तभी उसने चिल्लाकर आवाज दी, "टीकू—"

नवनीत तबतक दौड़कर इस नाव पर कूद पड़ा। उसने देखा कि किट्सन दीख नहीं रहा है, शायद नीचे डाल दिया गया हो। उसने खुशी से कहा, "रेडियर जल्दी करो।—समय बर्बाद न करो—"

रेडियर ने जवाब दिया—"सब काम हो जाएगा, घबराओ नहीं।"

शर्ली ने देखा कि नवनीत सचमुच षड्यंत्र-कारियों में मिला हुआ है, भय के स्थान पर उसे क्रोध उमड़ पड़ा ललकार कर बोली—"यू कावर्ड बूचर—(डरपोक कसाई) ! यू हैव प्लेड ट्रेजन विद अस, (तुमने हमें धोखा दिया है ।)"

"नहीं मेम साहब, केवल आपके धोखे का जवाब ! बेचारे इण्डियन्स 'ट्रेजन' जैसी चीज समझेंगे ही क्या ?"

"तुम हिन्दुस्तानी, सूअर से भी ज्यादा नमक-हराम हो । एक ही मिनिट पहले मैंने किट्सन से कहा था कि यहाँ खून खराबी न हो—और वे अपना पिस्तौल जेब में रखलें—पर हिन्दुस्तानियों की नीच कौम आखिर है तो उसी काबिल ब !"

किट्सन ने अपना नाम सुना तो बोला—"शर्ली, कम माइ वे, लेटस हैन्ह अवर हनीमून माय मून ! (इधर आओ मेरी चाँद, हमारी सुहागरात हो !)"

शर्ली किट्सन की ओर बढ़ी और बोली, "हमें धोखा दिया गया है डीयर, और यह नवनीत भी शरीक है । लाओ, पिस्तौल मुझे दे दो !"

दूसरी नाव पहली नाव के समानान्तर सटकर खड़ी हो गई । उस नाव का काठियावाड़ी सेठ खड़ा होकर इस दृश्य को देख रहा था । चन्द्रमा पश्चिम के आकाश में नीचे की ओर झुका हुआ, मनुष्य की इस व्यामोहमयी लीला पर हँस रहा था । पगड़ी की छाया सेठजी के मुँह के सब भावों को बड़ी कुशलता से छिपा रही थी ।

नवनीत ने सारी बात सुनी, उसके मुँह की आकृति बड़ी भयानक हो उठी । चन्द्रिका के अमृतमय शीतल-श्वेत प्रकाश में भी उसके गौर वर्ण में रक्त फूट उठा, और उसके नेत्र प्रलय के सूर्य के समान जल उठे, नीचे के ओठ को ऊपर के दाँतों से दबाकर बोला, "हनीमून, यदि इस दुनियाँ में तुझे नहीं मिल सके तो देख, पानी की इन लहरों पर तुझे जरूर मिल जाएगा ।" और वह शर्ली की ओर झपटा, वह उसे उठा कर शीघ्र ही पानी में पटक देना चाहता था ।

किन्तु रेडियर ने उसे बीच ही में रोक लिया और कहा—"शर्ली मेरा पुरस्कार है नवनीत, युद्ध में शत्रु को परास्त किया जाता है, किन्तु लूट के सामान को सिर पर स्थान दिया जाता है।"

"यह कामुकों के शब्द हैं रेडियर, तुम स्वार्थी हो। शर्ली भी हमारी दुश्मन है। यदि तुम्हारा हृदय भावुकता के वश यह कार्य नहीं कर सकता, तो दूर हटो। तुम्हारा पुरस्कार वह बैल है, उधर। मैं इस रण्डी को खत्म कर दूँगा! देखता हूँ इसका पिस्तौल चलाने वाला कलेजा मगर-मच्छों को कितना प्रिय लग सकता है!"

किन्तु रेडियर ने बिना कुछ अधिक कहे, नवनीत को पकड़ लिया, दोनों में गुत्थम-गुत्था हो गई।

शर्ली ने कहा, "किटी, रिव्हाल्वर प्लीज, हरी अप! (शीघ्रता करो!)"

फर्श पर पड़े हुए साहब-बहादुर के पेण्ट की जेब सम्यक् अवस्था में न थी, इसलिए रिवाल्वर आसानी से नहीं निकल सका। किन्तु तबतक नवनीत के दैत्याकार शरीर ने रेडियर की मुट्ठी भर पसलियों को नीचे बिछा दिया था। उससे निबट कर वह उठा, और शर्ली की ओर बढ़ा।

किट्सन ने पड़े ही पड़े बहुत कुछ परिस्थिति समझ ली। मौका ही ऐसा था। किन्तु वह उठा नहीं, उसने शर्ली से कहा कि वह चुप रहे; लेटे-लेटे ही वह बड़ी सरलता से पिस्तौल का प्रयोग कर सकेगा। उसने पिस्तौल निकाल ली, और जबकि नवनीत शर्ली के ऊपर लपका, किट्सन ने पिस्तौल चलाने के लिए अपना हाथ ऊँचा किया—

केवल एक 'क्लिक' की आवाज हुई। दूसरी नाव पर से काठिया-वाड़ी सेठ अपने छज्जेदार पगड़ी की छाया में आँखों की तीक्ष्ण दृष्टि छिपाए हुए किट्सन और शर्ली की सम्पूर्ण लीला को नितान्त शांति के साथ लक्ष्य कर रहा था। चन्द्रालोक में उसने यह भी स्पष्ट देखा कि अंग्रेज-गोरा किस तरह खतरे के मौके पर शीघ्र ही चैतन्य लाभ करता है, और उपस्थित बुद्धि से बिना किसी प्रकार की आतुरता के अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेता है। किट्सन ने कब पिस्तौल निकाली, और

कब अपने हाथ को ऊपर उठाकर उसने नवनीत को पिस्तौल का लक्ष्य करना चाहा, यह सब वह अपलक दृष्टि से देख रहा था। किसी को मानो इस सेठजी का पता ही न था। शर्ली ने शायद सोचा हो कि बनिया-बुद्धि सेठ घबरा गया है, चेतना लाभ करने पर शायद किट्सन ने भी यह सोचा हो, या वह इस सेठ को देख ही न पाया हो; पर यह सच है कि उसी समय सेठजी का हाथ भी अपने अंगरखे की जेब में गया, और जबतक कि नवनीत को लक्ष्य करने के लिए किट्सन अपना हाथ ऊँचा करे, उसके पहले ही सेठजी ने उस हाथ का लक्ष्य ठीक कर लिया। यदि सेठजी का पिस्तौल ठीक समय पर नहीं चल पड़ता तो इस समय के बहुत पहले से ही नवनीत की रक्त-रंजित लाश पाठकों की आँखों से गुजर चुकी होती, परन्तु यह नहीं हुआ। लहू-लुहान किट्सन का हाथ नीचे झुक गया, पिस्तौल गिर पड़ी।

इसी बीच नवनीत शर्ली को अपनी वज्र बाहुओं में निबद्ध कर चुका था। उसने उसे ऊपर ऊठाया, चन्द्रमा के निराच्छन्न प्रकाश में शीर्ष पर शर्ली की गौर देहकांति काँप उठी, भय से उसने आँख बन्द कर लीं—वह ऊपर उठी—हाथ का एक भयानक झटका लगा—वह गिरी—गिरी, उसके पहले ही अचेत हो गई।

सामने खड़े हुए काठियावाड़ी सेठ ने आँखें बन्द कर लीं। किरण-सिंह एक ओर पड़ा था, अन्तिम सांस लेते हुए—किसी को पता न था कि शर्ली के निकट पहुँचने की शीघ्रता से रेडियर ने अपने छुरे का प्रयोग करने में भी कृपणता नहीं की थी। और टीकू, वह और भी अधिक व्यस्त था। उसकी तीक्ष्ण आँखें भी देख रही थीं कि नवनीत की मृत्यु साहब के हाथों की पिस्तौल के मुँह पर आ पहुँची है, उसने भी अपना छुरा ठीक कर लिया था, और यह कहना कठिन है कि किट्सन के शरीर में पहले काठियावाड़ी सेठ की गोली लगी, या बाहुमूल में टीकू का खंजर! कैसा व्यक्ति है यह टीकू, यदि काठियावाड़ी सेठ की गोली का लक्ष्य थोड़ा भी चूक जाता?

नवनीत ने शर्ली को पानी में फेंक दिया, और इसके साथ ही वह भीषण अट्टहास कर उठा। किन्तु शर्ली के पानी में गिरते ही सबकी दृष्टि उसी ओर खिंच गई, इसलिए कोई नहीं जान सका कि नीचे लेटा हुआ रेडियर भी धीरे से उठकर करीब-करीब उसके साथ ही पानी में कूद पड़ा।

आहत किट्सन सारा दृश्य देख रहा था, उसकी पिस्तौल टीकू ने उठा ली थी। बाहुमूल से बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण उसकी चेतना सो सी रही थी; किन्तु जैसे ही शर्ली पानी में फेंक दी गई, उसने समस्त शक्ति लगा कर चिल्लाना चाहा। टीकू ने यह देखा, सोचा कि कहीं इसके चिल्लाने से विपत्ति न आ जाए, वह किट्सन की छाती पर चढ़ बैठा, और उसने शक्ति से उसका गला दबा लिया।

अंग्रेजों में बहुतेरे गुण होते हैं; सबसे बड़ा गुण होता है उनमें निर्भयता और धैर्य का—बल्कि भय के समय उनकी शक्ति दूनी हो जाती है। किट्सन की चेतना भी मानों लौटने लगी। उसने अपना बाँया हाथ फैलाया। शराब की एक बोतल पर उसका हाथ जा लगा। उसने सम्पूर्ण शक्ति से खींच कर बाँए हाथ से ही वह बोतल टीकू के मस्तक पर दे मारी। बोतल फूट गई, उसकी गैस से टीकू का मुँह झुलस गया, और उसके मस्तक से रक्त बहने लग गया—किट्सन के गले पर उसका हाथ शिथिल हो गया।

काठियावाड़ी सेठ का ध्यान नवनीत के अट्टहास की ओर था, किन्तु बोतल की आवाज से चौंककर जब उसने टीकू की ओर देखा, तो किट्सन को फिर पूरी ताकत से टूटी हुई बोतल को तानते हुए पाया, और टीकू को शायद अचेत होकर शिथिल होते। यदि यह बोतल एक बार और प्रहार करदे तो—

और एक 'क्लिक' की आवाज हुई, गोली किट्सन के मस्तक को विच्छिन्न कर गई। किट्सन समाप्त हो गया, किन्तु टीकू भी अचेत हो कर नीचे फर्श पर गिर पड़ा। काठियावाड़ी सेठ ने देर न की। कूद कर

वह इस नाव पर आ पहुँचा ! अँगरखे की दूसरी जेब से रुई आदि पदार्थ निकाल कर उसने टीकू की मरहम पट्टी कर दी। टीकू का रक्तप्रवाह रुक गया। दोनों नावें एक साथ बांध दी गईं।

सेठ ने कहा, "नवनीत ! शांत होओ, और परिस्थिति की गम्भीरता को समझकर तै करो कि आगे क्या करना है ! मालूम देता है छोकरी की लाश मगर ले गए, एक बार भी ऊपर नहीं आई।"

नवनीत ने पूछा—"और यह सब क्या हुआ अधर भैया ?"

"हमारी सफलता का मूल्य। पर रेडियर क्या हुआ ? वह नहीं दीखता। क्या उसे भी तुमने पानी में डाल दिया ?"

"नहीं; यहीं तो पड़ा हुआ था। चोट भी कोई खास नहीं पहुँचाई थी।"

रेडियर की खोज हुई। मिला किरणसिंह।

"इसे क्या हुआ है ?"

उसकी देह सम्हाली गई। उसके पेट में छुरा भोंक दिया गया था, नीचे तमाम रक्त बह रहा था—किरणसिंह की देह निर्जीव थी।

अधरलाल ने कहा, "बेचारा किरणसिंह, अपने ही साथी द्वारा मारा गया। यदि पहले पता लग जाता तो रक्तप्रवाह रोक कर औषधोपचार से शायद प्राण-रक्षा की जा सकती—बहुत देर होगई मगर।"

नवनीत ने कहा—"गया कहां रेडियर ? क्या शर्ली के साथ वह भी अतल-जल के निवासियों का भक्ष्य बन गया ?"

"तुम्हीं से तो उलझा था वह !"

"हाँ ! कहता था कि शर्ली उसका पुरस्कार है।"

"ओह, तो क्या तुमने उसे सख्त चोट पहुँचाई ?"

"ना ना; बिल्कुल नहीं। क्या मैं नहीं जानता था कि वह अपना साथी है ? उससे छुटकारा पाने की चेष्टा मैंने जरूर की, और इसके लिये उसे नीचे गिर पड़ना ! बस !"

"तो रेडियर शर्ली के साथ ही पानी में गिर पड़ा है और—"

"और क्या ?"

"या तो मगरमच्छ का भक्ष्य बन जायगा, या शर्ली को साथ लेकर भाग निकलेगा।"

"फिर क्या किया जाए ?"

"करने को तो बहुत कुछ है। टीकू को होश में लाना, और मृत शरीरों की व्यवस्था करना—"

"ठीक भैया ! तो इस गोरे की लाश को तो पानी में डाल देना है।"

"और किरणसिंह की लाश को भी; इस तालाब में मगरों की संख्या कम नहीं है।"

"किरणसिंह के घर पर पता देना क्या—"

"घर पर उसके है ही कौन ? एक अन्धी और बहरी दादी है, जो किरणसिंह को न देखकर पहचान सकती है, न सुनकर। जब तक वह जीती रहेगी तब तक उसके खाने की, और मर जाने पर दाह की व्यवस्था कर देने मात्र से उसके निकट किरणसिंह का अभाव नष्ट हो जायगा।"

"किरणसिंह के शरीर को जलाया भी नहीं जायगा ?"

"क्यों ?—निज के सिर का मोह नहीं है क्या ?—देखो टीकू को होश आरहा है।"

नाव की ठण्डी हवा और अधरलाल के सामयिक उपचार से टीकू को शीघ्र ही होश आने लगा। वह बोला—"कौन—कहाँ हूं मैं ?"

"नाव में हो टीकू ! यह मैं अधरलाल हूँ, और यह नवनीत बाबू ! नहीं पहचानते क्या ?"

"पहचानता हूं। उस दुष्ट का क्या हुआ।"

"वह मारा गया टीकू ! यह उसकी लाश रक्खी है।"

"अभी तक फेंकी नहीं गई ?"

"तुम उठ जाओ, जरा ठीक हो लो। फिर सब कुछ ठीक हो जायगा।"

तब एक लम्बी साँस लेकर नवनीत उठ खड़ा हुआ। उसने किट्सन की भारी लाश को उठाया, और पानी में डाल दिया। एक 'छपाक' की आवाज हुई, उसके साथ ही कई बड़े-बड़े मत्स्य उन पर टूट पड़े। एक बड़े मत्स्य की पूंछ के आघात से नाव बाल-बाल बची। दूसरे ही क्षण पानी की सतह फिर पूर्ववत् शांत हो गई।

उसी तरह किरणसिंह की लाश भी पानी की समाधि में सुला दी गई; भूखे जल-जन्तुओं ने एक बार और अपनी पूंछ फटकार कर अपनी प्रसन्नता सूचित की; केवल नवनीत की आँखों के आँसू तब भी चन्द्रमा के श्वेत प्रकाश में आँखों ही में चमकते रहे।

अधरलाल ने कहा, "दुःखित होते हो नवनीत बाबू!—इस नश्वर शरीर की माया पर—"

"अपनी गीता रहने दो अधरलाल; अब आगे का क्या कार्यक्रम है यह बताओ तुम तो।"

तब तक टीकू को चेत हो गया था, वह उठ बैठा, किन्तु फिर भी सावधान होने में उसे समय लगा।

अधरलाल ने कहा, "ये छुरे-वुरे सब पानी से धो-धुला लो, और इन लोगों की जो वस्तुएं हों, उन्हें जलार्पण कर दो।"

टीकू ने पास पड़ी हुई किट्सन की पिस्तौल को उठाकर कहा—"इसे तो मैं अपने पास रक्खूंगा।"

"पागल हुए हो मृत व्यक्ति की पिस्तौल अपने पास रखकर फाँसी पर चढ़ना चाहते हो? लाओ मुझे दो।"

अधरलाल ने पिस्तौल को हाथ में लिया, और पानी में डाल दिया। एक बार और मगरमच्छ की उछल-कूद से वहाँ की मृत्युमय शान्ति विक्षिप्त हो गई।

नवनीत ने कहा, "यदि रेडियर भाग गया, तो बड़ा खतरनाक न होगा क्या?"

अधरलाल ने कहा, "परन्तु उपाय क्या है?"

टीकू ने पूछा, "क्या रेडियर भाग गया ?—कैसे, जरा समझाइयेगा नहीं ?"

अधरलाल ने अपना अनुमान बता दिया।

टीकू ने कहा—"यह गैर-मुमकिन है भाई साहब ! इस तालाब में गिरने के बाद किसी बिरले ही में साहस और भाग्य होते हैं कि वह सही-सलामत, बिना नाव की मदद के किनारे लग जाय। खातिर रखिये, अगर वह पानी ही में कूदा है, और कहीं दीख नहीं पाया, तो जरूर ही उस गोरी छोकरी के साथ जमपुर पहुँच गया है; रास्ता उसका सचमुच ही किसी मगर के पेट की ओर चुना है।"

"क्या सचमुच ही कोई तैर कर नहीं निकल सकता ?"

"वैसे किनारा ही यहाँ से काफी दूर है। इसके अलावा इसमें इतने मगर हैं कि दो चार गाय-भैंस का भोजन तो वे प्रतिदिन ही करते रहते हैं। और उस डाक्टर पर उस महरिया का भी तो भार रहा होगा।"

अधरलाल और नवनीत को विश्वास-सा होने लगा कि दोनों ही मगरमच्छ की भेंट होगए।

उसके बाद नाव की फर्श से रक्त के दाग धो डाले गये, फिर दूसरी नाव पर चढ़कर पहली नाव की रस्सी खोल डाली गई। टीकू ने एक लग्गी का आघात किया, नाव झुक गई, उसमें पानी भरने लगा, और कुछ ही क्षणों के बाद वह जल-गर्भ में डूब गई।

चन्द्रमा का मार्ग तै हो चुका था, पूर्वाकाश में सफेदी फैलने लग गई थी। जब कि इन तीनों यात्रियों की नाव जंगल में एक किनारे लगी तो पवन ने प्रभात का सन्देश चारों ओर फैला दिया था। तीनों व्यक्तियों ने किनारे पर कदम रक्खा, वस्त्रों को जहां-तहां से नोच-नाचकर उन्हें कीचड़-मिट्टी से लोथ लिया, रक्त के दाग पोंछ डाले, ताकि आवश्यकता पड़ने पर कोई कहानी बनाई जा सके। किन्तु बिना किसी कहानी की सहायता के ही तीनों अपने-अपने घर पहुँच गए।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सारे मानपुर में खबर फैल गई कि रात्रि

को तालाब में भगवान वरुण देवता का तिरस्कार करने वाले एक वारुणि-भक्त एक अंग्रेज-दम्पति की नौका को भगवान् के मत्स्यावतार ने जल-मग्न कर दिया, और फिर उन दोनों ही अभिमानी नास्तिकों को अपने उदर में समाधि दी। टीकू धीवर और नवनीतलाल पोस्टमास्टर को भी उनका साथी समझकर पकड़ लिया गया था, परन्तु उन दोनों ने प्रार्थनाओं और मानताओं से आखिर अपनी रक्षा करने में सफलता प्राप्त की। फिर भी भगवान् मत्स्य के भयंकर दाढ़ों के चिन्हों से अपने आप को बचा नहीं सके हैं। संग-दोष का फल किसे नहीं मिलता?

नवनीतलाल पोस्टमास्टर ने एक एक्सप्रेस चिट्ठी के द्वारा घटना का सम्पूर्ण वृत्तान्त अपने लखनऊ प्रधान कार्यालय में भेज दिया। किस तरह रात्रि को मिस्टर किट्सन रोगर्स अपनी पत्नी के साथ नौका-विहार के लिए निकले, और वहाँ पहुँचकर शिकार खेलने की सोची। किस तरह चारा डालकर एक मगर को फुसलाया गया, और उस पर गोली छोड़ी गई [गोलियों की शांत-ध्वनि ठेठ बस्ती में पहुँची, इसका सबूत तक था!]—गली का क्या नतीजा हुआ—यानी उससे मगर का चमड़ा तो न उभड़ा, मगर क्रोध जरूर उभड़ा—किस तरह उसने भीतर जाकर एक बार नाव को उलटने का प्रयत्न किया, और किस तरह टीकू द्वारा पहली बार नाव बचाई जा सकी, किस प्रकार मगर का दूसरा प्रयत्न सफल हुआ, किस प्रकार असावधान यात्री नाव में एक ओर झुककर नाव के डूबने में कारण हुए, किस तरह किट्सन, शर्ली और एक मल्लाह की खोज की गई, किस तरह पोस्टमास्टर स्वयम् एक मगर का शिकार बनकर भी बच सका, यह सब लिख दिया गया। यहाँ तक कि किस तरह टीकू मल्लाह शराब की एक बन्द बोतल से टकरा कर अपने सिर को लहू-लुहान करके मुंह को झुलस बैठा, यह भी लिखा गया। रिपोर्ट काफी दिलचस्प थी। ऑल-इन्डिया रेडियो से रात को ठीक ९ बजे अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के इतिवृत्त के साथ उसे भी ब्राडकास्ट किया गया, मोटे मोटे हेडिंग के साथ वह अखबारों में प्रकाशित हुई, रूटर और ए.

पी. आई. के सम्वाददाताओं ने ठेठ मानपुर आकर सम्वाद प्राप्त किये। कहीं २ तो तालाब के गेस्ट हाउस के और टोकू मल्लाह तक के फोटो छपे। तात्पर्य यह कि कुछ ही दिनों में सारा भारतवर्ष, बल्कि विलायत का भी कुछ हिस्सा, मानपुर में घटित रात्रि की नाव दुर्घटना का हाल जान गया। हमारे पाठक भी जानते ही हैं।

(२०)

रात दोपहर के लगभग बीत रही थी। कमरे में अधरलाल निद्राभिमग्न थे; पास ही सटे हुए दूसरे कमरे में आरती की खटिया लगी हुई थी। दोनों कमरों के बीच का दरवाजा खुला हुआ था—किवाड़ थे ही नहीं; इच्छा होने पर भी दरवाजे का बन्द होना सम्भव न था, और यह कहना कठिन है कि कभी ऐसी इच्छा इन दोनों प्राणियों में पैदा हुई हो।

कहा जा चुका है कि अपनी खाट पर अधरलाल निद्राभिमग्न थे। आरती की खाट पर दृष्टि डालकर यह कहना सम्भव न था कि वह जाग रही है या सो रही है, किन्तु उसके सिरहाने लालटैन जल रही है, और उसका स्वच्छन्द प्रकाश सारे कमरे में फैला हुआ हैं। एक पुस्तक उसकी छाती पर उल्टी रक्खी हुई है। मालूम देता है कि पढ़ते-पढ़ते ही वह सो गई है, या फिर यदि जागती है तो किसी चिन्ता में व्यस्त है, शायद पुस्तक की सीमा से दूर—वह जागृति भी शायद स्वयम् जागृति की सीमा से परे है।

एकाएक ही, न जाने क्यों, अधरलाल की निद्रा उचाट हो गई। उन्होंने बिना हिले-डुले सामने की ओर दृष्टि डाली—देखा कि सामने के कमरे में रोशनी फैल रही है; आरती, मालूम नहीं देता, सो रही या जाग रही है। जाग रही है तो क्यों ?—पुस्तक भी तो नहीं पढ़ रही ! यदि सो रही है तो ?—नहीं, अधिकांश में दीपक बिना ठिकाने किये वह सोती नहीं। रात भी बहुत बीत गई मालूम देती है बात क्या है ? अधरलाल ने अंगड़ाई-सी लेते हुए मानो अपने जगने का संकेत किया।

अधरलाल ने आश्चर्य से देखा कि आरती ने शीघ्र ही हाथ बढ़ाकर दिए की बत्ती कम कर दी।

निश्चय ही आरती जाग रही है, और स्पष्ट है कि जागती रहकर भी बताना नहीं चाहती कि वह जाग रही है। बात गहरी है। अधरलाल अपने दायित्व का अनुमान करके शांत नीरव नहीं रह सके। उन्होंने पुकारा, "आरती!"

किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। अधरलाल ने किंचित राह देखी। तो अधरलाल से भी वह अपनी चोरी छिपाना चाहती है!

"मैं जानता हूँ कि तुम जाग रही हो। मैंने तुम्हें रोशनी बन्द करते हुए देख लिया है।"

आरती ने देखा कि अब बात छिप नहीं सकती तो वह उठ बैठी। उसने फिर लालटैन के प्रकाश को तेज कर दिया। अधरलाल ने आरती के सुन्दर मुँह पर चमकती हुई दो सूखी आँखें, अधरों पर वही उसका चिर-परिचत हास, किन्तु कपोलों पर सूखे हुए अश्रुओं के क्षीण चिन्ह देख लिए।

अधरलाल ने कहा, "नहीं छिप सकी न चोरी?"

"चोरों से कहीं चोरी छिपाई जा सकती है?"

"फिर यह व्यर्थ चेष्टा क्यों की जारही थी?"

"नहीं समझ सके? अजी महाराज, इसे कहते हैं स्त्रियों की तपस्या। कहते हैं कि पति देवता के मन्दिर में किसी पत्नी की तपस्या में किसी भाँति का विघ्न नहीं होना चाहिये। नहीं तो दूसरे जन्म में—हाँ जी, क्या बनना पड़ता है? मैं तो भूल ही गई।"

"कहे जाओ; उन्हें इंगलैंड की महारानी बनना पड़ता है।"

"वही तो!—या तो फिर 'विक्टोरिया' बनकर वे दुनिया पर ही नहीं, पति पर भी शासन करती हैं, या फिर महारानी होने के पूर्व ही अपने एडवर्ड को सम्राट् नहीं रहने देती!"

"दोनों ही अवस्थाओंमें बेचारे पति का तो कल्याण ही है। भारतीय

इतिहासमें भी तो जितनी नूरजहाँ प्रसिद्ध है, उतना जहाँगीर नहीं! और शायद मुमताज महल के सीमान्त उत्कर्ष के सामने, शाहजहां का बनाया हुआ स्मृति-सौध ही स्वयं शाहजहां से आगे बढ़ गया है। नहीं क्या?"

"प्रेम के ऐसे महान् प्रतीक का अन्यत्र भी कहीं पता मिलता है क्या?"

"नारी स्वयं ही इस ताजमहल से प्रेम का उज्वलतर प्रतीक है।"

"ताजमहल से उज्वलतर?" आरती ने एक लम्बी साँस ली; नारी के ऊपर शासन करने वाला यह पुरुष कितना दुर्बल है, अनभिज्ञ है! काश! यह बात सच होती, तो अधरलाल जैसे व्यक्ति को पाकर वह स्वयं धन्य हो उठती! उसने कहा—"स्त्रियों को इतनी प्रशंसा करना कहाँ से सीख लिया? पुरुश-सूक्त में कहीं यह बात लिखी दीखती नहीं!—जानते हो, नारी ऐसी ही बातें सुनकर तो सिर पर चढ़ जाया करती है।"

"सो चढ़ने दो न!—शायद वही उनके लिए उचित स्थान होगा।"

"तो क्या तुम सचमुच ही ताजमहल को मुमताज के प्रेम का गौरव समझते हो?"

"सारी ही दुनियां ऐसा समझती है। मैं ही क्या!"

"मैं तो समझती थी कि कदाचित् यह नारी ही का मत हो। पर सच बात सुनोगे? ताजमहल शाहजहाँ के अमर प्रेम का गौरव रूप है, मुमताज महल के प्रेम का नहीं! नहीं कहा जा सकता कि पहले शाह-जहाँ के मर जाने पर मुमताज के प्रेम का स्मारक क्या होता?"

"मैं निश्चय समझता हूँ शाहजहाँ की भाँति अपने प्रेमी का वियोग सहने के लिए वह कभी जीवित नहीं रहती।"

"मरजाती, पर इसी भरोसे से न, कि मर कर वह शीघ्र ही अपने प्रियतम को प्राप्त कर लेगी! किन्तु देवताजी! इस शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाले मर्त्य-रूप की प्रेममय विश्व में प्रतिष्ठा क्या रहती? उस निषेधा-

त्मक प्रतीक से क्या यह स्वीकारात्मक अमर समाधि सुन्दरतर नहीं? याद है?—ताजमहल को देखकर एक पत्नी ने क्या कहा था। उसने कहा कि यदि उसका पति उसकी मृत्यु पर एक ऐसा ही गौरवमय ताजमहल बनवाने का वादा करे, तो वह तभी अविलम्ब प्राण त्याग करने के लिए तैयार थी।—सो, तुम्हीं कहो—वह पत्नि के प्रेम का पैमाना नहीं, पति के प्रेम का पैमाना है। समझे?"

"तुम्हारी ही बात सही; बस! स्त्री के सर्वस्व-समर्पण की तुलना में पति के प्यार की तो तुमने खूब महिमा गाई, पर यह तो नहीं बताया आरती, कि दिया लगा कर क्या तपस्या की जा रही थी?"

"नींद नहीं आ रही थी।"

"नींद नहीं आने पर तो तुम—"

"पुस्तक पढ़ती हूँ, पर आज पुस्तक में भी मन नहीं लग रहा था।"

"वही तो पूछ रहा हूं। बल्कि जब अपनी व्याकुलता के लक्षण मुझपर प्रगट होने की आशंका देखी, तो तुमने दिया ही बुझा देने का प्रयत्न किया। आखिर बात क्या है?"

अपने बिस्तर से उठकर आरती अधरलाल के बिस्तर के पास आई, और पलंग पर एक ओर बैठ गई। बोली—

"बात कुछ नहीं है। एकतो यह कि नींद नहीं आरही थी, दूसरी यह कि पुस्तक पढ़ने में मन नहीं लग रहा था, और तीसरी यह कि—समय बहुत अधिक हो गया है, शायद उठ कर तुम्हें भी अपनी नींद खराब करनी पड़े, इसलिए मैंने लालटैन बुझा देना चाहा था, ताकि जाग कर भी तुम देखो कि मैं सो रही हूं, और इसतरह अपनी नींद तो कम-से-कम खराब न करो! बस?—या अभी कैफियत बाकी है? चलो, सोओ; वरना सवेरे दो कप चाय नहीं मिल सकेगी।"

और उसने जबर्दस्ती लिहाफ अधरलाल के मुँह पर डाल दी।

अधरलाल ने कहा, "महिलाओं का बड़ा अन्याय है। जब वे किसी को व्याकुल नहीं बनाने का संकल्प करती है, तभी उसको सब से अधिक

व्याकुल बना देती है। खैर, सोने की चेष्टा करो। तुम्हारी इस ज्यादती के लिए, मैं ही ज्यादा क्या कह सकता हूं।"

अपने बिस्तरकी ओर लौटती हुई आरती रुक गई। एक क्षण खड़ी रह कर उसने अधरलाल की ओर देखा, देखा कि अधरलाल ने मुँह खोलने की कोई चेष्टा नहीं की, वह अपने बिस्तर की ओर बढ़ी—किंतु दो कदम के बाद पुनः लौटी, और उसने अधरलाल के मुँह पर से लिहाफ खींच लिया, फिर बोली—"मालूम पड़ता है सो नहीं सकोगे। अच्छा, चलो समाप्त कर ही लें अपनी बातें।"

आरती फिर पहले वाली जगह पर बैठ गई, और अधरलाल की ओर देखने लगी। आरती की दृष्टि में अधरलाल को क्या दिखाई दिया यह तो वही जाने, परन्तु उन्होंने अपनी दृष्टि नीची कर ली।

आरत ने तनिक मुस्करा कर कहा, "स्त्रियों की ओर देखना छोड़ दिया क्या? अभी बहुत बूढ़े तो नहीं हुए। उमर के साथ प्रेम भी बूढ़ा हो जाता है क्या?"

"कितना अच्छा होता, यदि तुम्हारी बात सच होती। जो अवस्था मनुष्य के लिए अधिक से अधिक स्वतंत्र होने की है, उस अवस्था में ही प्रेम का बन्धन अधिकाधिक दृढ़ होता जाता है। इसीलिए तो एक युवक मृत्यु से नहीं डरता, किन्तु बूढ़े कभी मृत्यु के सामने भी नहीं फटकना चाहते।"

"तो फिर उमर के साथ-साथ प्रेम की गहराई भी बढ़ती जाती है, क्यों?"

"हाँ, यदि प्रेमी प्रेमी और प्रेम-पात्र में दूसरा कोई वैषम्य न हो। प्रेम की गहराई के अनुसार उसकी चंचलता क्षीण होती जाती है जिस का अवस्था के साथ मेल नहीं खा सकता।"

"अच्छा, यह कहो तुम मुझे कितना प्रेम करते हो? उमर के मान से तो हमारे बीच काफी अन्तर है।"

"तुम्हें क्या विश्वास होता है कि मैं कितना प्रेम करता हूं तुम्हें?"

"सो मैं क्या जानूं ?"

"नहीं जानती ?—तो मैं ही क्या जान सकता हूं !"

"अच्छा, अगर मैं मर जाऊँ, तो ताजमहल बनवाओगे मेरे लिए ?"

"प्रेमी को ताजमहल का लोभ नहीं होता आरती, उसे लोभ होता है अपने प्रेम पात्र का। शाहजहाँ की आँख ताजमहल के पत्थरों का सौंदर्य नहीं देखती थी, वह देखती थी मुमताज महल की प्रेममयी आत्मा को। पत्थर में प्राण अब भी देखे जाते हैं ! शाहजहाँ बहुत बड़ा बादशाह था, उसने अपनी सम्पत्ति का बड़ा भाग व्यय करके ताजमहल के रूप में अपने प्रेम की प्रतिष्ठा की। अधरलाल एक दीन व्यक्ति है। उसकी सम्पत्ति इन मुट्ठीभर हड्डियों और रक्त के कुछ कणों के अतिरिक्त है ही क्या ! किन्तु जानती तो हो आरती, सारे रोम-रोम में तुम्हारे प्रेम की पुकार भरी हुई है। ताजमहल के लिए तुम मरती क्यों हो। तुम्हारे प्रेम का प्रतीक अस्थिचर्म निर्मित मेरे व्यक्तित्व का यह ताजमहल क्या तुम्हें प्रिय नहीं ? जिस दिन तुम मरोगी, उस दिन क्या मैं निस्पन्द न हो उठूँगा ?"

आरती ने एक लम्बी साँस ली। बोली, "औरतों का अदृष्ट क्या पुरुषों के लिए शनि की दृष्टि ही रहा है ?"

"शनि की दृष्टि नहीं आरती, सुधा की दृष्टि कहो। यदि स्त्री न हो तो आदमी को बूढ़ा होते क्या समय लगता है !"

"यानी ?—"

"यानी क्या ! स्त्री पुरुष के प्रेम के लिए एक खिलौना है, जिसको देखकर वह सदैव ही जवान बना रहे।—देखती तो हो। मैं हूँ पैंतालीस से ऊपर, परन्तु तुम्हें देखते ही २९-३० का युवक नहीं हो जाता क्या ! इसीलिए नहीं कि तुम २५ वर्ष की हो, तुम्हारे स्थान पर यदि कोई चालीस वर्ष की महिला होती, तब भी यही होता।"

"किन्तु कई बच्चे बड़ी सरलता से खिलौनों को तोड़ भी डाला करते हैं।"

"क्यों नहीं। और एक के टूटते ही दूसरे नए के लिए भी मचलते रहते हैं ! मनुष्य का प्रयत्न है कि वह अपना यौवन बनाए रखे।"

"किन्तु प्रेम और जवानी में सम्बन्ध क्या है ? चेहरे पर यदि अधिक सल न हो, तो और कोई बात ही क्या है ? जैसे काले बाल सुन्दर होते हैं, वैसे ही सफेद बाल। यदि एक को मेघ मण्डित चन्द्र कहा जाता है, तो दूसरे को चन्द्रिकाचित चन्द्र क्यों न कहा जाए ?—हाँ, यह सफेद और काले की खिचड़ी अवश्य थोड़ी भद्दी दीखती है। है न ?" कह कर उसने अधरलाल की दाढ़ी पर हाथ फिरा दिया !

अधरलाल ने आरती के हाथ को अपने हाथ से अपने कपोल पर रोक लिया, "भद्दी दीखती है ? मगर खिजाब नहीं लगाऊँगा। मैं इसे धूप-छाँह का इन्द्र धनुषी सौंदर्य क्यों न कहूँ ? परन्तु प्रश्न तुमने गहरा किया है। प्रेम से जवानी का सम्बन्ध—इस भौतिक युग में तो वासना ही से लगाया जा सकता है। जवानी की अवस्था शक्ति की अवस्था होती है न ? और शक्ति की अवस्था ही में लेन-देन, आदान-प्रदान या व्यवसाय हो सकता है। भौतिक युग में प्रेम भी एक लेन-देन का, आदान-प्रदान का सौदा है।"

"कैसे ?"

"विवाह के उद्देश्यों के कारण। वे तीन प्रकार के बताए गए हैं—कामतृप्ति, सन्तानोत्पादन और सहवास द्वारा सेवा—जिनमें आदान-प्रदान के सिवा और है ही क्या ?—अतः प्रेम की अवस्था ही शक्ति की यौवन की अवस्था है।"

"और आध्यात्मिक युग में इन दोनों में क्या सम्बन्ध रहेगा ?"

तुम्हारे-हमारे बीच का। आध्यात्मिक-प्रकरण में यौवन का स्थान शरीर नहीं रहता, आत्मा रहती है।—और आत्मा न तो बूढ़ी होती है, न मरती ही है। और यौवन का शाश्वत लक्षण तो समझती हो न—वह है अक्षय उत्साह। जिस व्यक्ति में यह न हो, वह निश्चय ही बूढ़ा है।"

"इस आध्यात्मिक-प्रेम में वासना को कोई स्थान नहीं ?"

"क्यों नहीं ? किन्तु केवल उसीका स्थान नहीं है ! यह विवाह है व्यवसायात्मक बन्धन नहीं होता। इसका केवल एक ही उद्देश्य है, और वह है समन्वय। यहाँ लेन-देन वाली दो स्वतन्त्र इकाइयाँ नहीं रहतीं, बल्कि दोनों का एकत्व हो जाता है। यहाँ पर एक दूसरे से लेकर अपना कोष भरने की प्रवृत्ति नहीं होती, प्रत्युत एक दूसरे का पूरक बनकर पूर्णत्व का विधान किया जाता है।"

"इन दोनों में सत्य कौन सी धारणा है ?"

"दोनों ही हैं आरती ! नर-नारी के इस सम्बन्ध-समुद्र की केवल एक बूँद चखना हो तो वह भी सम्भव है, और यदि तृप्त ही होना हो, तो वह भी सम्भव है, केवल साधन वैसे होने चाहिए। तुम नीलम से कह देना उसकी साधना में कहीं अन्तर नहीं है, वह निश्चिन्त रहे।"

आरती निस्तब्ध हो गई। अधरलाल ने यह सम्पूर्ण दर्शन व्यक्त किया है नीलम के लिए। नीलम की निश्चिन्तता की व्यवस्था तो इन्होंने दे दी, किन्तु स्वयं आरती कहाँ से निश्चिन्तता प्राप्त करे ? स्वयं अधरलाल के व्यक्तित्व से उसे कैसी व्यवस्था मिलेगी ?—क्या इस सीमान्त उदारता की भी परीक्षा आवश्यक है ?

"आरती ने पूछा, "किन्तु यह दोनों ही व्यवस्थाएँ सत्य कैसे होंगी ? एक इधर जाती है, दूसरी उधर।"

"तो सत्य क्या सदैव एक ही राह चलता है ? उसे क्या तुम निरपेक्ष समझती हो ?"

"प्रसिद्ध तो कम से कम यही है; बल्कि इसीलिए उसका महत्व भी है।"

हँसकर अधरलाल बोले, ' प्रसिद्ध क्या है यह तुम न पूछो। प्रसिद्ध तो यही है कि स्त्रियाँ पुरुषों की दासी होती हैं।"

"फिर ?'

"किन्तु इससे अधिक झूँठी बात शायद ही कोई हो।"

"क्यों तुम्हें शिकायत है क्या ?"

"क्यों नहीं ! मुगलों के दिन नहीं रहे, नहीं तो मलक-ए-आजम को भी आधीरात को माबदौलत की निद्रा में खलल डालने के अपराध के लिए फाँसी की सजा तजवीज की जाती !—और वे कहलाती थीं बेगम-बे-गम।"

"हूँ; और एक मैं हूँ कि कहलाती तो बाँदी हूँ, किन्तु आधीरात को भी जहाँपनाह को नींद नहीं निकालने देने की जुर्रअत कर रही हूँ। फाँसी की सजा ही तजवीज करोगे न ?—रस्सी ले आऊँ। परन्तु एक बात कह दूँ कि यदि मुगल बादशाह खुद ही रात भर जागना चाहे, तो फिर उस मलक-ए-आजम का क्या होगा ? इतिहास गवाह है कि मुगल बादशाहों के जीवन में सार्थक उनकी केवल मीठी रातें ही होती आई हैं।"

"इस तरह सूखी आँखें लेकर रात भर जागने को सार्थक कह सको, तो मैं तुम्हारा कसूरवार हूँ।"

आरती फिर उठ खड़ी हुई, बोली—"सो क्यों नहीं जाते फिर ? यदि तुम्हारे जीवन में मीठी नींद से भरी लम्बी रात ही सार्थक हो तो बेचारे मुगल-बादशाह को बदनाम करने से क्या लाभ ?—और उन गम से भरी बदनसीब बेगम का रात्रि-जागरण ही तुम्हारे किस काम का ?"

"अच्छा, अच्छा; बैठो तो सही। नाराज क्यों होती हो ? नाराजी का वजन यों ही काफी उठा चुकी हो, आँखें ही कहे दे रही हैं। बल्कि मैंने तो कहा है कि इस प्रसिद्धि के मूल में जो सत्य है, वही मिथ्या है; यानी दासत्व की यह भावना नारी में नहीं पुरुष में है। और यदि ऐसा है, तो चाहो तो मुझे दण्ड दे सकती हो। फाँसी ही की तो सजा दोगी न ? किन्तु फन्दा होगा तुम्हारे इन गोल, सुचिक्कण गौर-बाहुओं का।"

"फिर तुम वैसी ही बातें करने लगे ?" क्रोध नाट्य करते हुए आरती ने कहा।

"नहीं, नहीं। कहो न ? तुम्हें देखकर यौवन उभर आता है आरती! बैठो न ! जिस तरह तुम्हारे सत्य की कहानी है, उसी तरह मेरे यौवन

को कहानी भी है, तुम उससे आशंकित क्यों होती हो !—तो तुम 'सत्य' के बारे में जानना चाहती हो !"

"मैं जानती हूं, सिवा अपनी मिथ्या धारणा के 'सत्य' के बारे में तुम कहोगे ही क्या !"

"इस मिथ्या जीवन का महत्त्व ही क्या होगा ?"

"तो क्या तुम जीवन को भी मिथ्या ही मानते हो ?—दैया रे !"

"इसमें घबराने की क्या बात है ? सत्य और वस्तु में कोई नित्य का सम्बन्ध तो है नहीं। जानती तो हो कि सत्य, वस्तु के भाव को कहते हैं, न कि सत्य के भाव को वस्तु। सत्य तो वस्तुतः वस्तु के साथ अपनी सत्ता बनाता बिगाड़ता रहता है।"

"यानी सत्य से भी वस्तु का मूल्य बड़ा है ?"

"अवश्य; किन्तु वस्तु से भी मूल्यवान एक और तत्त्व है आरती।"

"वह क्या ?"

"वह है वस्तु की 'सत्ता' ! वास्तव में यह सत्ता ही है, उस शाश्वत का आभास जिसे हम 'पूर्णमिदं' कहते हैं और यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी सत्ता का विकास है।"

"लोग ठीक कहते हैं कि दार्शनिक का दिमाग उधार चला जाता है; और वह किराये के दिमाग से काम लेता है ! बात थी विवाह के सत्यासत्य-निर्णय की, और तुम घी के बर्त्तन को उलट कर मीमांसा करने लगे सत्ता के आधार की। अरे भई, तुम्हें नींद नहीं आती तो न सही, मेरा समय क्यों बरबाद करते हो ? मैं चली !"

आरती ने फिर उठने का उपक्रम किया, मुस्कराकर अधरलाल बोले, "शर्त यह है कि तुम्हें नींद आ जाए, वरना क्षतिपूर्ति में क्या दोगी ?"

"पुरुष सदैव लेने हो लेने की सोचता है; वह कभी देना भी चाहता है ?"

"बहुत कुछ !"

" 'बहुत कुछ !'—क्या देता है ? दुःख ही तो—"

"नहीं नहीं आरती, वह देता है, उसी सत्ता का बोध, जो कि इस संसार की शाश्वत कामना का आधार है।"

"यदि तुम सीधे शब्दों में कोई बात कहना नहीं चाहते, तो उसे छिपाए रखने में तुम्हारा क्या बिगड़ जाता है?"

"तो लो, साफ शब्दों में सुन लो—पर बैठोगी नहीं?" आरती पलंग पर बैठ गई।

अधरलाल ने कहा, "संसार की भाषा में सत्ता के बोध को समझाया जाए, तो वह है संतान-परंपरा। जिस आध्यात्मिक मिलन की बात मैंने कही थी, उसका दान यही सत्ता का बोध है—स्त्री आत्म-समर्पण करती है, और पुरुष करता है अपनी आत्मा का दान—"

"किन्तु क्या यही विवाह का उद्देश्य है?—इसे सत्ता का बोध कह कर क्या तुम निस्संतान माता-पिता की भर्त्सना नहीं कर रहे हो?"

"पगली, संतान के रूप में सत्ता का बोध तो उसका एक भौतिक स्वरूप है; उसका आध्यात्मिक तो संतानोत्पत्ति के पहले ही मूर्त्त हो चुका होता है। इसीलिए तो आध्यात्मिक अर्थ में नर-नारी लेन-देन के लिए नहीं, प्रत्युत पूर्णता के लिए—पूरक होने के लिए—हैं।"

"किन्तु तुमने तो लेन-देन के विवाह को भी सत्य कहा था। क्या उसमें सत्ता के बोध की प्राप्ति नहीं होती?"

"क्यों नहीं होती?—संतान आखिर है क्या?—किन्तु सही बात तो यह है कि सत्य में वस्तु नहीं होती, बल्कि वस्तु ही में सत्य होता है।"

"तब निस्संतान होने पर सत्ता का बोध कैसे सम्भव होगा?"

"नहीं समझी आरती। संतान तो सत्ता के बोध का एक मूर्त्त-रूप मात्र है, किन्तु उसका अमूर्त्त-प्रत्यक्ष तो सम्बन्ध मात्र ही में सम्भव हो जाता है, यह पत्थर रखा हुआ है, मूर्त्तिकार इसकी कैसी मूर्त्ति बनाना चाहता है, यह तुम मूर्त्तिकार से मालूम कर सकती हो। अब मूर्त्त प्रतिमा की सत्ता तो कलाकार के परिश्रम का फल है, किन्तु

इस परिश्रम के पूर्व भी तो कलाकार के हृदय में उस मूर्त्ति की भावात्मक सत्ता है ! उसी भावात्मक सत्ता से मेरा प्रयोजन है आरती !--"वह सत्ता तो उस मूर्त्ति की भी अपेक्षा नहीं करती न। आत्मा की इसी भावात्मक सत्ता को तो अमर और शाश्वत कहा जाता है,हालांकि सृष्टि से बाहर इसका शाश्वत भाव कहाँ तक बढ़ाया जा सकता है,यह कहना अभी कठिन है।"

"तब फिर यह 'अहम्' क्या भ्रम मात्र है ? मैं जो समझती हूँ कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ, वह क्या गलत है ?—क्या प्रेम व्यक्ति सापेक्ष्य नहीं होता ?"

"नहीं आरती, 'अहम्' की स्वतंत्र सत्ता समाजवादी तो नहीं मानते। व्यक्तिवादी भी इस इकाई को उसी उत्कर्ष तक महत्व देते हैं, जिस उत्कर्ष पर पहुँच कर वह मुक्ति प्राप्त कर सके। भारतीय दर्शन के अनुसार मुक्ति का अधिकारी व्यक्ति माना गया है, समूह नहीं; किन्तु स्वयम् 'मुक्ति' एक इकाई नहीं, वह समूह ही का निषेधात्मक रूप है।"

"और तुम्हें प्रेम करने की मेरी कल्पना ?—प्रेम का व्यक्ति-सापेक्ष्य रूप !"

"पर तुम प्रेम कहती किसे हो ?"

"तुम मुझे पागल बनाते जारहे हो। तुम्हीं कहो प्रेम किसे कहते हैं ! तुम भी तो मुझे बहुत प्रेम करते हो।" और यह कहते कहते ही आरती भावाविद्ध सी, अधरलाल के कन्धे का आश्रय लेकर शिथिल हो गई। अधरलाल ने उसे अपने हृदय से लगा लिया, और कहा—"बहुत प्रेम करता हूँ आरती; क्या प्रमाण दूँ ?"

"अपने चरणों में स्थान !"

मुस्करा कर अधरलाल बोले, लोगों में तो प्रवाद है कि तुम मेरे सिर पर चढ़ गई हो आरती !—"

आरती ने कुछ न कहा। उसकी आँखें केवल आँसू ही बहाती

रही। कुछ समय पूर्व कपोलों पर सूख कर जिन आँसुओं ने उसकी सहज-श्री को शीर्ण कर दिया था, वेही अब उसका प्रक्षालन करने लगे।

अधरलाल ने कहा, "जिसे मैंने सत्ता का बोध कहा है, वह मनुष्य-मात्र की साधना है आरती!—अभी तक मनोविज्ञान मनोवेगों के उद्‌गम को नहीं खोज पाया है, किन्तु मैं समझता हूँ, यह 'सत्ता का बोध' ही मनुष्य के समस्त विचारों का उद्‌गम है, इसी का विकास करने के लिए यह 'अहम्' एक दूसरे समर्थ 'अहम्' की खोज करता है; इसी खोज में और इसी अनुलब्धि में जीवन का त्याग, उत्सर्ग आदि संनिहित है—गहराई के मान से उसे कहीं श्रद्धा, कहीं भक्ति और कहीं प्रेम का नाम दिया जाता है। प्रेम व्यक्ति-सापेक्ष्य कभी नहीं होता, बल्कि प्रेम-सापेक्ष्य ही व्यक्ति होता है, योग्य व्यक्ति को पाकर हमारे हृयय की वह प्रबल पिपासा आप ही आप स्रवमाण होकर अपने आप को शांत करती है।"

"किन्तु जिनके जोवन में प्रेम होता ही नहीं?"

"उसका रूप व्यक्त नहीं होता, यह कहो! उनकी सत्ता का बोध विकसित हो चुका होता है आरती! सच पूछा जाए तो आध्यात्मिक जगत के प्रारंभ की सीमा-रेखा वही है। जिसकी भाव दृष्टि इतनी तीव्र हो कि जो बिना पत्थर का आधार ग्रहण किए अपनी भावस्थ मूर्ति को प्रत्यक्ष देखता हो, वह बहुत कुछ पूर्णता के निकट है।"

आरती पुनः प्रकृतिस्थ हुई। उसने अधरलाल के स्कन्ध देश का आधार छोड़ दिया। धीरे-धीरे बोली, "नवनीत लाल को तो तुम जानते हो, वह नीलम से प्रेम नहीं करता; पता नहीं, किसी से करता भी है या नहीं। तो क्या वह तुम्हारे मत से पूर्ण-पुरुष है?"

"भाव-सत्ता का या मूर्त्त-सत्ता का जिसे बोध प्राप्त हो जाता है, वह 'वस्तु' की चिन्ता नहीं करता, वह चिन्ता करता है केवल उसी 'सत्ता' की—क्योंकि वस्तु तो उसकी सत्ता के मूर्त्तिकरण का एक स्थूल साधन मात्र है। अतः इस वस्तु-रूप सृष्टि के प्रति उसकी निर्विलिप्त

आसक्ति रहती है, और यदि रहती है तो वस्तुमात्र में अपनी उसी शाश्वत चैतन्य-सत्ता की चिरंतन आसक्ति रहती है। इसी को विद्वानों ने रहस्य की संज्ञा दी है। यह अवस्था वास्तव में मुक्ति की अवस्था है। यहीं पर पहुँच कर पुरुष पूर्ण होता है। किन्तु इससे पूर्व और भी कई अवस्थाएँ एक व्यक्ति प्राप्त कर सकता है आरतो। वह भी अवस्था हो सकती है, जब इस सत्ता की ओर भाव अधिक अभिमुख नहीं होते। तब यह धारणा हो सकती है कि अमुक पत्थर मेरी भावस्थ सत्ता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। वस्तु की इस हीनता के कारण उसके प्रेम का निर्झर हृदय की बन्द गुफा ही में छिपा रह सकता है। किन्तु उस अवस्था का मतलब तो समझती हो न?—उस समय सत्ता का बोध मूल लक्ष्य नहीं होता, मूल लक्ष्य हो जाती है तब "वस्तु"; और तब उसे पूर्ण पुरुष कैसे कहोगी? हाँ, उसके अशेष-क्षमता शाली होने में तो संशय नहीं हो सकता—उसके हृदय में सत्ता के बोध का कम-से-कम इतना विकास तो मानना ही पड़ेगा, जिससे,योग्य वस्तु की प्राप्ति पर, वह उसके प्रत्यक्षीकरण को सम्भव कर सके। उसके अविश्वास में ही उसकी क्षमता निहित है। नवनीत शायद इसी कोटि का युवक है।"

"और उसे यदि कहीं योग्य वस्तु मिल गई?"

"तो वह बड़ी सरलता से सत्ता के द्वारा पूर्णता प्राप्त कर सकता है।"

आरती को एक क्षण के लिए शिथिलता-सी मालूम दी। नवनीत के विचार में वह सब कुछ भूल-सी गई, किन्तु तुरन्त ही अपने आप को सम्हाल कर उससे पूछा, "क्या नारी एक 'वस्तु' मात्र है, जिसका उपयोग करके एक कलाकार अपनी सत्ता का बोध विकसित कर सके! पुरुष-सूक्त में क्या इससे अधिक नारी का मूल्य कहीं है ही नहीं?"—और जबर्दस्ती अपनी आँखों को व्यंग और परिहास से आच्छन्न करके उसने अधरलाल पर गड़ा दिया।

अधरलाल ने भी मुस्करा कर उत्तर दिया, "उत्तेजित क्यों होती हो!

मैंने तो कहा था न, कि लेन-देन की भावना वाला प्रेम भी सत्य होता है,और यही आध्यात्मिक-प्रेम भी ! उद्देश्य दोनोंही का है सत्ता का बोध, एक में उसकी भौतिक महत्ता है, दूसरे में आध्यात्मिक; और जिसमें यह बोध विकसित हो जाता है आरती, वह फिर 'वस्तु' नहीं रहता, वह 'कर्त्ता' हो जाता है। जिस भांति एक अवस्था में वस्तु मात्र है, उसी तरह दूसरी अवस्थामें पुरुष भीतोव स्तु-मात्र है;इसी सामान्य-भूमि परतो लेनदेन का या पूरकत्व का अध्यहार सम्भव होता है ! तुम अपने मन में यह हीनता का भाव क्यों लाती हो ?"

आरती ने प्राचीन सूत्र को पकड़ कर एक लम्बी सांस ली, बोली, "जब कि प्रेम में स्थायित्व जैसा कोई भाव नहीं है, तब हमारा तुम्हारा प्रेम क्या एक दिखावा भर है ?—शायद तुम तो ऐसाही मानते हो।"

अधरलाल ने पुनः आरती का मस्तक अपने विस्तीर्ण वक्ष में छिपा कर कहा, "पगली, क्या दिखावा बिना किए ही हो जाता है ? और जब कि किया जा रहा है, तो भी मैं उसे झूँठ मानूंगा, क्या ऐसा ही तुम सोचती हो ?"

"किन्तु लौकिक भाषा में तो सत्य और दिखावे में अन्तर है।"

"तो फिर प्रेम की व्याख्या का लौकिक स्वरूप ही ध्यान में रखने से काम चल जायगा आरती !"

आँखें बन्द किए हुए आरती अधरलाल की फैली हुई छाती में सांत्वना प्राप्त करने लगी; अधरलाल उसके मुक्त केश-गुच्छकों में अपनी अंगुलियाँ घुमाने लगे। कुछ क्षणों तक चुप रह कर उन्होंने कहना शुरू किया—

"जानता हूँ कि मेरे अखण्ड प्रेम का तुम्हें बहुत विश्वास है। यही विश्वास मेरे जीवन को भी अधिकाधिक बल दे रहा है— सच तो यह है कि पुरुष को इस विश्वास की स्त्री की अपेक्षा अधिक आवश्यकता है, कम-से-कम तब तक तो है ही, जब तक कि समाज-व्यवस्था के अनुसार

बाहरी संघर्ष का सामना पुरुष को करना पड़ रहा है। परन्तु—" अधर-लाल रुक गए।

उत्सुक आरती ने पूछा—"परन्तु ?"

"प्रेम की यह अखण्डता आखिर मनुष्य देह तक ही तो सीमित है ! कितना अच्छा होता कि हमारे प्रेम की अखण्डता के साथ ही हम लोग भी अखण्डित होते।"

"अपना तात्पर्य साफ नहीं बताओगे ?"

"मनुष्य देह नश्वर है न आरती ! कहते हैं कि उसके साथ ही मनुष्य-देह के समस्त बन्धन भी नष्ट हो जाते हैं। परलोक होता है या नही,होता हो तो वहाँ प्राणी की क्षमता का क्या रूप होता है आदि बातें जानने का कोई साधन नहीं है, किन्तु परलोक तक प्रेम की पार्थिव सत्ता को घसीट ले जाना सम्भव नहीं दीखता !"

"क्यों नहीं दीखता ?— शास्त्रों में शंकर-पार्वती की कथा तो है। क्या विज्ञान उसमें से कोई तथ्य नहीं निकाल सकता ?"

शास्त्र पुरुषों के बनाए हुए जो हैं ! बूढ़ा मनुष्य किसी युवती स्त्री से विवाह करे, यह तो पुरुषों ने सम्भव कर दिखाया है, हमारे देवाधिदेव ने भी यही किया है। किन्तु कोई भी बुढ़िया अभी तक किसी युवक से विवाह नहीं कर पाई, तुम्हारी आद्यशक्ति महाकाली भी ! पुरुषों की हानि भला पुरुष ही कैसे सह सकेगा ! का पुरुष न कहलाएगा वह ?"

"पुरुष ही सही; किन्तु क्या उसके हृदय में भी देवाधिदेव की भाँति प्रेम स्थिर रह सकता है ?"

"देवाधिदेव के मन की बात मैं कैसे बता सकूँगा ?"

"परन्तु अपने मन की बात तो तुम जानते हो ?"

"पर उपाय क्या है ? देवाधिदेव की तरह तो मैं अमर नहीं हूँ ! और सबसे बड़ी दुःखद बात तो यह है कि यदि मनुष्य देह के नष्ट होजाने के साथ ही प्रेम के नष्ट हो जाने की सम्भावना हो, तो उस देह

के नष्ट होने से पहले भी प्रेम के नष्ट हो जाने की सम्भावना क्यों न न हो ?"

"कैसे ?"

"प्रेम वास्तव में हमारे चैतन्य की एक वृत्ति मात्र है आरती, जो संस्कारों से संचालित होती है। इन संस्कारों में तो सदैव ही व्यतिरेक और आक्षेपानुक्षेप हो सकते हैं न ! दुनियाँ में मनुष्य का मन इतना सहज नहीं है कि एक ही नाग-पाश में तुम त्रिलोक को बाँध लो !"

"तुम त्रिलोक की बात क्यों कहते हो?—अपनी ही कहो न ?—मैं डरती हूँ जब तुम सारी दुनियाँ की कथा कहने लग जाते हो ! मालूम देता है, मानो मेरा शेष सम्बल भी मेरा नहीं है उसे दुनियाँ छीन लेना चाहती है।"

अधरलाल ने उसको और अधिक छाती के निकट सटा लिया। बोले— "समाज की मनुष्य एक इकाई मात्र है। प्रेम के नाम पर अधरलाल से तुम्हारा जितना दावा है, उतना ही कर्त्तव्य के नाम पर उससे समाज का दावा भी है। उसी तरह जितना आरती से मैं माँगता हूँ, यह दुनियाँ में उससे कम नहीं माँगती। हम दोनों की एक स्वतंत्र दुनियाँ नहीं है आरती ! हमारे ऊपर ऋणों का अभाव नहीं है, और हमें वह सब चुकाने पड़ेंगे। तुम्हारा भय ठीक तो है, किन्तु अयुक्तिक है।"

"परन्तु सभी के ये दावे क्या स्वीकार करने ही पड़ते हैं ?"

"इतनी आतंकित होकर क्यों पूछ रही हो ? प्रेम के नाम पर दुनियाँ में याद किए जाने वाले व्यक्ति केवल कवियों की कल्पना का विलास जुटाया करते हैं, लैला-मजनूँ या शीरीं-फरहाद के किस्सों से किसी का कल्याण नहीं हुआ। राधाकृष्ण के प्रेमाख्यान से भी आत्म-प्रसादन के अतिरिक्त कुछ नहीं प्राप्त किया जा सकता; किन्तु उनकी गीता का अनासक्त कर्मयोग ही मनुष्य के लिए निर्विकल्प कल्याण का मार्ग है। उसी भूमि पर — कर्त्तव्य के उसी मनोहारी संस्थान पर

मनुष्य अपने क्षुद्र अहंकार से ऊपर उठ कर अपने निर्विशेषक रूप का कल्याण सम्पादित करता है। सत्ता के जिस बोध की परिभाषा मैं अभी कर चुका हूँ वह तो केवल नारी और नर के अभिसम्पात पर है; किन्तु इस समस्तसृष्टि के मनोविस्मय कारी वस्तु-संस्थान पर जिस समग्र-सत्ता का आलेखन-उट्टङ्कन किया जाना चाहिए, वही यह है कर्म-योग और फल संन्यास। इससे भयभीत होने पर कायर की उपाधि प्राप्त करनी पड़ती है।"

"तुम अपना मतलब साफ-साफ क्यों नहीं कहते? तुम्हें मेरी सौगन्ध है; मैं जानती हूँ तुम सौगन्ध नहीं मानते, मेरी विनय मानों, साफ-साफ कहो न! तुम कहना क्या चाहते हो?"

मुस्कराकर अधरलाल बोले, "कौन कहता है कि मैं सौगन्ध नहीं मानता!—और तुम्हारी सौगन्ध? आरती, तुम आदेश दो, और देखो, और तुम्हारी सौगन्ध बहुत दूर की चीज है, तुम्हारा आदेश क्या कर सकता है?"

"तो फिर साफ-साफ कहो; क्या तुम्हें मुझ पर अविश्वास है?"

"तुम पर अविश्वास? कहती क्या हो आरती? जिस दिन तुम पर अविश्वास करूँगा उस दिन—नहीं कह सकता, क्या होगा? कभी सोचा ही नहीं कि मैं कभी तुम्हारा अविश्वास भी कर सकता हूं।"

आरती की आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं दीपक के स्निग्ध प्रकाशमेंउ सका मुख दीप्त हो उठा। अधरलाल ने उनकी सिक्त आँखों को हथेलियों से पोंछ दिया, फिर धीरे-धीरे कहने लगे—

"आग्रह कर रही हो तो साफ-साफ कहे देता हूं, यद्यपि उस सम्वाद को मैं तुम्हें जल्दी नहीं देना चाहता था। उससे केवल तुम्हारी आशंका बढ़ेगी ही, कम तो होगी नहीं। और शायद जो चोट कुछ दिनों के बाद लगे, वह आज ही लग जाए! यों तो कह देने को है ही क्या? यदि तुमने स्वयं उस दिशा में कुछ सोचा होता, तो तुम स्वयं उस बात को जान जातीं, किन्तु तुम तो एक नए ही सत्य युग की महिमा-

मयी सती हो, पति के बारे में किसी भी अमंगल की बात को तुम नहीं सोच सकती। २६ अगस्त का हाल तो तुम्हें विदित ही है न ?"

आरती चौंक उठी। २६ अगस्त ? उससे इस बात का क्या सम्बन्ध है ? —उसकी तो यही आशंका थी कि नवनीत लाल की आसक्ति के विषय को लेकर ही अधरलाल की दुश्चिन्ता प्रारम्भ होगी ! २६ अगस्त, वही हत्या का दिन, जिस रात्रि को नाव की एक दुर्घटना में एक नव-विवाहित आंग्ल-दम्पति व एक मल्लाह वरुण-देवता के कोप-भाजन हुए थे !

"तुमको तो मैंने बताया ही था कि सचमुच में किट्सन का हत्यारा कौन है ? तुम यह भी जानती हो कि रेडियर और शर्ली का कुछ भी पता नहीं था, यह भी विश्वास किया जाता है कि वे भयानक जलचरों का भक्ष्य बन गए, किन्तु यह भी तो सम्भव है कि डरे हुए जानवरों ने उन्हें छोड़ दिया हो, और वे भाग निकले हों !"

"भाग निकले हों ! तो क्या होगा ?"

"मुझे तो शर्ली नहीं पहचानती, किन्तु नवनीत लाल को दोनों ही पहचानते हैं।"

"परन्तु रेडियर शर्ली को स्वयम् समाप्त नहीं कर देगा क्या ? वह तो हमारे ही दल का है न !"

"है, किन्तु वह शर्ली में आसक्त है आरती, वह उसे मारेगा नहीं, बल्कि बचाएगा, और यदि वह बच गई तो नवनीत की कुशल नहीं है।"

"तो फिर समय रहते नवनीत लाल को क्या गायब नहीं हो जाना चाहिए ?"

"हो जाना चाहिए, किन्तु वह जाएगा क्यों ?—हत्या उसने तो की नहीं है, वह मैंने की है।"

"किन्तु तुमने हत्या की है, यही कौन जानता है ?"

"यही क्या कम है आरती, कि मैं स्वयम् उस बात को जानता हूँ।

नवनीत के ऊपर यदि विपत्ति आए, तो प्रकृत दोषी होकर भी मैं कैसे खड़ा-खड़ा देखता रह सकूँगा !"

आरती कुछ कह न सकी। वह क्या कर सकती है, यह सोचने लगी।

अधरलाल ने कहा, "यदि नवनीत लाल समय रहते गायब हो जाए तो रक्षा का उपाय हो सकता है। तब सभी उसे हत्यारा मान कर आगे की खोज-तलाश ही बन्द कर देंगे। किन्तु यदि मैं भागा तो उससे क्या होगा ? हत्या चाहे मैंने की हो, पर सन्देह का पात्र तो नवनीत है।"

"तो फिर नवनीत को यहाँ से भगा दिया जाना चाहिए !"

"पर क्या वह सम्भव है ? सचमुच उसने हत्या नहीं की, क्या तुम विश्वास करती हो कि तब भी वह भाग जाने के लिए तैयार होगा ?"

आरती क्या विश्वास करे ? उसके विश्वास को तो वह बहुत पहले ही नष्ट कर चुका है। किन्तु क्या आज नवनीत का प्रभाव, अधरलाल में निहित आरती के विश्वास को भी नष्ट कर देगा ? नहीं आरती इतनी क्षुद्र नहीं है।

उसने कहा, "मैं क्या विश्वास करूँ ! आजकल तो वह पहले वाला नवनीत रहा नहीं। नीलम ने खबर दी है कि इधर वह मद्यपान तक करने लग गया है। तुम्हीं बताओ, क्या विश्वास किया जाए उसका ?"

"अच्छा, वह मद्यपान करता है ? मैंने सुना था, पर विश्वास करने को जी नहीं चाहा। परन्तु आज तो तुम भी कह रही हो !"

आरती ने जब कुछ नहीं कहा, तो अधरलाल बोले, "कह नहीं सकता उसका यह पतन कितना गहरा है, यदि उसमें पतन की ढलाई शुरू हो गई है, तो वह बड़ी खतरनाक है। किन्तु यदि प्रतिक्रियात्मक या प्रतिबाधात्मक परिस्थितियाँ न होती, तो यह युवक किसी भी देश के लिए सम्मान की वस्तु होता।"

"किन्तु क्या ऐसे व्यक्ति अपनी परिस्थितियाँ नहीं बदल सकते ?"

"नहीं बदल सकते आरती, यही नहीं, उनका पतन भी उतना ही भयानक हो सकता है, जितना कि अनुकूल परिस्थितियों के होने पर उनका उत्थान मोहक होता। जो वृक्ष जितना ऊँचा जाने को होता है, उसकी जड़ें पहले उतनी ही नीचे जाती रहती हैं, और जब पेड़ उखड़ जाता है, तो पृथिवी की छाती पर कोई ऐसा छोटा-मोटा घाव नहीं पड़ता कि वह सरलता से भरा जा सके।"

आरती फिर कुछ उत्तर नहीं दे सकी। इस वृक्ष को उखाड़ने में उसने आँधी का काम किया है। समाज और देश के हृदय पर इससे जो घाव बन जाएगा—और यदि अधरलाल को कुछ हो गया तो?—उसका उत्तरदायी सिवा उसके कौन होगा?

अधरलाल कहते रहे,—"सम्भावना तो यही है कि शर्ली और रेडियर दोनों ही काल-कवलित हो गए। किन्तु प्रकृति के पटल पर घटनाएँ इतनी शीघ्र शमित नहीं होतीं। जिसे हम महासमुद्र का एक बुलबुला मात्र कहते हैं, वह भी समुद्र की गम्भीर छाती के भीतर से उठी हुई गम्भीर आह को लेकर वक्षप्रान्त पर उपस्थित होता है, चाहे दुनियाँ की हवा उसे न-कुछ कह कर नष्ट कर दे। और अगर ऐसा हुआ तो—"

आरती और अधिक अधरलाल के वक्ष से लिपट गई। उसकी अश्रु-सिक्त आँखों में भविष्य की काली-छाया मानों मूर्त्त हो उठी, उस संताप ने उसकी संज्ञा को भी खो दिया। आते हुए आँसू वहीं रह गए। केवल एक बुभुक्षित-ज्योति उसकी कृष्ण पुतलियों में और भी अधिक उद्दीप्त हो उठो। उस भावहीन मुँह को देखकर अधरलाल रुक गए। एक क्षण उन्होंने उन संतप्त आँखों में अपने स्नेह की शीतलता दी, फिर कहा—किंचित हँसकर—

"दुनियाँ में एक वस्तु, जिसे व्यक्ति अधिक-से-अधिक अस्वीकार करता है, किन्तु जिसको उसे अधिक-से-अधिक स्वीकार करना पड़ता है, यही मृत्यु है। जिसे हम नितान्त भावहीन मानते हैं, वही तो अवस्था

है, जहाँ हमारे समस्त अभावहीन हो जाते हैं। किन्तु इसे कोई नहीं समझता आरती, देखकर भी उसे कोई नहीं देखता।"

"परन्तु—" आगे आरती से कुछ कहा नहीं गया।

"परन्तु क्या ?"—जब मैं अपनी मृत्यु की विभीषिका की बात कह रहा हूँ तो मृत्यु के ऊपर अधिकार पाकर नहीं ! क्या यह सम्भव नहीं कि मेरी मृत्यु के पहले ही मैं अपने किसी अन्य प्रेमी की मृत्यु-वार्ता सुनने के लिए विवश होऊँ ?—किन्तु मृत्यु के ऊपर अधिकार का तात्पर्य ही क्या है ? प्रकृति के इतिहास में जो महत्व जन्म का है, वही मृत्यु का भी तो है। जिन कारणों से जन्म श्रेयस्कर माना जाता है, वे ही कारण क्या मृत्यु के श्रेयस के नहीं। फिर इसमें चिन्ता क्या ? जिसे हम अभावमय मानते हैं, वह तो सम्पूर्ण रूप से भावमय है, वही तो प्रकृति की सच्ची वास्तविकता है। मृत्यु तो जन्म के पहले भी थी, और बाद में भी है, तब प्रकृति की इस अनाद्यन्त-कथा में जीवन क्या एक क्षेपक मात्र नहीं है ?"

अधरलाल के विस्तीर्ण-वक्ष की दीवार पर इस पार एक लम्बी साँस का आघात ही हुआ, किन्तु दीवार के उस पार कार्य करने वाले हृदय की रक्त-संचार शक्ति दूनी हो गई। अधरलाल ने पुकारा, "आरती !"

किन्तु आरती का चैतन्य कहीं अन्यत्र उड़ चला था, केवल सूखी आँखों के बुझे हुए अंगारे उन पुतलियों पर निर्झरमाण राख की तरह गिर पड़ने को उत्सुक दीख रहे थे। भाल पर पसीने की बूँदें मुक्ता-विलास की तरह और अधिक उद्दीप्त हो उठी थीं।

आरती अधरलाल ने फिर पुकारा, "आरती—आरती !"

आरती ने केवल अपनी आँखों के पलक नीचे गिरा लिए।

अधरलाल ने उसके मस्तक को धीरे से तकिए पर रख दिया। नाड़ी और हृदय की गति बिलकुल ठीक थी। तो क्या आरती को निद्रा आ गई ?—परन्तु इस उत्तेजना की अवस्था में नींद और आरती को—

नहीं इस भ्रम में रहना मूर्खता है। अधरलाल के पहले तो उसके मुंह पर पंखा झलना शुरू किया। कुछ समय बाद जब उन्होंने उसके मुँह पर पानी के छींटे भी मारे तो आरती ने पुनः आँखें खोलीं. और अधर-लाल की ओर देखकर उन्हें पुनः बन्द कर लिया।

अधरलाल ने पुनः स्निग्ध स्वर में पुकारा, "आरती !"

आरती ने आँखें खोलीं, और प्रश्नसूचक दृष्टि से अधरलाल की ओर देखा।

अधरलाल ने पूछा, "क्या हो गया तुम्हें ? अब तुम्हारी तबियत कैसी है ?"

आरती ने कुछ नहीं कहा, उत्तर स्वरूप प्रकाश की एक क्षीण लहर उसकी पुतली पर फिर गई, और फिर आरती की आखें बन्द हो गईं। अधरलाल भी उसके सिर पर हाथ रखे चुपचाप बैठे रहे।

दो-तीन मिनट और बीत गए। आँखें बन्द किए हुए ही आरती ने पूछा, "एक बात सुनोगे ?"

"एक नहीं, दस सुनूँगा, पर तुम्हारी तबीयत ठीक हो ले।"

"मेरी तबियत अब बिलकुल ठीक है।"

"लेकिन ठहरो, ऐसी कोई बात न कहो जिससे तुम्हें उत्तेजना हो उठे।"

"नहीं, मुझे किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं होगी। यदि मैं उस बात को आज न कह सकी, तो फिर शायद कभी न कह सकूंगी।"

"तो उसे कभी कहने की जरूरत ही क्या है ?"

"तुम्हारे लिए न हो, किन्तु मेरे लिए तो है। तुम मेरा इतना अधिक विश्वास करते हो, मैं उस विश्वास को नष्ट नहीं होने दूँगी, चाहे तुम मुझसे नाराज ही क्यो न होजाओ !"

"किन्तु किसलिए ?—मैं तो उसे सुनने के लिए किंचिन्मात्र भी उत्सुक नहीं हूँ।"

परन्तु फिर भी मैं सुनाऊंगी। तुम मेरा न्याय करो, यदि मैं दोषी

मिलूँ तो मुझे दण्ड दो। मैं तुम से छिपाऊँगी कुछ नहीं !"

"आरती ! मैं प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करता हूँ, और उसकी प्रतिष्ठा मेरे लिये कहीं भी कम नहीं है। उस सत्ता में आक्षेप करना मैं कभी उचित नहीं समझता। फिर तुम तो मेरी सब से निकट अपनी हो, क्या तुम्हारे लिए ही मैं उस आदर के भाव को भुला दूँगा ?"

"मैं उसी आदर के भाव के कारण तुम से सब कुछ कह देना चाहती हूँ।"

"नहीं मानती हो तो कहो ! किन्तु आरती, मैं जीवन को निरन्तर गतिशील मानता हूँ, बीते हुए का मेरे निकट कोई मूल्य नहीं है। विश्व की प्रत्येक घटना एक शाश्वत परिवर्तन का आभास देती है, उसे कोई क्या नाम देता है, कोई क्या ! घटनाओं की संगति पर मैं मनुष्य-जीवन की कमजोरियों का लेखा नहीं तैयार करता, यदि तुमने मुझे इतना संकीर्ण समझा हो, तो तुमने मुझे गलत समझा है।—न कभी मैंने ही तुम्हें संकीर्ण जीवन में घसीटने का प्रयत्न किया है। अपनेपन में तुम बराबर अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग करती आई हो, और मुझे प्रसन्नता है कि जीवन के उस स्तर पर तुमने अपने व्यक्तित्व को सदैव उन्नततम रक्खा है। आज मुझे कोई बात सुनाकर क्या करोगी ?—यदि तुम यह भी कहना चाहो कि तुमने मुझसे प्रेम न करके वस्तुतः किसी दूसरे ही से प्रेम किया है, तो भी मैं उसे तुम्हारी दुर्बलता नहीं मानूंगा। जीवन में मेरी साध किसी से कुछ लेने की नहीं रही, यद्यपि देने के नाम पर भी मैं विशेष किसी को कुछ दे नहीं पाया। किन्तु आरती, तुमसे तो मैं सदैव पाता ही रहा हूँ। आज उस प्राप्ति का मूल्य मैं तुम्हारे मुँह से सुनना नहीं चाहता।"

अधरलाल ने फिर आरती को अपने वक्ष के पास खींच लिया, और आखें बन्द करके वे नीरव हो गए।

आरती ने कहा, "न्यायाधीश की तरह न सही, यदि तुम्हारा निर्देश प्राप्त करने के लिए कुछ पूछूँ ?"

"पूछो आरती, पूछो, जो तुम्हारे जी में आये !"

आरती ने अपने आपको संयत किया, दो-तीन मिनट उसे चुप रह जाना पड़ा। अधरलाल का व्यक्तित्व बहुत उठा हुआ है, किन्तु आरती इतनी ऊँचाई पर नहीं कि वह अपनी ही दुर्बलता की बात सरलता से कह सके। दुर्बलता ही तो है।

धीरे-धीरे आरती ने नवनीत लाल की वे सभी बातें जिनसे उसके जीवन-चन्द्र पर राहु की पाप छाया पतित हुई थी, कहना प्रारंभ किया —किस प्रकार आसक्ति का प्रारम्भ हुआ, और किस प्रकार मोह के प्रकाण्ड दम्भ में उसकी समाप्ति हुई, इसके पश्चात् ही किस प्रकार प्रेम के व्यंग्य ने नवनीत लाल के जीवन में एक हाहाकारमय रौरव खड़ा करके उसको मद्यप बनने के लिए विवश किया—सभी बातें अकुतोभय भाव से आरती ने अधरलाल को निवेदन कर दीं। उसके बाद एक लम्बी साँस छाती में दबाकर उसने पूछा—

"तुम्हीं कह चुके हो कि प्रेम जीवन की कोई मौलिक घटना नहीं है। तब उसे नवनीत का मन समस्त-पद में कैसे स्वीकार कर सका-- मानों प्रेम के आद्यन्त हीन लम्बे-चौड़े क्षेत्र में उसका यह जीवन ही क्षेपक बन गया। और पूछती हूँ कि राष्ट्र के लिए गौरव जैसे उसके व्यक्तित्व के इस दु खान्त पर मेरी ही शांति मई रात्रि क्यों निष्ठुर हो उठी—मैं तो तुम्हारे सिवा इस दुनियाँ में किसी को जानती नहीं।"

अधरलाल ने आरती का मस्तक सूँघकर कहा, "पति के भूखे हृदय से इस महत्व का विवेचन नहीं हो सकता आरती ! जीवन की गहराई में पति का, पुत्र का, या माता-पिता आदि अन्य संबंधों का दावा भी कोई सीढ़ी का काम नहीं करता। कुएं की जगत भर पर पहुँचने के इन मोड़ों पर खड़े होकर कोई जीवन की मार्मिकता को नहीं माप सकता—मैं ही क्या माप सकूंगा !—पत्नी की तौर पर तुम्हारा

सम्मान करके मैं तुम्हारे क्षेत्र को संकुचित करना नहीं चाहता आरती ! जीवन की इस वनस्थली में तुम समस्त नारीत्व की प्रकीर्ण-वसंत श्री हो, और उस वसंत—श्री की माधुरी में केवल मेरा कोकिल ही नहीं कुहुक उठता, उसमें जगत के सभी मधुर-स्वरों का स्थान है ! उनसे भी अधिक तुम्हारी श्री की समस्त शोभा ही तुम्हारा पैमाना है। इन क्षुद्र बातों की याद क्यों करती हो। एक कोयल के कण्ठ फूटने में तुम्हारे गौरवमय मादक उल्लास का अन्त नहीं है, तुम्हारा दायित्व बहुत बड़ा है आरती—मेरी वसन्त श्री !"

भरे हुए नेत्रों को अधर लाल के नेत्रों में गड़ाते हुए आरती बोली "और मेरे जीवन-उद्यान के ऋतुराज !"

आँखें बन्द किए हुए आरती अधरलाल के हृदय से चिपटी रही, और आँखें बन्द किए हुए ही अधरलाल भी, एक-दूसरे लोक को स्पष्ट करने का प्रयास करने लगे।

तभी पूर्व की खिड़की से ऊषा की प्रथम किरण ने आकर दोनों को जन्म-जन्मांतर के लिए एक अमर बंधन में बांध दिया।

(२१)

दिसम्बर के प्रथम सप्ताह की बात है। शीत की अधिकता के कारण ताप के देवता सूर्य भी अपने अधिकार क्षेत्र को संयत करने के लिए बाध्य हुए हैं। बात उन दिनों की है जब कि युद्धकालीन कारणों से अति प्रगतिशील काल-देवता और भी अधिक अति प्रगतिशील हो गए थे, भारतवर्ष में. इस अति प्रगति का मान १ घंटा था, अतः साढ़े चार बजे ही साढ़े पांच बज जाती थी, किन्तु इसके उपरान्त भी सूर्यास्त का समय पंचांग की लीक छोड़ना नहीं चाहता था।

मानपुर स्वयम् सूर्यास्त के बाद अस्तप्राय हो जाता था। आजकल शीत के कारण उसकी अस्तगामिता में वृद्धि ही हुई है। बस्ती की गलियों में अधिकांशतः कुहरे के भार से दबी हुई घनी शीतल वायु

तीर की तरह चल रही है, या फिर कम्बल के लबादों में गठड़ी बने हुए कुछ जरूरतमन्द व्यक्ति इसी हवा के वेग में अपने प्राणों को दबाए यदा-कदा नजर आ जाते हैं। कुछ दूकानें भी कहीं कहीं खुली हुई हैं, जिनकी रोशनी अन्धकार के शरीर में कोढ़ की सफेदी की तरह दीप्त हो उठी है।

आज सूर्यास्त के समय से ही, पोस्टआफिस की ऊपरी मंजिल में कई दिनों के बाद प्रकाश दिखाई दे रहा है। घर के मालिक रात्रि को नौ-दस बजे से पहले नहीं लौटते। और रह गया नौकर सो संध्या के प्रकाशहीन धूमिल जीवन में दिया लगाकर वह करे ही क्या?—शायद घासलेट का नियन्त्रण, और अपने स्वामी के मांगल्य की आशङ्का से उठा हुआ हृदयस्थ भावों का नियन्त्रण भी इस अ-प्रकाश का कारण रहा हो। किन्तु आज वह दिनों का जीर्ण अन्धकार एकाएक ही मानो किसी लक्ष्मी मूर्त्ति के आगमन से टूट-टाट कर इधर-उधर भागने की कोशिश कर रहा था। ऊपर के कमरे में सचमुच ही एक सुन्दर स्त्री—माया नहीं, जिसका कि स्वभावतया इस घर पर अधिकार है, बल्कि नीलम, जिसका व्यवसायिक-दृष्टि से सभी घरों पर अधिकार रहता है—एक मोढ़े पर बैठी हुई थी, और सामने निराशा की मूर्त्ति, प्रकाश में अन्धकार को साफ देखने वाला नवनीतलाल का नौकर हरनाम बैठा हुआ था। सामने ही स्टूल पर पड़ी हुई एक लालटैन, जिसकी हण्डी शायद ठण्ड के मारे ही सिकुड़ कर, काले कम्बल के समान अपने ही कालिख में अपने आपको छिपाने का प्रयत्न कर रही थी—इन दोनों की मूर्त्तियों पर धुँधला प्रकाश प्रक्षिप्त कर रही थी। दोनों ही छत की कड़ियों की ओर देखते हुए ऊपर की ओर न जाने क्या देखने का असफल प्रयत्न कर रहे थे।

लम्बी सांस लेकर नीलम ने कहा, "कई दिनों से यह शराब का नाटक चल रहा है, और तुमने मुझे खबर भी न दी?"

"अपनी गरदन टूटने का मुझे डर न था, पर नौकरी टूट जाने का

तो जरूर था ही। सोचा, सुख-दुःख में पड़े रहकर यदि उनकी कुछ भी सेवा कर सकूँ तो यही क्या बुरा है ? मुझे भरोसा तो था कि इस बात का पता लगाने के लिये एक बार तो आप जरूर आएँगी। आई परन्तु बहुत देर से आई हो बहन !"

"अच्छा यह बता हरनाम, बहूरानी ने तब से क्या कोई खोज-खबर ही नहीं ली ? क्या कोई चिट्ठी-विट्ठी भी नहीं ?"

हरनाम ने लम्बी साँस ली, बोला—"क्या कहूं, इस जले तकदीर में क्या-क्या देखने को बदा है !—बहूरानी जैसी सती-लक्ष्मी भी इस दुनिया में और नहीं मिलने की। परन्तु तकदीर को कोई क्या करे ?"

"मानलें कि गलती इन्हीं की है, किन्तु अगर एक बार भी बहूरानी खुद चली आतीं, तो क्या उनकी नाक कट जाती ?"

"गँवार आदमी ठहरा बहनजी, यह सब तो क्या जानूँ ! मगर बहूरानी जैसी औरतों का नाक काटना मामूली बात नहीं है। चार बरस तक दिन-रात नाजबरदारी सहते सहते भी अगर वे इनको राजी नहीं कर सकीं, तो एक दिन के लिए यहाँ आकर इन्हें देख जाने से सिवा अपमान के उन्हें मिलता ही क्या ? सोचा भी तो था कि किसी से एक चिट्ठी ही लिखाकर उन्हें खबर कर दूँ कि अब आपकी धरोहर मैं नहीं सम्भाल सकता, मुझे छुट्टी दी जाए, किन्तु सोचा, जिस दिन सूने घर में आकर बहूरानी ने इनकी सेवा का सब भार हँसते-हँसते अपने सिर पर ले लिया था, उस समय तो मेरी किसी चिट्ठी की, किसी इशारे की कोई जरूरत नहीं पड़ी थी। पूरी पूरी रात जागकर भी, जो बाबू के सवेरे आने पर एक भी मीठा बोल नहीं पाती थी, और तब भी जिसके मुँह पर थकावट का निशान तक नहीं मिलता था, जब मैं खुद सोचा करता था कि पत्थर के देवता के पैरों में सिर पटकने से जो लाभ हो सकता है, उसी लाभ के लिए बहूरानी बरबाद हो रही थी, उसी बहूरानी को तब मैं चिट्ठी लिखता ही किस मुँह से !"

हरनाम का गला भर आया। नीलम कोई उत्तर न दे सकी, केवल सामने पड़ी हुई घड़ी की टिकटिक आवाज ही कुछ देर तक वहाँ की शांति को हीन करती रही।

हरनाम ने संयत होकर कहा "सिगड़ी ले आऊँ?—यदि आ ही गई हैं, तो मिलती जाइए न!—अगर आप के किये हो सके, तो यह सोने की देह बचा लीजिए बहनजी, मैं जिन्दगी भर गुलाम रहूँगा।" कहकर हरनाम नीलम के पैरों में गिर पड़ा।

नीलम ने कहा—"अरे अरे, यह क्या करते हो हरनाम! मैं जा कहाँ रही हूँ! पर क्या तुम्हें भरोसा है, मेरी बात वे मान लेंगे?"

हरनाम उठ खड़ा हुआ, बोला, "डूबते को तिनके का सहारा! पहले शायद कभी भरोसा न भी होता, पर अब तो मैं सभी बातों पर भरोसा करता हूँ। यही किसे भरोसा था कि ऐसा देवता एक दिन पत्थर का मनुष्य होकर रास्ते का हो जाएगा।"

हरनाम दूसरे कमरे में सिगड़ी लेने चल दिया।

नीलम ने धूम्रावृत दीपशिखा की ओर देखा, क्या नवनीत सचमुच ही पत्थर का देवता है?—उसका काठिन्य क्या वास्तव में उसका जड़त्व है?—तब आरती में उसकी आसक्ति—क्या यह भी उसका जड़भाव ही है?

बहुरानी, नीलम और आरती, इन तीनों के मूल में जो निर्विशेष नारी है, वह तब से नवनीत के पत्थर के हृदय पर आघात करती रही है, यदि आरती का अभिसम्पात उस पत्थर के अन्तर से स्नेह का एक स्रोत प्रवाहित कर पाया है, तो वह विशेषता ही उसकी किस बुभुक्षा का शमन करेगी?

नीलम गायिका है, नर्त्तकी है, और आरती एक कुलवधू—क्या इसीमें वह विशेषत्व निहित है?—नीलम क्या नृत्य और संगीत से ऊपर कुछ है ही नहीं?—उसकी शिक्षा, उसके संस्कार और उसकी विगत-जीवन की भूमिका का महत्व, यह जाने भी दिया जाए, तो भी

नारी के अचिन्त्य-हृदय का अप्रतिहत-अमृत—दुनिया चाहे उसे न देख सके, किन्तु क्या उसे नवनीत भी नहीं देख पाया ? नवनीत यदि इतना क्षुद्र है, तो वह काठिन्य उसने कहाँ से प्राप्त किया ?

हरनाम सिगड़ी लेकर लौट आया। शीत से सिकुड़े हुए उसके चेहरे पर सिगड़ी के जलते हुए अङ्गारे प्रकाश फैंक रहे थे, किन्तु वेदना की जो श्याम-आभा वहाँ पर फैली हुई थी, वह इस प्रकाश से भी प्रकाश नहीं पा सकी।

सिगड़ी दोनों के बीच में रखकर हरनाम बैठ गया। कमरे की शीतलता धीरे २ विदा होने लगी।

हाथों को आग की ओर बढ़ाते हुए नीलम ने पूछा, "क्या सचमुच ही तुम्हारा देवता पत्थर का है ?"

"पत्थर का हो, पर है देवता ही बहनजी ! नौकरी तो खैर कौन नहीं करता ? और मैं ही कौनसा धन्ना सेठ हूं कि न करूँगा, पर घर जाकर देखो तो मालूम होगा कि अपने गाँव में तो धन्ना सेठ ही हूं। किसी भी रास्ता चलने वाले से भी पूछो तो कहेगा कि हरनाम ने किसी महादेवजी को वश में कर लिया है, कि छप्पर फाड़कर उसे पैसा मिल गया है; आठ बीघा जमीन है, पक्का मकान बन गया है, दो बेटियों और एक बेटे की शादी हो गई है—किसके वरदान से ? उसी औठरदानी के वरदान से जो दिन में तीन बार नौकरी छुड़ा देने की धमकी देता है। कहता हूँ, महादेवजी में और बाबू में फरक ही क्या है ? रहा-सहा जो था, वह इस शराब के नशे ने पूरा कर दिया। पर देवता होते हुए भी यह दरिया-दिली तो आखिर पत्थर ही की है न ! जिस आदमी को आदमी की मोह-माया नहीं, उसको पैसे की माया ही कैसे घेरे रहेगी ?

नीलम ने देखा कि वृद्ध हरनाम की आँखें टपकने को हो गईं ! उसका कण्ठावरोध हो गया।

भावावेश में बूढ़ा जो कुछ कह गया, वह अनुपयुक्त तो नहीं दीखता

जिस व्यक्ति को आदमी को मोह-माया नहीं अटका सकती, उसे पैसे ही की मोह-माया कहाँ से पकड़ रक्खेगी !—किन्तु यही तो मनुष्य-जीवन है—हृदय की इसी सरलता पर तो मनुष्यता का अभिषेक किया जाता है। यदि आसक्ति वस्तु-सापेक्ष्य हुई, तो फिर एक पक्षीय अनासक्ति को दम्भ क्यों न कहा जाएगा ?

—और आरती के प्रति उसकी आसक्ति ?

नीलम बोली, "हरनाम, मेरा मन कहता है कि बहूरानी को चिट्ठी न लिख कर तुमने गलती की है। सम्मान के मोह में शायद ये दोनों एक दूसरे के निकट अपनी दुर्बलता न पकड़ा पाए हों, किन्तु यदि एक पक्ष की दुर्बलता पर ही विजय का सामंजस्य चरितार्थ होता है, तो सत्य-घटना की केवल एक चिट्ठी लिख कर तुम यह बात संभव कर देते ! क्यों नहीं अब भी एक ऐसी ही चिट्ठी तुम बहूरानी को लिख देते ?"

हरनाम चुप-चाप बैठा रहा, नीरव शांत— केवल आँखों के सामने चमकती हुई आग की गरमी ही उसकी सहज-शांति को भस्म करती मालूम दे रही थी।

नीलम ने कहा—"मैं समझती हूँ कि बहूरानी का रूठना कितना स्वाभाविक था, और कितनी घोर-निराशा से वे इस घर के बाहर निकलीं। परन्तु, जानते हो हरनाम, तुम्हारे मालिक को क्या इतनी सरलता से छोड़ा जा सकता है ? यदि यही संभव होता तो क्या इस पतन को देखने के लोभ से तुम्हीं यहाँ टिके रहते ? यदि तुम्हारी बहूरानी के दिल था, तो क्या इस व्यक्ति को पहचानने में इतनी भूल हो सकती है ? केवल एक मिथ्या-अपमान और अभिमान की आशंका के सिवा मुझे तो इन दोनों के बीच कुछ दीखता नहीं।—और यदि कुछ हो भी तो, तुम्हीं कहते थे न, डूबते को तिनके का सहारा ! कोशिश करके ही क्यों न देख लिया जाए ?—यदि किसी तरह इस महान चरित्र को बचाया जा सके—"

हरनाम ने कहा, "पर किससे लिखवाऊं, और वह लिख ही क्या देगा ?—बहन जी, अगर आप ही यह तकलीफ करो—"

"लिखवाना क्या है उसमें ? यही कि तुम्हारे वियोग में तुम्हारे स्वामी की यह दशा हो गई है; पत्नी वैसे सुख के दिनों के लिए ही नहीं होती, दुःख के दिनों में ही उसे पति का साथ देना चाहिए। अतः उनके लिए वाजिब है कि वे यहाँ आएँ और उनकी सुधि लें।— बस, और लिखना ही क्या है ?"

"तो आप ही लिख दीजिए न—"

"अच्छा, कल-परसों जब तुझे फुरसत हो, घर आ जाना, मैं लिख दूंगी।"

"बड़ा पुण्य होगा। जीऊँगा दुआ दूँगा। एक बार अगर इस आदमी का उद्धार होजाए, तो जैसे-तैसे कोशिश करके मैं इन्हें मानपुर से ले ही भागूँगा। जब-से निगोड़े मानपुर में कदम रक्खा, तब से कुछ ऐसे सनीचर की निगाह पड़ी समझिए कि छुटकारा ही नहीं मिलता—"

और भी आगे हरनाम की जीभ की कैंची चलती रही, किन्तु जिस झोंक में वह कहता चला गया, उस झोंक में उसे पता ही न लगा कि वह कैंची किसी के कोमल हृदय को कहाँ तक कतर रही है।"

यानी, नीलम के प्रेम का उपसर्ग भी नवनीत के जीवन-हास्य पर शनिश्चर की दृष्टि रही है। जैसे-तैसे कोशिश करके मानपुर से बाहर भागना यदि संभव हो जाए तो जान बचे। नवनीतलाल को क्या इसीलिए मानपुर के जन-जीवन को क्षुब्ध करने का अधिकार प्राप्त हुआ था ? और आज भी, रक्त को जमा देने वाली रात्रि की इस शीत में, इस तरह निर्लज्ज की भाँति बैठकर क्या वह अपने बन्धन से—बल्कि समस्त मानपुर के बन्धन से, केवल नवनीत लाल की मुक्ति ही को संभव और सम्पन्न करेगी ? मानपुर में घटित २९ अगस्त की घटना क्या नवनीत को इतने सस्ते छोड़ देने को 'तैयार है।

बेचारा हरनाम!—उस गौरव को समझ ही कैसे सकता है!—नवनीत का उस घटना से कोई सम्बन्ध है, यह भी तो वह नहीं जानता होगा?—और क्या इस बूढ़े के भावुकतामय कथन को ही सत्य मानकर नवनीत यहाँ के सम्पूर्ण बन्धनों को विच्छिन्न कर देगा? अपने महत्व के जीवन को जिस कारण से उसने भ्रष्ट हो जाने दिया है, उसी आरती के भाव की व्याप्ति ही क्या उसे इतनी सरलता से छुटकारा दे देगी?

जो हो, इसमें तो झूठ नहीं कि नीलम ने एक शनिग्रह की भाँति ही नवनीतलाल के मार्ग को रुद्ध कर दिया है। इसकी लज्जा चाहे नीलम स्वयम् अनुभव न करे, किन्तु यह अज्ञ नौकर तक अपने भाषण से व्यंजित कर रहा है। नीलम ने हरनाम की ओर देखा, हरनाम एक लकड़ी से अंगारों को उलीच रहा था।

नीलम ने पुकारा "हरनाम!"

"कहिए!"

"मैं नहीं समझ पाई कि आखिर तुमने मुझे रोक क्यों लिया? तुम जानते हो कि तुम्हारे मालिक मेरी कोई बात नहीं मानते! क्या इससे मेरे अपमान की मात्रा ही नहीं बढ़ेगी?

"मैं जानता हूँ कि वे आपकी बात नहीं मानते; परन्तु यह भी जानता हूँ कि वह बात इसलिए उन्हें नहीं भाती कि वह आपकी कही हुई है।

"तो फिर?—"क्या यह तुम चाहते हो कि मेरा अपमान होता रहे!"

"नहीं-नहीं, यह बात आप क्या कह रही हैं?—मैं जानता हूँ कि आपउनकी बहुत अधिक भला चाहने वाली हैं। दूसरी सोचने की बात यह है कि वे क्यों आपकी ही बात नहीं मानते? वैसे वे किसी की बात को ठुकराते नहीं, किन्तु जब केवल आपकी बात को ठुकरा देते हैं, तो मालूम देता है कि वे आपसे बचने के लिए ही ऐसा करते हैं। उनका यह रूठना ही आपके लिए उनका मोह जाहिर करता है, इसे

मैं समझता हूँ। किसी रूठे हुए लड़के को आपने देखा या नहीं ? वह अपनी माँ की अपने भले की बात को भी मंजूर नहीं करता। न मालूम किस भावना से मेरे बाबू का मन भी ऐसो ही हठ में फँस गया है, नहीं तो मुझसे ज्यादा उन्हें कौन जानता है ? बचपन से पाला है मैंने उन्हें, बचपन से ! मेरा ख्याल था कि आप इस बात को जानती हैं, और इसी लिए यह सोच कर ही मैंने आपको रोक रक्खा था—"

किन्तु हरनाम की बात पूरी नहीं हुई, नोचे किवाड़ों पर जोर का धक्का लगा। हरनाम ने कहा, "मालूम देता है, आगए। मैं किवाड़ खोल दूँ।" और वह नीचे उतर गया।

तो, नीलम समझे कि इस अवज्ञा का अर्थ नवनीत के हृदय में उसके प्रभाव से है। तो फिर नवनीत इस प्रभाव को स्वीकार क्यों नहीं करता ? यही नहीं, इसे अस्वीकार करने को उसे दम्भ भी करना पड़ता है। मनोविज्ञान की यह विकृति ?—इसी को तो उस दिन ललिता पाप कह कर पुकार रही थी ! यानी नवनीत प्रारंभ ही से पाप-पथ में पैर रख चुका है ?

नवनीतलाल ने भीतर प्रवेश किया। नीलम ने देखा तो अश्चर्य-हत हो गई। सिर के बाल बिखरे हुए, मुँह में सिगरेट, पर आधी जल-जला कर वह कब और कैसे बुझ गई। इसका पीने वाले को कुछ ज्ञान नहीं, आँखें कपाल पर चढ़ी हुईं, दिमाग आसमान से बात करता हुआ, पैर धरती से उठे हुए—एक हाथ कोट की जेब में पड़े हुए सिगरेट के डिब्बे पर, और दूसरा बोतल लिए पीठ के पीछे। नीलम को देखते ही नवनीत एकाएक चौंक उठा, उसने हरनाम की ओर एक तीखी निगाह डाली।

तबतक नीलम स्वस्थ हो चुकी थी, वह मोढ़े से उठी और दोनों हाथ जोड़ कर उसने कहा, "नमस्ते !"

नवनीत ने नीलम की ओर दृष्टि फिराकर उसे मानो पहचानने का प्रयत्न किया, फिर उल्लास से बोला—

"अल्वाह' नीलम देवी। चीअरो, गुड-लक !"

किन्तु तभी सिगरेट उसके मुँह से निकलकर जमीन पर गिर पड़ी। एक क्षण उसने ललचाई निगाह से उस ओर देखा और कहा, "नेवर माइण्ड !" हाथ की बोतल को उसने टेबल पर रख दिया, दूसरे हाथ से डिब्बा निकाल कर उसने सिगरेट निकाली, जलाकर उसे ओठों में दबाया, और टेबल के एक कोने पर स्वयम् ही बैठ गया।

"पहचान में ही नहीं आईं एकाएक नीलम देवी, देखे भी तो बहुत दिन हो गए न !"

नीलम ने देखा, आवाज में तुर्शी है, किन्तु एकदम तो नशे का प्रभाव नहीं है। बोली, "अवांछित व्यक्ति को पहचानने से अपनी ही हानि होती है नवनीत बाबू !"

"अवांछित व्यक्ति ? हैं ऽ ह ऽ ह ऽ !" फिर हरनाम की ओर देख कर बोला, "कुछ बनाओगे दोस्त या आज खाली ही उड़ेगी ! कुछ अच्छा-सा नमकीन, समझा न ?—अरे उधर क्या देखता है ? तू इन्हें नहीं जानता, पर मैं जानता हूँ। और छिपाने जैसा अब रहा ही क्या है ?" फिर नीलम को सम्बोधन कर बोला, "आपकी जेरे-निगाह तो ऐसे किस्से कसरत से हुआ करते हैं। बल्कि दिलचस्पी का आलम तो आप की जेरे-निगाह ही है। क्यों ?—क्या मेरी ही खता माफ न होगी ?"

नीलम को काठ मार गया. परन्तु वह घबराई नहीं, बोली, "जो मेरी निगाह के मुन्तजिर हैं, उनकी दिलचस्पी का व्याना मैं दे सकती हूँ; मगर—"

"अवांछित व्यक्ति की बात ही कहना चाहती हो न ? अच्छा, उसी को सही। कहो, क्या कहना चाहती हो ?" फिर हरनाम की ओर देखकर बोला, "जाओ बाबा, जल्दी करो; कैसे समझाया जाए तुम्हें कि जब बात करने के लिए किसी महिला से सामना पड़ जाता है तो भूख वैसे ही दूनी हो जाती है। जाओ, जो कुछ बना हो, या बन जाए !"

हरनाम एक ओर चला गया।

नीलम ने कहा, "आराम से बैठ जाइए न। बात करने के लिए काफी समय है।"

"काफी समय ? कहाँ है ! दस बज रहे हैं, और देखता हूँ, तुम अपनी विक्टोरिया भी तो नहीं लाई !" कहकर वह खड़ा हो गया। कोट उतार कर उसने एक खूँटी पर डाल दिया, फिर दूसरा मोढ़ा खींच कर सिगड़ी के पास बैठ गया। बोला—

"माफ करना, आदत पड़ गई है कहना चाहिये। एकाध पेग चढ़ाए बिना इस ठण्ड में रहा ही कैसे जा सकता है ! कहो न, कहते हैं इलायची से मुँह की खुशबू ठीक हो जाती है, परन्तु वह खुशबू किस काम की, जो दिल ही को राहत न दे। फिर भी कहो तो इलायची ले लूँ ? वैसे कभी-कभी गायन के समाज में ऐसे लोगों से भी सामना तो पड़ता ही होगा !"

नीलम ने थूक घूँटते हुए मुस्कराकर कहा "नहीं, कोई जरूरत नहीं। स्त्रियों को वैसे भी इसको सहने की आदत डाल लेनी चाहिये। भाग्य में कभी ऐसे ही पति से गठ-बन्धन हो जाए तो ?"

"ठीक कहती हो।—पर सचमुच ही बातचीत करने के लिए तुम्हारे पास काफी समय है !"

"जी ! आप तो जानते ही हैं, मेरे घर पर तो मेरी राह देखने वाला कोई बैठा नहीं !"

नवनीत ने मुस्कराकर कहा, "गुड-लक ! बल्कि मुझे अगर मालूम होता कि मेरे घर पर बैठा मेरी कोई राह देख रहा है तो—"

"घर पर लौटते ही नहीं; क्यों ? डाक्टर मिश्रा के यहाँ, या—"

"वह जमाना तो चला गया नीलम, तबके नवनीत की आज के नवनीत से तुलना कर रही हो ? अच्छा, तुम तो प्रत्यक्ष गवाह हो। मेरी ओर देखो; सच कहना, क्या मैं वही नवनीत हूँ ?"

"पर वैसे आप क्यों नहीं हैं ?"

नवनीत उठा, बोतल खोलकर एक गिलास में उसने थोड़ी-सी

शराब उँढेली, और फिर मोढ़े पर बैठकर बोला, "आज इस शीत में मुझे जिलाए रखने के लिए आधार की जरूरत है नीलम, और देखती हो कि कैसे तरल आधार को पकड़ कर जी रहा हूँ। तब नवनीत इतना कमजोर नहीं था। नहीं क्या ?" और नवनीत ने वह गिलास खाली कर दिया।

"बहूरानी की बात कहना चाहते हैं क्या ?"

"बहूरानी की ?—किसी की भी समझ लो। आखिर नारीत्व की सामान्य-भूमि पर चाहे तुम्हें परखना हो, चाहे बहूरानी को, या और किसी को। नीलम, आज तुम्हें दोष देना नहीं चाहता, किन्तु नारीत्व के उत्कर्ष में तुमने केवल अपने अहङ्कार ही को पकड़े रक्खा है। हर बात में तुम इसी लिए मुझे या मेरी भावना ही को पकड़ लेने की चेष्टा करती रही हो, और तुम्हारे इस अहम्वादी अभिमान को समझकर ही प्रत्येक बार मैं तुम्हारी पकड़ के बाहर भागता रहा हूँ। आज इस निरव-लम्ब नवनीत को तुम सरलता से पकड़ सकती हो, किन्तु क्या वह मेरी ही दुर्बलता है, तुम्हारी नहीं !—किस लिए फिर मेरी भावना के द्वार पर तुम एक नारी के सिवा अन्य कुछ नहीं सोच सकी ?"

सिगड़ी की ओर देखते हुए नीलम ने कहा, "यदि मेरी भूल हो तो मैं उसे स्वीकार कर लेती हूँ। पर तब यह आप ही के लिए रह जाता है कि आप ही अपनी भावना का परिचय दें।"

"किन्तु क्यों ?—क्यों मैं जासूसों के निकट आत्मसमर्पण कर दूँ ?"

"जासूसों के निकट न सही ! अन्य किसके निकट आप आत्म-समर्पण करते हैं ?"

"चोरों की दृष्टि से कोई अपने माल को इसलिए नहीं बचा रखता कि वह दूसरे को दान कर दे। बल्कि दूसरों की आत्मा का दान पाते पाते इतना मोटा हो गया हूँ कि यह मुटापा सम्हालने के लिए प्रयत्न

करना पड़ता है। आत्मसमर्पण की यह भावना आखिर कहीं आत्म-विसर्जन में न बदल जाए, यही डर रहा हूँ।"

"तो फिर समय रहते आत्मसमर्पण क्यों नहीं कर देते?"

"किसे? तुम्हें?"

नीलम एक बारगी ही आरक्त हो उठी। नवनीत ने उठकर बोतल को अपने पास ही रख लिया, फिर एक पेग और चढ़ाकर बोला—

"मुश्किल है कि सभी शराब नहीं पीते। पीकर बात करने में संकोच नहीं रहता। शिथिलता की तो यह रामबाण औषधि है—और मनुष्य-जीवन में शिथिलता के मौकों का कुछ अन्त है? बुद्धिमानी इसी में तो है कि सदैव जीवन का उत्साह बना रहे।"

नीलम प्रकृतिस्थ हो चुकी थी, बोली, "मालूम देता है, आत्मसमर्पण आप कर चुके हैं, और किसको कर चुके हैं, वही आपके ऊपर अधिकार किये हुए है।"

"ईर्ष्या हो रही है क्या? पर उपाय क्या है? एक अवस्था आती ही है, जब अपने आप को पकड़े रखना सम्भव नहीं होता, इस निरपेक्ष आत्मसमर्पण में फिर जो भी सामने आ जाए—चाहे शैतान हो, या सौन्दर्य हो, या सुरा ही हो! नवनीत के हिस्से में शराब आई है। किंतु आखिर तुम ही इसे बुरा क्यों कहती हो?"

नीलम ने उत्तर देने का कोई प्रयत्न नहीं किया, वह जलती हुई सिगड़ी की ओर देखती रही।

नवनीत बोला, "नहीं बोलती? शास्त्रों का अनुशासन अस्वीकार करने में लाज लगती है क्या? बीसवीं शताब्दि है, आधी बीत चुकी। आज के नौजवान को पुरानी लकीर पीटना शोभा नहीं देता। मगर—जाने दो नीलम देवी, नाराज हो जाओगी!—अरे हरनाम के बच्चे, ले क्यों नहीं आता थोड़ा-बहुत—कच्चा-सच्चा जैसा कुछ हो। स्त्रियों वाले बड़े बेशकिस्मत होते हैं इस मामले में। सुनते हैं स्त्रियाँ चूल्हे के निकट इतनी अधिक चंचल हो उठती हैं, जितनी किसी पुरुष के निकट

भी नहीं—और अगर कोई ऐसा पुरुष निकट हो, जिसे वे चाहती हों, तो फिर पूछना ही क्या ! क्यों, सच है न ?"

"पुरुष जो कुछ सोचे वह सही ही है नवनीत बाबू, आवश्यकता नहीं कि स्त्री उसमें कुतर्क उपस्थित करे ।"

"यह तो तुम्हारी नाराज होने की बात है नीलम ! —ना, यह न सोचो कि शराब पीकर अब भी मैं नशे में गर्क हो जाता हूँ"—कुछ रुक कर वह एकाएक अट्टहास कर उठा, "हंऽऽ—क्या कह गया पागलसा ? नशे में गर्क नहीं हो जाता तो पीता ही क्यों ! नशे के लिए ही तो पिया जाता है ! और बिना नशे के कोई जी भी सकता है क्या ?—सौंदर्य-सुन्दरी, यह सब भी तो नशा ही है न ?—जब स्त्री की याद आए, और वह पास न हो, तो क्या विरही की हालत वैसी नहीं हो जाती, जो किसी वैष्णव मन्दिर में शराब के अभाव में किसी शराबी की हो जाती है ! ओह, आ गए सरकार हरनामसिंह जी ! वारी तुझ पर मेरे साजन ! गरमागरम क्या लाए हो ? पकौड़ियाँ ? खूब दोस्त, खूब !"

हरनाम ने पकौड़ियों की प्लेट को नवनीत के आगे सरका दिया, फिर उसने पिपासित दृष्टि से नीलम की ओर देखा, और जब नीलम की दृष्टि में गहरी निराशा के अतिरिक्त उसे कुछ न दिखाई दिया तो वह उल्टे पैरों लौट गया ।

नवनीत ने शराब का एक और प्याला भरते हुए कहा—

"शराब न सही, पर पकाड़ियाँ तो खानी पड़ेंगी नीलम देवी !" फिर एक पकौड़ी को मुँह में डालकर बोला—"देखो तो सही, क्या लाजवाब बनी हैं ! ऐसे कलाकार मिल जाएँ तो जिन्दगी में सचमुच स्त्री की जरूरत न रहेगी । देखो न !—"

नवनीत ने प्लेट को नीलम की ओर बढ़ाया, किन्तु नीलम ने उत्तर दिया, "धन्यवाद, क्या सोचते हैं कि पकौड़ियाँ खाकर मैं अपनी ही सगौत्रीय महिलाओं की अवमानना करूंगी ?"

"ओहो, नीलम, टू यूअर हेल्थ"—कहकर वह हाथ का प्याला

गटक गया, बोतल आधी समाप्त हो चुकी थी। वह बोला, "अधरलाल कह रहे थे कि नीलम की तेजस्विता को युग की शेष नारियों की सम्मिलित तेजस्विता भी नहीं पहुँच सकती! मगर क्या तुम इस बोतल की आधी तेजस्विता को, जिसे मैं उदरस्थ कर चुका हूँ, पहचान सकती हो?"

नीलम उठ खड़ी हुई बोली, "मालूम देता हैं आपका समय बरबाद कर रही हूँ। तो इजाजत लूँ।"

नवनीत भी उठ खड़ा हुआ, "यह क्यों नहीं कहती कि अपना स्वयं का समय बरबाद कर रही हो। नारी के लिए प्रसिद्ध है कि वह अपनी बात कभी साधारण सीधी तरह नहीं करती, इस असाधारण-रूप में ही उसके हृदय की तृष्णा छिपी हुई है। तो नीलम, इसीलिए तुम भी नहीं जा सकोगी; केवल तुम्हारे कथन की भंगिमा ही नहीं, तुम्हारे सम्पूर्ण सौन्दर्य की भंगिमा आज मेरे दुर्बल-नयनों का उत्सव बन रही है। रहो सुन्दरी! क्या करोगी इस सूनी रात में घर जाकर—दिसम्बर का जाड़ा सहन हो सकेगा?"

नवनीत ने आगे बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रक्खा और जबर्दस्ती उसे मोढ़े पर बैठने के लिए विवश किया। अयाचित स्पर्श से एक बार और नीलम सिंदूरिया हो उठी।

नवनीत भी अपनी जगह पर बैठ गया, और बोला—"डरो मत नीलम, तुम्हारी तेजस्विता को परास्त कर सके, यह बूता नवनीत में नहीं है। सच पूछो तो कहूं कि तुम्हारी इस तेजस्विता से डरकर ही मैं तुम्हारे मार्ग से अलग हटता रहा हूँ। इस अयाचित दान को भी ग्रहण करने से मैंने अपने आपको इसीलिए रोका है, कि मेरा ठोस भाव कहीं पिघल कर तरल नहीं बन जाए। घबराओ नहीं तुम आरती नहीं हो, जिसमें जन-हित का सारल्य है; पुरुष की कठिनता उससे खिलवाड़ कर सकती है सुन्दरी, तुम्हारी लौह-अर्गला से नहीं।"

नवनीतने फिर एक प्याला पी लिया। नीलम बिन कुछ कहे अकर्मण्य

सी देखती रही । मालूम पड़ा कि वह एक अतीन्द्रीय जगत में है ।"

"इस नशे में जगत् के बन्धन शिथिल हो जाते हैं । लोग कहते हैं, शराब पीनेवाला पागल हो जाता है,परन्तु वह मनुष्यको वरदान कभी नहीं मिलता, कभी नहीं मिलता । एक बन्धन को शिथिल करने के लिए मैंने अपने आप को शराब के हाथ में दे दिया है; यह मस्तिष्क को उत्तेजित करती है किन्तु चैतन्य को शिथिल । सच है न ? तब इस शिथिल पुरुष से डरने का तुम जैसी तेजस्विनी नारी को कारण ही क्या है ? और मेरे बोलने से डरती हो क्या ? तो लो मैं चुप हूं, कुछ न बोलूंगा पर पीते रहने देना होगा । न पिऊँगा तो दिल ही फट जायगा नीलम !"

नवनीत ने एक और प्याला खाली कर दिया । तब तक हरनाम एक और प्लेट नवनीत को दे गया । नवनीत ने कहा—"बस, हरनाम अब खाना बना ले । और देख, पीने वालों में हूँ मैं तो; मेरे मुंह से निकले हुए अनुरोध को भी दुनिया शायद अस्पृश्य ही समझे । तू ही थोड़ी प्रार्थना और मनुहार कर देख; देर बहुत हो गई है, अगर नीलम देवी घर लौटी भी, तो खाएंगी क्या ?"

जिस ढंग से नवनीत ने यह बात कही, वह नीलम को लग गई । सच तो यह है कि नवनीत के शुभ्र हृदय की विराट् वेदना का एक चोर अनायास ही इस सरल कथन में नीलम को पकड़ाई दे गया । हरनाम कुछ कहे, उसके पूर्व ही वह बोली, "बनालो हरनाम, एकाध रोटी मैं भी खा लूंगी !"

हरनाम खुश होकर लौट गया । नवनीत ने नीलम की ओर देखा, कृतज्ञतापूर्ण उल्लास की एक लहर उसकी आँखों में चमक उठी । उसने कुछ कहा नहीं, केवल प्रशंसा के तौर पर उसके मुँह से निकल पड़ा—"आपकी तेजस्विता में स्थिति स्थापकता भी है !"

"तेजस्विता का मतलब क्या आप दुर्विनय से लगाते हैं, नवनीत बाबू !"

"यदि मेरे उत्तर की जरूरत हो तो वह है 'नहीं।' दुर्विनय का

सामना करना। नवनीत जानता है, वह उससे नहीं डरता।"

"तो क्या नारी की तेजस्विता ही ऐसी वस्तु है कि उससे आप जैसा कर्मठ व्यक्ति भी डरे?"

"कर्मठ कहाँ हूँ नीलम। परिस्थितियों के हथौड़ों ने सारे लोहे को छिन्न-भिन्न कर दिया है। यदि कहीं शोधा हुआ नरम लोहा होता तो शायद कोई सुन्दर सी उपयोगी वस्तु ही बन गई होती। पर जाने दो क्यों उस दैन्य में घसीटती हो!'

—कहकर उसने एक और पैग चढ़ा लिया।

नीलम ने कहा—"अच्छा, आप किन शर्तों पर शराब छोड़ सकते हैं?"

"पूछा होता किन शर्तों पर प्राण छोड़ सकता हूँ, नीलम!—नहीं, नहीं; अब होश में नहीं रहना चाहता! कैसे दर्द को कुरेद दिया है, तुमने मायाविनी!—किन शर्तों पर?—हऽहऽहऽ!"

नवनीत ने बोतल उठाई, और एक दो साँस में सब शराब गटक गया। अंगारे सी जलती हुई उसकी आँखें मानों उसके कपाल में से कढ़कर निकलने लगीं। उसके कण्ठ ने मानो एक क्षण कुछ विरोध-सा किया, किन्तु नाक सिकोड़ कर वह उसे बर्दाश्त कर गया। बोतल 'छल-छल' करती हुई निःशेष हो गई। नवनीत का लड़खड़ाता हुआ चैतन्य मदिरा की अपार्थिवता में विभोर होने लगा। नीलम केवल देखती ही रह सकी; अन्य कुछ कर सकना उसके लिए सम्भव न था।

नवनीत अपनी मद-कम्पित वाणी में स-विराम कहने लगा, "नहीं; अब नारी की कामना नहीं करूँगा सुन्दरी! अपने जीवन में कभी नहीं। छल की अनन्त सृष्टि करके तुमने मेरे समस्त सुख का नाश कर दिया है। नानाविधि रूपों से तुमने पौरुष की फसल पर अति-वृष्टि के समान नाश की काली छाया फैला दी है। अब तुम्हारी शर्तों के जाल में नहीं फसूँगा, नहीं फसूँगा!"

कुछ क्षण चुप रहकर वह फिर कहने लगा—"शर्तें? शराब छोड़ने की

शर्त ? मैं कह दूँ मेरी शर्त है नीलम,मेरी शर्त है आरती—अरे माया—शर्मा ! हः हः हः; विजय की भावना में क्षुद्र नारी हँस उठेगी, और तिलमिलाता हुआ पौरुष कमल के फूल के नीचे दब कर तड़प उठेगा। तब अपने रङ्गीन चेहरों को एक घेरे में चमकाकर मेरे केन्द्र के चारों ओर तुम नाचो; नाचो, और सब कुछ एकाकार कर दो—मैं अपना अस्तित्व नहीं चाहता ! यही शर्त है, मैं अपनी जिन्दगी जिया हूँ, मुझे अपनी मौत मरने दो—मुझे मरने के लिए छोड़ दो—मुझे मेरी खुशी से पीने दो।"

नवनीत ने खाली बोतल फिर ओठों से लगाली, पर उसमें शेष था ही क्या ? हँसकर बोला—निपट चुकी इससे अधिक सहारा नहीं दे सकी ?—तू भी तो स्त्री की जाति है न ! परन्तु अब मैं नारी के कटाक्ष का कायल नहीं हूँ, तेरी मद भरी नीली आँखें अब मुझे धोका नहीं दे सकनीं। इस छलनामय अंगूरी शीराजी का मोह मुझे नहीं बाँध सकता !"

इसके बाद ही नीलम ने देखा कि नवनीत ने उस खाली बोतल को ऊंचा उठाया, उसकी ओर लालसाकुल दृष्टि से देखकर उसने मानों कुछ प्राप्त करने की असफल चेष्टा सी की, और फिर अकस्मात् ही उसे सामने की दीवार पर दे मारा। एक भयानक आवाज के साथ उसके टुकड़े चारों ओर बिखर गए; नीलम भयाक्रान्त उठ खड़ी हुई, दरवाजे पर भागा हुआ हरनाम आ खड़ा हुआ, स्वयम् नवनीत भी खड़ा होकर मानों समझने की कोशिश कर रहा था कि उसने क्या किया है ?

उसने चारों ओर देखा, और फिर एक भयानफ अट्टाहास के साथ बोला, 'बस, इतनो ही बड़ी है दुनियाँ तेरी ?—नहीं-नहीं; हरनाम,बटोर ले इन काँच के टुकड़ों को, और एक ओर फेंक दे। यदि किसी के मार्ग में आगए बेचारे को गति ही कुण्ठित हो जाएगी ! नष्ट हो जाने के बाद जिसके जीवन को काटने की शक्ति लुप्त न हो, वह इस दुनियाँ में केवल स्त्री है, केवल स्त्री !—अरे नीलम, डर गई तुम ?—डरो मत,

मैं नशे में हूँ, पर नशा मुझ में है, मैं बाहर नहीं हूँ । बैठ जाओ । हँ हँ हँ डर गई, एक बोतल के टूट जाने पर ! मैंने तो काँच की केवल एक बोतल तोड़ी है, मगर तुम्हें मालूम नहीं कि किस तरह इन औरतों ने मेरे मस्तिष्क और हृदय को इसी कांच की तरह चकनाचूर कर दिया है ।"

नीलम ने हरनाम से कहा, "हरनाम मैं घर जाना चाहती हूँ ।"

"दिया बताऊं ?"

नवनीत ने हँसकर कहा, "साजिश कर रही हो !— नहीं, नहीं जाने दूँगा, आज स्त्रियों की मेरे जीवन में अन्तिम रात है ! जिस तरह इस बोतल के भ्रम को मैंने नष्ट कर दिया है, उसी तरह तुम्हारे विभ्रम को नष्ट नहीं कर सकूँगा क्या ? मेरी पाशविक-इच्छा की तृप्ति— परन्तु—अगर तुम्हें उठाकर इस गेलरी पर से नीचे फेंक दूं तो क्या तुम भी इस बोतल के काँच की तरह चकनाचूर हो सकती हो ?— खाली, शून्य, छलनामई शराब की नीली बोतल की तरह ? नहीं, नहीं, नशे में हूँ । हरनाम बिछौना करदे । बड़ी भयानक रात है । सो जाने दे, नहीं तो मेरा सिर ही फट जायगा । शर्ली के प्रतिहिंसा सस्ती ही खत्म हो जायगी । बिछौना करदे ।"

नवनीत फिर मोढ़े में गिर पड़ा । उसकी साँस जोर-जोर से चलने लगी, माथे पर पसीने को बूँदों का आलम छा गया, जबकि बाहर उतनी ही भयानक शीत बिखर पड़ने के लिए उद्विग्न हो रही थी ।

"अच्छा जाओ नीलम, जाओ, तुम्हें रोक रखना हो पागलपन है । परन्तु खाने के लिए कहा था न मैं ने ? अगर मेरे पास नहीं बैठ सको, तो रसोई घर में बैठ कर खा लेना ! रात जरूर ज्यादा हो गई, हरनाम पहुँचा देगा न !—मेरी क्या फिकर करती हो, मैं तो स्वस्थ हूँ । शराब पीनेवालों की तो ऐसी हालत होती ही हैं । इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है नीलम ।"

नीलम ने हरनाम को सम्बोधन करके कहा, "जाओ ! तुम बाबू के

लिए खाना ले आओ। मैं अभी तो बैठी हूँ। चिन्ता करने की बात नहीं है, नशा जरा तेज हो गया है।"

हरनाम चिन्तित भाव से लौट गया।

नीलम ने कहा, "आज आपने बहुत पीली है, जरा शांत रहने की कोशिश कीजिए न !"

"आज मैंने दुःख भी बहुत इकट्ठा किया है नीलम ! सुनोगी तो ताज्जुब करोगी ! अगर शराब न पिए होता तो कभी की खुदकशी करली होती !—कम नहीं होती, आठ-आठ आँखों की शराब, आठ आँसू—मगर खून को देखकर क्या रोने लग जाऊंगा ? पीछे नहीं हटूंगा नीलम !— शर्ली का अन्तिम-वार ही क्यों नष्ट जाने दिया जाए ?"

"यानी शर्ली की क्या बात है ऐसी ."

"जाने भी दो उसे जहन्नुम में। बच गई वह, यही क्या कम है ? और रेडियर से विवाह करे तो उसमें किसी का क्या ?—रेडियर ने उसे बचाया है, उसका उस पर दावा भी तो है।"

नीलम ने आतंकित होकर पूछा, "कहते क्या हैं, शर्ली और रेडियर जीवित हैं !"

"बिछौना नहीं कर दिया हरनाम ने ?—नशे में हूँ, पर इन नौकरों के दिमाग भी आसमान पर चढ़ने लग गए—मैं कहता हूँ, मैं इसका भी खून पीकर रहूँगा।"

"बेचारा खाना पका रहा है ! अगर जल्दी न पका पाया तो भी उसकी तो मुश्किल हो गई—"

"ठीक तो है, ठीक तो है। क्या करूँ नीलम, दृष्टि ही धुंधली पड़ गई है। प्रत्यक्ष के सिवा कुछ भी तो नहीं दीखता ! कितना दयनीय है मनुष्य कहलाने वाला वह जानवर।"

"आप शर्ली की बात कह रहे थे न ?"

"कह रहा था, फिर ? एक बार उसके प्रेम का नाटक जो किया था, प्रायश्चित तो करना ही पड़ेगा। पर क्यों ?— शैतान—"

"और डाक्टर रेडियर ?"

"वह काले मुँह का मद्रासी बन्दर ! दाँत दिखाकर नाचना, यही है न उनका पेशा ? वह अंग्रेज लड़की अब पायरिया हो कर उसे नाच नचाएगी। नारी कभी अपना दाँव छोड़ती नहीं न ! एक जाति की वेश्या, दूसरा जाति का भाँड। बस, मिल बैठे दीवाने दो।"

"क्या उनका पता लगा है ?"

"लगा क्या, वे खुद ही देंगे। बच जो गए हैं। आगे बढ़ेगा रेडियर, और पुरस्कार होगी उसकी शर्ली स्वयम्, और किट्सन का हत्यारा वह श्रीमान नवनीतलाल व्यास। ह ह ह ऽ दुःख यही है नीलम, आरती की प्रतिहिंसा चरितार्थ न हो सकेगी। तुम्हारे और माया के दावे भी—"

"माया की बात मैं नहीं जानती, किन्तु अपने ऊपर मेरे किसी दावे की कल्पना करके आप मेरा अपमान न कीजिए।"

हँसकर नवनीत बोला, "नहीं करूँगा। परन्तु वह निरी कल्पना नहीं है नीलम ! शराब पीकर आदमी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर लेता है न, वह मुझे प्राप्त हो गई है। तुम मेरी आँखों में अपनी शकल देखो, तुम्हारी चोरी तुम खुद ही पकड़ लोगी। अच्छा जाने दो, यह बताओ अगर मेरी कल्पना झूठी है तो मेरी इस अवस्था के बाद किस बूते पर तुम यहाँ पर बैठी हुई हो ?—ना ना, डरो मत, मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता—न ही इतना नशे में हूँ कि कृष्णाभिसार की बातों से दिमाग भर लूं। परन्तु—"

नीलम फिर लज्जा से रंग गई, किन्तु दृढ़ता के साथ बोली—"जन-हित की सहज-भावना को आसक्ति समझ कर तुम गलती कर रहे हो !"

गलती नहीं नीलम ! जिसने तुम्हारे शास्त्र के मंत्रों का बल पाकर मुझे वरण किया था, वही मुझे जब इनकार कर गई, तो मैंने उसके निकट कोई दावा नहीं पेश किया, फिर तुम्हारी आसक्ति को मैं अपने

लोभ का विषय बना लूंगा, यह गलत धारणा तुम्हारी कहाँ से होगई ? परन्तु जिसे तुम जन-हित की सहज-भावना कहती हो, वही आखिर कौनसा अनासक्त भाव है ? जाने दो नीलम, दर्शन की गूढ़ बातों से मेरा दिमाग और भी अधिक खराब हो जायगा । मनुष्य में सभी सहज-भावों को छोड़ने का प्रयत्न कर रहा हूं, ताकि तुम्हें इस जन-हित की सहज-भावना की आसक्ति का दण्ड भी नहीं सहना पड़े ।"

"तो क्या उन लोगों ने मामला सरकार में दे दिया ?"

"तुम क्यों डरती हो ? तुम तो हत्या में शरीक नहीं थी । मैं था, तुम्हारे दोस्त और मेरे सहायक अधरलाल थे, और था निषादराज टीकू । यदि स्त्री की कहीं छाया थी, तो इसी शर्ली की, जो आज उत्सव की सम्पूर्ण चांदनी पर छा जाना चाहती है ।"

"मगर रेडियर तो हमारे दल का सदस्य है । वह भी—"

"यही तो है नारी के अहंकार का अवसर ! इसी का नाम है ललना की छलना । देखती हो न, वह आया था शर्ली और किट्सन की हत्या करने । किट्सन की हत्या तो हुई ही, किन्तु उस मायाविनी की आँखों का जादू व्यर्थ नहीं हुआ । अनन्त पानी के गर्भ में वह प्रविष्ट हुई मृत्यु का आदेश लेकर, किन्तु उसकी आँखें बुला गईं, और कृतघ्न रेडियर उस आह्वान को अस्वीकार नहीं कर सका, वह भी मृत्यु की उस दुनियाँ में दो जीवनों का संदेश लेकर पहुँच गया । यही तो पौरुष की ट्रेजिडी है, और यही है नारी की छलना का विजय-गीत । ठीक तो है जब श्रीमान् नवनीतलाल व्यास फाँसी की रस्सी के सहारे, अधर में झूल जाएँगे, तो शर्ली की विजय-यात्रा का शंख गूँज उठेगा, आरती के अभिकोश की परि समाप्ति हो जाएगी, और माया का अभिमान भी हँस उठेगा । नहीं क्या नीलम ? तुम स्वयम् जन-हित की सहज-भावना का बहाना बना कर अपने आँसू समेट लेना । बस खेल खतम !"

"मैं पूछ रही हूँ, उनका कुछ पता आपको लगा है ?—यानी वे इस समय कहाँ हैं और क्या करना चाह रहे हैं ?"

"पता उनको न लगेगा ? अजी लगेगा क्यों नहीं ? नवनीतलाल की देह कहीं छिप सकती है क्या ? यदि यही सम्भव होता ! शैतान बन रहा हूँ, मगर फिर भी रक्षा का किनारा नहीं मिलता। एक बार और अन्तिम प्रयत्न करना पड़ेगा। या तो इस दुनिया में रेडियर नहीं, या फिर—कुतिया शर्ली ?—उसका कैसे उद्धार किया जाए ?"

हरनाम तभी खाना लेकर उपस्थित हो गया। नवनीत बोला, "आ गए तुम ? नीलम देवी तुम्हारे भोजन की तारीफ कर रही थी, पर इनके लिए नहीं लाए ?"

नीलम ने कहा, "आप तो निपट लीजिए, मैं बाद में खालूँगी।"

हँसकर नवनीत ने कहा—"चौके में बैठ कर खाओगी ! हरनाम ठीक तरह से परोसना।" और उसने खाना प्रारंभ कर दिया। नीलम सतृष्ण नेत्रों से उधर ही देखती रही।

कुछ देर बाद उसने पूछा, "खतरा है तो फिर रक्षा का कोई उपाय स्थिर नहीं किया ?"

"तुम्हीं बता दो न ? जन-हित की सहज-भावना ही से सही।"

"यदि आप यहाँ से कहीं चले जाएँ, मैं कहती हूँ, कोई ऐसी जगह, जहाँ आपको कोई पहचानता न हो ?"

हँसकर नवनीत ने कहा, फाँसी की सजा भी तो ऐसी ही जगह भेज देती है।"

नीलम ने कहा, "अच्छा, क्या शर्ली और रेडियर का प्रबन्ध नहीं हो सकता क्या ?"

"यानी ?—कोई तेजस्विता की बात कहना चाहती हो ! ओहो नीलम ! एनार्किस्टों से सम्बन्ध है क्या तुम्हारा ? मगर उससे क्या होगा ? कोर्ट के सामने तो अभी वे प्रगट नहीं हुए, किन्तु अंग्रेजों की सभा में अपने अवतार की सम्पूर्ण कथा उन्होंने प्रगट कर दी है। अगस्त-आन्दोलन के द्वारा कुचली हुई अंग्रेज सरकार की काली नागिन क्या अब उनके अवतार की चिन्ता करेगी ?—और फिर क्या स्वर्ग में

बैठकर शर्ली और रेडियर के विवाह के मंगल वाद्यों को सुनूँ ? ना, ना,—शैतान सवार है मुझ पर। मैं मरूँगा, लेकिन उल्का के समान प्रकाश के महा भयानक पिण्ड को तोड़ता हुआ।"

"मगर—"

"मगर क्या है ? शैतान बनने के बाद जमा खर्च के लिए बहुत कुछ शेष नहीं रह जाता। पूँजी हो या नहीं—केवल एक तरफ हिसाब लिखते चले जाने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। किसका किसी समय क्या जमा हुआ है, यह देखने का मौका नहीं, आग्रह भी नहीं। केवल एक भाव से समस्त सत्वों का स्वामी होकर निर्द्वन्द्व भाव से व्यय के खाते में कलम मारते चलना क्या बुरा है ?" वह फिर निर्द्वन्द्व भाव से थाली का उपस्कर समाप्त करने में जुट गया।

नीलम ने एक क्षण का अवकाश पाकर भविष्य की ओर दृष्टि डाली, महा भयानक मेघों की धूमच्छटा क्षितिज पर पुंजीभूत हो रही थी। वह आशंकित और आतंकित हो उठी। यह अर्द्ध विक्षिप्त नवनीत, इस जीर्णतरी को, जिसमें अधरलाल, आरती, टीकू, सभी बैठे हुए हैं, किन चट्टानों से टकराकर तोड़-फोड़ देगा, कौन कह सकता है !

नवनीतलाल ने फिर कहना शुरू किया, "नारी की छलना से मैं बहुत वित्रस्त हो चुका हूँ। वह सहज मानव-हित का जाल फेंक कर कबूतर फँसा सकती है, और सतीत्व का बहाना बना कर उसकी गर्दन तोड़ सकती है। मैं स्त्री की प्रच्छन्नता का परदा फाड़ कर देखूँगा कि उसका मिश्र मनोविज्ञान कहां तक उसका साथ देता है। अधरलाल की छाया में जो आरती मेरा तिरस्कार कर सकती है, वह—नहीं, नहीं ! हरनाम, अबे हरनाम के बच्चे ! सुनता नहीं ! पानी बिना क्या तेरा खून पीना पड़ेगा ?"

नीलम ने उठ कर शीघ्र ही पानी का गिलास भर दिया; पानी पीकर वह फिर खाने लग गया, किन्तु दूसरे क्षण ही बोला—"खाने में मिरची डालने का काम स्त्रियाँ ही खूब जानती हैं, मगर अब तो

हरनाम भी सीख गया है। शराब पीता हूँ, मगर ससुरे को पता नहीं कि—"

नीलम ने टोक कर कहा, "आप आरती की बात कर रहे थे।"

"जरूर कर रहा था। डरता हूँ क्या उससे? मेरे अपमान की मात्रा को उसने कितना तीव्र कर दिया है, जानती हो?—यह शराब; यह पतन, नवनीत के भीतर का यह राक्षस—सुनोगी इसकी कथा?—तुम लोग खिलवाड़ करती हो पुरुष के साथ। अपनी इच्छाओं की सीमा में पुरुष-कल्प को तुम गेंद की तरह लुढ़काती हो, ठोकरों के बल; और जब वह सीमा-रेखा से बाहर गिर जाता है, तो मारे हँसी के तुम लोगों का पेट फूले नहीं समाता!"

"मैं आपका मन्तव्य नहीं जानती। किन्तु क्या आप यह भी भूल जाएँगे कि उसने आपको प्राण दान दिया था?"

"परन्तु उसने मेरे आत्मदान को ठुकरा दिया, क्या अब भी उसका मुझ पर कुछ शेष है? तुम भूल गईं, किन्तु मैं नशे में भी स्मरण किए हुए हूँ—तुमने मुझे आत्मसमर्पण के लिए कहा था, सुनोगी इस आत्म-समर्पण की प्रवंचना की कथा?—क्या करोगी सुनकर। पर यह जाने रक्खो कि मनुष्य की कमजोरियों पर जिस तरह स्त्री हावी हो जाती है, उसी तरह उन पर विश्व की अन्यवृत्तियाँ भी उसी सफलता और जोश के साथ हावी हो सकती हैं। तब मुझ पर आरती हावी थी, अब मुझ पर हावी है राक्षस, शैतान। और वह अब अपने प्राचीन प्रतिद्वन्दी से लोहा लेगा।"

"पर खाना तो खाइए!"

"खाना?—भूल गया, अच्छा खाता हूँ!"

इस दुर्वृत्त-युवक के निराश-हृदय में किस ध्वन्स का चक्र चंचल हो रहा है, यह नीलम पूरी तरह नहीं समझ सकी। आरती से उसका सम्बन्ध है, किन्तु आरती का अहित-साधन वह करेगा किस तरह? अभी-अभी वह शर्ली और रेडियर से प्रतिशोध लेने की बात कह चुका

है। क्या यह सब शराब के नशे ही की माया है?—या इसमें कुछ सत्य भी है?

कहते हैं, शराब पीकर मनुष्य अपनेपन के बंधनों से भी स्वतंत्र हो जाता है; तब गोपनीयता के समस्त बंधन शिथिल हो जाते हैं, और हृदय के गंभीर रहस्यों का भी ऐसे अवसरों पर पर्दाफाश हो जाता है। अगर यही बात सच हो?

और एक ही क्षण में नीलम के चैतन्य लोक में बिजली-सी गिरी। वह जानती है कि किट्सन का प्रकृत हत्यारा नवनीत नहीं, किन्तु अधरलाल है। यदि अधरलालको, किट्सन के हत्यारे के रूप में सरकार के सुपुर्द कर दियाजाए तो? आरती का प्रतिशोध और नवनीत की रक्षा, सभी सम्भव होजाएँगे। स्वयम् अधरलाल इसका विरोध नहीं कर सकेंगे। परन्तु क्या नवनीत इतना नीच हो सकता है? कह तो रहा है कि अब उस पर शैतान सवार है! नीलम उस भयानक शीत में भी प्रस्वेद प्राप्त करने लगी। उसने देखा कि नवनीत लाल उसी निरपेक्ष भाव से थाली का उपस्कर साफ करने में लगा हुआ है, केवल एकाध बार उसके मुँह पर हलकी-सी मुस्कराहट छा जाती है। इतना सुन्दर और इतना भयानक!

गला साफ करके नीलम बोली, "परन्तु सच पूछा जाए तो, आप को डरने का तो कोई कारण नहीं है। सचमुच किट्सन की हत्या आप ने तो नहीं की।"

नवनीत का निवाला हाथ ही में रह गया। बोला, "तुम जानती हो? गवाही दोगी कोर्ट में कि मैंने यह हत्या नहीं की?"

"मेरी बात मानेगा कौन?—मैं तो घटनास्थल पर उपस्थित थी नहीं।"

"नहीं थी, सचमुच नहीं थी। परन्तु जानती तो हो कि मैंने हत्या नहीं की। नहीं की, इसलिये मुझे डरने का कोई कारण नहीं है, किन्तु शर्ली कहेगी, रेडियर कहेगा, सबूत देगा कि मैंने हत्या करने का प्रयत्न तो किया है। और अगस्त-आन्दोलन से भड़की हुई अंग्रेज सरकार!"

"क्या कीजिएगा फिर ?"

"एक निशाने में दो शिकार—और फिर होगा रेडियर या शली और मैं !"

"एक निशाने में दो शिकार, यानी ?"

जानती हो तुम कि प्रकृत हत्यारा कौन है ?—नहीं जानती ?—मैं भी नहीं जानता। किन्तु सरकार तो न्याय चाहेगी, सच्चा हत्यारा पकड़ा जाएगा।"

नीलम की साँस जोर-जोर से चलने लगी। उसका वक्ष अशांत महासागर की क्षुब्ध लहरों-सा उत्सर्जित होने लगा। वह उठकर खड़ी हो गई।

नवनीत ने देखकर कहा, "यह तुम्हारी आँखों में आग क्यों है ? जलाना चाहती हो क्या ? यही उम्मीद है तुम से नीलम ! क्या करूँ, इस पानी से गला तर नहीं होता, और अब पास में कुछ बचा नहीं है। कुछ पी पाता तो थोड़ी ताकत इकट्ठी कर सकता। परन्तु तुम यह निष्फल-क्रोध मुझ पर क्यों बरसा रही हो ? आरती को बचाना चाहती हो, और इस नवनीत को डुबोना चाहती हो ?—औरत के प्रेम का यही नमूना है न !—इसी बूते पर मुझे अपने पाश में बाँधने चली थी ? मैं जानता हूँ कि स्त्री ऐसी ही चिरकृतघ्न होती है। उसके विष-दन्त को तोड़ने का सूत्रपात मैंने पहले ही कर दिया है। जाओ, भागी हुई सीधी दौड़कर अधरलाल के घर जाना, और कहना उससे कि वह प्रातःकाल होने के पूर्व ही कहीं भाग जाए ! हा ऽ हा ऽ हा ऽ हा ऽ ! मगर देखोगी कि नवनीत अब वह कच्चा शैतान नहीं है। जाओ, अगर जाना चाहो; देखना कि पुलिस अपना काम कर चुकी है।"

आखिरी वाक्य ने नीलम के जलते हुए तारों पर मानों राख फेर दी। उसने अपने आपको सम्भाला, और एक कदम आगे बढ़कर बोली—

"कृतघ्न ! तुम जैसे शैतान से प्रेम करने को विडम्बना मूर्त्त क

हो सकी, यह कम सौभाग्य की बात नहीं है।"—और वह दरवाजे की ओर बढ़ गई।

"चल दी? खाना नहीं खाओगी?—अंधेरी रात में—"

"तुम जैसे दुष्टों से यह अन्धेरी रात बुरी नहीं है।"

"निश्चय नहीं है। किन्तु नवनीत की कर्मठता का दुर्बोध्य-स्वरूप इसी रात्रि की कालिमा में सघन होगा सुन्दरी! जाओ, परन्तु याद रखना कि नवनीत के उत्कर्ष का दायित्व उसके पौरुष को है, किन्तु उस के पतन की लीक तुमने खींची है, तुमने!"

नीलम सीढ़ी के नीचे उतरी। उसकी आँखों के कोरों में निष्फल क्रोध, भर्त्सना और निराशा का जल भर गया। जाते हुए उसने एक बार और—अन्तिम बार—इस शैतान को देखा—देखा कि उसने झुँझलाकर थाली को नीचे पटक दिया, और वह झूँठे हाथों ही सिर के बाल नोचने लगा, किन्तु नीलम नीचे उतर गई।

अपनी गीली आँखों को उसने पोंछा। मध्य रात्रि बीत रही थी, महाश्मशान की वीभत्स-शांति में शीतल पवन का चाबुक बदन पर तीर को तरह लग रहा था; किन्तु नीलम के सम्पूर्ण शरीर में अग्नि की ज्वालाएं उठ रही थीं। वह उसी महान्धकार-मय गम्भीर रात्रि में बिना किसी साथी के एकाएक ही शीघ्र गति से जाने लगी। अन्धकार में—विपत्ति में—साथी की न अपेक्षा ही की जानी चाहिये, और न सम्भावना ही।

और ऊपर नवनीत, विक्षिप्त नवनीत, अपने खाने की थाली को फैंककर वहीं पड़ा रहा; समाज की आवर्जना की भांति। हरनाम तक की आँखों में उस रात को उसके लिए आँसू नहीं निकले, केवल निष्फल क्रोध की चिनगारियाँ ही निकलती रहीं, और प्रभु भक्ति के नशे में उसे अनुक्षण जलाती रहीं।

× × × ×

अस्तोन्मुख सूर्य की ओर दृष्टिपात किए हुए माया किस भविष्य का अनुसन्धान कर रही थी, यह कहना कठिन है। अत्यधिक श्रम के

कारण उसका प्रकृत सौंदर्य कुछ क्षीण हो गया है। आरक्त मुखमण्डल पर चिन्ता की श्यामल-आभा सहज ही देखी जा सकती थी, किन्तु फिर भी सहज उल्लास का अभाव उसके चेहरे पर न था। हाँ, किसी सूक्ष्म-दर्शक आँख से उनके सदा-बहार चेहरे के एक बहुत दूर के कोने पर किसी अकल्प्य चिन्ता पर प्रकाश भी पड़ जाता था, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट हुए बिना न रहता कि माया जी जान से उस चिन्ता की अयुक्तिकता को दबा देना चाहती है।

जिसमें वह बैठी हुई है, वह उसके मकान के पीछे वाले हिस्से में बना हुआ एक छोटा-सा आफिस है। यह भाग एक अंधेरी गली में खुलता है। मकान का राजमार्ग वैसे सामने की ओर है, जो स्वयम् माया जैसा भव्य है।

माया सहज उत्सुकता से बाहर की ओर आँखें बिछाए किसी की राह देखती-सी प्रतीत होती थी। वह किसी बाहर फैली हुई लम्बी, शून्य अन्धकार मई गली को ओर देखती, और कभी उद्विग्न-मन से सामने टेबल पर पड़ी हुई घड़ी की ओर, एक जरा से शब्द से भी चौंक कर वह द्वार की ओर देख लेती थी।

कुछ ही देर बाद, एक तीस वर्ष का युवक दरवाजे के सम्मुख उपस्थित हुआ। युवक साधारणतया सुन्दर कहा जा सकता है। खादी ही के वस्त्रों में आच्छद, आँखों पर ऐनक लगाए, छिपी आँखों से मानों माया को पीते हुए उसने नमस्ते की।

किंचित मुस्कराते हुए माया ने उसकी अभ्यर्थना की, और कहा, सुरेश, बहुत देर होगई। नहीं क्या ?"

सुरेश ने घड़ी की ओर देखकर कहा—"आफिस में जरा अधिक बैठना पड़ा; पर कहाँ !—अभी भी देखिए, मेरी घड़ी में दस मिनिट शेष हैं ! मालूम देता है आपकी घड़ी कुछ तेज है।"

मुस्कराकर माया बोली, "पुरुषों की घड़ियां सदैव सुस्त चला करती हैं ! किन्तु अराजकदल के सदस्यों का मान क्या साधारण पुरुषों

के मापदण्ड से तोला जायगा ?—खैर, चलिए ऊपर, सदस्यगण राह देख रहे हैं। तबतक दो चार और आजाएँ, तो उन्हें लेकर मैं भी आती हूँ।"

सुरेश मुस्कराकर ऊपर जाने के लिए मुड़ गया।

उसके बाद ही एक दूसरे सज्जन प्रविष्ट हुए। उमर ४० और ४५ के बीच, मुँह पर छंटी हुई छोटी डाढ़ी, मूँछों के बाल सिरे पर उठे हुए, नंगा सिर जिस पर आधे सफेद बालों की पट्टियाँ पीछे की ओर पड़ी हुई। काले नेत्र जो कपाल में भीतर की ओर गड़ गए मालूम देते थे, मानों उस गहराई से किसी के हृदय की जासूसी कर रहे हों। वेश भूषा सामान्य; एक कमीज ऊपर वेस्टकोट, और चुस्त पाजामा—डासन के बूट, नाम निकल्सन वल्द लालाराम !

माया ने उसी तरह मुस्कराते हुए उसकी भी अभ्यर्थना की, और उसे भी प्रेषित किया। उसके बाद दो सज्जन और प्रविष्ट हुए। जब स्वयं माया उठने को थी कि तभी एकाएक दूसरे कमरे से आकर दासी ने कहा —"बीबी जी मजिस्टर साहब आए हैं, जल्दी मिलने के लिए कहते हैं।"

"मजिस्टर साहब ?"

"जो सामने वाले आफिस में बिठा आई हूँ। कहा, जरूरी काम है।"

मजिस्टर साहब यानी मिस्टर त्रिलोक नारायण—इस समय, जब कि अराजक दल की एक अत्यन्त महत्व पूर्ण बैठक का समय हो गया है।

माया ने पूछा—"क्या तू ने कह दिया कि मैं मौजूद हूं?"

"इसकी तो जरूरत ही नहीं पड़ी बीबी जी ! आते ही उन्होंने आपसे मिलने की बात कही, और मैंने कहा, 'अभी खबर करती हूं।'"

अच्छा किया ! अच्छा जरा लछमन को इधर भेज दे, और चाय के लिए पानी गरम रखने को कह दे। फिर तेरे मजिस्टर साहब से कह, कि

अभी आती हूँ। एक बार ऊपर तो हो आऊं!"

दासी चली गई। कुछ देर बाद ही लछमन चपरासी,—एक बीस बाईस बरस का सुन्दर-सा लड़का माया के सम्मुख उपस्थित हो गया;. आते ही उसने फर्शी सलाम की।

माया ने कहा, "लछमन, मैं अभी तो ऊपर जा रही हूँ; उसके बाद ही एक सज्जन से बैठक में मिलने चली आऊँगी। फाटक पर सावधानी से पहरा देगा न? सदस्यों के अलावा कोई भी भीतर नहीं जाने पाए। समझा न?"

लछमन ने सिर हिलाकर सम्मति ज़ाहिर की।

माया ने कहा, आगे बढ़ते हुए—"केवल आध घण्टा और राह देखना, फिर ताला लगा कर चाबी दे जाना।"

लछमन ने फिर सिर हिलाया, सिर हिलाने के सिवा वह और कुछ कर ही नहीं सकता था, अराजक दल का यह खूब सूरत युवक चपरासी गूँगा था। ऊपर सभागृह में पहुँच कर माया ने सदस्यों से कुछ देर के लिए क्षमा माँगी, उसने विश्वास दिलाया कि त्रिलोक नारायण से बातचीत करके वह कुछ ऐसी सूचनाएं जान सकेगी, जिनका आज के कार्यक्रम से सम्बन्ध हो।

इधर जबकि त्रिलोक नारायण एक-एक मिनट के लिए अपनी रिस्ट वाच को बड़ी उत्कण्ठा से देख रहे थे, तभी आगे-आगे माया, और पीछे-पीछे चाय लिए हुए दासी ने प्रवेश किया।

मुस्कराते हुए माया ने कहा, "माफ कीजियेगा। दासी ने कहा कि सीधे कोर्ट से चले आ रहे हैं, तो सोचा चाय लिए ही चलूँ! ठीक न?"

बहुत-बहुत धन्यवाद माया, इतनी दूर की बात सोचने के कारण ही महिलाओं का महत्व है। पुरुषों के लिए यदि नारी एक अपूर्व आकर्षण हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?"

दासी ने ट्रे एक टेबल पर रखदी।

चाय बनाते हुए माया ने कहा, "कहीं यह तो नहीं सोच रहे हैं कि इस आकर्षण को सम्पन्न करने के लिए ही इस सेवा का ढोंग किया जाता है ? बात बहुत कुछ सही हो सकती है, किन्तु यदि पुरुष भी स्त्री की खुशामद में अपनी मर्यादा का थोड़ा ध्यान रक्खे, तो यह बटेर बाजी आखिर इतनी हास्यास्पद तो न हो ! कहिए, आज इतनी जल्दी कैसे कष्ट किया ?"—और भूमिका को आपही संक्षिप्त करते हुए उसने प्याला आगे बढ़ा दिया।

माया के उत्तर में बढ़ी हुई शर्म को मिटाने के लिए त्रिलोक ने गरम- गरम प्याला ही मुंह को लगा लिया। ओठ के जल जाने से जब उन्हें प्याला पुनः टेबल पर रख देना पड़ा, तो माया केवल मुस्करा कर ही रह गई। त्रिलोक ने भी इस मुस्कराहट को लक्ष्य कर लिया, बोले—

"बहुत गरम है।"

"चाय तो गरम ही होती है त्रिलोक बाबू, सदैव ही कुछ ठहर कर पीने का रिवाज है। आप स्वयं भी दूध के जले— पर इतनी जल्दी के तो लिए मैंने भी नहीं कहा था।"

"बात यह है, कि यदि पुरुष को कभी किसी नारी के सामने अपनेपन की रक्षा का प्रयत्न करना पड़ जाए, तो बड़ी कठिनाई हो जाती है !"

"क्यों ? स्त्री क्या हौवा है ?"

"शायद; पौरुष के लिए तो है ही ! 'फ्रेल्टी, दाइ नेम इज वूमन !' (दुर्बलते, तेरा नाम ही स्त्री है !) जानती हो न— शेक्सपीयर ने कहा है—"

"तुलसीदास ने भी कहा है, और ठीक भी—'ढोल, गँवार शूद्र, पशु, नारी; ये सब ताड़न के अधिकारी।—भारतीय स्त्रियों का पाप एक बेचारे पाश्चात्य कलाकार के सिर क्यों थोप रहे हैं ?"

"भारतीय स्त्रियों का पाप ?—यह तो स्त्री मात्र की बात है !

परन्तु तुलसीदास और शेक्सपीयर में तो बहुत अन्तर है। एक के सूत्र में तो नारी-जीवन से ही इनकार है, किन्तु दूसरा गरीब तो मेरी भाँति नारीत्व की कठोर कचोट से तिलमिलाकर अपनी दुर्बलता ही स्वीकार कर रहा है। इसमें तो नारी के महत्व की स्वीकृति है माया !"

माया ने हँसकर कहा, "धन्यवाद' पर अब चाय के महत्व-स्वीकार का समय भी हो गया है।—ठण्डी हो गई तो—यदि जीभ और ओठ के जलने का भय न हो, तो मेरा अनुमान है कि चाय जितनी ही गरम हो, उतनी ही प्रेय है।"

चाय का प्याला उठाते हुए त्रिलोक ने कहा— अपने ही नारीत्व की फिल्सफी तो नहीं बयान कर रही हो ?"

"तो तुलसीदास के शब्दों ही में अपना मत दे दीजिए न ? कहाँ चाय की गरमी, और कहाँ नारी का नारीत्व ! एक अपनी गरमी के निःशेष होने के पूर्व ही उदर में स्थान पा लेती हैं, किन्तु दूसरी अपनी गरमी में भी ओठों से आगे का स्वराज्य नहीं पाती ! और क्या आप भी स्वीकार न करेंगे कि जलने की अवस्था शाश्वत नहीं होती ?—शाश्वत अवस्था होती है, मानों धूप में पड़े रह कर सूखने की, ताकि जलने के योग्य हुआ जा सके। या फिर यदि जल गई, तो शाश्वत अवस्था होती है, राख बनकर हवा से उड़ जाने की।
नारी जीवन का यह विकल्प भी चिरकाल से पुरुष के निकट ऐसे ही कल्लोल की वस्तु बनता चला आ रहा है ! पर माफ करना, आपके आने का कारण तो सुन ही नहीं पा रही हूँ !"

चाय पीते-पीते ही त्रिलोक ने कहा, "कहने यह आया था कि मेरी कोर्ट में आज एक केस का चालान हुआ है, जिसमें नवनीत प्रमुख व्यक्ति है।" माया ने अपने आपको रोक कर कहा, "अच्छा ! आपकी कोर्ट में तो ऐसे मुकद्दमें कसरत से आते होंगे ! क्या मुकद्दमा है ? कॉग्नीझेवल (पुलिस द्वारा हस्ताक्षेप के योग्य) है क्या ?"

"कत्ल का मुकद्दमा है, और नवनीत है प्रतिवादी, हत्या का दोषी।

अखबारों में पढ़ा तो होगा न कि हमारे यहाँ के जिला कलक्टर सर ज्यॉफ्री के पुत्र और उनकी नवविवाहिता पत्नी कहीं हनीमून के लिये गये थे, और वहीं वे एक दुर्घटना के शिकार हो गये।"

"सुना तो था कुछ ऐसा ही एक क़िस्सा! फिर, उससे क्या?"

"हनीमून के लिए वे गये थे मानपुर; और वहीं पर नवनीतलाल पोस्टमास्टर ने उनकी नाव तालाब में डुबो दी!"

"नवनीतलाल ने?"

"हाँ, हाँ—नवनीतलाल ने—तुम्हारे, क्या यह भी तुम भूल गई कि वे हजरत मानपुर ही हैं?"

"सो तो मैं नहीं भूली त्रिलोक बाबू, किन्तु सर ज्यॉफ्री के पुत्र से उनका क्या सम्बन्ध था, यह मैं नहीं समझी।"

"अच्छा, यह तो तुम जानती होगी कि उस लड़के की शादी किस से हुई थी?—नहीं जानती! वाह, अरे शर्ली को नहीं जानती, वही पोस्टमास्टर जनरल रागर्स की लड़की—जिसने नवनीत के ऊपर ही एक बार जाल फैलाना चाहा था। तुम्हीं ने तो कही थी वह बात?"

"हाँ—और वह कपट का जाल वह नहीं फैला सकी थी!" अभिमान के स्वर में माया ने उत्तर दिया।

"ठीक कहती हो माया, अगर वह तब जाल फैला पाती, तो बहुतेरों के जीवन की विडम्बना का जाल भविष्य में शायद न फैलता।"

"आपका मतलब नहीं समझी त्रिलोक बाबू!"

"अपना ही उदाहरण ले लो न!"

"सो तो ठीक नहीं होगा! एक पत्नी अपने पति को दूसरी स्त्री के जाल में फँसा देखकर अपने जीवन से विडम्बना का परिहार समझेगी, ऐसा अल्ट्रा माडर्न व्यू (अति आधुनिक दृष्टिकोण) अभी शताब्दियों तक नारी को प्राप्त न होगा--कभी होगा भी, इसमें भी सन्देह है। तब वह शायद नारी ही न रहे!"

"तुम तो कहाँ की बात कहाँ ले गईं?—मेरा मतलब तो उसके

हृदय की कठिनता से था। यदि शर्ली का जाल चल सकने जैसी अवस्था होती, तो न तो तुम्हें ही इस तरह प्रत्याख्यान का जीवन बिताना पड़ता, और न प्रतिशोध की भावना लेकर शर्ली ही हनीमून के लिये नवनीतलाल के निकट मानपुर जाने का बहाना तलाश करती ! तब क्या होता, यह कहने की जरूरत ही क्या है ?"

"सचमुच नहीं है। साधारण-मनुष्य तो अवश्य ही सभी प्रचण्ड कार्यों में स्त्री की कारण भूमि को मानकर संतोष कर लेते हैं—रामायण और महाभारत तक को सीता और द्रोपदी के प्रणयाभिमान का उपलक्ष्य मात्र कहा जाना, कितनी सामान्य बात है ! परन्तु आज ही मालूम हुआ कि जिनके लिये मनुष्य-जीवन की इस सापेक्षित-दुर्बलता से ऊपर उठने का महत्व है, वे न्यायाधीश भी, न्यायाधिकरण के निरपेक्ष आसन पर बैठकर भी, इसी प्रकार के चश्मे से सारी घटनावली को देखा करते हैं। न्यायाधीश महाराज ! मैं तो समझती थी कि नारी की माया का बहु-विश्रुत जादू कम से कम आपकी आँखों को तो मुग्ध नहीं कर सका—कम से कम आपका सिर तो उसके चढ़कर बोलने का आसन नहीं !"

"नहीं है, तुम ठीक कहती हो; परन्तु मुझे भी तो साधारण दुनिया के लिये ही सोचना पड़ता है !"

"तो भी चश्मा उतार कर निरपेक्ष दृष्टि से सोचना आवश्यक है त्रिलोक बाबू ! अखबारों की गवाह आपने दी है, तब तो इस गवाही को भी आप जानते होंगे कि अगस्त आंदोलन में जिला कलक्टर के पुत्र स्वयम् एक हत्यारे का पार्ट अदा कर चुके हैं ! अपने हृदय के घावों को पूरने की फिराक में स्त्री ही नहीं रहती, पुरुष भी रहता है महाशय, और प्रतिशोध की उसी कर्मठ भावना में सच्चे पौरुष का अभिषेक होता है, घर में चूड़ियाँ पहन कर बैठ रहने वालों का नहीं।"

हँसकर त्रिलोक ने कहा, "कोर्ट में [वकालत कर सकोगी ? सच कहता हूँ नवनीत की इससे बढ़िया पैरवी नहीं हो सकेगी !"

"पैरवी, या पुरुषों की वकालत की पैरेडी!—और यदि मेरी ही वकालत से वे मुक्त हो गए तो फिर यह आपका नारी की कारण भूमि का रामबाण नुस्खा व्यर्थ न हो जायेगा?"

"उसकी गुंजायश नहीं है माया देवी, नवनीतलाल ने वह मार्ग स्वयम् बन्द कर दिया है।"

"स्वयम् बन्द कर दिया, कैसे?"

"नवनीतलाल सरकारी गवाह जो बन गये हैं!"

"सरकारी गवाह बनकर कातिल भी छूट सकता है क्या?"

"नहीं; सरकार इतने बड़े अन्याय को तो प्रश्रय कैसे दे सकती है? —स्वयम् तो बात यह है कि किट्सन का हत्यारा नवनीत नहीं, बल्कि अधरलाल नामक उनका एक पोस्टमेन है!"

"अधरलाल?"

"हाँ; अभी तक तो उसके बारे में कुछ विशेष नहीं मालूम हुआ है, यद्यपि गिरफ्तार उसे कर लिया गया है। किन्तु यदि खोज-थाम जारी रही तो यह आदमी कोई बड़ा राजनैतिक अपराधी निकलेगा।"

"अच्छा, किन्तु यह सब बात प्रगट कैसे हुई? सुना तो यही था कि मि० किट्सन और उनकी पत्नी जलमग्न हो गए!"

"सुनने को तो कुछ ऐसा ही होता है! किट्सन की हत्या तो कर ही दी गई थी, शायद शर्ली का शिकार होते होते रह गया। वह एक और अपने पुराने प्रेमी डाक्टर रेडियर के साथ पानी में कूद पड़ी। हत्यारों ने तो समझा कि किस्सा सस्ते में खत्म हो गया, किन्तु इतनी सरलता से क्या धर्म की पराजय हो सकती है? सुना है वे पुनर्जन्म ग्रहण कर 'अभ्युत्थानमधर्मस्य' अपना अवतार घोषित करने ही वाले हैं!"

"तब तो मेरी ही बात सच रही त्रिलोक बाबू! नवनीतलाल को स्त्रीत्व से पराजित होने वाला समझना उतना सहज नहीं है।"

"जहाँ तक नवनीतलाल की बात है। वरञ्च, जलगर्भ में से यदि

शर्ली और रेडियर का अवतार आसक्ति की किसी नई कथा को लेकर प्रगट न होता, तो सम्भव है नारी की मर्यादा ही इस जगत में स्थापित हो जाती !"

माया एक क्षण चुप रही, उसने परिस्थिति को पूर्ण रूप से समझने का प्रयत्न किया, फिर बोली, "यदि मैं ही वकालत करके वह मर्यादा स्थापित न कर सकूँ, तो शर्ली ही को वह सेहरा प्राप्त होने दीजिए न ?"

"उसने प्रयत्न प्रारम्भ भी कर दिया है। बयान में उसने कहा है कि नवनीत लाल उस पर मोहित थे, और उसे प्राप्त करने के लिये ही नवनीत ने किट्सन की हत्या की। वह शायद नहीं जानती कि किट्सन का वास्तविक हत्यारा कौन है ! किन्तु आधी से अधिक दुनिया शर्ली को जैसा समझती है, उससे उसके कथन पर कौन विश्वास करेगा ?"

"और न्यायाधिकरण ?"

"यदि अधरलाल न होता तो विश्वास कर भी लेता। किन्तु इतने मात्र से भी लोक में तो नारीत्व की मर्यादा स्थापित न होती !"

"बला से ! यदि फाँसी का दण्ड ही मिलता, तो जनता के नेत्र तो छवि से भर ही जाते ! पर यह तो बताइए यह अधरलाल का उपसर्ग कहाँ से आ जुटा ?---सचमुच ही क्या उसने हत्या की है ? या पुराना पोलिटिकल सस्पेक्ट होने के नाते शायद अगस्त आंदोलन से घबराई हुई सरकार ने उनके ऊपर कृपादृष्टि की हो !—तब तो नवनीत लाल भी शायद पोस्टमास्टर जनरल बन जाएँ ! हैं ?"

"यह तो नवनीतलाल खुद ही कह सकेंगे, बल्कि तुम्हें भी मेरा अभिनन्दन ! रहा अधरलाल, सो यह भार स्वयम् नवनीत के ऊपर है कि वह अधरलाल को हत्यारा सिद्ध करें !—वरना शर्ली के कथन के बल पर तो नवनीतलाल और एक टीकू धीवर की गिरफ्तारी बस थी ! पर यह बताओ माया, नवनीत की मुक्ति से तो तुम्हें आनन्द ही होना चाहिये !"

"होना तो चाहिये, किन्तु अभी उनकी मुक्ति कहाँ हुई त्रिलोक बाबू ?"

"क्यों ?—मुझे विश्वास है कि नवनीतलाल इसे साबित कर देंगे !"

माया ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह निर्लेप-भाव से चाय पीने में लग गई।

त्रिलोक ने कहा, "पश्चात् सरकार उन्हें अवश्य कोई अच्छी-सी तरक्की देगी, चाहे पोस्टमास्टर जनरल न भी बनाएँ !—शायद उसी सम्मान को प्राप्त करके वे घर की लक्ष्मी को निमंत्रित करें।"

माया ने हंसकर कहा, "निमन्त्रण तो आ गया है, नौकर हरनाम ने लिखवाकर भेजा है। कहा है कि इस आपत्ति के समय तो कम से कम एक बार जाकर उनकी अवस्था देख आऊँ !"

"मेरी राय है, तुम जरूर जाओ !"

"परन्तु, आप ही तो कह रहे हैं कि अवस्था आपत्ति की नहीं, सम्पत्ति की है, तब मैं जाकर करूँगी ही क्या ? आपने शायद न सोचा हो, पर शायद सरकार ने यह भी सोचा हो कि किट्सन के रिक्त स्थान पर ही नवनीत बाबू को नियुक्त कर दिया जाये, ताकि अभियोगिनी शर्ली को भी तो अपना हर्जाना प्राप्त हो जाये !" कहकर ही वह हँस भी दी, त्रिलोक नारायण विस्मय-हत रह गया !

"तुम्हारी बातों से तुम्हारे हृदय की गम्भीरता नहीं नापी जासकती पर आश्चर्य होता है कि तुम इतनी दूर तक की सोच सकती हो !"

"स्त्री हूँ न !—और नाम भी है माया ! पर जाने दीजिये, एक बात बताइये, इस मुकद्दमे की अगली पेशी कब है ? गिरफ्तार तो इस मामले में अभी दो ही हुए हैं न ?"

"हूँ ! टीकू नामक एक मछुआ, और दूसरे अधरलाल ! और अगली पेशी है आज से ठीक एक माह आठ दिन बाद !"

"धन्यवाद !" फिर कुछ मिनिट के बाद घड़ी की ओर देखकर

बोली, "यदि देर न हो तो यहीं न हाथ-मुँह धो लीजिए! प्रबन्ध करवादूँ ?"

"ना ना; देर हो गई। घर ही जाऊँगा !" और त्रिलोक नारायण उठ खड़े हुए!

हाथ जोड़कर माया ने कहा, "आप ही की कोर्ट में है, तब तो मुकद्दमे की सभी कार्यवाही मालूम हो सकेगी न ?"

"जरूर, जरूर—अच्छा, नमस्ते !"

त्रिलोक नारायण नीचे उतर गये। दूर उनकी मोटर का भोंपू भी बज उठा। चिन्तामलिन माया अपनी सभा की ओर मुड़ी।

जिस कमरे में माया ने प्रवेश किया वह पूर्ण सन्ध्या होने के पूर्व ही अर्द्धरात्रि का आवरण ओढ़ लेता है। वस्तुतः वह भूगर्भ में छिपा हुआ है, और इस समय विद्युतप्रकाश से प्रोज्वल है। यही कमरा अराजक दल का गुप्त मन्त्रणागार है।

सभा में लगभग १०—१२ व्यक्ति हैं, जिन में दो महिलाएँ भी बैठी हुई हैं। व्यक्ति सभी उमर के, सभी श्रेणियों के और सभी प्रकार के हैं। कुछ के चेहरों से भद्रता, किसी के चेहरों से क्रोध, और किसी के चेहरे पर भयानकता का पुट लगा हुआ है। दोनों महिलाएँ बड़ी चंचल और व्यग्र दिखाई दे रही हैं। बाएँ हाथ की ओर बैठा हुआ एक वृद्ध, उमर ६५—७० वर्ष, बड़ी गम्भीरता से घड़ी की ओर देखता जा रहा है। सभी व्यक्ति आपस में फुसफुसाहट कर रहे हैं।

माया के भीतर प्रवेश करते ही शान्ति हो गई, सभी ने उठकर उस की अभ्यर्थना की, अभ्यर्थना का उचित उत्तर देकर वह अपने रिक्त स्थान पर बैठ गई। सामने टेबल पर कागजों का ढेर लगा था, कुछ और आवश्यक पत्र उसके हाथ के बैग में लटक रहे थे।

कुर्सी पर बैठते ही माया बोली, "आप लोग विलम्ब के लिए मुझे क्षमा करें। हम लोगों की परिस्थिति ही ऐसी है कि हमें अपने आपको दुष्ट समाज से बचाकर चलना पड़ रहा है, अतः स्वभावतः ही हमें कई

व्यक्त-बाधाओं को पार करना पड़ता है। एक ऐसी ही बाधा में फँस जाने के कारण ही आप लोगों को इतनी राह देखनी पड़ी। किन्तु जैसा कि मैं पूर्व ही निवेदन कर चुकी थी इस विलम्ब से भी मुझे कुछ उपयोगी सूचना प्राप्त हुई है।"

सभी सदस्यों की दृष्टि उसी पर स्थित थी; माया ने भी एक बार सम्पूर्ण सभा की ओर देखा, प्रत्येक व्यक्ति की आँखें उसकी आँखों से मिली, फिर वह बोली, "मैं प्रसन्न हूँ कि आज की सभा में हमारी उपस्थिति काफी सन्तोषजनक है। जिस मामले पर आज हम विचार करने जा रहे हैं, वह काफी गम्भीर है, अपनी महिला-साथियों को भी ऐसे मामले पर विचार करने के लिये उत्सुक देखकर मैं कितनी प्रसन्न हुई हूं, यह कह नहीं सकती।—मैं आप सब सज्जनों और सन्नारियों का स्वागत करती हूँ, और कामना करती हूँ कि आपके उत्साह से देश की व्याधियों का उपसंहार हो!"

दोनों महिलाओं ने हस-दृष्टि से सभानेत्री की ओर देखा, और फिर अपनी दृष्टि नत करली! दोनों महिलाएँ युवती थीं, और यदि स्वास्थ्य का सौंदर्य से कुछ सम्पर्क है, तो वे काफी सुन्दर थीं, बल्कि एक युवती का तो रंग तक अंग्रेज महिला के समान मालूम देता था।

एक क्षण चुप रहकर सभानेत्री ने फिर कहना प्रारम्भ किया, "इस बात का खेद है कि यह असाधारण बैठक बहुत शीघ्रता में बुलानी पड़ी बल्कि आप लोग जानते हैं, आप लोगों में से कई के पास लिखित निमन्त्रण तक नहीं भेजा जा सका। किन्तु, यह बात भी आपसे अधिक अच्छा कौन जानता है कि 'असाधारण' शब्द हमारी-जैसी संस्थाओं के लिए कितना 'साधारण' है! मैं समझती हूँ कि इस उत्तरदायित्व पूर्ण मार्ग की कसौटी है कि हम इन असाधारणताओं से तनिक भी न चौंकें! —और मुझे प्रसन्नता है कि आप लोगों ने आज इस संस्था में उपस्थित होकर अपनी सत्य-निष्ठा का परिचय दिया है। मैं आप लोगों का अभिनन्दन करती हूँ।"

सभानेत्री ने फिर सभी की ओर दृष्टि डाली। मि० निकल्सन वल्द लालाराम खंखारते हुए उठ खड़े हुए और बोले—

"प्रेसिडेण्ट माफ करें, अगर परमिशन हो तो एक बात कहूँ ?"

"अवश्य !"

"जिन मेम्बर्स को रिटन-नोटिस (लिखित सूचना) मिली है, अगर कम से कम उनको ही आज की मीटिंग का एजण्डा नोटि फाई (कार्य-क्रम अवगत) करवा दिया जाता, तो उस 'सब्जेक्ट' (विषय) के ऊपर वे पहले से कुछ विचार कर सकते थे। मैं समझता हूँ, अराजक दल की अपने ही दल में अराजकता के तो कोई मानी नहीं। कहिए फ्रेंड्स, आप क्या सोचते हैं ?"

कुछ दोस्तों ने हाँ में हाँ मिलाई, कुछ चुप रहे। दोनों महिलाओं ने सभानेत्री की ओर देखा।

"मेरे दोस्त मि० निकल्सन ने जो लांछन लगाया है, उसे स्वीकार करने के पूर्व क्या मैं उन से पूछ सकती हूं कि वे 'अराजकता' का क्या मतलब समझते हैं ? वैसे, ठीक तो यह है कि अराजक-दल की नीति ही 'अराजकता' हो !"

निकल्सन दबे नहीं; सिरे पर उठी हुई मूँछों को थोड़ा और ताव देते हुए बोला, "अराजक का मानी है 'एनार्किस्ट', 'आउट-ला'; और अराजकता का मतलब है, 'एनार्किज्म', 'डिस ऑर्डरलीनेस'; 'इट्स क्वाइट क्लीयर' (यह बिल्कुल स्पष्ट है)।"

"अपने भ्रम को न छिपाकर मि० निकल्सन ने न केवल अपना ही लाभ किया है, बल्कि मुझे भी उन्होंने मौका दिया है कि मैं इस सभा के बारे में कसरत से उठी हुई गलत फहमी को दूर कर दूँ।—मैं इसके लिए उन्हें धन्यवाद देती हूँ।"

इसके बाद घड़ी की ओर सरसरी निगाह डालकर वह कहने लगी, "मित्रो, दुनिया वाले एनार्किस्ट शब्द को—अराजक शब्द को—बड़ा भयानक मानते आए हैं। दुर्भाग्य है कि इस शब्द का जन्म खूँरेजी से

हुआ है, और इसके अधरों पर लगे हुए रक्त के ये दाग ही इस शब्द को इतना भयानक बना देते हैं। किन्तु, जैसा कि मेरे मित्र ने कहा, 'अराजक' शब्द डिसार्डर (उच्छृङ्खलता) का पर्याय नहीं है। अराजकता 'अ-शासन' नहीं, वह अराजकता है, जिसका अर्थ है 'राजा की हीनता', शासन की हीनता नहीं!—वह तो स्वयम् एक प्रकार का शासन है, जो आत्मा के भीतर से प्राप्त होता है। अपने अस्तित्व को कायम रखने में इसे जिस 'राजकता' से लोहा लेना पड़ा है, वह रक्त-रंजित कहानी है, परन्तु वह तो साधन-मात्र था मि० निकल्सन सिद्धि नहीं। राजत्व की मर्यादा में मनुष्य-समाज पर विषमता की जो चक्की चली है, वह सदियों पुरानी है। राज्यतन्त्र, सामन्तशाही, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद—आखिर सभी तो उसी चक्र की चापें—आर्क्स—हैं, यहाँ तक कि इसके विरीध में खड़े होने वाले प्रजातन्त्रवाद और समाजवाद भी क्या अपने आपको उसके धोखे से बचा पाये हैं? एक ने अहिंसा का व्रत लिया, दूसरे ने तानाशाही की शरण ली, एक ने समष्टि का परिहार किया, दूसरे ने व्यक्ति का। साम्यवाद का नारा लगाकर भी किसी ने शासक और शासित की इस मूल-विषमता का हल नहीं तलाश किया, इस मार्ग में क्रियात्मक कदम किसी ने नहीं उठाया। यह अराजक-दल आवश्यकतानुसार निर्माण या संहार का सहारा लेकर उसी विषमता को नष्ट करने का प्रयत्न है। वह शासन की दीवार तोड़कर केवल शासक और शासित में अभेद स्थापित करना चाहता है, और इसी अभेद में वह समता का, शासन का, व्यवस्था का, आर्डर(श्रृङ्खला) का आश्वासन देखता है। जिस मित्र को आतङ्क-दल के इस उद्देश्य से निराशा हुई हो, उसे यह दल बाँध न रखेगा। मैं नहीं समझती कि किस उच्छृङ्खलता के नयनोत्सव में भूलकर मि० निकल्सन इस दल में आ फँसे हैं!"

एक क्षण के लिये सभी सभासदों की दृष्टि निकल्सन पर केन्द्रित हो गई। निकल्सन उठे, और उल्लास के साथ बोले—सभी को अवश्य ही विस्मय हुआ, "प्रेसिडेंट को हमारा शुक्रिया! 'यू हैव्ह क्लीयर्ड ए

ग्रेट मिस अण्डर स्टैंडिंग' (आपने एक बड़ी गलत फहमी को दूर किया है)।—मैनी थैंक्स, मुझे खुशी है कि मैं गलत पार्टी में शरीक नहीं हुआ !"

निकल्सन के बैठते ही, एक दूसरी महिला उठी, बोली—निहायत कोमल स्वर में, सभानेत्री के स्वर का वह स्पष्ट उपहास था।

"सभानेत्री महोदया, क्षमा करें ! इस दल के पवित्र उद्देश्यों में तो किसी को सन्देह नहीं रहा होगा, किन्तु मूल बात—मि० निकल्सन का यह प्रस्ताव कि सभा की सूचना के साथ ही सभा का कार्यक्रम भी फिरवा दिया जाना—"

"यस यस; देअर यू आर !" बीच ही में मि० निकल्सन बोल उठे।

सभानेत्री ने घंटी बजा कर शांति की और कहा, "दुर्भाग्य है कि हम प्रारंभ ही से बहस में पड़ गए हैं; हमें बहुत ही आवश्यक बातों पर विचार करना है, मैं सदस्यों से प्रार्थना करती हूँ कि वे समय का ध्यान रखें। और मि० निकल्सन, मैं सोचती थी कि ऐसी क्षुद्र बातों को समझाने का बोझ मेरे ऊपर न होगा। कैसी विचित्र बात है कि जो सभा स्वयम् इतने गोपनीय ढंग से हो रही हो, उसके एजण्डे को प्रकाशित करने की सदस्यों द्वारा माँग की जाए। मैं फिर कहती हूँ कि अराजक दल के सदस्यों को इन असाधारणताओं से कभी चौंकना नहीं चाहिए। आज तो बिना एजण्डा के आप लोगों के विचार के लिए शीघ्र ही एक मामला दिया जारहा है; कल, सम्भव है, बिना अपनी प्रियतमा से मिलने का अवसर दिए, मि० निकल्सन के हाथ में तलवार देकर स्वर्ग के सम्राट् का सिर लाने की जिम्मेदारी दी जा सकती है। यदि आप लोगों में से इस समय भी किसी को अपनी प्रियतमा के कुसुमांक की याद न भूली हो, तो वे शौक से छुट्टी प्राप्त कर सकते हैं !"

माया ने चारों ओर देखा। सभी स्तब्ध थे, किसी ने उत्तर नहीं दिया।

निकल्सन ने कहा, "मैं माफी चाहता हूँ। मेरा इण्टेंशन (इरादा)

जांचने का न था, सिर्फ एकाध बात जानना थी। प्रेसिडेण्ट को नाराज नहीं होना चाहिए !"

"मैं नाराज नहीं हूँ ! तो फिर आज की कार्यवाही प्रारंभ की जाए ?"

सबने सम्मति सूचक सिर हिलाया। माया ने एक बार और घड़ी की ओर देखा, फिर सामने के कागजों में से एक उठा कर वह बोलने लगी— माया ने भूमिका बाँध कर बतलाया कि किस तरह यहाँ का यह अराजक-दल पहले लखनऊ के कार्यालय में अवस्थित था, जहां पर सभापति का पुत्र दयाराम, शिकार हुआ जिला कलेक्टर के पुत्र किटसन ज्याफ्री की गोली का। किस तरह वहाँ का 'प्रधान-कार्यालय नौकरशाही की गृध्र-दृष्टि का शिकार होकर मथुरा में स्थानांतरित हुआ, और किस तरह अन्य सभापतियों के कोप दृष्टि में पड़ने पर वह स्वयम् यह कार्य भार स्वीकार करने को विवश हुई !

उसने बताया कि प्रेसिडेण्ड के पुत्र की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए किस तरह लखनऊ-स्थित प्रधान कार्यालय ने विचार करके एक डाक्टर रेडियर को नियुक्त किया था। किस तरह डाक्टर रेडियर मानपुर को शाखासे सम्पर्क प्राप्त कर सका, किस तरह वहाँका पोस्टमास्टर नवनीतलाल उसके षड्यंत्र में शरीक हुआ। उसने बताया कि मानपुर शाखा केअध्यक्ष अधरलाल पोस्ट आफिसमें नवनीतलाल के नीचे पोस्टमेन थे, अतः उन दोनों में सीधा सम्पर्क था ही। फिर उसने नवनीतलाल के एक प्राचीन इतिहास का अंश भी सुनाया, जिसमें कहा गया कि लखनऊ के पोस्ट मास्टर जनरल की लड़की शर्ली रोगर्स किस तरह नवनीतलाल के प्रति अनुरक्त थी। वह निश्चल कण्ठ से कह गई कि नवनीतलाल और शर्ली में अवैध सम्बन्ध था, ऐसा विश्वास किया जाता है। किन्तु जब लड़की के पिता को इस बात की खोज लगी, तो उसी समय नवनीतलाल मानपुर तबदील कर दिया गया। नवनीतलाल के हृदय में प्रेम की निराशा और प्रतिशोध की भावना दोनों ही काम कर रही

थीं, जब मि० किट्सन ज्याफ़्री अपनी नव-विवाहिता पत्नी शर्ली को लेकर हनीमून के लिए मानपुर पहुँच गए। पोस्ट मास्टर नवनीतलाल अवसर की खोज में था ही, उसने अपने अधीनस्थ अधरलाल की अवस्था का लाभ उठाना चाहा।

मेरे पाठक माया के साहस की दाद देंगे। किस तरह वह यह सब मिथ्या अभिनय कर सकी, कुछ कहा नहीं जा सकता, पर था यह सच ही। आगे उसे जैसा निर्णय लेना है, शायद उसकी भूमिका के स्वरूप जब तक इस साधारण समाज में नवनीत के प्रति घृणा न पैदा की जाए, तब तक उसे सफलता की आशा न रही हो।

सामान्य औसत मनुष्य का जीवन हृदय-तत्व के पोषण से पल्लवित होता है; बुद्धितत्व की निर्मम दासता बहुतों से नहीं हो सकती। बुद्धि-जीवी समाज वस्तुतः निष्प्राण समाज होता है; जहाँ हम उसे निर्विकार निरीह आदि विशेषणों से अभिषिक्त कर सकते हैं, वहाँ उसे बहुधा नीरस, ठूँठ आदि की संज्ञा भी उतने ही औचित्य के साथ प्राप्त करनी पड़ सकती है। शायद मनोविज्ञान के इसी तथ्य का लाभ उठा कर प्रगट में बुद्धिवाद का झण्डा लहराने वाले साम्यवादी, प्रचार के द्वारा दूसरों की बुद्धि को कील देने का ही प्रयत्न करते हैं!

माया ने भी यही किया। एक अंग्रेज महिला से सम्बन्ध स्थापित करने की घटना देश प्रेम के मतवाले इन लोगों में स्थान नहीं पा सकी। शर्ली से प्रतिशोध लेने का उसका निश्चय अवश्य ही नवनीत की पूर्व कालिमा को धो सकता था, किन्तु आगे की भूमिका उसके लिए और भी गहनतर होती गई। माया ने कहा—

"योजना के अनुसार किट्सन की हत्या तो निष्पन्न हो गई, किन्तु तभी डाक्टर रेडियर ने उस अंग्रेज-तितली के कटाक्ष पात पर इस दल के प्रति अपनी जिम्मेदारी को न्यौछावर कर दिया—दोनों ने ही जल-प्रवेश करके अपनी रक्षा कर ली।"

सुरेश नारायण नामक एक युवक ने पूछा, "क्या समानेत्री महोदया

बताने की कृपा करेंगी कि किट्सन की हत्या किसने की ?—नवनीतलाल ने, अधरलाल ने या टीकू ने ?"

माया ने एक क्षण के लिए सोचा और कहा, "पत्रों में इसके बारे में स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु व्यंजित यही होता है कि हत्या मि० नवनीतलाल ने की, हालाँकि ऐन मौके पर उन्होंने अपना अपराध अधरलाल के मत्थे मढ़ दिया, और आप सरकारी गवाह बन गए।"

"किन्तु उनके सरकारी गवाह हो जाने से हमें क्या ?" एक वृद्ध व्यक्ति ने पूछा।

"सब कुछ हमें ही तो भुगतना है महाशय ! किट्सन की हत्या के उपरान्त जब शर्ली और डा० रेडियर पानी में कूद पड़े, तो हत्याकारियों ने यह समझा कि वे पानी ही में डूब गए। किन्तु दोनों ही बच कर निकल आए और उन्होंने न्यायाधिकरण का आश्रय लिया है। अब यदि सभी बातें आप से न कही जाएँ, तो भी आशा है आप बहुत कुछ समझ लेंगे। अंग्रेज सरकार हत्या के परिशोध के लिए उतनी उत्सुक नहीं, जितनी इस आतंक-दल की परिशोध के लिए है। अतः बिना छान बीन किए केवल नवनीतलाल की गवाही के बल पर वह अधरलाल को फाँसी पर लटका देने के लिए तैयार मिलेगी—अधरलाल को जो कि आपकी सेना का एक बहुत ही योग्य सेनापति है ! अधरलाल और टीकू-जो खुद भी एक उतना ही बड़ा नायक है—दोनों गिरफ्तार कर लिए गए हैं, और प्रकृत हत्यारा नवनीतलाल सरकारी गवाह बनकर मानपुर के बाजारों में सीना फुला कर चल रहा है। मित्रो, नवनीतलाल ने स्वयम् हत्या जैसे भयानक कृत्य को निष्पन्न करके, न केवल मिथ्या के आश्रय से एक सत्य घटना का गला ही दबा दिया है, बल्कि विश्वास घात करके उसने एक मित्र के प्राणों को संकट में डाल दिया है, और इस मित्र के प्राणों का संकट अकेला नहीं, वह है समस्त-दल के प्राणों का संकट !"

सभा में फुसफुसाहट होने लगी। धीमे स्वरों में कहीं से सुनाई

दिया, "नवनीतलाल को प्राण दण्ड मिलना चाहिए।" कोई बोला, "उसे हमारे सामने विचार के लिए उपस्थित किया जाना चाहिए!" कोई कुछ बोला, कोई कुछ—समूह की क्षिप्र-भावना का प्रदर्शन-मात्र।

कुछ देर के बाद माया पुनः कहने लगी, "जहाँ तक शर्मा के प्राणान्त की भूमिका थी—चाहे वह नवनीत और शर्मा के प्राचीन सम्बन्ध के कारण हो, या नवनीत और अधरलाल के सम्बन्ध के कारण, क्योंकि हम लोग सिद्धि को देखते हैं, साधन को नहीं;—तब तक नवनीत बाबू ने हमारी नीति के अनुकूल कार्य किया है, और वे साधुवाद के अधिकारी हैं। किन्तु नवनीतलाल की ट्रेजिडी यह है कि उन्हें अपने कार्य में निराशा हुई; उनका उद्देश्य क्षुद्र था, स्वार्थमय था, अतः वह निराशा उनकी सारी मनुष्यता पर छा गई। हमारे दल में, जिसे निराशा सहन करने का साहस न हो, उसके लिए स्थान नहीं है। यह उद्देश्य अपने आप में इतना महत् है कि निराशाएँ भी इसमें प्रयत्न की एक-एक सीढ़ी बनती हैं। नवनीतलाल न केवल इस सीढ़ी से फिसला है, उसने इस सीढ़ी तक को तोड़ कर पीछे आने वालों का मार्ग रोक दिया है। यही नहीं, जो कुछ ऊपर चढ़ चुके हैं, उनके जीवन को भी उसने खतरे में डाल दिया है।"

"सच है। नवनीतलाल मुर्दाबाद! नवनीतलाल मुर्दाबाद!" सामने से सुरेशनारायण के पास बैठे हुए एक अधेड़ ने आवाज लगाई।

"मेरी प्रार्थना है कि आप शांति से इस पर विचार करें, नवनीतलाल के दोष की गरिमा को सोचें, और तब कोई निर्णय स्वीकार करें। जहाँ नवनीत ने स्वयम् बिना विचारे एक व्यक्ति के जीवन को खतरे में डाल दिया, वहाँ, नवनीत का प्रश्न उपस्थित होने पर, क्या वही लांछन हम अपने ऊपर भी लेंगे?—हमारा गौरव हमारा साथ दे, और हम अधिक न्याय के साथ इस प्रश्न को सोचें, यही मेरी प्रार्थना है।"

सभानेत्री ने यह बात पत्नी की कातर भावना से नहीं, न्यायाधीश की न्याय-भावना से ही कही। एक क्षण के लिए भी उपस्थित श्रोतृ-

मंडल में कोई चिड़िया का पूत भी नहीं सोच सका कि उद्दिष्ट व्यक्ति ही इस माया का जीवन सर्वस्व रह चुका है। और यदि हिन्दू-शास्त्र की मर्यादा मानी जाए, जिसकी छत्र-छाया में वह आजकल पली है, तो आज भी वह व्यक्ति इसका जीवन-सर्वस्व ही है ! परन्तु माया ने अपने नाम को सार्थक कर दिखाया है; जीवन की आसक्ति में सने हुए रंजित राग के उत्स का उसने जीर्ण कथा की तरह विसर्जन कर दिया है। उसे देवी कहें, मानवी कहें या दानवी ?

"पार्श्व में बैठी हुई युवती बोली, "मेरा मत है कि नवनीतलाल को इस सभा में बुलाया जाए ! शायद अपनी रक्षा के बारे में उन्हें कुछ कहना हो। यह बात तो निर्विवाद है कि उनका अपराध भारी है, और उसका प्रतिशोध अवश्य ही लेना चाहिए।"

निकल्सन ने कहा—"आपके बुलाने से नवनीतलाल आ तो जाएँगे न ! वे क्या आपकी तनख्वाह पाते हैं ? क्या सिविल (नागरिक) तरीकों से आपको कामयाबी मिल सकती है ? एनार्किस्ट की कामयाबी का सीक्रेट (रहस्य) तो उसको आउट डू (उल्लंघन) करने में है !"

सुरेशनारायण ने कहा, "मैं समझता हूँ, हमें क्या करना है, अभी हम यही नहीं समझ पाए हैं ! हमारे कार्यों की दो दिशाएँ होनी चाहिए। न केवल हमें नवनीतलाल और रेडियर की सजा की तजवीज ही करना है, बल्कि हमें हमारे साथी अधरलाल और टीकू का उद्धार भी करना है।"

सभानेत्री ने कहा, "मैं देखती हूँ कि बहस में हमारा बहुत समय बरबाद हो जाएगा। क्या यह उत्तम न होगा कि मैं अपनी योजना सभा के सम्मुख रख दूँ, यदि आप लोग उससे उत्तम उपाय स्थिर कर सकें, तो बतलाएँ—या फिर इस योजना के औचित्य पर विचार करें।"

"सभानेत्री का सुझाव सुन्दर है। वह सामने रखा जाए, हम उस पर विचार करेंगे।"

माया ने कहा, "मेरा पहला प्रस्ताव है कि यह सभा निश्चय करती

है कि अधरलाल और टीकू को मुक्त करवाने का शीघ्र प्रबन्ध किया जाए, और इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए दो सदस्य नियुक्त किए जाएँ, जिनको साधन निश्चित करने की दिशा में पूरी स्वतंत्रता दी जाए।"

सुरेशनारायण ने कहा, "मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए यह निवेदन करना चाहता हूँ कि दो से अधिक व्यक्तियों को इस कार्य में न लगाया जाए। कार्य बहुत अधिक कठिन है, किन्तु साथ ही इसको सम्पन्न करने में बल की अपेक्षा बुद्धि की अधिक आवश्यकता होगी। बल की दृढ़ता विस्तार पर और बुद्धि की गम्भीरता पर निर्भर करती है, अतः आवश्यक है कि अधिक भीड़ ऐसे कामों में इकट्ठी न की जाए। दूसरा निवेदन है सदस्यों को स्वतंत्रता देने का। इसमें सदस्यों को मत-भेद हो सकता है, किन्तु कार्य की गुरुता को और उसकी बारीकी को ध्यान में रखते हुए यदि यह छूट हम न देंगे तो कार्य का होना संभव न होगा। वैसे हमें सदस्यों की बुद्धि का और उनकी ईमानदारी का सदैव विश्वास रखना चाहिए।"

एक व्यक्ति ने कहा, "यदि इस मामले में बैरिस्टर की नियुक्ति आवश्यक हो, तो मेरा प्रस्ताव है कि इसके लिए सुरेशनारायण नियुक्त किए जाएँ।

सारी सभा मुस्करा उठी। यह देख कर सुरेशनारायण ने कहा "यदि यह व्यंग्य हो तो मैं माननीय सदस्य को बता देना चाहता हूँ कि दल का कार्य मुझे जीवन से भी अधिक प्यारा है। मैंने किसी स्वार्थ-भावना से इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया, बल्कि जहाँ तक इसके कानूनी पक्ष का सवाल है, मैंने कभी इस पर गौर नहीं किया, शायद इस बारे में मेरे मत से निराशा ही हमारे पल्ले पड़े। किन्तु यदि दल ने मुझे ही यह भार भी दिया, तो मैं निस्वार्थ-भाव से उसे वहन करूँगा।"

उस व्यक्ति ने जिसका नाम प्रह्लाद था, उत्तर दिया, "माननीय सदस्य क्षमा करें; यदि मेरे शब्दों से उन्हें चोट पहुँची हो। व्यंग्य मेरा उद्देश्य न था। आप यहाँ के नामी वकील हैं, आपके वकील बनने से

संस्था को आर्थिक लाभ भी होगा, और अपकी प्रसिद्धि का भी, यही सोचकर मैंने सहज भाव से यह प्रस्ताव रखा था। माननीय सदस्य को क्रोधित नहीं होना चाहिए।"

सभानेत्री ने घंटी बजाकर विवाद समाप्त किया और कहा, "तो यह प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाए ?"

"हम सब सहमत हैं !"

"प्रस्ताव के अनुसार अब हमें इस कार्यभार के लिए दो सदस्यों को चुनना है। कार्य काफी भारी। पहले इसके कि हम लोग किसी का नाम प्रस्तावित करके चुनें, मैं जानना चाहूँगी कि कौन माननीय सदस्य स्वेच्छा से इस कार्य में आगे आने चाहते हैं ?"

सभा में चुप्पी रही, कोई स्वेच्छा से आगे नहीं बढ़ा।

मि० निकल्सन बोले—"मुझे इस सभा के प्रोसीडिंग्ज (कार्यवाही) को देखकर ताज्जुब होता है कि हम लोग "डिग्रेडिंगली लिबरल (अपमानजनक रूप में उदार) तरीके काम में लाते हैं ! आफर या इलेक्शन (स्वेच्छा समर्पण या चुनाव) से अनार्किस्ट-पार्टी का सभी काम चला है ? प्रेसिडेण्ट किसी को नामिनेट क्यों नहीं कर देतीं ? डिसीप्लिन का तकाजा है कि कोई भी सदस्य कुछ न बोलेगा।"

वही वाचाल महिला, जिसका नाम मंजरी था, बोली, "माननीय वक्ता स्वयं भी तो स्वेच्छा से अपना नाम पेश कर सकते थे। मालूम देता है, यह रहस्य वे जानते हैं कि काम करने की अपेक्षा उपदेश देना कई गुना निरापद है !"

प्रस्तुत व्यंग से सारी सभा लज्जित हो गई। स्वयम् निकल्सन तिलमिला उठा, बोला, "प्रेसिडेण्ट, यह रिस्पोन्सिबिलिटी मैं लेता हूँ ! मुझे साबित करने दिया जाए कि मैं प्रीचिंग (उपदेश) में नहीं, प्रेक्टिस (कार्य) में बिलीव (विश्वास) करता हूँ।

प्रह्लाद ने हाथ उठाकर, "इनका दूसरा सहयोगी बनने के लिए यह खाकसार अपना नाम पेश करता है।"

माया ने निकल्सन की ओर दृष्टि डाली, उसकी दृष्टि में स्वयं-विश्वास की गहराई न थी। दो क्षण उसने सभा की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया। तब उसने कहना प्रारम्भ किया—

"और कोई सज्जन आगे बढ़ता है?—मैं निकल्सन और प्रह्लाद के स्वयं प्रस्तावों का स्वागत करती हूँ। कार्य की गुरुता का उत्तरदायित्व का, और खतरे का प्रश्न आप से छिपा नहीं है, आपके साहस का अवश्य ही अभिनन्दन किया जाना चाहिए। किन्तु एक बार प्रतिश्रुत हो जाने पर यह आपका दल के प्रति न केवल एक कर्त्तव्य है, बल्कि एक ऋण है, जिसको चुकाने के लिए आप बाध्य होंगे। अवश्य ही मेरा यह तात्पर्य नहीं कि इससे इस सभा का भार किसी भी तरह हलका हो गया है। यहाँ किसी भी सदस्य का दायित्व उसी तक सीमित नहीं है, यहाँ का प्रत्येक सदस्य सभा के कर्तव्य के लिए व्यक्तिगत और समूहगत दोनों रूपों से पूर्णतया जिम्मेदार है। किन्तु इकाई के तौर पर ही कार्य की लगाम आपके हाथों में दी जा रही है, और कार्य की प्राथमिक जिम्मेदारी सूत्रधारियों के सिर पर रहेगी। यदि आप दोनों के मन में अब भी कोई हिचक हो, तो स्पष्ट कर लें एक बार किसी दिशा में आगे बढ़ने पर लौट पड़ना इस सभा के सदस्यों की नीति नहीं है।"

निकल्सन ने कहा, "हमारा भी यही पोलिसी है, यही सोचकर हम आगे बढ़े हैं।"

प्रह्लाद ने कहा—"मैं कभी अपने कर्त्तव्य से पीछे नहीं हटूँगा, सभा को मैं विश्वास दिलाता हूँ!"

माया ने कहा, "सभा आपका विश्वास करती है। मैं पुनः सभा की ओर से और अपने स्वयं की ओर से आपका अभिनन्दन करती हूँ!"

इसके बाद में तालियाँ बज उठीं।

घण्टी बजाकर माया ने कहा, "हमारे कार्य का एक पहलू निश्चित हो चुका है। अब हमें दूसरे पक्ष पर विचार करना है। वस्तुतः यह कोई

पहले पत्र में जुदी बात नहीं है। वह है नवनीतलाल और रेडियर की व्यवस्था !"

"और शर्ली की ?" मंजरी ने पूछा।

"न हो, आप ही उसकी बहन बनकर कुछ व्यवस्था कर दीजिएगा !" एक दूसरे व्यक्ति ने कहा, सभा में कुछ मुस्कराहट छा गई। मंजरी को काठ मार गया, किन्तु मालूम पड़ा, उसे यह उत्तर सुनकर कुछ प्रसन्नता ही हुई।

माया ने ध्यान न देकर कहा—"कार्य बहुत कठिन है। किसी भी तरह उन व्यक्तियों को इस सभा में विचार के लिए उपस्थित होना है। यह कार्य अधरलाल और टीकू को मुक्त करने के कार्य से किसी भी तरह कम नहीं है।"

"बल्कि अधिक ही है !" सुरेशनारायण बोले, "उनकी मुक्ति का कार्य तो पुलिस की अनवधानता तथा मूर्खता से सरल भी होगा, किन्तु नवनीतलाल, पुलिस से रक्षित होने के अतिरिक्त स्वयम् भी शिक्षित और दीक्षित है।"

माया ने कहा, "और वे शारीरिक शक्ति में भी पूरे दानव के समान हैं !"

मंजरी ने पूछा, "आप उन्हें जानती हैं ?"

माया ने क्षणार्द्ध के लिए इस युवती की ओर तृष्णा से देखा, और कहा, "नहीं; किन्तु रिपोर्ट में इसका उल्लेख है।

"यहाँ उपस्थित मण्डली में कोई उन्हें जानता है ?—उनकी पहचान का प्रश्न भी तो है !" मंजरी ने फिर कहा।

सभा में किसी ने उत्तर नहीं दिया, नवनीतलाल को कोई जानता न था। माया ने कहा, "उनका फोटो प्राप्त किए जाने की चेष्टा की जा सकती है। या फिर उनकी शिनाख्त का जिम्मा मानपुर की शाखा को सौंपा जा सकता है।"

मंजरी ने एक क्षण के बाद कहा, "यदि कोई सज्जन मेरा साथ दे

सके, तो यह भार मैं अपने सिर ले सकती हूँ।"

माया ने तीक्ष्ण दृष्टि से मंजरी की ओर देखा, निमिष-भर के लिए उस दृष्टि में ईर्ष्या की बिजली झलक पड़ी; किन्तु वह कुछ कह सके, उसके पहले ही कई पुरुष मंजरी का साथ देने के लिए बोल उठे, एक साथ ही "मैं मंजरी देवी का साथ देने के लिए तैयार हूँ।"

माया के ओठों पर फिर एक प्रवंचना की मुस्कराहट फैल गई, जिसे मंजरी ने भी लक्ष्य कर लिया, किंतु वह चुपचाप ही बैठी रही।

दूसरी युवती, जिसका नाम ऊषादेवी था, बोली, "मेरा विश्वास है, मंजरी देवी की सहायता के लिए स्वयम् नवनीत लाल तैयार हो जाएँगे !"

माया के दिल पर दूसरी चोट पड़ी, हृदय की ईर्ष्या का यह नग्न रूप था। काँच, कुरूप चेहरे के लिए निष्प्रयोजन है, उससे सुन्दर चेहरा ही देखा जा सकता है, कुरूप चेहरे की तो उस पर 'हाय' ही पड़ती है।

माया ने ओठों को दबाकर कहा, "सभा के उत्साह की मैं प्रशंसा करती हूँ। किंतु मंजरी देवी मेरे विचार से इस कार्य के उपयुक्त न होंगी। यदि यह भार मैं लूँ तो मेरा साथ देने के लिए कौन तैयार है?"

सभा में सन्नाटा छा गया। माया के प्रखर प्रताप को सभा जानती थी, उसके साथ कार्य करने के लिए तैयार होना साधारण बात न थी। जब कोई न बोला, तो सुरेश नारायण ने कहा—"क्या मेरी सेवा से कुछ सहायता मिल सकती है ? किन्तु सभानेत्री जी, इस विषम परिस्थिति में कार्यालय को छोड़कर आप अन्यत्र कहीं नहीं जा सकती !"

मंजरी ने कहा, "किन्तु मैं जानना चाहती हूँ कि किस अपराध से मुझे इस सेवा के अयोग्य समझा जा रहा है ?"

निकल्सन बोला—"ठोस वजह के बिना प्रेजीडेण्ट को किसी की स्पिरिट (उत्साह) नहीं कुचल देनी चाहिए।"

माया ने कहा—"मैं अपने प्रश्न का उत्तर चाहती हूँ। माननीय सदस्य सुरेश नारायण ने अपना सहयोग सामने रक्खा है, किन्तु यदि वे

इस कार्य के लिए निमंत्रित कर लिए गए, तो मेरे अभाव में सचमुच अध्यक्ष का पद कौन उठाएगा ?"

सभा में फिर शांति रही। मंजरी ने कहा, "क्या मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिलेगा सभानेत्री जी !, मैं सभा से पूछना चाहती हूँ कि सभा-नेत्री को क्या किसी सभासद का अपमान करने का अधिकार प्राप्त है !"

माया ने गंभीर होकर उत्तर दिया, "सभासदों को जानना चाहिए कि यह अराजक दल की बैठक है। जिसके ऊपर अपना स्वयम् का शासन न हो, उसकी सदस्यता का औचित्य संशय का शिकार हो सकता है !" इसके बाद कुछ क्षणों के लिए वह चुप हो गई। सभा में से फिर किसी ने कुछ कहने का साहस न किया। वह फिर धीरे-धीरे बोलने लगी, "मंजरी देवी की प्रार्थना स्वीकार की जाती है; और उनके साथ जाएगा, मेरे कार्यालय का गूँगा चपरासी लछमन। मंजरी देवी, कल संध्या को ७ बजे आप मुझसे यहीं मिलिए, ताकि आपको आपकी कार्य-दिशा से अवगत कर दिया जाए।

निकलसन ने उत्साह से ताली बजाना शुरू कर दिया पर सभानेत्री ने उसे रोक दिया।

माया ने कहा, "माननीय सदस्य निकलसन और प्रह्लाद कल संध्या से ही अपने कार्य में अग्रसर हों। वे कल प्रातःकाल ७-३० बजे सभानेत्री के साथ चाय पिएँगे और आवश्यक तथ्य प्राप्त कर लेंगे। इस कार्य में अब किसी तरह का विलम्ब नहीं होना चाहिए !—बस, आज का कार्य यहीं समाप्त होता है। मैं आप लोगों का बहुत आभार मानती हूँ। केवल यह आशा मैं आप सज्जनों से करूँगी कि आप अधिक-से-अधिक अपने ऊपर शासन करने के गुण को सीखें, ताकि दूसरों के शासन की आवश्यकता न रहे, और आपका अराजकत्व सार्थक हो। धन्यवाद।"

इसके बाद सभा विसर्जन हो गई। रात्रि का काफी हिस्सा तब तक बीत चुका था।

(२३)

मानपुर के पोस्ट आफिस में दिन को बारह बजे काम की कमी नहीं रहती। उसी समय बाँटने के लिए डाक छाँटी जाती है, और यही समय लिफाफे पोस्टकार्ड बेचने का है। दफ्तर का समय भी कुछ ऐसा ही है, यानी सवेरे ८ बजे से १० तक और फिर दोपहर को १२ बजे से ४ बजे तक। बारह बजे जब रूद्धमान प्रवाह के द्वार उन्मुक्त होते हैं, तो प्रवाह का वेग थोड़ा अधिक होता ही है।

अधरलाल गिरफ्तार हो गए हैं। उनकी जगह जो पोस्टमेन यहाँ पर आया है, वह कुछ विशेषता रखता है। ऊँचाई उसकी ४ फुट ३ इंच से कुछ ही कम है, चाल बड़ी चुस्त, किंतु व्यवहार में उतना ही सुस्त। छोटी-छोटी कंजी आँखों पर उतना ही बड़ा ढीला चश्मा, जो नासिकाग्र के होने पर ही आकर रुक पाता था। कायस्थ-बच्चा, सब बातों का मतलब समझे हुए : नाम श्री सुन्दरलाल श्रीवास्तव, किंतु पुकारा जाता था 'मुंशीजी' नाम से। प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति से लाभ उठा सकने की कायस्थों की क्षमता की बड़ी ख्याति है। मनुष्य के जन्म भर के पाप-पुण्य का रिकार्ड रखने वाले चित्रगुप्त महाराज की सन्तान कायस्थ, सब की काया में स्थित रहकर भी क्या किसी के रहस्य से अनवगत रह सकते?—और उस रहस्य से अवगत होकर भी क्या अपना काम बनाते रहने का सुयोग खो देते?

खान-पान के बारे में भी प्रसिद्ध है कि कायस्थों जैसी स्थिति-स्थापक जाति दूसरी नहीं। काया में स्थित होने वाली जाति यदि स्वयम् एक आध्यात्मिक तंत्र हो तो आश्चर्य ही क्या है?—यह दो साधकों को बहुत जल्दी मिला देती है। नवनीतलाल पोस्टमास्टर को इस समय एक ऐसे ही पोस्टमेन की जरूरत थी, उन दोनों में शीघ्र ही आध्यात्मिक संबंध जुड़ गया। एक अफसर, दूसरा मातहत; किन्तु दोनों एक ही प्याले में, एक ही बोतल से एक साथ एक ही समय बैठ

कर आध्यात्मिक साम्य का प्रचार कर रहे थे। इससे आगे की अवस्था अभी विकसित नहीं हुई थी, किंतु कायस्थ-बच्चा रहा तो वह भी हो जाएगा !

स्वयम् नवनीतलाल कुर्सी पर बैठे हुए टेबल के कागजों पर झुके हुए थे। सामने खिड़की पर, कभी टिकिट कभी लिफाफा या कभी-कभी पोस्टकार्ड खरीदकर ग्राहक उसकी समाधि को भंग कर देते थे।

खिड़की पर से एक खरीददार बोला, "नमस्ते पोस्टमास्टर साहब,"

नीची गर्दन किए हुए ही नवनीत ने उत्तर दिया--"नमस्ते भई ! कहो—"

"आठ लिफाफे और आठ पोस्टकार्ड—" नवनीतलाल ने गिन दिए, रुपया कैश बक्स के हवाले किया।

दूसरे किसी ने कहा, "बाबूजी, अब तो अपने यहाँ तार घर बनवा दीजिए।"

नवनीत ने ऊपर निगाह उठाकर कहा, "तार घर ? अजी डाक घर ही क्या बुरा है ? एक तार की कीमत तो जानते हो न, एक ही साथ छब्बीस दोस्तों को याद कर सकते हो तार के पैसों से पोस्टकार्ड खरीदकर। यदि दिल की गहरी बात कहनी है तो उसी कीमत में आठ दरवाजे तुम्हारे दिल के भेद को रखने के लिए खुल जाएँगे। मगर तार तो एक दिल को भी नहीं झंकार सकेगा दोस्त !"

"मगर मास्टर साहब, तार के बिना देश की इण्डस्ट्री कैसे फैलेगी ?"

नवनीत ने लेजर के पन्ने पलटते हुए कहा, "डॉक्टर हमेशा यही चाहता है कि चारों तरफ जल्दी ही प्लेग फैल जाए, तुम पूंजीपति चारों ओर, पैसों का नहीं, पिस्सुओं का जाल फैलाना चाहते हो !"

"पर प्लेग और इण्डस्ट्री—"

"एक ही बात है भाई, एक ही बात ! प्लेग के वाहक होते हैं चूहे और इण्डस्ट्री के वाहक पूंजीपति—

एक दूसरे ग्राहक ने कहा, "एक जवाबी पोस्ट कार्ड"—पैसे लेकर

नवनीतलाल ने उसे भी निबटा दिया।

पूँजीपति ने कहा, "यों क्यों नहीं कहते मास्टर साहब, कि फिजूल का दर्द सिर क्यों उठाया जाए ?"

"तुम्हीं ठीक कहते हो भाई ! फिजूल की चीज फिजूल ही तो है। तार खुल जाने से दर्द सर तो बढ़ेगा, मगर तनख्वाह नहीं बढ़ेगी, समझे ?—अच्छा जरा, लैजर देख लूँ ! तुम्हें तो कुछ काम दीखता है नहीं। भगवान् जाने इण्डस्टी फैल जाने पर क्या तुम मक्खी मारने का काम शुरू करोगे ?

नवनीत ने सिगरेट सुलगाकर दो और चार गिनना शुरू कर दिया।

"बाबूजी, एक लिफाफा" नवनीत ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया।

तभी खिड़की पर दूसरी ध्वनि सुनाई दी,—" नवनीत बा—माफ कीजिए— बाबू साहिब !"

"अजीब हाल है। कहता हूँ जरा हिसाब कर लेने दीजिए, हिसाब क्या आफत है। दो दिलों का मिलना उतना कठिन नहीं है, जितना हम जैसे लोक-भूमि-हीन कायरों का हिसाब मिलाना—" कहते-कहते जैसे ही उसने खिड़की पर दृष्टि डाली तो वह देखकर अवाक् हो गया। वहाँ आरती खड़ी थी। बोला,—"आप ? कहिए—"

"आपसे कुछ प्रार्थना है।"

नवनीत सम्हल गया, बोला, "यदि कुछ ऑफिशियल न हो तो ऊपर बैठिए। मैं काम निपटा कर आता हूँ। ऊपर हरनाम है ही।"

आरती ने कोई उत्तर नहीं दिया, उलटे पैरों पर खिड़की पर से हट गई। पोस्टमेन मुन्शी सुन्दरलाल की कंजी आँखों ने भी उधर का मार्ग छोड़ दिया। मानों किसी पोस्टकार्ड का पता पढ़ते हुए वह इस दुनियाँ का कोई हाल ही नहीं जानता था। और "मोहनलाल हमीर-मल" कहकर उसने एक पोस्टकार्ड सामने वाले सज्जन की ओर फेंक दिया।

नवनीत ने 'मोहनलाल हमीरमल की ओर देखा, वह निहायत इत-मीनान से अपना पोस्टकार्ड पढ़ रहे थे, और डटे हुए थे कि कोई और दूसरा पत्र उनकी राह न देख रहा हो और मुँशीजी कोशिश कर रहे थे, मुंडी भाषा में उलझे हुए किसी मारवाड़ी महाजन के नाम का जीर्णोद्धार करने की; इधर जिसके नाम का उद्धार होने वाला था, वह अनिश्चित सेठ, सगर के साठ हजार पुत्रों का कलुष भार अपने कंधे पर लादे हुए इस महाभागी रथ का भगीरथ प्रयत्न सुनिश्चित होकर उसी औत्सुक्य से देख रहे थे। मुस्कराकर नवनीत ने दृष्टि को लेजर के पन्ने पर लौटा लिया।

"पाँच और आठ तेरह, तेरह और तीन—उहूँ, अच्छा कैसे होता? जाने क्या उसका मन्तव्य है? अधरलाल के सिवा और बात होगी ही क्या?—हूं? आत्मसमर्पण—आरती और आत्मसमर्पण। जहर का दाँत टूट गया? हाय रे हिन्दू स्त्री, इतनी ही तेरे दम्भ के सूत्र की शक्ति है?"

फिर खिड़की पर खड़े आदमी ने कहा, "बाबूजी, एक लिफाफा, देर हुई—"

नवनीत ने पैसे लेकर उसे भी निपटा दिया। लेजर के कालम पर निगाह डाली, वही पाँच और आठ—

—और अगर वह अपने प्राणदान का अहसान जताकर उसी तरह दया का बदला माँगे? मानस से उठी हुई मुस्कराहट का दान पाकर नवनीत लाल के अधर विकसित होगए, मुँह में दबी सिगरेट लेजर के पन्ने पर गिर पड़ी, उसने शीघ्रता की, नहीं तो पाँच और आठ सचमुच तीन-तेरह हो जाते, इसमें सन्देह नहीं। मुँशीजी की छोटी आँखों से यह छोटी-सी बात तक छिपी न रही।

नहीं, नहीं; काम कैसे हो सकेगा? कहीं जोड़में गलती हो गई, गलत जोड़? आरती, जीवन की एकमात्र कामना—कैसे जोड़ गलत होजाए? फिर दुनिया में सही क्या है? पर नवनीत आखिर तू इतना स्त्रैण हो

गया ?--हँ हँ, पौरुष के समस्त उपचार के बाद भी कौन माई का लाल आजतक इस जिजिवीषा का दमन करने में समर्थ हो सका है—अवश्य ही बिना पौरुष को किंचित भी आघात पहुँचाए !—तब नवनीत, तू ही कौनसा अपवाद हो जाएगा ?—नहीं, अब नहीं, अब अपने ही मन को धोखा नहीं दिया जा सकता। वह उठ खड़ा हुआ।

परन्तु, बुरा हो संस्कार का, उसने मनुष्य की शक्ति को बहुत ही जीर्ण कर दिया है। अधरलाल को गिरफ्तार करवा देने के पाप का भागी होकर भी क्या वह आरती के सामने इसी मुँह से बात कर सकेगा ? ना ना; "सुन्दरलाल, सुन्दरलाल !"

मुंशीजी ने सुना, किन्तु अनसुना कर दिया; एक चिट्ठी का पता पढ़ते हुए बोले, 'जमनालाल सोभागमल !' और एक तरफ खड़े हुए एक आदमी को लक्ष्य करके उसे उसी ओर फेंक दिया।

मुस्कराकर नवनीत बोला, "मुंशी जी, मेरे नाम की कोई चिट्ठी है या नहीं ? बड़ी उम्मीद में बैठा हूँ !"

मुंशीजी बोले, "मुँह मीठा करवाना होगा सरकार, इतर से लिखी गुलाबी चिट्ठी नजर न करूं तो कायस्थ बच्चा न कहिएगा। हाँ भाई तुम्हारी कोई चिट्ठी नहीं, तुम्हारी नहीं, नहीं,—हाँ, तुम यह लो ! बस, खलास।"

कान में पेंसिल खोंस कर मुंशी जी खड़े होगए। फर्श पर बैठे हुए थे, कमीज के पल्ले पर धूल लग गई, तो उसे हाथ से झटक लिया। विंडो-डिलिव्हरी के सभी ग्राहक एक एक करके रवाना होने लगे। मुंशीजी ने पोस्टमास्टर साहिब को एक और सलाम किया—

"दरख्वास्त मंजूर हुई सरकार ? मुँह मीठा करवाइएगा न ?

"मगर मेरी चिट्ठी—"

"उड़ते हैं सरकार, ऊपर नहीं भेज चुका हूँ ?"

नवनीत लाल सम्हल गए। एक क्षण के लिए उनका मुँह लाल हो उठा। किन्तु, यह क्या जाने कि नवनीतलाल इत्र में बसी हुई किसी

गुलाबी प्रेम-पत्रिका को पढ़ने के लिए नहीं किन्तु आग के साथ खेलने जारहे हैं।

"मुंशीजी बोले, "कोई फिक्र नहीं। मेरा मुँह बाद में मीठा करवाइएगा। आपका मुंह मीठा करवा दूं?"

नवनीत ने सुन्दरलाल का मुँह देखा; सुन्दरलाल बोला, "जिन्दगी का नायाब गौहर है सरकार, नायाब गौहर; गम को गर्क करने के लिए तो सभी पीते हैं, मगर खुशी को दोबाला करने के लिए भी इससे बेहतर कोई चीज नहीं है। मेरी बात मानिए, सिर्फ एक प्याला।"

ठीक तो है। यदि नवनीत इस मुंह से आरती से बात नहीं कर सकता, तो मुँह का रंग भी तो बदला जा सकता है!

"तो दे दो, एक प्याला, मगर देखो, ज्यादा कड़ी न हो!"

"कुरबान जाऊं सरकार!" और उसी समय कमरे के भीतर जाकर एक काँच का गिलास भर लाए, और बड़े प्रेम से नवनीत को थमाकर बोले—

"नाच उठे यह जर्रा जर्रा, मस्जिद मैखाना बन जाए!"

नवनीत ने शून्य खिड़की की ओर दृष्टि डाली, उठती हुई दर्द भरी लम्बी साँस को दबाकर एक ही घूंट में सारा गिलास गटक गया।

मुंशीजी बोले, "सदके! वल्लाह, क्या लम्बा कलेजा है! कायस्थ बच्चा न कहिएगा अगर जन्नत के सब दरवाजे न खुल जाएं! परमात्मा आपकी राह रास्त हो!"

नवनीत लाल उठा, दो एक इलाइची उसने मुंह में डालीं, और फिर सिगरेट दबाकर ऊपर की ओर चल पड़ा। मुंशी जी ने देखा, आँखों से नवनीत की पीठ पर एक घाव करने की शायद उन्होंने कोशिश भी की, और फिर खुद भी, मस्जिद न सही, पोस्ट आफिस ही को मैखाना बनाने के लिए भीतर के कमरे में चल दिए।

नवनीत लाल ऊपर प्रविष्ट हुए। सामने ही एक मोढ़े पर आरती बैठी हुई थी, उसके पास ही हरनाम और उससे आगे दूसरे मोढ़े पर

नीलम—नीलम भी ?—एक क्षण पहले आरती को देखकर नवनीत के चेहरे पर जो थोड़ा-सा उत्साह जगा था, वह बुझ गया।

नवनीत को देखते ही आरती उठ खड़ी हुई। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे, दृष्टि उसकी नीचे झुकी हुई थी, और साड़ी के एक छोर को अपने हाथों पकड़कर वह उसको गाँठ लगाने का प्रयत्न कर रही थी।

नवनीत ने आरती को ध्यान से देखा। उसके सौंदर्य का सार-भाग मानों आँखों के आँसू बहा ले गए थे। निर्द्वन्द्वता के ऐश्वर्य में फूला हुआ कपोलों का गुलाब मुरझाकर पीला हो चुका था। दीर्घायत आंखें गढ़े में धंस गई थीं; उनकी बिजली को, गढ़े की स्याही के बादलों ने छिपा दिया था। उसका ढांचा आरती के पूर्व सौंदर्य का, किसी सुन्दर अजायबघर में रखे हुए भग्नावशेष-सा मालूम दे रहा था।

किन्तु आरती की प्रकृत करुण श्री भी इसी समय निखर पाई थी। आँखों की बिजली सो गई थी, परन्तु हिमालय के ज्योत्स्ना-स्नान हिम-शिखर का सकरुण-सजल ऐश्वर्य उनमें पहले कहां था ? सहज विकीर्ण-मान हास्य धारा आज की भाँति पहले विद्रुम-अधर-कोरों पर संचित-नियंत्रित कब थी ?

क्षोभ और आवेग के बीच, एक क्षण तक किंकर्तव्य-विमूढ़ जैसा खड़ा रहा, तब नीलम ने कहा, "आइए, आगे बढ़िए न—चाहती तो नहीं थी, पर आना तो पड़ा ही !"

नवनीत लाल सम्हल गए, बोले, "आई हैं तो आपका घर है। नमस्ते ! कहिए कैसे कष्ट किया ? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

नवनीत लाल आगे बढ़े। कोट उतार कर उन्होंने टेबल पर पटक दिया, और खाली पलंग पर आराम की मुद्रा में बैठ गए। सिगरेट का धुआँ कमरे को व्याप्त करने लगा।

खड़ी हुई आरती को लक्ष्य करके उसने कहा, "बैठिए न आरती

देवी ! हरनाम, जरा चाय तो तैयार कर दे। देख, ज्यादा कड़ी न हो !"

हरनाम जब चला गया तो नवनीत ने फिर पूछा, "आपकी तबीयत तो ठीक है ?"

"आपकी दया से !" नीलम के स्वर का व्यंग्य छिपा न रहा, आरती ने भीत-दृष्टि से नीलम की ओर देखा।

नीलम ने कहा, "अभागिनी नारी, मेरी ओर भीत-दृष्टि से क्या देख रही हो ? आशा के सूत्र को पकड़कर तुम मरीचिका तक दौड़ी आई हो, जानते हुए भी क्या उस पानी के भ्रम को मैं सच समझ लूंगी ? तुम समझो, तुम बध्य हरिणी हो। यदि यह न हुआ तो, पुरुष की कठोरता का परिचय ही तुम्हें कैसे मिलेगा ? जीवन की कहानी नारी की समस्तता की कहानी है, पुरुष का क्षेपक उसे सदैव उसकी मौलिकता से च्युत करता है ! गृहस्थी की सोने की तीलियों पर लुब्ध होकर तुम स्वयं पिंजरे में फंसी हो, और मातृत्व की आवर्जना का भार कन्धे पर ढोकर अनवरत-सेवा से तुमने किसको प्राणदान दिया था ? प्रायश्चित करो आज उस भूल का, और यदि विश्वास न हो तो चढ़ाती रहो इस कठोर शिला पर अपने आँसुओं की अंजली !"

नवनीत का मुंह लाल होगया—कौन जाने लज्जा से, या रोष से अथवा शराब की गर्मी से, किन्तु संयत स्वर में सिगरेट की राख फर्श पर झाड़ते हुए वह बोला, "भाभी कहने से बुरा तो न मानेंगी न ?—मालूम देता है, आप ही को मुझसे कुछ काम है। आप निस्संकोच जो कुछ कहना चाहती हैं, कहें। कविता की भाषा मैं जरूर नहीं समझता। आशा है, आप मुझसे साफ-साफ बात कह सकेंगी !"

नीलम ही बोली, "साहस तो बहुत है नवनीत बाबू, साफ-साफ सुन सकेंगे ? कहते हैं कि बहुत जोर की आवाज से कान के परदे फट जाते हैं, परन्तु अबलाओं में वह बल ही कहाँ है ? कविता की भाषा के बारे में भी प्रवाद है कि वह हृदय के मर्म तक को बेध देती हैं, किन्तु यदि

आप इतने कड़े पत्थर हैं तो साफ-साफ ही कह दूं ?"

नवनीत ने कहा, "क्या मैं आपको यह बतला दूं कि यह पागलखाना नहीं है !'

"आपको देखकर भी जो यह ख्याल करे, वह पागल के सिवा क्या होगा ?"

"और यह भी कि यह एक शरीफ आदमी का घर है।"

"वह तो आपके मुंह की सुगन्धि ही परिचय दे रही है नवनीत बाबू !"

"मैं महिलाओं से जीभ नहीं लड़ाता ! अपने घर में मैं सब कुछ करनेके लिये स्वतन्त्र हूँ। यदि आवारा औरतों की तरह किसी इज्जतदार औरत के मेरे घर अचानक चले आने की मैं कल्पना नहीं करता, तो उसके लिये मैं दोषी नहीं हूँ !"

"दोषी क्यों होने लगे ? जो कसाई है, अगर वह गाय को मारे नहीं, तो खाए क्या ?—मगर, दूध पी सकने का अवसर पाकर भी, स्तन पर बैठी हुई जो जोंक खून चूसना ही पसन्द करती है, कसाइयत भी उसके लिए तो पुण्य ही है। उसे कोई क्यों दोष देगा ?"

"नारी की आँखों का अमृत क्यों नहीं कहती उसे ? परन्तु अपनी पराजय पर क्षुब्ध होकर दूसरों का मामला क्यों खराब करती हो नीलम देवी ! नवनीत स्त्रियों की माया को तुच्छ समझता है. गले लगने के अभिनय में वह उसके जहरीले दाँतों को भूलता नहीं एक बार किसी के प्रणयोपसर्ग को अस्वीकार करके क्या आज उसी की भर्त्सना के अभिनय में मैं उलझ सकूंगा ? समर्पण के लिये उत्सुक अपने चंचल मन को यदि आप नहीं दबा सकतीं, तो ठीक है, मुझे प्रवंचक कहकर सन्तोष प्राप्त करने का बहाना कर सकती हैं। परन्तु भाभी, क्या आप भी इसी लिये आई हैं ? यदि ऐसा ही हो तो मेरे निठल्लेपन का समय दूसरा है !"

क्रोध रोक कर नीलम ने कहा, "अपने पौरुष के दम्भ की बेशर्म

कहानी तुम मेरे मुंह से अच्छी तरह सुन सकोगे, "आरती की कातर-वाणी उसे प्रकट नहीं कर सकेगी। देखकर भी तुम न समझोगे कि इसी आरती के कपोलों पर अवसान होजाने वाले आँसुओं में तुम्हारे पौरुष का कितना बड़ा व्यंग छिप गया है! किन्तु अपनी अदम्य लोलुप-वृत्ति की कितनी बेगार तुम्हें ढोनी पड़ी है, यह मुझसे भी छिपी नहीं है। अधरलाल की समस्त भलाइयों को भूलकर जिस कृतघ्नता ने तुम्हें उस का प्राणान्तक शत्रु बना दिया, उसका विश्लेषण सुन सकोगे? पौरुष के पतन की सीमा अपनी आँखों देखना चाहते हो? जिस दिन यमराज की क्रूर दाढ़ों के भीतर तुम्हारे जीवन का अमृत हाहाकार कर रहा था, तब किसके मातृत्व की भीख पाकर तुम आश्वस्त हुए थे? उसी मातृत्व के सूखे कण्ठ को जहर से सिंचित करते समय तुम्हें आत्म-ग्लानि नहीं हुई? इसी आरती ने तुम्हें प्राणदान देकर इस रंगीन दुनिया में क्या फिर से नहीं भेजा था?—और इसी तरह न तुम उसका बदला चुकाओ कि तुम्हारे किये हुए पापों के लिये इसी आरती का पति अधरलाल तुम्हारी करतूत से फाँसी की सजा पाये? अपनी बात कहूँगी ही क्या तुमसे, आज तो तुम्हारे दुर्वाद का उत्तर देने का प्रयास भी अपने लिये घृणा की बात समझती हूँ।"

नवनीत—"आखिर घृणा कर सकीं, धन्यवाद! किन्तु भाभी, क्या आपका भी यही आरोप है? मेरा ख्याल है, आप तो सब बातें जानती हैं?"

नवनीत ने आरती की ओर भ्रूपात किया। नीचे झुकी हुई उसका आँखों से निकल-निकलकर आँसू फर्श को गीला कर रहे थे, नवनीत के सम्बोधन से वह प्रवाह बढ़ ही गया।

जवाब फिर भी नीलम ही ने दिया, "सब बातें मैं भी जानती हूँ नवनीत बाबू! जिस पौरुष की छलना को अपने दुर्बल कन्धों पर लादे फिरते हो, उसके पतन की दर्दनाक कहानी मुझसे भी छिपी हुई नहीं है। एक विवाहित पर-स्त्री के प्रति अपनी निष्फल-कामुकता का आश्रय

लेकर जिस पुण्य कार्य के तुम सम्पादक बने हो, कहो तो भारतवर्ष के इतिहास-लेखकों से कह दूँ कि उसके साथ तुम्हारा नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिख दिया जाय। सचमुच तुम्हारे पौरुष के गीत दुनिया भर के लोगों द्वारा गाने योग्य हैं !"

नवनीत कुछ उत्तर दे, उसके पूर्व ही अश्रु-विगलित स्वर में आरती ने नीलम को लक्ष्य कर कहा—"बस करो न बहन ! मैं भीख माँगती हूँ, यदि मेरी ओर से तुम प्रार्थना नहीं कर सकती, तो चुप तो रहो। इस विराट् दुःख के समय मैं किस के ऊपर क्या आरोप-अभियोग लादूँगी ! नवनीत बाबू, आप बीती हुई सब बातों को भूल जाइये। मैं आपके ऊपर अपने किसी दावे की बात नहीं कहती मैंने आपको कोई प्राणदान नहीं दिया, मैंने आपके साथ कोई भलाई नहीं की—और न मेरी आपसे कोई शिकायत ही है। मैं आपसे आँचल पसार कर दया की भीख माँगती हूँ कि आप किसी तरह मेरे पति को बचाइये। मुझे विश्वास है कि यह आपके लिये सम्भव है। मैं आपके अहसान को कभी नहीं भूलूँगी, यदि आप चाहें तो जन्म भर मैं आपकी नौकरानी बनकर रहूँगी नवनीत बाबू !"

नीलम ने व्यंग्य किया, "और आगे कहो—कहो कि मेरा सतीत्व भी तुम्हारे चरणों में अर्पित हो जायगा—शायद मान जाएं !"

नवनीतने फिर रोषारुण चेहरेसे नीलमकी ओर देखा, किन्तु क्रोधको रोककर उसने आरती से कहा, "तो शायद आप नहीं जानतीं कि प्रकृत हत्यारा मैं नहीं बल्कि अधरलाल हैं।— मर जाना तो कोई भय की बात नहीं, किन्तु एक न किये हुए पाप की बदनामी अपने सिर पर लाद कर मर जाना उतनी सामान्य बात नहीं है। यदि आप चाहें तो मैं आप को लिखकर दे सकता हूँ कि यदि अधरलाल को फाँसी की सजा प्राप्त हो तो उनके स्थान पर वह दण्ड स्वयं मैं भोगने के लिये तैयार हूँ। कहिये, इससे आप सन्तुष्ट होंगी !"

उत्तर फिर भी नीलम ने ही दिया, "यदि आप की इस उदारता

का लाभ उठाया जा सकता, तो आपको कष्ट ही क्यों दिया जाता ?—बल्कि स्वयं आरती या मैं खुद—स्त्री का जीवन ही आखिर क्या है ?—हम खुद अपने ऊपर अभियोग लेकर मर सकते थे ! क्या मुझे ही गवाही देनी पड़ेगी कि किस तरह किस शैतान के वशीभूत होकर तुमने अधरलाल को पुलिस के पंजे में दिया हैं ? मैं जानती हूँ कि हत्या अधरलाल ने की है, किन्तु साथ ही यह भी जानती हूँ कि यदि वे इस हत्या को सम्पन्न न करते, तो तुम्हारी ही हत्या अवश्यम्भावी थी।"

"क्या आपका भी यही उत्तर है भाभी ?"

आरती ने कहा, "देवरजी, जो बात सम्भव नहीं है, उसे मेरे सिर थोपने से क्या होगा ?—और यह तो आप ही अच्छी तरह सोच सकते हैं कि किस तरह उनकी रक्षा की जा सकती है !"

"दूसरा तरीका तो यही है कि मैं स्वयं हत्या का अभियोग स्वीकार कर अधरलाल के स्थान पर फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाऊं।—और अधरलाल के प्रति अपनी उत्कट भक्ति के कारण शायद नीलम देवी भी इसी तजबीज को पसन्द करें। किन्तु अधरलाल के पीछे विधवा होने के लिये जिस तरह आरती देवी हैं, उसी तरह नवनीतलाल के पीछे भी तो मायादेवी का वैधव्य है। मेरा ख्याल है कि आप दोनों से यह बात छिपी नहीं है। तब किस कारण से अधरलाल को जीवित रखने का अधिकार हो और मुझे नहीं—खास कर तब, जब कि हत्या करने वाले अधरलाल हैं !"

आरती उत्तर नहीं दे सकी। कुछ क्षण बीत जाने पर नीलम ने कहा, "माफ करना, जवाब देना नहीं चाहती थी, किन्तु तुम्हारी बातों से चुप रहते भी नहीं बनता। यह तो तुम स्वीकार कर ही चुकी हो कि तुम्हारे ऊपर शैतान सवार है। माया के साथ तुम्हारा जिस तरह की धोखाधड़ी का व्यवहार रह चुका है वह किसी से छिपा नहीं। मर कर तुम उसे विधवा बना जाओगे या मुक्त, किन्तु उस लज्जास्पद कार्य का आधार लेते हुए भी शर्म से तुम्हारे नेत्र झुके नहीं ! और यदि जीवन

इतना ही प्यारा है, तो मैं उपाय बता सकती हूँ—वही, हत्या की एक स्वीकृति लिख दो, और दूर, जहाँ कोई पहचान न सके चले जाओ। तुम्हारे घर पर माँ नहीं, बाप नहीं—मैं जानती हूं पत्नी तक नहीं, तुम सरलता से यह कार्य कर सकोगे। यदि कहोगे तो आठ-दस हजार का प्रबन्ध भी तुम्हारे लिए किया जा सकेगा।"

नवनीतने मानों दो-चार मिनिट सोचकर कहा, "नीलमदेवी, जितनी नफरत आप मेरे ऊपर खर्च कर चुकी हैं, अपने प्रस्ताव पर क्या उससे मेरी सहमति खरीद सकेंगी? किन्तु मैं स्त्रियों जैसा ओछा नहीं हूँ। आरती देवी के एक अहसान की बात आप बारम्बार जीभ पर लाती रही हैं, किन्तु इस अहसान का कितना कुछ मुझ पर शेष है, यह उन्हें मालूम है, और आश्चर्य है कि तुम्हें ही क्यों नहीं मालूम है!—किन्तु खैर, आठ-दस हजार की मुझे कामना नहीं, किन्तु इस प्रस्ताव को स्वीकार करते समय एक क्षति पूर्ति तो मैं चाहूँगा ही!"

"वह क्या" दोनों ने एक ही साथ पूछा।

"नीलम देवी ने याद दिला कर मुझ पर कृपा ही की है कि मुझ पर शैतान सवार है? और भाभी, व्यंग्य ही में सही, यह भी तो उन्होंने कहा था कि आप अपने सतीत्व की शर्त भी लगा दें। कविता की भाषा मैं नहीं जानता। यही जानता हूँ कि रेगिस्तान में पानी की चर्चा करके किसी की प्यास को बढ़ाया ही जाता है। साफ ही कह दूं न! मेरी शर्त यही है कि आरती देवी भी मेरे साथ चलने को प्रस्तुत हों तो मैं स्वयं न किये हुए पाप का बोझ अपने सिर पर ले सकता हूँ।"—और यह कहकर नवनीत ने नितान्त आत्मतुष्टि के साथ सिगरेट को मुँह में ठूँस लिया। आरती को काठ मार गया; जमीन से अपनी आँखें उठाकर वह नवनीत की ओर देखने लगी। उन आँखों में अश्रु न थे, प्रलय की बिजली भी न थी—था केवल एक दीर्घ सीपी का जड़ आकार, और उनमें नीली अचंचल पुतली। मुँह भी उसका तनिक आश्चर्य और अमित निराशा के कारण गोल होकर खुल गया था। हृदय की समस्त

कामनाएँ मानो उस पिंजर में से मुँह के द्वारा बाहर निकल पड़ने के लिए उत्पीड़ित हो रही थीं।

—और उधर नीलम के ओठों पर हंसी बिखर गई—घृणा की, व्यंग की, वह पौरुष के दम्भ को चुनौती थी, नारीत्व की प्रवंचना पर नग्न उपहास था। नवनीत ने दोनों के हृदय के भावों को समझा, वह निर्विकार-भाव से सिगरेट पीता रहा।

दो-चार क्षण बीत जाने पर नीलम ने आरती से कहा, "तो फिर मुझे क्या आज्ञा होती है? मैं जाऊं? कहोगी तो इनकी लिखित स्वीकृति लेजा सकूँगा।"

आरती की वाणी कील-सी गई। मुँह का धुआँ छोड़ते हुए नवनीत बोला, "और नीलमदेवी, आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि मेरा स्वीकृति का प्रयोग आज से कम-से-कम दस दिन के भीतर नहीं किया जा सकेगी।"

"बल्कि आप चाहें तो उसी दिन उसका प्रयोग किया जाए जिस दिन अधरलाल को फाँसी दी जाने वाली हो। यदि नाटकीय ढंग से उनका उद्धार हुआ तो आपका नाम भी दुनियाँ में फैल जायगा। तब तक आप धुर-दक्षिण में पहुँचकर आरती से विवाह तक कर सकेंगे?"

"ओ० के०। भाभी, अब केवल आपके 'हाँ' करने भर की देर है। लिखूँ मैं अपनी स्वीकृति?"

"आपकी लिखित स्वीकृति का प्रयोग कभी न हो सकेगा नवनीत बाबू!" कहती हुई काठ के शरीर जैसी आरती एकदम उठ खड़ी हुई। "मेरे पति को मुझ से अधिक कौन जानता है?— किसी मिथ्या का आश्रय लेकर आखिर वे मेरे अभाव में जीवित रहना भी पसन्द न करें।"

नवनीत ने कहा, "और शायद उनके जीवित रहते मेरी याचना पर भी आपका ध्यान नहीं जायगा। चाटूखोरों ने नारी को सर्वस्वदान की मूर्त्ति कहा है, पर मुझ से अधिक कौन जानता है कि वे निपट स्वार्थ

की मूर्त्ति, सर्वाहारा चण्डिका हैं ! वे भीख माँग करके भी, प्रेम का अभिनय करके भी दूसरों के प्राणों को डसती रहती हैं। खूब हो दया की, स्नेह की और छल की मूर्त्तियो !! और क्या कहना है ?—

नवनीत भी उठ खड़ा हुआ। नीलम कुछ न बोली। आरती ने कटे हुए वृक्ष की भाँति नीचे फर्श पर प्रणिपात होकर नवनीत के पैर पकड़ लिए, और अश्रु-रुद्ध स्वर में बोली, "मेरे सतीत्व को न माँगिए लाला जी, आप और जो कुछ कहेंगे, मैं उसे दे देने का प्रयत्न करूँगी। आखिर सतीत्व देकर भी तो मैं अपने पति को नहीं बचा सकूँगी। मैं आपकी शरण हूं नवनीत बाबू, मेरी रक्षा कीजिए !"

सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए नवनीत ने क्रोध-मिश्रित हास्य के साथ कहा, "सतीत्व देकर भी नहीं बचा सकती ? तो फिर उन्हें कौन बचा सकता है ? सती वृन्दा की कथा तो जानती हैं न ? उसने भगवान् के निकट अपना सतीत्व देकर देवताओं की रक्षा की थी, परन्तु दुर्भाग्यसे उसका पति राक्षस था, यदि वह देवता होता तो ? परन्तु आपतो उस संस्करण में विश्वास ही नहीं करतीं, तब शायद नीलम बाई की चपल बुद्धि आपको कोई मार्ग सुझा दें !"

नवनीत ने बल पूर्वक अपने पैर छुड़ा लिए, और वह शीघ्र ही नीचे उतर गया। विशीर्णा नारी के तप्त अश्रुओं से फर्श की भूमि सिक्त होती रही, और दूसरी ओर अग्निमय दृष्टि से देखती हुई नीलम का उत्तप्त श्वास समस्त-सृष्टि को जला देने का निष्फल संकल्प करता रहा।

कुछ समय की नीरव शान्ति के बाद नीलम ने उठकर आरती को उठाया और कहा, "उठो अभागिनी बहिन, हरनाम आता ही होगा—कुछ अच्छा न मालूम देगा। हम लोग चलें।" उसने आरती का मुँह पोंछ दिया, तथा उसके वस्त्र भी ठीक कर दिए। फिर दोनों ही धीरे-धीरे नीचे उतर गईं। जुआँरी का शेष दाव भी समाप्त हो गया।

संध्या होने को थी। चतुर पोस्टमेन अपने अफसर को आनन्द

मनाने के लिए छोड़कर स्वयम् चिट्ठियाँ बाँटने के लिए, बस्ती में चल दिया था। पोस्ट आफिस को बन्द देखकर नवनीत बाबू की इच्छा न हुई कि लेजर की जोड़ पूरी करलें। अतः वह भी घर के बाहर निकल गए, अवश्य ही घूमने के लिए, हालाँ कि समय तब भी घूमने के योग्य न था।

पास ही पान की दुकान से एक और नया युवक उठा, और नवनीतलाल के पीछे हो लिया। मानपुर के लिए यह व्यक्ति नया है, पर मेरे पाठक इसे जानते हैं, वह है मथुरा के अराजक-दल का मूक चपरासी लछमन।

जैसे ही नवनीत ने सीधी सड़क पकड़ी, लछमन एकाएक गायब होगया, और गायब होने के पाँच ही मिनट बाद पुनः प्रकट हुआ, एक अंग्रेज-महिला के साथ। नवनीत अपने आप में खोया हुआ धीरे-धीरे चला जा रहा था, इसलिए उस बड़े बड़ के वृक्ष के पास पहुंचने तक इन दोनों ने उसे जा पकड़ा। पाठक इस वृक्ष को भी पहचानते हैं। नवनीत को एक बार वे इसी वृक्ष के नीचे एक ग्रामीण युवती चन्दा के साथ देख चुके हैं।

नवनीत के हृदय की दुराशा घनीभूत हो उठी थी, वह पथ हीन धूमकेतु-सा निरुद्देश्य घूम रहा था। वह वट वृक्ष के नीचे ही बैठ गया किन्तु तब भी स्थूल जगत से उसकी चेतना पृथक बनी रही। महिला और उसका साथी भी वट वृक्ष के नीचे आ खड़े हुए, इसे नवनीत देख कर भी नहीं देख पाया।

युवती वृक्ष के तने के पास नवनीत की पीठ की ओर आकर खड़ी होगई। एकाध मिनट उसका मूक संघर्ष देखकर उसने अंग्रेजी में पूछा—"आपके मौन में बाधा डाल सकती हूं?"

उसी ओर मुँह रक्खे हुए नवनीत बोला, "क्या मुझे सम्बोधन किया जा रहा है?"

अंग्रेजी ही में बात चल पड़ी। "क्या मैं जान सकती हूं कि मुझे

किसके साथ बातचीत करके सौभाग्य प्राप्त हो रहा है ?"

"एक मामूली से पोस्टमास्टर से बात करने का सौभाग्य नहीं कहते कुम्—कुमारी कहूँ या श्रीमती ?"

नवनीत ने आँखें फेरीं। युवती ने उत्तर दिया, तनिक मुस्करा कर—"कुमारी ही कहिए !"

"धन्यवाद !"

"क्या मुझे मि० नवनीतलाल व्यास से बातचीत करने का सम्मान प्राप्त हो रहा है ?"

"सम्मान या असम्मान—पर मुझे ही नवनीतलाल व्यास कहते हैं। कहिए, क्या सेवा कर सकता हूं मैं आपकी ?"

"केवल आपके दर्शन करना चाहती थी। आपके बारे में बहुत कुछ सुना था, आज मेरी इच्छा सफल हो गई।"

"मेरे बारे में बहुत कुछ सुना है ?—कभी आपको मानपुर में तो नहीं देखा !"

"जी नहीं; मैं लखनऊ से आई हूँ !"

"लखनऊ ?—यदि आप बुरा न मानें, आपका नाम जान सकता हूं !"

"मुझे मिस जेन ज्यॉफ्री कहते हैं—मैं मिस शर्ली ज्यॉफ्री की छोटी बहिन हूँ !"

"शर्ली की छोटी बहन ? आपको कभी देखा नहीं, न शर्ली ही ने आपके बारे में कभी कुछ कहा !"

"मैं इण्डिया अभी ही आई हूं। बचपन में यार्कशायर ही में रही। मुझे आश्चर्य होता है कि शर्ली ने आपसे कुछ क्यों नहीं कहा। किन्तु वह बराबर ही मुझे आपके बारे में लिखती रही है !"

"शर्ली ज्यॉफ्री—यानी मिसेज रोगर्स की छोटी बहन हैं आप !"

"जी हाँ, बड़ा दुर्भाग्य है मिस्टर रोगर्स इसी तालाब में नाव की दुर्घटना में डूब गए। शर्ली खुद भी डूब ही गई थी, किन्तु वह बाल-

बाल बची है, आपको तो सब किस्सा याद ही होगा !"

नवनीत विचार मग्न हो गया। इस मुकद्दमें से उनकी चिन्ताएँ दुहरी थीं। किट्सन का हत्यारा तो वह नहीं था, और इस दिशा में अधरलाल का कण्ठ आगे करके वह सरलता से बच गया था। किन्तु एक दूसरा पहलू और है। इस मामले में वादी है शर्ली गवाह है रेडियर और प्रतिवादी है नवनीतलाल। जब तक किट्सन की हत्या का भार नवनीत के ऊपर है तबतक शर्ली की प्रतिहिंसा का एक ही रूप सम्मुख रहेगा, किन्तु यदि किट्सन की हत्या के आरोप से वह बच जाता है, तो क्या प्रतिहिंसामय शर्ली नवनीत के ऊपर अपनी हत्या के प्रयत्न का आरोप नहीं डालेगी ? तब अधरलाल को फाँसी तक पहुँचा कर भी नवनीतलाल को मुक्ति कहाँ मिलेगी ? आवश्यक है कि शर्ली को रंगभूमि से हटाया जाए ! यदि आरती साथ चलने के लिए तैयार हो जाती तो क्या बात थी ! किन्तु वह तो बात ही गई। यह शर्ली की छोटी बहन अब क्या चाहती है ?

नवनीत ने कहा, "मुझे सचमुच यह जानकर प्रसन्नता हुई कि शर्ली बच गई मिस जेन—"

"आप मुझे जैनी कहिए न—उसके मद्रासी डाक्टर मित्र ने उसे बचा लिया। लेकिन—"

"लेकिन क्या !—वे स्वस्थ तो हैं न ?—मैं उनके लिये बहुत दुःखित था। शायद आप जानती हैं कि हम सहपाठी रह चुके हैं।"

"जी हाँ, मैं जानती हूं। शर्ली मुझे बराबर आपके लिए लिखा करती थी। किन्तु अभी तो वह बहुत दुर्बल है। मेरी ही देख-रेख में है।"

"आप ही की देख-रेख में ? खूब ! लखनऊ ही है न ?—देखिए, नौकरी की भी क्या बेबसी है। इतना पास होते हुये भी अपने मित्र को नहीं देख सका। अब जरूर प्रयत्न करूँगा। अच्छा आपने यह तो नहीं बताया कि आपने कैसे कष्ट किया ?"

युवती ने एक कटाक्ष किया, साधारण मनुष्य को पागल बनाने के लिये वह कटाक्ष काफी था, किन्तु नवनीत के हृदय में उसके प्रति घृणा भर गई। युवती तभी उसके सामने जाकर वृक्ष की एक जड़ पर बैठ गई और मुस्कराकर बोली—

"बैठ जाने के लिये मुझे माफ कीजियेगा। मैं अधिक खड़ी नहीं रह सकी।"

"ठीक है, ठीक है, माफी तो मुझे माँगनी चाहिये थी। आपको बैठने के लिये मुझे बहुत पहले ही कह देना चाहिये था। कहिये, कैसे कष्ट किया आपने?"

"मि० व्यास, मुझे शर्म लगती है। वह बात कहकर कहीं मैं आप की घृणा की पात्र न बन जाऊँ।"

नवनीत सतर्क हुआ, कहीं इस कथन से उस कटाक्ष का सम्बन्ध न हो। जब कि उसके मस्तिष्क को बहुत अधिक शांति की आवश्यकता थी, तब यह नई उलझन कहाँ से पैदा हो गई?—उसे युवती की बात सुनना आवश्यक हो गया।

युवती ने कहा, "तालाब से बच जाने के बाद शर्ली ने आपके बारे में तरह-तरह की बातें कहना शुरू की हैं। वह कहती है कि तालाब में डूबने की घटना आकस्मिक नहीं थी, बल्कि वह एक सुनिश्चित षड्-यन्त्र था, और आपने ही मि० रोगर्स की हत्या की तथा उसे पानी में डाल दिया। उसने तो यह मुकद्दमा कोर्ट को भी दे दिया है। आप नहीं जानते?"

नवनीत के बदन से पसीना छूटने लगा, उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने कहा, '-जानता तो हूं, किन्तु क्या वह यह कहती है कि मि० रोगर्स का हत्यारा मैं हूं तथा उसको भी मैंने ही पानी में डाला है?—यही बयान दिया है क्या उसने?"

"अभी नहीं दिया है, किन्तु यही बयान वह देने की कह रही है। डाक्टर रेडियर उसकी ओर से गवाही दे देगा!"

"और आप भी।" घृणा भरे स्वर में नवनीत ने कहा।

युवती ने लज्जा का नाट्य करते हुए नीची दृष्टि से कहा, "नाराज हो गए? मैंने पहले ही कहा था कि आप नाराज हो जाएंगे! मैं गवाह दूंगी, किन्तु शर्ली की ओर से नहीं, आपकी ओर से।"

"किस बात की?"

"आपकी निर्दोषिता को।—मैंने मनोविज्ञान पढ़ा है महाशय! जो हत्यारे होते हैं, उनकी सूरत छिपी नहीं रहती। या तो शर्ली आपको समझ न पाई, या मालूम देता है कि वह आपसे खार खाए है।"

"आप ठीक कहती हैं मिस ज्याफ्री!"

लेकिन महाशय! यह बताइए, आपने अपनी रक्षा का क्या उपाय किया है?—वह अंग्रेज-लड़की है और उसका बयान अंग्रेजों की सल्तनत में कभी हलका साबित न होगा!"

यही तो नवनीत नहीं सोच पा रहा है। बोला, "मुझे तो कुछ सूझता नहीं। मगर—"

"कहिए?"

"आप शर्ली की बहन; मैं आपके शत्रुपक्ष का! आप ये सब बातें मुझसे पूछ क्यों रही हैं?"

युवती ने एक और कटाक्ष-क्षेप किया, और बोली "देखिए, अंग्रेज लड़कियाँ भारतीय लड़कियों से बहुत अधिक स्वतंत्र होती हैं, कम-से कम उनका विचार-स्वातंत्र्य तो अद्‌भुत वस्तु है। विचार स्वातंत्र्य में पारिवारिक स्नेह-सम्बन्ध भी हम लोगों में बाधा नहीं डाल सकता! कहीं आप मुझे मेरे विचार स्वातंत्र्य से गलत तो नहीं समझ बैठिएगा?"

"मैं अंग्रेज जाति को बहुत कुछ जानता हूं, और इस गुण के लिए उनके प्रति मेरे हृदय में काफी सम्मान है।"

"धन्यवाद! मैं भी एक ऐसी ही अंग्रेज कन्या हूँ, और यदि किसी बात को मैं किसी रूप से स्वतंत्रता के साथ निर्धारित करती हूं, तो

उसके लिए किसी के निकट लज्जित नहीं होती।"

"कहे जाइए!"

"आपको आश्चर्य तो जरूर होगा, बल्कि आप शायद विश्वास भी न करें, किन्तु सत्य तो यह है नवनीत बाबू, कि इस थोड़ी-सी देर के परिचय ही में आपको चाहने लग गई हूं!" और सचमुच ही यह कहते-कहते ही युवती के गाल लाल हो उठे।

नवनीत ने कहा, "आप कहती जाइए, मैं सुन रहा हूं!"

नवनीत की आँखों में आँखें डाल कर युवती ने पूछा, "केवल सुन रहे हैं? क्या इस समय आप कुछ कहना नहीं चाहते?"

"सब कुछ सुन लेने के बाद!"

"मैं जानती हूं। शर्ली ने आपके चरित्र की उस कठोरता का भी उल्लेख किया था। आप शायद ऐसी बात बहुत ही अस्वाभाविक समझते हों। सच तो यह है कि मेरी बहन ने जब से आपके बारे में मुझे पत्रों द्वारा परिचय कराया था, तभी से आपके बारे में छिपे-छिपे ही मेरे हृदय में आसक्ति का जाल बुनता गया। जो कुछ हो, जबकि मैं आपको चाहने ही लग गई हूं, तो फिर छिपाने से क्या लाभ? आपको सभी बातें बतला देना उचित मालूम देता है। मेरी बातों से यह तो आप जान ही गए होंगे कि मेरी बहन में और मुझ में प्रारम्भ में बड़ा स्नेह था, वह मुझसे अपना कोई रहस्य छिपाती न थी।"

नवनीत ने सिर हिला दिया।

"हमारा यह गम्भीर प्रेम बना रहता, किन्तु एक दुर्घटना होगई, और हम दोनों भीतर ही भीतर एक दूसरे के शत्रु होगए!"

"वह कौनसी दुर्घटना है मिस जेन?"

"जेनी कहिए न।"

"कहूंगा; प्राकृतिक प्रेरणा तो होने दो!"

"हाउ प्रेटी यू आर! (तुम कितने सुन्दर हो)" नवनीत कुछ न बोला, उसने केवल मस्तक हिला दिया।

मिस जेन ने कहा, "आपसे क्या छिपाऊँ, यार्कशायर में एक मि० विलियम थे, माफ कीजिएगा, मेरा उनसे एंगेजमेण्ट (सगाई) होगया था। एंगेजमेण्ट के कुछ हो दिनों बाद सौभाग्य से विलियम को डर्बी का पहला इनाम मिलगया। बस, शर्ली की लार टपक पड़ी, और बीच ही में उसने उससे कोर्टशिप शुरू कर दी।"

"अच्छा, और विलियम उसके चंगुल में फँस गया ?"

"आदमियों का क्या है नवनीत, वे बड़े ही अस्थिर होते हैं। किन्तु मैंने भी फिर कभी उसका नाम नहीं लिया, यद्यपि उसके लिए मेरे हृदय में सहानुभूति का कभी अभाव नहीं हुआ। हाँ, शर्ली के प्रति मेरा हृदय अवश्य विद्रोही हो गया। विद्रोह का यह भाव और भी तीव्र हो उठा तब एक रात को विलियम की मृत देह ही उसके कमरे में मिली, और उनका सब पैसा गायब होगया। मैं सबूत दे सकती हूं कि उस गिरोह में शर्ली भी शरीक थी। एक बार तो मेरी प्रतिक्रिया ने यहाँ तक मुझे विश्वास किया कि मैं कानून के द्वारा शर्ली का मस्तिष्क ठीक करवा दूं, किन्तु परिवार की बदनामी के विचार से इस इरादे को छोड़ देना ही मैंने ठीक समझा। और क्या करती थी मैं ?"

"ठीक कहती हो !"

विलियम की हत्या ने मेरे दिल पर चोट की थी, इसलिए पिता के सिविल सर्विस में नियुक्त होकर भारत आने पर भो मैं उनके साथ न आई, बल्कि वहीं कालेज में भरती होकर मैंने आगे पढ़ने का सोचा। शर्ली यहाँ पर चली आई !"

"अब समझा कि शर्ली ने मुझे आपके बारे में कुछ क्यों नहीं बताया। शायद उसे खतरा था कि विलियम का गड़ा मुर्दा न उठ खड़ा हो !"

"बिलकुल ठीक कहते हैं आप ! चिट्ठियों में उसने अवश्य अपना रिश्ता फिर मुझसे कायम किया। और बहन ठहरी, मैं भी पिछली सभी बातें भूलकर इस दूर विदेश में बड़ी बहन की ओर आकर्षित हो गई।

आज मालूम देता है कि यह आकर्षण भी शायद उसके पत्रों प्रति इसलिए था। उसमें आपका जिक्र रहता था। मुझे याद है कि जिस पत्र में आपका जिक्र न होता, वह मैं बेचैनी और क्रोध के मारे फाड़ डाला करती थी।"

"मैं आपकी कृपा के लिए आपका कृतज्ञ हूं। किन्तु अब तो मैं आपकी बहन का शत्रु हूं। शायद आप भी ऐसा ही मानती हैं।"

"नहीं डीयर नवनीत; मैंने कहा न, कि मैं अंग्रेज लड़की हूं, और अपने निर्णय को मैं सुरक्षित रखती हूँ। मुझे फिर अपनी बहन से उतनी ही नफरत हो गई जब मैंने एक पत्र में पढ़ा कि आपके लिए उसका स्नेह तो एक खिलवाड़ मात्र था, और उसने इसलिये किट्रून राग़र्स से विवाह करना निश्चित कर लिया था। आज जब आपको देखती हूँ तो समझ में आता है कि उसके आरोप कितने मिथ्या हैं, और वह कितनी झूठी है।"

"फिर भी आपकी बहन है जेनी !"

"देखिये; मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अगर एक भले आदमी को कोई अकारण कष्ट में डालना चाहे, तो मुझे उसका प्रतिविधान करने की पूरी इच्छा हो जाती है। शर्ली के प्रति मेरे हृदय में पहले से ही घृणा संचित हो रही है और उससे भी बढ़कर बात यह है कि आपके लिये मैं अपने आप में बहुत उत्साह पा रही हूँ। मैं आप के उपयोग में आना चाहती हूँ, चाहे उससे मेरा जीवन ही खतरे में क्यों न पड़ जाए !"

व्यंग्य से मुस्कराकर नवनीत ने कहा, "आपकी इस कृपा के लिए मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगा जेनी !"

आप हँसकर मेरा अविश्वास न कीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि आपके प्रति मेरा प्रेम अविचलित होगा। मैं आपके लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ। और मेरी इच्छा यही है कि यदि आप अस्वीकार न करें, तो आपके प्रेम का एक अंश मुझे भी प्राप्त हो !"

"मेरा सौभाग्य है कि आप मुझे इस योग्य समझती हैं। किन्तु

आप तो जानती ही हैं कि मेरा जीवन इस समय कितना खतरे में है। जब कि मेरे जीवन ही का कुछ ठीक-ठिकाना नहीं, तो मैं आपको कोई विश्वास दिला ही कैसे सकता हूँ।"

आपकी रक्षा का भार मैं ले सकती हूँ। दो ही तो रोड़े हैं आपके मार्ग में? एक तो शर्ली और दूसरा वह मद्रासी डाक्टर! या और कोई?"

"नहीं!"

"उन दोनों का जीवन मेरे हाथ में है! शर्ली बीमार है, और मेरी देख-रेख में है। किन्तु वह मेरी बहन है, और अगर उसकी जमानत मैं दूं, तो क्या आप उसे मानेंगे नहीं? सच तो यह है कि यदि रेडियर का किस्सा किसी तरह समाप्त हो जाए तो शर्ली का कोई महत्व ही न रह जायगा! रेडियर आठों पहर उसके पास रहता है। यदि आप सहायता दे दें तो उसे बल से अलग हटाया जा सकता है नहीं तो छल से उसे हटाने का जिम्मा मैं लेती हूँ। रही शर्ली, कहिए तो उसे भी आप के सुपुर्द कर दूँ?—उसके स्वास्थ्य पर मेरा पूरा अधिकार है।"

नवनीत को मालूम दिया कि आकाश का चाँद उसके हाथ लग गया। बुरा हो इस प्रेम का, नारी इसके लिए क्या-क्या नहीं कर सकती। नवनीत को सोचना पड़ा कि उसे प्रेम का अभिनय करना पड़ेगा, यदि उसे जीवित रहना है, और यह आकाशीय सहायता ही उसके लिए सब से अधिक अच्छी है। किन्तु इसे सम्पन्न किस भाँति किया जाए?

नवनीत को सोचते देखकर युवती बोली, "मैं चाहती हूँ कि इस दिशा में जो कुछ किया जाये, वह शीघ्र ही कर डालना चाहिये। आप क्या कहते हैं। आज रात को आप मेरे साथ लखनऊ नहीं चल सकते? अपनी आँखों से आप सब कुछ देख लीजिए, आपको कम से कम मेरा विश्वास तो हो जाएगा। बल्कि यदि सुयोग हो तो हमारा कार्य आज मध्य रात्रि ही से प्रारम्भ हो जाये। मेरी कार साथ है।"

"नहीं जेनी, यह इतना सरल नहीं है। पुलिस मेरे पीछे घूम रही

है, इस समय भी कहीं से कोई मुझे देख न रहा हो। दूसरे कल तो मेरे बयान होने वाले हैं !"—कहकर नवीत ने चारों ओर देखा, कहीं पुलिस की गन्ध तो नहीं है, कुछ ही दूर खड़े हुए लछमन को देख कर पूछा, "यह तो आपका नौकर है न ?"

जेनी ने कहा, "उससे न डरिए; हिन्दुस्तानी ब्टलर कुछ नहीं जानता। थोड़े दिनों तक तो बड़ा मुश्किल रहा, यहाँ पर नौकर तो काम लायक मिलते ही नहीं। हाँ तो, पुलिस का मामला भी मेरे ऊपर छोड़ दीजिये। कहें तो अपने पिता से कहकर यह आफत टलवा दूं ! पर नहीं इस मामले को तो गोपनीय ही रखना चाहिये। रहा सवाल आपके बयान का। तो ठीक है, कल रात को सही !"

"किन्तु पुलिस का प्रबन्ध क्या करोगी ?"

"साधारण-सा ! पुलिस का एक कर्मचारी वेतन पाता है अठारह रुपये महीना, दस गुना वेतन एक साथ पाने पर वह आपके इशारे पर नाचने लग जायगा। नहीं ?—तो फिर कल की तै रही। मैं यहाँ अधिक ठहर नहीं सकती।"

"कल रात को प्रबन्ध हो जायगा ?—कार आपकी साथ है न !"

"जी हाँ। तो फिर तय रहा। कार ही कार से हम लखनऊ पहुँचेंगे। यदि आप उसी रात को लौटना चाहें तो मेरी कार आपको दूसरे दिन आफिस टाइम के पहले यहाँ पहुँचा देगी। पर नहीं, एक दिन तो आपको यहाँ से गैरहाजिर रहना ही पड़ेगा। आपका पोस्टमैन कैसा है ? उससे प्रबन्ध नहीं हो सकता ?"

"हो सकेगा डोयर !"

युवती के गाल फिर लाल हो उठे; धड़कते हुए हृदय को सम्हाल कर उसने कहा, "तो सब कुछ निश्चित हो गया। कल मैं आपके दर्शन नहीं कर सकूंगी। हमें एक-दूसरे से घनिष्टता नहीं प्रकट करनी चाहिये। ये लीजिये, दो सौ-सौ के नोट, शायद पोस्टमैन को राजी करना पड़े।

कल रात को बारह बजे तैयार मिलिएगा ! आपकी वह रात मेरे सिपुर्द रहेगी।" और उसने फिर कटाक्ष किया।

नवनीत ने देखकर भी अनदेखा कर दिया, किन्तु बोला, "आप यहाँ ठहरी कहाँ हैं ? कैसा दुर्भाग्य है कि जिसके साथ भविष्य में मुझे जीवन बिताने का प्रश्न सोचना है, उसे मैं अपने घर टिका भी नहीं सकता। मित्रता का कैसा बढ़िया श्रीगणेश है !"

"ना, आप चिन्ता न कीजिये। होटल की तलाश की, पर वह नहीं मिला। मैं क्लब में बिल्कुल ठीक हूँ। नौकर साथ है ही ! तो मैं चलूँ ! मुझे अभी बहुत काम करना है। यही पता लगाना बड़ा कठिन है कि आपके पीछे कौन पुलिस लगी हुई है।—लेकिन डार्लिंग, कितनी खुश हूँ आज मैं !"

"मेरी प्रसन्नता भी कम नहीं है जेनी ! कैसे कहूँ कि जाओ ! कल का समय मेरा कैसी बेचैनी से कटेगा, यह मैं ही जानता हूं ! दिल नहीं होता कि तुम्हें जाने दूं। किन्तु परिस्थिति विवश कर रही है। अच्छा कल रात को राह देखूंगा, बड़ी जोरों से—"

"मैं जल्दी आने की चेष्टा करूंगी। ताकि कुछ समय हम यहां पा सकें !"

"ना ना, जल्दी नहीं; मेरा पोस्टमैन दस-ग्यारह बजे बल्कि बारह बजे तक तो सोता ही नहीं। अगर कहीं उसने देख लिया—"

"अच्छी बात है बारह बजे ही सही !"

इसके बाद दोनों ने बड़ी सरगर्मी से हाथ मिलाए, और युवती अपने नौकर के साथ शहर की ओर रवाना होगई। नवनीत उसकी ओर स्वप्न की माया में खोया हुआ, जब तक वह रुमाल हिलाती हुई दिखती रही, देखता रहा। इसके बाद एक बार और आज के उत्तरार्द्ध की घटनावली का सिंहावलोकन करता हुआ हँसकर अपने आप से बोला, "काँटा निकालने के लिये काँटे ही की खोज करनी पड़ती है। एक बला को हटाने के लिये दूसरी बला का आधार लेना पड़ता ही है। यदि शर्ली

या रेडियर अलग हटाए जा सके, तो जेन तो नारी की सभी दुर्बलताओं को लेकर मेरे सामने खड़ी है, उसे हटाते क्या समय लगेगा ? प्रेम के हवाई किले की आशा लेकर आगे बढ़ने वाले के लिये इस विश्व आँसू के सिवा पाने को और है ही क्या ?"

उधर मिस जेन ज्याफ्री उर्फ मंजरी देवी अपनी विजय पर मुस्कराती हुई अपने डेरे पर गई, क्षणभरके लियेउसने अराजकदलकी सभानेत्रीको स्मरण किया, उसकी बुद्धि कितनी विशाल है, उसका बताया हुआ मार्ग को निरापद मिल गया—उसका तीर लग गया। रुपये के दाने पर पुलिस के मुर्गे फंस गए। कार थी ही। मि० व्यास अनायास ही अराजकदल के अतिथि हो गए !

(२४)

अंधेरी रात के बारह बजे थे। गम्भीर रात्रि की सांय-सांय सारे मानपुर को ढांके हुए थी। म्युनिसिपैलिटी के लालटैन भी तब मिट्टी के तैल की कमी के कारण नहीं जलते थे। भयानक अंधेरे में आकाश में चमकनेवाले तारे भी मानों किसी दानव के कोढ़ जैसे दीखते थे। हवा भी मानों कहीं दुबक कर छिपी पड़ी थी।

तभी पोस्ट आफिस के पिछवाड़े एक काले रंग की बढ़िया 'रोल्स-रायस' कार आकर खड़ी हो गई। उसका काला रंग रात्रि की कालिमा में ऐसा घुलमिल गया कि लाइट बन्द हो जाने पर बिना ठोकर खाए किसी को उसका पता लग ही नहीं सकता था। आवाज भी उसकी कुछ नहीं—निशीथ की वह भयानक शांति, मोटर के प्रकाश से चमक कर पंख फड़फड़ाने वाले एक उल्लू के द्वारा ही भंग हुई। फिर जैसे ही उसका प्रकाश बन्द हुआ, कि वही मृत्यु की घन कालिमा पहले से भी अधिक सघन होकर चारों ओर फैल गई।

अपने कमरे में नवनीतलाल तब भी जाग रहा था। शत्रु-शिविर में जा रहा है, इसलिये प्रयत्न करके उसने एक पिस्तौल का प्रबन्ध भी कर

लिया था। इसके अतिरिक्त साथ में और कुछ ले जाने की जरूरत न थी। दूसरे ही दिन तो उसे लौट आना था,दूसरे दिन न भी हो तो भी तीसरे दिन तो वह कभी न ठहरेगा। उसके स्वयं के बयान आज दिन को हो चुके हैं। अधरलाल की ओर से तो उसने सब बातें अपनी रक्षा की बयान कर दी है। अधरलाल स्वीकृत करे या न करे! उसका बयान भी आज के छठे दिन हो रहा है। तब तक तो वह बहुत कुछ बाधा पार कर चुकेगा। इसी पेशी पर रेडियर और शर्ली के भी उपस्थित होने की सम्भावना है। उनके बयान के लिये शायद और कोई अगली तिथि डाली जाए। किन्तु, यदि इस पेशी तक ही इनसे निपट लिया जाये तो कैसा हो? ये लोग जरूर मेरे हक में गड़बड़ पैदा करेंगे, और अगर अधरलाल ने कुछ कठिनाई पेश कर दी, तो सारा मामला ही उलट सकता है। नहीं, नहीं, वह शर्ली और रेडियर दोनों को समाप्त कर ही देगा। यदि उसे जेन का अवसर मिला है, तो वह इस अवसर का लाभ उठाएगा। चाहे इसमें स्वयं जेन ही क्यों न आहुति हो!—पर अभी तक वह आई क्यों नहीं। बारह तो बज रहे हैं। नवनीत ने दरवाजे की ओर देखा।

—कि पीछे का दरवाजा खोल कर काले गाउन में अपने शरीर को छिपाए मिस जेन ज्याफ्री एक नए आदमी के साथ प्रविष्ट हुई। काले गाउन में उसका सौंदर्य और भी जगमगा उठा, कमरे में दीपक की प्रभा मानो मन्द हो गई।

"गुड नाइट डार्लिंग! आई एम इन टाइम, इजएट सो? (मैं ठीक समय पर हूं! नहीं क्या?")"

नवनीत ने भी अंग्रेजी ही में कहा, "गुड नाइट लव्ह! मैं स्वयम् कितनी अधीरता से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। यह दूसरा आदमी कौन है? तुम्हारा नौकर क्या हुआ?"

"तुम तैयार होन? नौकर नीचे कार में है, और यह है तुम्हारी गंध रखने वाला सी० आई० डी० का नौकर। सौ रुपये में तय हो गया है।" इसके बाद वह अंग्रेजियाना हिन्दुस्तानी में वह उस व्यक्ति

से बोली, "यह टोमरा इनाम हाय ! डेखो,, ढोका डेना नेइ माँगटा। टुम बोलने शकटा कि तुम फ्रण्ट डोअर—व्हाट इज इट डीयर ? (क्या कहते हैं उसे प्यारे ?)"

"सामने का दरवाजा !"

"यस, सामने का डरवजा पर पेट्रोल करटा माँगटा, और बाबू पीछे का डरवजा शे कब चला गया, टुम नेई जानने शकटा।"

"बहुत खूब सेम साहब !" झुककर सलाम करते हुए सिपाही ने कहा।

"और जब टक कोई क्वेश्चन (प्रश्न) न करे, टुम बोलना नहीं माँगटा। समझटा है ? यह अपना बक्शीश !" सौ रुपए का एक नोट उसे थमा दिया गया, एक और फर्शी सलाम कर के वह नीचे उतर गया।

नवनीत ने कहा, "हम चलें ?"

"यस—यह एक पिस्तौल अपने पास रखलो डीयर ! शायद जरूरत पड़ जाए।" कहकर उसने गाउन की जेब से पिस्तौल निकाल कर सामने बढ़ाया। नवनीत को विश्वास हो गया कि जेन की बातें बहुत कुछ सत्य हैं। वह बोला, "इस यात्रा का महत्व मैं जानता था, मेरे पास एक है। तुम इसे अपने पास रक्खो !"

"ओ० के०, और क्या करना है यहाँ अब ? तुम्हारे पोस्टमेन का क्या हुआ डीयर ?"

"यह बड़ा शराबी है, पीकर नीचे सोया हुआ है। मैंने उसे कल की अनुपस्थिति की बात कहदी है।"

"कुछ दे-दिला नहीं दिया ?"

"दे ही दिया है।—चलें ?—अगर कहो तो, सुस्ती उड़ने के लिए मैं एक पेग।"

"देर मत करो—कार में मेरे पास ऊँचे दर्जे की शराब है। मेरा

ही स्वास्थ्य-पान करना न !" और उसने नवनीत का हाथ पकड़ लिया।

नवनीत ने दिया बुझा दिया। दोनों नीचे उतरे। जेन नवनीत का हाथ पकड़े रही, बल्कि अंधेरे में उसने हाथ को एक बार चूम भी लिया। नीचे मुन्शी सुन्दरलाल श्रीवास्तव, इस लोक में सोये-सोये ही, दूसरे लोक का आनन्द प्राप्त कर रहे थे, जब कि दोनों पीछे के दरवाजे से घर के बाहर हो लिए।

नवनीत को कार से टकराजाना पड़ता, किन्तु ठीक समय पर मंजरी ने उसे सावधान कर दिया।

मंजरी बोली, "मैं ड्राइव करूँ गाड़ी ?—नहीं, हम लोग पीछे ही बैठेंगे !"

"तुम्हीं ड्राइव करो न, क्या हर्ज है !" नवनीत ने कहा, इस आशा से कि मार्ग में इसकी हरकतों को सहना न पड़ेगा।

"तो क्या स्वास्थ्य पान न होगा क्या ?"

दोनों पीछे की सीट पर बैठ गए ?" आगे की सीट पर लछमन चपरासी और शोफर बैठा। कार चली, उसकी धुँधली रोशनी जलाई गई। कोई आवाज न हुई, धीरे-धीरे मानपुर की सीमा पीछे और पीछे होती गई।

ठण्डी हवा का झोंका दोनों के मुँह पर लगने लगा। बैठे-बैठे ही जेन ने एक बोतल का मुँह खोला, एक ग्लास में कुछ पेय और एक सोड़े की बोतल उड़ेलकर उसने नवनीत के ओठों से लगा दिया—कहते हुए—"टु माई हेल्थ माई लव्ह !"

नवनीत ने शीघ्र ही बिना किसी हिचक के गिलास खाली करदी, फिर कहा, "तुम नहीं लोगी ?"

"लूँगी, मगर केवल जरा सी बीयर ! मैं तेज पेय नहीं सह सकती।" यह कह कर उसने भी दूसरी बोतल से कुछ पी लिया। नवनीत हलके मादक नशे का शिकार होने लगा !

गाड़ी काफी तेजी से भाग रही थी। लगभग तीस मील की दूरी ये लोग पार कर चुके थे। जेन ने नवनीत के गले में हाथ डाल दिया। नवनीत कुछ चौंका, किन्तु हाथ को उसने रहने दिया। शायद नशे ने उसमें शक्ति न छोड़ी हो, या फिर मौका न रहा हो!

जेन ने कहा, "डार्लिंग अब तो हम खतरे से बहुत आगे निकल गये हैं। कितना सुन्दर समय है! इंग्लैंड में तो ऐसा सुहावना समय सपने में भी नहीं मिलता। क्या तुम्हारी इच्छा नहीं होती कि यहाँ ठहर कर कुछ देर तक हम ताजा हवा का आनन्द लूटें? मेरी परम कामना है कि इस सुन्दर समय में सब चिन्ताओं से मुक्त होकर नीले आकाश के नीचे अपने प्रियतम की संगति का सुख प्राप्त करूं! रोकूँ ड्राइवर को?"

नवनीत बोला, "मैं नहीं जानता, तुम मुझे कहाँ लिए जा रही हो। खतरे से बाहर हूं या भीतर यह जानने का भार मैंने तुम्हारे ऊपर छोड़ा सुन्दरी। तुम्हारी जो इच्छा हो करो।"

नवनीत की विवशता के शब्द मंजरी के हृदय में टकरा गए। वह तड़प उठी, किन्तु छद्म-भाव बनाए रख कर वह बोली—

"क्या तुम अब भी मुझ पर भरोसा नहीं करते? तुम्हारे पास पिस्तौल है न डीयर, मैं बाधा न दूँगी, मेरी परीक्षा ले लो। ओह कितना सौभाग्य पूर्ण है प्रियतम को विश्वास दिलाने के पथ में मर जाना। ईश्वर के लिए नवनीत—तुम जरूर मेरी परीक्षा लो!"

"पागल हो गई हो जेन! मैं तुम्हारी परीक्षा लूँगा?—तुम्हीं तो मेरी आशा हो, और मैं तुम्हें 'ट्राइ' करूँगा?—बहुत तेज नशा है, क्या पिला दिया है यह तुमने जेनी?—मेरा दिमाग मेरे बूते का नहीं रहा, इसीलिए तुम नाराज हो?— मैं तुम्हारा हूं, तुम्हारा अविश्वास कभी नहीं करूंगा।"

"तो गाड़ी रुकवा दूं? मेरी प्रार्थना मंजूर होती है?"

"होती है!"

जेन ने इशारा किया। गाड़ी एकाएक एक मैदान के बीच में सड़क की एक ओर रुक गई। नवनीत और जेन नीचे उतरे। मोटर के प्रकाश में मालूम दिया कि सामने ही सड़क की दो शाखाएँ हो गई हैं!

नवनीत ने पूछा—"यह किधर जाती है?"

"इधर वाली जाती है लखनऊ, और उधरवाली मथुरा!"

"ओ० के०; हम लखनऊ जा रहे हैं। कितना समय और लगेगा?"

"कम-से-कम दो घण्टे। इधर डार्लिंग, इधर—"

जेन ने नवनीत का हाथ पकड़ा, और मैदान में एक ओर ले गई। गाड़ी की लाइट बुझा दी गई, एकाएक अन्धकार घना हो उठा। किन्तु जंगल में शहर के समान अंधेरा नहीं होता तारों की हंसी में सभी कुछ थोड़ा बहुत आलोकित हो जाता है।

जेन ने कहा, डीयर, आधा काम तो तुम्हारा सचमुच खत्म होगया, और शुभ-प्रारम्भ आधी समाप्ति हो ही जाता है। मेरा क्या इनाम होगा?"

"जो तुम चाहोगी!"

"मैंने तुमको चाहा!"

"मुझे बड़ा दारिद्र चुनाव है जेन?"

"क्यों? क्या तुम विवाहित हो?"

"हूँ, पर न-हूँ जैसा ही समझो। मेरी पत्नी ने मुझे त्याग दिया है।"

"तब तुम विवाह करने के लिए तो मुक्त हो न!"

"सो तो न करने के लिए भी हूं!—यानी, अब तक इसी मुक्ति का आनन्द उठाता रहा हूँ।"

"अब?"

"अब, तुम जो आ गई हो!"

"तब मेरे चुनाव को दरिद्र क्यों कहते हो?"

"मैं खुद भी दरिद्र ही हूं जेनी! पहले विवाह के साथ कुछ रुपया मिला था, वह विवाह के साथ ही समाप्त हो गया। अब जो वेतन

मिलता है, उससे क्या कोई धनवान बन सकता है?—गुजर तो जरूर कर लेता हूं।"

"उसकी तुम्हें चिन्ता नहीं करनी होगी डार्लिङ्ग! मैं खुद भी नौकरी करके दो-चार सौ कमा सकती हूं। मैं हिन्दुस्तानी लड़की नहीं हूँ कि नौकरी से डरूँगी।"

"और क्या तुम्हारे माता-पिता सहमत हो जाएँगे?"

"माता-पिताओं से डरने वाली लड़कियाँ इंग्लैण्ड में नहीं पैदा होतीं नवनीत! आत्मा की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए हम ईश्वर से भी नहीं डरतीं। नवनीत, डीयर, तुम मुझे मेरे प्रणय-पुरस्कार से विरत न करो। निराश न बनो—मैं सोचती हूँ, एक पेग और लेकर तुम ताजगी अनुभव करोगे। दूँ?"

नवनीत को प्यास मालूम दे रही थी, उसने स्वीकार कर लिया। बोतल वह साथ ही ले आई थी, उसने बोतल ही नवनीत को थमा दी। नवनीत आधी बोतल गटक गया।

"मुझे चूमने की इजाजत देते हो माई डार्लिंग?"

"तुम जैसी सुन्दरी को चूमने की इजाजत कौन न देगा। कहो तो मैं तुम्हें चूम लूँ?"

जेन ने नवनीत के हाथ का सहारा लेकर अपना शरीर शिथिल कर दिया, यानी नवनीत को उसे अपनी भुजाओं में आबद्ध करके उठा लेना पड़ा, तब जेन बोली, "सचमुच क्या तुम मुझे प्रेम करोगे? मेरा इतना सौभाग्य हो सकता है?"

जेन ने अपनी आँखों को नवनीत की आँखों के सामने कर दिया। इस महान्धकार में भी नवनीत की पुतलियों में वह अपनी लालसा-दीप्त मूर्त्ति देखने लगी। उसके अधरों पर युगों की प्यास मूर्त्त होकर नवनीत का आह्वान कर रही थी, किन्तु अबोध नवनीत का मधु-सिक्त ऊष्ण-वाष्प केवल उसकी लालसा को भड़काता रहा।

जेन के अधरों ने मानों अंतिम प्रयत्न किया। मन्द हास्य की मुग्ध

लहर में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब शत-सहस्र होकर काँप उठा, नवनीत ने अपने अधर बढ़ाए—किन्तु तभी मानों नवनीत के हृदय में बिजली-सी कौंध उठी। जिसने कभी अपने अधिकारों का दावा नहीं किया, दूर दिगन्त में खड़ी हुई माया नाम की एक ऐसी रमणी की सतृष्ण आँखें उसके कलेजे के पार हो गईं, और उसके साथ ही अपने पौरुष के अपमान का ध्यान भी उसके मस्तिष्क में फैल गया। बढ़ते हुए अश्व की वल्गा खिंच गई।

जेन ने अधीरता से पूछा, "क्या हुआ?"

नशे से रुकी हुई वाणी में हँसकर नवनीत ने उत्तर दिया, "पुरानी बीवी की याद आ गई थी जेनी! वह कभी मुझ से प्यार की निशानी नहीं पा सकी।"

"किन्तु मैं तो वैसी अभागिनी नहीं हूं न!"

"नहीं हो! किन्तु अभागिनी नहीं हो, इसलिए तुम्हें मेरे प्यार की निशानी नहीं मिलेगी!"

"नहीं मिलेगी?" भर्राए स्वर से जेन ने पूछा।

"मिल सकेगी या नहीं, यह तो तुम्हीं कह सकती हो जेन। बैठ जाएँ न! सिर दर्द कर रहा है। सचमुच बहुत पिलादी तुमने आज।"

जेन नवनीत के बाहुपाश से मुक्त होगई, दोनों नीचे जमीन पर बैठ गए।

"कहो डीयर, क्या कह रहे थे तुम?"

"अरे गले की फाँसी की बात थी जेनी! कौन जाने उसका निवारण हो सकेगा या नहीं। जीवन में जब कि इतना अनिश्चय है, तो उसे ही मैं दुःख का दान कैसे करूँ, जिसे मैं सबसे अधिक प्यार करता हूँ। मायलव्ह, अनिश्चय की इस स्थिति से निकलते ही मैं तुम्हें आत्मसमर्पण कर दूँगा, परन्तु अभी नहीं। सिर दर्द बढ़ता जा रहा है जेन! क्या बात है?"

"मेरा भी बढ़ रहा है डार्लिंग! दो बज रहे हैं; इतनी रात तक

जागकर भी किसका सिर दर्द न करेगा! अच्छा डीयर, एक प्रस्ताव करूँ?"

"क्या?"

"यदि तुम्हें जीवन का इतना अधिक अनिश्चय है, तो चलें न; हम दोनों यहीं से भाग चलें, बहुत दूर! कार हमारे पास है ही, हमें कोई नहीं पहचानेगा। किसी दूर स्टेशन पर कार छोड़कर हम रेल में सवार हो जाएँगे। फिर हमें कौन पकड़ सकता है?"

"ठीक कहती हो जेन!—पर, ऐं,! मुझे कायर का पार्ट अदा करने को कहती हो?"

"अपने जीवन को बचाने का प्रयत्न कभी कायरता नहीं कहलाता डीयर! खाली बैठे रहने का नाम कायरता है।"

"ना ना ना; यह नहीं होगा। नवनीत को जो जानता है, वह उसे बहादुर समझता है। वह बहादुर की जिन्दगी जिया है, यदि उसे मरना है तो वह बहादुर की मौत मरेगा।—कितनी देर और ठहर रही हो? मैं लेटना चाहता हूँ।"

"मेरी गोद में सर रख दो। यदि आध घण्टा सो सको तो तबीयत जरूर हल्की हो जाएगी!"

नवनीत जेन की गोद में सिर रख कर लेट गया; लेटते ही उसकी आँखें झिप गईं। जेन जानती थी, वह नींद नहीं, बेहोशी थी, जो शराब के द्वारा उसे दी गई थी।

मंजरी ने निशीथ के उस स्वप्नालोक के नीचे नवनीत के चेहरे की ओर देखा। प्रकृति-प्रदत्त पौरुष का चरम-वैभव अब भी उस चेहरे से विदा नहीं हुआ था, यद्यपि मन की कृतघ्नता ने उसकी श्री को कुछ जीर्ण अवश्य कर दिया था। मंजरी उसकी ओर देखती रही। इस युवक को लेकर उसके दिल के मनसूबे हवाई किले बनाने लगे, किन्तु अदृष्ट की मसि अन्धकार के अभेद्य पट पर कुछ और ही चित्रित कर रही थी।

नवनीत उसकी मुट्ठी में है। क्यों न इसे लेकर वह अभी ही वांछित दिशा में उड़ जाए ? ड्राइवर को कुछ दे दिलाकर यहाँ से हटाया जा सकता है, और लछमन ? अगर उससे बचना संभव न होगा, तो पिस्तौल की एक गोली उस राह को साफ कर सकती है। दर्द बहुत हुआ तो बेचारा चिल्ला भी न सकेगा। अब भी पाँच घण्टे का समय शेष है। दो सौ मील वह जा सकती है, फिर रेल और उत्तर भारती की दृष्टि से दूर। सिलोन, ब्रह्मा या आवश्यकता हुई तो इंग्लैण्ड, अमरीका—कोशिश तो करेगी ही।

नवनीत शिक्षित है, दीक्षित है, सुन्दर है और प्रेम भी करता ही है; फिर इससे अच्छा सुयोग उसे नहीं मिल सकेगा। सचमुच अब मंजरी नवनीत को छोड़ नहीं सकती। उसने अपने जीवन में पाया ही क्या है ? यदि आज अपने प्रतारणा के नाटक को सत्य करके वह जीवन को सार्थक बना सकती है, तो क्यों न परिस्थिति का लाभ उठाले !

शर्ली के लिए सोच रहे हो पागल; परन्तु तुम जा रहे हो माया के अतिथि बनने; और तुम्हारे कुरुचिमय-आतिथ्य की पुरोहिताई करूँगी मैं। तुम्हें प्राणदण्ड मिलेगा ? पर क्यों—तुम्हारे अनुपस्थित रहने मात्र से तो अधरलाल की रक्षा हो जाएगी और अधरलाल स्वयम् भी तो उस चंगुल से बचाकर ले आए गए होंगे ! नहीं नहीं, तुम्हें प्राणदण्ड कोई नहीं दे सकता। तुम्हारी मूर्त्ति में जादू है, कोई तुम्हें प्राणदंड दे ही कैसे सकता है, अवश्य तुम्हारी पत्नी कमनसीब है, कि उससे तुम्हारा त्याग संभव होगया।

सवेरे होश आने पर यदि तुम्हें मालूम हुआ कि तुम मध्य प्रान्त के किसी स्टेशन पर हो, तो क्या कहोगे डार्लिंग ? क्या नाराज हो जाओगे ! नाराज !—किस सीमा तक ? ऐं, तुम्हारे चरित्र की विचित्रता तथा कठिनता को मैं भूल ही गई थी। किन्तु है कहाँ वह कठिनता ? मेरी गोद में सोए हुए हो। कहो कितने चुम्बनों की भाफ से तुम्हारी कठोरता भाफ बनकर उड़ सकती है ? सभानेत्री बेचारी, नारीत्व के जादू

को नहीं जानती। उसने क्या कभी किसी से प्रेम किया है? वह क्या समझे कि नारी के एक एकान्त से मनुष्य गाय बन जाता है!

पर सवेरे अगर घृणा ही करने लग जाओ तो? जीवन को भार बना दोगे क्या? चल दोगे क्या नल की तरह छोड़ कर? पुरुष छली तो होते ही हैं। क्या मेरे अप्रतिम त्याग को भुला दोगे? मेरे कष्ट, मेरे साहस, और मेरे प्रेम की कुछ दाद न दोगे? क्या मैं दीन और दुनियां दोनों से चली जाऊँगी?

यदि अधरलाल बच गए, तो सभा नवनीत को लेकर क्या करेगी?—नवनीत के प्राण दण्ड से उसका क्या अभिप्राय होगा?

नवनीत को गिरफ्तार करके खाने का कार्य क्या साधारण था? यदि कभी इसका पुरस्कार मांगा जाए, चाहे वह स्वयम् नवनीतलाल ही हो, तो क्या कार्य की गुरुता की दृष्टि से वह इनकार कर दिया जा सकेगा?—सभानेत्री कठोर है तो, किन्तु कहने के बाद भी न माने ऐसी हठी वह नहीं हैं। और न इस तरह दल के प्रति ही विश्वासघात का अपराध ही सिर लेना पड़ेगा। स्वेच्छा से जिस मार्ग को पकड़ा उसे छोड़ना सरल अवश्य नहीं है, किन्तु तब इस सुख का अनुभव ही कहाँ था? नहीं नहीं; उसे मथुरा ही लौट जाना चाहिए। न तो माया नृशंस ही है, न वह पुरुषों की माया ही में सरलता से फंसने वाली है। नवनीत को बन्दी बना कर पकड़ लेना स्वयम् बड़ा भारी कार्य है, यदि मंजरी ने सब बातें खोल कर कह दीं, तो उसकी प्रार्थना अवश्य स्वीकृत हो जाएगी।

मंजरी ने एक बार और गोद में सिर रख कर लेटे हुए नवनीत की ओर देखा, वह गहरी नींद में सोया हुआ था। उसने सोचा अभी पास है ही कौन? क्यों न वह अपने हृदय की सब से बड़ी साध को अभी पूरी करले? कौन उसे मना कर सकता है? स्वयम् नवनीत भी उसे अभी मना नहीं कर सकेगा। मंजरी ने चारों ओर दृष्टि डाली, और

फिर धड़कते हुए हृदय से अपने लालसा-दग्ध अधरों को उसने नवनीत के अधरों पर रख दिया।

नवनीत के निश्चेतन अधर एक बार काँप उठे, और मंजरी ने दूसरे ही क्षण देखा कि उन पर एक मन्द हास्य-सा फैल गया— विद्रूप का हास्य ! कैसी विडम्बना है, आजकल नवनीत को जो सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ, वह उसे हो रहा है एक अवांछित नारी द्वारा, स्वयम् अपनी चेतना के अभाव में ! क्या पता, चेतना में उसके अधरों को प्यास बढ़जाती, या उन पर अंगार-स्पर्श-सा अनुभव होता ?—किन्तु मंजरी ने उस स्वप्न को भी सत्य समझ कर अपने सौभाग्य की कल्पना करली।

"लछमन !" मंजरी ने आवाज दी।—और कुछ ही क्षणों बाद लछमन और ड्राइवर दोनों उपस्थित हो गए।

मंजरी ने कहा, "सो गया ! उठा कर गाड़ी में रख दो।"

दोनों ने मिलकर नवनीत के शरीर को उठाया, और गाड़ी में रख दिया, मंजरी उसके सिर को पूर्ववत गोद में लेकर बैठ गई और विद्युत वेग से मोटर मथुरा की ओर चल पड़ी। यदि नवनीत का अवचेतन कुछ अनुभव कर रहा था, तो मंजरी की गोद में सिर रक्खे वह लखनऊ की सैर कर रहा था।

(२५)

सुदामापुरी की आज वह शोभा नहीं रही। ऐश्वर्य के जितने पार्थिव उपकरण पहले विद्यमान थे, वे आज कहीं गए नहीं; किन्तु जिन सूक्ष्म प्राणों के अभाव में शरीर का सम्पूर्ण ऐश्वर्य आप से आप विद्रूप हो उठता हो, उन्हीं प्राणों का मानों आज सुदामापुरी में अभाव हो गया था। निखिलानन्द-सन्दोह भगवान् कृष्ण की लीला भूमि में औदास्य के इस भाव की कुछ अहेतुकता है, किन्तु ब्रजांगनाओं की स्निग्ध-निष्ठा ही में जब अनन्त विरह की पीड़ा प्रक्षिप्त हो गई थी,

तो, अभिनय के लिए ही सही, स्वयम् आनन्द मूर्त्ति को आँसुओं का परिणय करना पड़ा था।

जिस प्रकोष्ठ में एक दिन पूर्व अपराह्न में सुदामापुरी के सखी-सम्प्रदाय ने नीलम और आरती का स्वागत किया था, वह प्रकोष्ठ आज भी उसी तरह सजा हुआ है—न केवल भौतिक उपकरणों से, प्रत्युत उसमें समासीन सदस्य तक वहीं हैं, नीलम, आरती, ललिता इत्यादि। इनके अतिरिक्त भी अन्य सखियाँ वहाँ पर उपस्थित हैं, किन्तु उस दिन का आनन्द गौरव तथा उल्लास किसी के भी मुख पर आभासित नहीं दिखाई पड़ता था।

आरती रक्त-हीन सफेद मुँह लिए; रूखे बिखरे हुए बाल, सूखी हुई निश्चेष्ट आँखें, जो पहले काफी रुदन के कारण कुछ-कुछ अपने कार्यों से ऊपर उठ गई मालूम देती थी; एक बिना किनारी की साधारण सफेद धुली हुई साड़ी ने आवेष्टन में शुभ्र करुणा की मूर्ति बनी हुई थी।

नीलम उत्साह से हीन; पदच्युत सैनिक जैसी; बुझे हुए चेहरे पर छाई हुई उड़ने के लिए उद्यत गरमी से चेहरे का भाव एक दम जीर्ण नहीं हो गया था, किन्तु उस पर पड़ी हुई मुर्दनी की पर्त भी उतनी ही गहरी थी; निर्विकार-शून्य आँखें, अपने आप में खोई-सी।

और पत्थर में पति की शाश्वत-आभा का उल्लास प्राप्त करने वाली ललिता? वह किसी भीषण-रोग से स्वयम् पत्थर बन कर एक शैय्या पर बीच में लेटी हुई थी; चेहरे पर न केवल शारीरिक पीड़ा का आभास, किन्तु मानसिक-कष्ट का भी स्पष्ट आलेखन, आँखें गहरे गढ़े में धँसी हुई, निश्चल, निष्पलक!

अन्य शेष समुदाय में सभी के चेहरों पर गहरी निराशा, भयंकर अवसाद की स्पष्ट छाया छाई हुई थी; निरानन्द का एक अप्रतिहत प्रवाह मानों अनादिकाल से बहाना चला आरहा था।

ललिता ने कहा, "आप दोनों ने कष्ट करके हमारी सुध ली इसके

लिए हम कृतज्ञ हैं बहन ! मुझे खेद है कि आज हमसे आपका स्वागत नहीं हो सका। दुर्भाग्य से आज सुदामापुरी के आनन्द की संध्या है। आप कुछ अन्यथा न समझें।''—इसके साथ ही उसे एक खाँसी का दौर हुआ, वह आगे कुछ न कह सकी।

नीलम ने कहा, ''अवश्य ही हम नहीं जानती थीं बहन कि सुदामापुरी की यह अवस्था कैसे हुई ! किन्तु क्या हम इतनी सद्भाव-शून्य हैं कि किसी के दुःख के दिनों में हम उससे स्वागत की आशा करेंगी ! सच तो यह है कि एक बहुत बड़े दुःख का आघात पाकर हम स्वयम् भी इस स्थान में आश्रय पाने के लिए आई थीं, किन्तु देखती हैं कि जो दुःख आपको भी दबा सकता है, वह हमारे दुःख से कभी क्षुद्र नहीं हो सकता। शारीरिक कष्ट के साथ ही साथ आपको मानसिक दुःख भी कम नहीं मालूम देता। उसे दूर करने की शक्ति तो हममें होगी ही कहाँ से, किन्तु यदि उसे कुछ कर सकने में भी हमारा बस चल सके, तो हमें शांति मिलेगी बहन !''

नीलम के शब्दों से सहानुभूति की सच्ची गन्ध पाकर रोगिणी के शरीर ने बल प्राप्त किया; किंचित मुस्करा कर वह बोली—''राधाकृष्ण की प्रीति को उपजीव्य मान कर जिसने अपने जीवन की समस्त वासनाओं का विसर्जन कर दिया है, उसके लिए दुःख की भावना नई नहीं है। सोलह सहस्र ब्रजांङ्गनाओं की विरह-पीड़ा का भार अपने में भर-कर जिसने प्रेम के महान्-पंथ का अनुसरण किया था, उसकी तो पद-रेणु की भी समता हमसे नहीं हो सकती, किन्तु व्रत तो हमारा भी वही है सखी, तब दुःख का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सुदामापुरी में कुछ ममत्व है, पर उसके उजड़ जाने में ही क्या विशेषता है, जब कि ब्रज की समस्त पुण्य-भूमि ही अपनी निधि को खोकर चिर-विरहिणी होने का वरदान पा चुकी है—''

बीच ही में आरती ने सिर उठा कर कहा—''सुदामापुरी उजड़ जाएगी ?''

"दीखता तो यही है। मैं चलने के रास्ते पड़ी हूँ। विशाखा अभी बिलकुल बच्ची है, और चन्द्रावली—"

"चन्द्रावली क्या हुई, वे दिखाई नहीं देतीं!" नीलम ने पूछा।

"उसी के लिए बहुत बड़ा दुःख है बहन! सात दिन हुए वह बाहर से आए हुए एक युवक अतिथि के साथ भाग गई। मैं समझती हूँ इससे तुम्हारे निकट मेरे विश्वास का खोखलापन ही प्रगट होगा, किन्तु मेरे विश्वास पर मेरी आस्था आज भी उतनी ही दृढ़ है, और इसी लिए मुझे उसके पतन की बड़ी पीड़ा है बहन! भावुकता की खुराक पर जीने वालों का जीवन कच्चे धागे का जीवन है, उस पर तुम हँसना मत बहन!"

हँसी दूर रही, चन्द्रावली की इस दुर्घटना से इन महिलाओं को सचमुच बड़ा परिताप हुआ।

"आपके गुरुदेव कहाँ हैं?" नीलम ने पूछा!

"यहीं हैं! पर यह 'आप' का दुस्सह-भार कैसे सहते बनेगा नीलम! बीमार शरीर पर इतनी भी दया नहीं कर सकती?"

"क्षमा चाहती हूँ दीदी, दुःख के आवेग में किसी ओर दृष्टि नहीं जाती। पर नाराज न होना, तुम अपने जीवन के प्रति इतनी निराश क्यों हो? एक बार डाक्टर को दिखा देना क्या उचित नहीं होगा?"

"सुनो इसकी बातें! नीलम, गुरुदेव ने भी उस दिन यही बात कही थी। उनका मुझ पर असीम स्नेह है, नहीं तो उनके मुँह से यह प्रस्ताव निकला ही किस तरह, इसी का आश्चर्य हो रहा है!" फिर कुछ सांस लेकर थोड़े-से-संगीत के साथ बोली—

'दरद को मारो बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नाहिं कोई।
मीरा की प्रभु, पीर मिटैगी, जब बैद संवलिया होई।!'

उस वैद को कोई लाए न! उसके बिना कौन मुझे स्वस्थ कर सकता है? 'जिन या बेदन निरमई, भला करेगा सोई!' नहीं नीलम, किसकी दवा और किसका क्या? जितना निस्पृह एक वैष्णव का जीवन

होता है, उतनी ही निस्पृह होनी चाहिए उसकी मृत्यु ! मैं भी हूँ तो सब जैसी ही सुख-दुःख से समन्वित भौतिक प्राणी ही, किन्तु चेष्टा करती हूं कि जिस तरह जीवन के दौर में मैं निस्पृह रही, उसी तरह मृत्यु के दौर में निस्पृह रह सकूँ ।"

"किन्तु दीदी' तुम्हारी यह चन्द्रावली सम्बन्धी या सुदामापुरी विषयक स्पृहा—"

"भूलती हो नीलम, सुदामापुरी से मेरा मतलब ईंट-पत्थर से बनी हुई चहार दीवारी से नहीं, न ही चन्द्रावली से मेरा बोध उस पाँच हाथ लम्बी नर देह से है। मेरा इनका सम्बन्ध तो मेरे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण की सापेक्ष्यता से है। सुदामापुरी उनकी लीलाभूमि है, और मेरी मृत्यु के बाद चन्द्रावली के ऊपर भार था मेरे प्राणों के प्राण की सेवा का। श्रीकृष्ण के महान् अनुग्रह का आज के बाद ढोल पीटा जायगा। चन्द्रावली की बात सुनकर कोई कहेगा, 'मनचलों के सुखद रात्रिवास का ऐसा प्रबन्ध अन्यत्र कहाँ हो सकता है ?"

—किसी दिन सम्भव है पुलिस की सेना इस देव-विग्रह को हाथ लगाकर कहे, 'इस पत्थर ने विडम्बना को प्रश्रय देकर सम्पूर्ण अनाचार की वृद्धि की है !'—हे भगवान् ! तुम्हारे अनन्त ऐश्वर्य का यह अपमान ?"

ललिता की कोटर गत आंखों से आँसुओं की धाराएँ चतुरस्र होकर बहने लगीं। रोती हुई विशाखा ने पास आकर उनको पोंछ दिया। नीलम और आरती की आँखें भी भर आईं।

"क्या तुम समझती हो कि मैं अपनी मृत्यु का समय निकट आया देखकर रो रही हूँ ? यह सच है कि शाश्वत होते हुए भी मृत्यु सदैव नूतन रूप धारण करके प्राप्त होती है। यदि मैं 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय—' आदि कहूँ तो तुम कहोगी कि यह तो बहुत पुरानी बात है, परन्तु उससे भी पुरानी इस सनातन-मृत्यु के लिए और कोई नई बात कही ही क्या जा सकती है। सब मानते हैं कि मौत टल नहीं सकती।

हमारे जीवन का प्रतिनिधि, आदर्शों और वासनाओं का समन्वित रूप, चाहे उसे मन कहो या आत्मा कहो, हमारे जीवन के उपन्यास को पढ़ता हुआ बढ़ता जा रहा है। मेरे जीवन के कई परिच्छेद पढ़े जा चुके हैं, किन्तु अब यह समाप्त होने को आगई है। उपसंहार पढ़ने से डरूंगी क्यों? पढ़ा नहीं है किन्तु लिख तो यह प्रकाशन के पूर्व ही गया था।"

आरती ने कहा, "किन्तु जो समझे कि वह पुस्तक पढ़ नहीं रहा, बल्कि लिख रहा है, वह अपने अन्त को कैसे समझेगा?"

"जो अपने जीवन का कृतित्व अपने मत्थे लेता है, वह समर्थ है। कुछ व्यक्ति इससे भी ऊपर उठकर उपन्यास या इतिहास के नायक तक बनते हैं। किन्तु पुस्तक अध्ययन की भांति ही उसके लेखन की या अभिनय की समाप्ति तो है ही। आदर्शों के अनुकूल या कल्पना के अनुकूल एक अन्त की व्यवस्था, एक चरम रूप की अभिलाषा तो सभी अवस्थाओं में होती ही है। एक आदर्शवादी उपन्यास लेखक अपने इष्ट की प्राप्ति पर उपन्यास समाप्त कर देता है, और यथार्थवादी अपने नायक के कर्तव्य के साथ। इतिहास का नायक अपने जीवन को तब समाप्त कर देता है, जब कि वह अपना आदर्श प्राप्त कर लेता है, या फिर उस आदर्श की प्राप्ति में उसकी क्रिया शक्ति उसे जवाब दे देती है। यानी समाप्ति या मृत्यु हमारे आदर्श का एक अन्तिम निश्चयात्मक निर्णय है। यदि वह इच्छा की समाप्ति के साथ हुआ तो दुनिया उसे 'कामेडी' कह देगी, और शक्ति की समाप्ति के साथ हुआ तो 'ट्रेजिडी'!

"तुमने अपने जीवन का आदर्श प्राप्त कर लिया दीदी?"

"मैं ही क्या, सभी अपने जीवन का आदर्श प्राप्त करके ही मरते हैं। यही मेरा विश्वास है, और इसीलिए मैं मृत्यु को ट्रेजिडी नहीं मानती!"

नीलम ने कहा, "अपने जीवन का आदर्श तुमने जरूर पा लिया होगा दीदी! किन्तु क्या सर्वत्र मृत्यु का यही तात्पर्य होता है? आरती को तुम देख रही हो। आज से चार दिन पूर्व इनके पति को फाँसी हो

गई। क्या बता सकोगी कि उनके जीवन का आदर्श किस तरह पूरा हुआ ?"

वज्र को स्तम्भित करने वाला यह सम्वाद सुनकर सभी उपस्थित समुदाय स्तंभित हो गया, आँखें फाड़कर सबने आरती की अश्रु-आविल नत-मूर्द्धा पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर दी। ललिता उस अवस्था में भी बिस्तर से उठ बैठी—

"कह क्या रही हो नीलम, आरती देवी के पति अधरलाल—"

हाँ दीदी, चार दिन पहले उन्हें फाँसी हो गई। अतिशय-वेदना के असह्य होजाने पर हमने सोचा कि कदाचित् इस आश्रम में हमें अपना दुःख रखने के लिए कुछ स्थान मिल सके, किन्तु अब आप लोगों के स्वयम् के दुःख में—"

ललिता ने आरती को खींचकर उसके मस्तक को अपनी अश्रु-सिक्त गोद में ले लिया, और बोली, "यह दुःख क्या तुम्हारा अकेली का है बहन ? सच मानो आज ललिता भी विधवा होगई। विशाखा, गुरुदेव की पूजा समाप्त हो गई हो तो सेवा में मेरा प्रणाम निवेदन कर।"

विशाखा बाहर चली गई।

"—और यदि मेरे श्रीकृष्ण के रहते मैं विधवा न हुई, तो उन्हीं के द्वार पर धरना देकर तेरे अहिवात को मैं वापिस लौटा लूंगी बहन ! सचमुच आज पहली बार मुझे स्वीकार करना पड़ा कि आत्मा का क्षेत्र भी दुःख की सीमा से परे नहीं है।"

नीलम ने कहा, "गुलाम देश में प्रतिभा का अर्थ होता है राज्य-द्रोह अधरलाल एक गुलाम देश में पैदा हुए, अतः अपने जीवन की महानता का पुरस्कार उन्हें फाँसी का दण्ड मिला। इससे बड़ी ट्रेजिडी और क्या हो सकती है ?"

ललिता ने अपनी धड़कती छाती में आरती के सिर को छिपाकर उसके आँसू पोंछे; और बोली, "रोने से तो कौन किसको रोक सकता

है बहन, किन्तु रक्त के अक्षरों में लिखी हुई ट्रेजिडी भी कभी मनुष्य की नश्वरता से बड़ी नहीं हुई। —पीड़ा के अमर होने से ही तो यह जीवन लोभनीय है! इस पीड़ा को तुम अपने से दूर करके देखती रही हो, मैं इसे अपनी ही वस्तु मान रही हूँ—इसीलिए तो मैं तुम्हारे वैधव्य को सरलता से मैंने अपने ऊपर ले लिया, किन्तु उतनी ही सरलता से मैं भी क्या अपना अहिवात तुम्हें दे सकी?"

तभी वृद्ध गुरुदेव राधिका रंजन ने भीतर प्रवेश किया। महिलाओं ने हटकर मार्ग दे दिया। ललिता ने उसी तरह बैठे-बैठे ही मस्तक झुकाकर वन्दना की।

वृद्ध ने जैसे ही ललिता का चेहरा देखा, वे स्तम्भित होगए। आशीर्वाद तक उनके मुख से नहीं निकला!

"माँ, इस कष्ट में भी तुम बैठ क्यों गई? क्या ब्रज-वल्लभ के के निकट मुझे निर्दोष न पहुँचने दोगी? अपने कष्ट का अनुमान न हो, पर उन्हीं को अपनी दुश्चिन्ता से लाद देना क्या तुम्हें रुचेगा?"

आरती ने ललिता की स्नेहमई अंक से अपना मस्तक हटा लिया। नीलम नत दृष्टि बैठी रही, किसी ने कुछ नहीं कहा।

धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो ललिता ही बोली, 'गुरुदेव! मेरा अपराध क्षमा करें। किन्तु दुनियाँ आप क्या मेरा कष्ट ही सबसे बड़ा समझते हैं?"

"अभी किस अभागे का दुःख तुम से बड़ा है माँ? बताओ न!"

ललिता ने आरती का चिबुक पकड़कर उसे गुरुदेव की ओर उठाया, और उसकी जवा-कुसुम सी रक्त फूली हुई आंखों की ओर इशारा कर उसने कहा, "इसे जानते हैं न गुरुदेव!—यह हैं आपके प्रिय और प्रधान शिष्य अधरलाल की धर्मपत्नी। आज से चार दिन पूर्व दुर्भाग्य ने इसको छल लिया, यह विधवा होगई—"

"विधवा?—"आश्चर्यहत वृद्ध ने कहा।

"अधरलाल को फाँसी का दण्ड हुआ गुरुदेव!"

राधिका रंजन खड़े न रह सके। कुल्हाड़ी से काटे जाने वाले वृक्ष की तरह धीरे-धीरे शून्य होकर ललिताके पास ही बैठ गए और मानो इस अकल्पित सम्वाद को समझने का प्रयत्न करने लगे। जब कुछ समय पश्चात् वे प्रकृतिस्थ हुए तो ललिता से बोले—

"सचमुच पृथिवी में किसी के दुःख को अन्तिम नहीं कहा जा सकता। चिर-विरह का दान वरदान देकर स्वयम् आनन्द कन्द भगवान् ने दुःख से तादात्म्य लाभ किया था—"फिर आरती की ओर अभिमुख होकर बोले, "मां, ललिता से कहो कि वह लेट जाए। शारीरिक कष्ट को बढ़ने देकर मानसिक कष्ट कम नहीं किया जा सकता। फिर समस्त कथा सुनूँ। महाभाग अधरलाल को फाँसी से दण्डित होने का क्या कारण आ पड़ा।

आरती कुछ न बोली, किन्तु ललिता ने उसी समय लेटते हुए कहा, "आरती के आदेश से मुझे नहीं बैठना पड़ा गुरुदेव! मैं लेट जाती हूँ, किन्तु गुरुदेव, आप ही ने तो कहा था कि सभी अपने जीवन का आदर्श प्राप्त करके ही मरते हैं। मेरे विश्वास की नींव न हिलने दीजिए गुरुदेव! विशाखा, गुरुदेव को आसन दे।"

विशाखा ने ललिता के निकट ही गुरुदेव के लिए आसन डाल दिया। उसी पर बैठते हुए वृद्ध आचार्य बोले—

"ललिता, सारी कथा तो सुन लेने दो। जीवन तो शाश्वत है ही, मृत्यु में और उसमें अन्तर ही क्या है? एक अवस्था को हम जागरण कहते हैं, दूसरी को कहो सुषुप्ति! सोए हुए मनुष्य के अस्तित्व से कभी इन्कार किया जा सकता है क्या? किन्तु चोरी के उद्देश्य से घर में घुसने वाला व्यक्ति प्रत्यक्षतः यही करता है। वह फिर भी उसके जाग उठने की सम्भावना को ध्यान में रखकर सावधानी तो बरतता है, किन्तु इस सुषुप्ति पर तो वह रो-धोकर निश्चेष्ट हो जाता है। सच है कि वह लौटाया नहीं जा सकता, किन्तु जीवन का कोई क्षण लौटाया भी जा सकता है क्या? नाश जीवन का नहीं होता, जीवन के विशिष्ट रूपों का

होता है। रहा आदर्श, वह तो केवल एक है सखी ! हरित-दूर्वा-द्युति सजल घनश्याम ! जीवन भी उसी रूप को प्राप्त करना चाहता है, और मृत्यु भी उसी रूप के निकट हो जाती है आर्ये !"

ललिता आँखें बन्द किए हुए, स्थिर चित्त से गुरुदेव की वाणी सुनती हुई चुपचाप लेटी रही। वृद्ध ने तब नीलम को सम्बोधन किया—"ब्रजेन्द्र-कानन की कोकिले ! तुम तो सभी इति वृत्त से परिचित होगी। कह सुनाओ न अधरलाल के उत्सर्ग की कथा। मुझे विश्वास है फाँसी का दण्ड पाकर भी उनकी मृत्यु का इतिहास बड़ा गौरवमय होगा। मैं जानता हूँ नश्वर प्राणियों में ऐसा अमर व्यक्तित्व बहुत ही कम मिलता है देवि !"

नीलम बोली, "गुरुदेव, वापने निवृत्ति का मार्ग पकड़कर समाज की अवहेलना करदी, कदाचित् आपके निकट देश- सेवा या समाज-सेवा का उतना बड़ा महत्व न हो जितना ईश्वर-पूजा का—"

"पागल माँ मेरी ! देश-सेवा या समाज-सेवा का महत्व हमारे निकट नहीं है, यह सूचना तुम्हें किसने दी ? ब्रज-रेणु के एक कण के लिए त्रिभुवन के राज्य को त्याग देने की हमारी स्पृहा क्या तुम्हें अविदित है ? जिसे तुम समाज सेवा कहती हो, आर्ये, उसे ही तो हम धर्म की सेवा मानते हैं ! जिस धर्म के अभ्युत्थान के लिए हमारे सर्वस्व को अवतार लेना पड़ता है, उसे महत्व नहीं देंगे ?"

"परन्तु धर्म और समाज-सेवा—"

"सचमुच उसे आज दो अर्थों में माना जाता है, प्रत्युत एक भौतिक पक्ष तो धर्म के समाज-सेवा के पथ में बाधक भी मानता है। किन्तु उसे क्या धर्म कहा जाना चाहिए ?—वह है सम्प्रदाय, विशेष स्वार्थों में खड़ा किया हुआ एक गुट्ट-विशेष। धर्म इससे ऊपर की वस्तु है नीलम-देवि ! जो धारण करता है केवल वही धर्म नहीं होता, प्रत्युत् जिसे धारण किया जाता है, और जो धारण करने योग्य है, उसे भी धर्म कहा जाता है। अपनी क्षमता की सीमा में साधारण अवस्था में मनुष्य

के लिए जो करणीय है, वही उसका धर्म है, और इसीलिए वह समाज से बाहर की वस्तु नहीं हो सकती !"

किन्तु धर्म की यह परिभाषा तो कहीं नहीं मानी जाती गुरुदेव !—"

"जहाँ नहीं मानी जाती, वहां उस रूढ़-धर्म की नींव को खोदने का भी प्रयत्न किया जाता है। तुम कहती हो भक्ति से देश और समाज का कोई सम्बन्ध नहीं, पर यह क्या सत्य है ! अपने देश और समाज की सेवा तो जरा बताना बिटिया ! किसी दार्शनिक से पूछो, वह कहेगा कि देश और समाज की सीमाएँ हैं ही नहीं। जिसे तुमने स्थूल करके मान रक्खा है, उसी को तो हम सूक्ष्म समझ कर मानते हैं ! तुम्हारी भक्ति का आधार मूर्त्त है, तुमने उसकी सीमाएँ मान ली हैं--उत्तर में हिमालय, दक्षिण में महा समुद्र, पश्चिम में यवनों का देश, और पूर्व में ब्रह्मदेश तथा सूर्य का उदय ! मेरे भक्ति के आधार की भी सीमाएँ हैं ! उनके सिरहाने वात्सल्य की हिम-कठिन शीतलता से भरी हुई यशोदा, पैरों में प्रेम के महासमुद्र की गहराई को उलीचती हुई महामाया राधिका, बाईं ओर महाकाल राक्षसों की भीत-मूर्तियाँ और दाहिनी ओर आनन्दोत्सव अरुणोदय के-सा यह समस्त गोपी-समाज ! यदि और आगे बढ़ोगी तो सर्वत्र तुम्हें तुम्हारा भक्ति का भाजन ही दिखाई देगा नीलम ! पर जो हो, तुम आगे कहो !"

नीलम ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली, फिर कहना शुरू किया—"बहुत लम्बी कहानी है गुरुदेव ! वह एक जीवन के अन्त की ही कथा नहीं, वह देश की क्रान्ति के एक पूरे परिच्छेद की कथा है। आज से १८९ वर्ष पूर्व सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध में भारतीयों की छाती पर जिस ब्रिटिश साम्राज्य की नींव खड़ी की गई थी, उस साम्राज्य के पैर उखाड़ने का प्रयत्न भी उतना ही प्राचीन है। उसके ठीक सौ वर्ष बाद सन् १८५७ में उसका पहला देश-व्यापी और संगठित मोर्चा सिपाहियों ने लिया था। और उसके बाद तो अंग्रेजी-दमन क्रान्ति की

उत्तरोत्तर खुराक जुटाता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय आतंक-क्रान्ति की नींव उतनी ही दृढ़ हो गई थी, जितनी कि आज देश में अहिंसा की है।"

एक युवक शिष्य से हरिदास ने पूछा, "आर्ये, रुष्ट न हों, इस देश व्यापी हिंसा के अद्य कालीन अभिनय के उपरान्त भी आप इसे अहिंसा का युग बता रही हैं?"

नीलम ने कहा, "इस युग की यह घटना प्रवाह-मुक्त नहीं है भैया! उन्नीसवीं शती का जो प्राचीन प्रवाह लुप्त हो गया था, इस अगस्त आन्दोलन के रूप में वही ज्वालामुखी पृथिवी फोड़ कर भभक उठा है। किन्तु मेरा विश्वास है, यह उस आतंक-क्रान्ति का उपसंहार मात्र है। भारतवर्ष को सचमुच अहिंसा की आवश्यकता है, और इसी महामंत्र को लेकर वह पुनः एक बार जगद्गुरु का पद प्राप्त कर सकेगा।"

इसके बाद किंचित साँस लेकर वह बोली—

"सन् १८९७ के पूना के ऐतिहासिक प्लेग की कथा प्रसिद्ध है। तत्कालीन अंग्रेज अफसर रैंण्ड की हत्या का अंग्रेजों के दिमाग पर बहुत दिनों तक कीट जमाता रहा। उसी दमन-चक्र से बचने के लिए काठियावाड़ रियासत के बम्बई-निवासी धनिक युवक श्याम जी कृष्ण वर्मा को भी बम्बई छोड़कर विलायत जाना पड़ा था। सन् १९०५ में विलायत में उन्होंने जब 'इंण्डिया होम रूल सोसाइटी की स्थापना की तो उसके भारतीय सदस्यों में मदनलाल धींगरा आदि के अतिरिक्त एक तेरह चौदह वर्षीय अधरलाल नामक युवक ने भी अपना नाम लिखाया था—"

ललिता ने पूछा, "अधरलाल विलायत में कैसे पहुँचे हुए थे?"

नीलम ने कहा, "१८५७ में किसी गर्भवती अंग्रेज महिला को आश्रय देने के कारण अधरलाल के पिता उनकी जाति से बहिष्कृत कर दिए गए थे। जाति का यह असहयोग था ही, इधर कालान्तर से उस

महिला से उत्पन्न बच्चा इंग्लैंड जाकर एक बड़ा अफसर बन गया। उसने अनुरोध करके अपने उपकारक को, जब कि उनका इकलौता लड़का छः-सात वर्ष का ही था, विलायत बुला लिया। दुर्भाग्य इस हिन्दू कुटुम्ब का, उस अंग्रेज का सद्भाव तथा सहानुभूति होते हुए भी, अंग्रेजों की स्वतंत्र भूमि में गुलाम-देश के एक हिन्दू के साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ। अधरलाल के पिता ने अपनी मातृभूमि को छोड़ देने की पीड़ा से संतप्त होकर शीघ्र ही अमरत्व लाभ किया, और अधरलाल के ऊपर संकट का प्रहाड़ आ पड़ा। दस वर्ष की अवस्था से ही, उन्होंने अंग्रेजों से विरासत में नफरत ही पाई, इसलिए जैसे ही 'इण्डिया होम रूल सोसाइटी' की स्थापना हुई, वे इसके सदस्य हो गए। उनके उत्साह को देख कर तथा उनकी दर्दनाक कथा सुन कर वर्मा ने उन्हें अपनी सोसाइटी में भर्ती करने से इन्कार नहीं किया।''

सारा समुदाय बड़े ध्यान से नीलम की कथा को सुन रहा था। रोगिणी ललिता भी आँखें बन्द किए चुपचाप सुन रही थी। स्वयम् आरती, मानों कथा के किसी अंश से उसका परिचय न हो, बड़ी तन्मयता से सुन रही थी।''

''दो वर्ष बाद ही ब्रिटिश पुलिस की गृद्ध-दृष्टि इस सोसाइटी पर पड़ी, और श्यामजी कृष्ण वर्मा को लन्दन छोड़कर पेरिस भाग आना पड़ा। उसी के साथ मदनलाल धींगरा तथा अधरलाल भी पेरिस चले आए। पेरिस में उन्हें कार्य करने का अच्छा अवसर मिला। वहाँ के कई नागरिकों की भारतियों के साथ पूरी सहानुभूति हो गई। भारतीय क्रान्तिकारियों की जननी मैडम कामा भी अपनी एक विधवा धनिक साथिन कैथराइन के साथ उस दल की सदस्या थी। दुर्भाग्य से धींगरा का इस धनिक विधवा से प्रेम सम्बन्ध हो गया था। किन्तु इसके कुछ ही काल पश्चात् धींगरा को लन्दन जाकर सर कर्जन वाइली की हत्या का भार दिया गया, और एक जुलाई १९०६ को धींगरा ने भरी

सभा में, एक के बाद एक, तीन गोलियाँ मार कर अपनी जिम्मेदारी को पूरा किया।"

सभी उपस्थित व्यक्ति हत्या की बात को सुनकर सिहर उठे।

नीलम ने कहा, यह सच है कि आज मन्दिर की बन्द चहार दीवारी में बैठकर हत्या की स्थूल-वीभत्सता ही की हम कल्पना कर सकते हैं, किन्तु उसके पीछे जनता के अत्याचारों को कैसी घनी पीड़ा और उनका कैसा आर्त्तनाद छिपा पड़ा है, यह हम नहीं सोच सकते। उस दिशा का थोड़ा-सा आभास दिलाने के लिए मैं केवल धींगरा के अन्तिम वक्तव्य को जो उन्होंने अपने मुकदमे के दिनों में दिया था, बता रही हूँ। वे शब्द मैंने अपने कानों नहीं सुने, किन्तु उन्हें मेरी मां ने मुझे कई बार सुनाया है, और उनको मैंने रट लिया है।

एक क्षण का सांस लेकर नीलम ने कहा, "उन्होंने कहा था, 'जो सैंकड़ों अमानुषिक अत्याचार, फांसी और कालेपानी की सजाएँ, मेरे देशवासियों को उनके देश प्रेम के कारण हो रही हैं, मैंने उसी का एक साधारण-सा बदला उस अंग्रेज से लेनेका प्रयत्न कियाहै। हिन्दू होनेकी वजह से मैं समझता हूँ कि यदि कोई हमारी मातृभूमि के विरुद्ध अत्याचार करता है, तो वह परमेश्वर का अपमान करता है। हतभाग्य संतान के लिए जो धन और बुद्धि दोनों से हीन है, इसके सिवा चारा ही क्या है कि मैं अपनी मां की वेदी पर अपना रक्त अर्पित करूँ। भारतवासी इस समय केवल इतना ही कर सकते हैं कि वे मरना सीखें, और उसे सीखने का एकमात्र उपाय यह है कि वे स्वयं मरें, मैं इसीलिए मरूँगा। ईश्वर से मेरी केवल यही प्रार्थना है कि मैं फिर उसी भारतभूमि में पैदा होऊँ, जिससे कि फिर इसी पवित्र उद्देश्यके लिए अपना प्राणार्पण कर सकूँ, और यह क्रम तबतक चलता रहे जबतक कि भारत विजयी और स्वाधीन न होजाए।" कहते-कहते नीलम के क्रोध से अंगारे की तरह चमकते हुए नेत्रों से एकाएक पानी की धारा बह निकली, समुदाय के किसी भी व्यक्ति की आंखें सूखी न रहीं!

नीलम ने फिर कहना जारी रखा, " धींगरा ने जेल ही में सुना था कि उनकी प्रियतमा कैथराइन ने एक पुत्री का प्रसव किया है। किन्तु दुर्भाग्य, न तो धींगरा ने ही कभी अपनी पुत्री की सूरत देखी, और न कन्या ने ही अपने विश्रुत पिता की। अगस्त १९०९ में यह वीर फांसी पर लटका दिया गया। कैथराइन एक बार और विधवा होगई, किन्तु अबकी बार भारतवर्ष के लिए उसके हृदय में मातृभूमि-सा स्नेह पैदा हो गया था। मृत-प्रेमी की शेष स्मृति स्वरूप कन्या को उसने भारतीय शिक्षा-दीक्षा में सम्पन्न करने का निश्चय किया। अधरलाल ने इस बात की व्यवस्था करदी थी, और फ्रांस के पेरिस नगर में रहकर भी उस कन्या के लिए भारत का स्वप्न देखना संभव हो गया था। "

पास बैठी हुई विशाखा ने नीलम की अंगुलियों से खेलते हुए पूछा, उस लड़की का नाम नहीं बताया दीदी !

नाम तो मुझे भी याद नहीं रहा। परन्तु कहते हैं उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, वह फ्रेंच भाषा के साथही साथ हिन्दी भी बहुत जल्दी सीख गई, भारतीय संगीत तथा नृत्य में उसने तीन-चार वर्ष की अवस्था ही से आश्चर्यजनक उन्नति प्रारंभ करदी थी। घरपर मां उसे फ्रेंच वातावरण दे रही थी, और बाहर अधरलाल उसके लिए भारत का वातावरण तैयार कर रहे थे। पर विशाखा अभी उसकी कथा रहने दो। बाद में उसके बारे में तुम्हें बहुत बता दिया जावेगा।

इसके बाद वृद्ध आचार्य की ओर अभिमुख होकर वह कहने लगी, " क्रांति की यह अग्नि केवल भारतवर्ष या यूरोप ही में नहीं, अमेरिका में भी लग रही थी। महायुद्ध को सन्निकट देखकर सभी प्रयत्नशील देशसेवी आतुर हो रहे थे। केलिफोर्निया में १० मई १९१३ को गदर पार्टी का जन्म हुआ था। भारतीय क्रांति के अमरसेनानायक बाबाज्वाला सिंह, कर्तार सिंह, पं० जगतराम आदि प्रसिद्ध नेता इस पार्टी के उन्नायक थे, और प्रसिद्ध देशसेवक लाला हरदयाल इस संस्था के अग्रणी थे। पार्टी के प्रसिद्ध पत्र ' गदर ' के खून बरसाने वाले लेख आदि का परि-

याम यह हुआ कि लाला हरदयाल गिरफ्तार कर लिए गए, किन्तु वे किसी तरह जमानत पर छूटने में सफल हुए, और वे यूरोप चले आये। यहाँ पेरिस में काम करने वाले इस संगठन से भी उनका सम्बन्ध हुआ, और भारतवर्ष के लिए अमेरीका में शस्त्र-संग्रह के कार्य के लिए उन्होंने अधरलाल को चुना। कैथराइन भारतवर्ष के प्रति बहुत आकृष्ट हो चुकी थी, एक भारतीय के साथ प्रेम संबंध होने के कारण उसके देश में उसका सम्मान भी नहीं रह गया था, और अधरलाल के चले जाने के बाद वह वहां पर निराधार रह जाती, अतः उसने भी अपनी समस्त जायदाद बेचदी, और वह भी अपनी एकमात्र कन्या को लेकर अधरलाल के साथ जाने के लिए तैयार होगई। फ्रांस से वे लोग बर्लिन पहुँचे। लाला हरदयाल अपने अध्यवसाय से उन दिनों जर्मनी के उप परराष्ट्र-सचिव हो गए थे। जर्मनी से अमेरीका जाने वाले जहाज से एक दिन तीनों अमेरीका पहुंच गए।

वृद्ध आचार्य ने लम्बी साँस लेकर कहा, "तो अधरलाल सारी दुनियाँ घूमे हुए थे! उनके मुंह के सारल्य ने तो कभी उनके हृदय के रहस्य का छल नहीं किया।

नीलम ने कहा, "अधरलाल जैसी विभूतियाँ हर कहीं पैदा होती देखी नहीं गई गुरुदेव। आपके असीम आध्यात्मिक-ज्ञान के प्रति मेरी कम श्रद्धा नहीं है, किन्तु पार्थिव जगत् में उसका सर्वांगीण क्रियात्मक प्रयोग मैंने अधरलाल के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं देखा। इस दिशा में मैं उन्हें अद्वितीय मानूंगी!" मैं भी मानूंगा आर्ये! किंचित हंसकर आचार्य ने कहा, इन कृति पुरुषों की तुलना मुझ जैसे अकर्मण्य से कहाँ कर बैठी? वे महापुरुष इसजगत को रहनेके योग्य बनाते हैं, हम केवल मात्र जीवन को, वह भी केवल सहनेके योग्य, जीने के योग्य भी नहीं। मैं इन महापुरुषों के पादपद्मों में अपना मस्तक झुकाने में गौरव अनुभव करता हूँ देवि!"

और सचमुच ही वृद्ध आचार्य ने भक्तिगद्-गद् चित्तसे अपना मस्तक

महापुरुष की उस कल्पित मूर्ति के आगे नत कर दिया। तत्पश्चात् बोले "आगे कहो माँ! उस महापुरुष के गुणगान हमारे कानों में अमृत की वर्षा कर रहे हैं!"

नीलम ने कहा, "नई दुनियां में भारत के लिए काफी शस्त्रास्त्र खरीदे गए, और सिंगापुर के ठेकेदार बाबू गुरुदत्त सिंह द्वारा स्थापित गुरुनानक स्टीम नेव्हिगेशन कम्पनीने कई जापानी जहाजों द्वारा इन शस्त्रास्त्रों को भारत पहुंचाना प्रारम्भ किया। इधर दुर्भाग्य से कनाडा की प्रिवी कौंसिल ने उन्हीं दिनों भारतीयों को कनाडा में बसने देने पर रोक लगा दी। भारतीयों के आत्म सम्मान पर यह बहुत बड़ा आघात था। स्वयं अधरलाल ने अमेरीका में इस मसले पर काफी उत्तेजना पैदा की। नतीजा यह हुआ कि उक्त कम्पनी का प्रसिद्ध जापानी जहाज 'कामागातामारु' बंगाल से लगभग चार सौ भारतीयों को लेकर कनाडा की ओर अग्रसर हुआ। कनाडा की सरकार को इसका पता ही तब लगा जब जहाज बैंकोवर पहुँच गया था, किन्तु उन्होंने जहाज को किनारे लगने से रोक दिया। दो माह तक जहाज समुद्र में लंगर लगाए पड़ा रहा। उन लोगों की नीति कि शेष जगत् से सम्पर्क हीन होकर रसद पानी के अभाव में ये भारतीय स्वयं ही खुश्की की राह दूसरी दुनियां में पहुँच जाएँ। अधरलाल किसी तरह कनाडा पहुँचे और उन्होंने भारत मंत्री द्वारा जोर दिलवा कर जहाज पर रसद-पानी की व्यवस्था करवाई। दो माह के बाद तय हुआ कि जहाज भारतवर्ष लौट जाए। अधरलाल ने इस जहाज को भी अच्छी खासी संख्या में शस्त्रास्त्रों से भर देने का प्रबन्ध कर दिया, और सरकार के कोप-भाजन हो चुकने के कारण स्वयं भी उसी जहाज से भारतवर्ष लौटना स्थिर कर लिया!

और वह फ्रेंच महिला तथा उसकी कन्या!

"वे अमेरीका ही रहने दी गईं। अधरलाल का एक लँगोटिया साथी टीकमचन्द उन लोगों के साथ वहां छोड़ दिया गया था। अद्-

भुत व्यक्ति था वह। अमेरीका में वह रेड-इण्डियन बनकर प्रसिद्ध हुआ था, टिंकर के नाम से' और दूसरी बार भारत लौटने पर सरकार की क्रूर-दृष्टि से बचने के लिए उसे अपना नाम रखना पड़ा था 'टीकू'।

"टीकू! यह नाम तो कहीं सुना सा लगता है! एक तरुण संन्यासी ने कहा।

हो सकता है। टीकू नाम इतना सामान्य है कि भारत के किसी भी गांव में इस नाम के व्यक्ति पाए जा सकते हैं।

"वह भारतवर्ष कब आया दीदी!" विशाखा ने पूछा।

"वही कह रही हूँ विशाखा! उधर लाला हरदयाल जर्मनी से ही भारत के लिए शस्त्रास्त्र जुटाने में तथा भारतीयों की शस्त्र शिक्षा के लिए प्रयत्नवान थे ही, अमेरीका में प्रयत्न करने वालों में प्रमुख थे श्री पिंगले और सत्येन्द्र सेन। हरदयाल के प्रयत्नों से तथा अमेरीका-स्थित जर्मन राजदूत वान विंकन की सहायता से अप्रैल १६१५ में केलिफोर्निया से 'मेवरीक' नामक एक जहाज चला। शस्त्रास्त्र के अतिरिक्त सैनिक शिक्षा के लिए इस में पच्चीस जर्मन अफसर भी थे, और उसी जहाज के यात्रियों में थी फ्रांस की विधवा कैथराइन अपनी कन्या तथा अपने साथी 'टिंकर' उर्फ 'टीकू' के साथ।

"इधर भारतवर्ष में नया ही गुल खिला। जब 'कामागातामारू' जहाज अधरलाल आदि को लेकर बजबज पहुँचा, तो उन्हें आज्ञा हुई कि वे स्पेशल ट्रेन द्वारा सीधे पंजाब ले जाए जाएं! कनाडा से व्यर्थ लौटने का अपमान वे सह ही चुके थे, इस नए अपमान ने उनको और अधिक तिलमिला दिया। उन्होंने भारत-सरकार की आज्ञा पर पंजाब जाने से इनकार कर दिया। अंग्रेज सरकार ने बिना पूर्व सूचना दिए गोली से इन बागियों का स्वागत किया। अठारह व्यक्ति वहीं शहीद हो गए, कुछ भाग गए, कुछ को कैद कर लिया गया, और शेष को जबरन रेल में ठूँस कर पंजाब भेज दिया गया। नेव्हीगेशन कम्पनी के ठेकेदार बाबू गुरुदत्त सिंह तथा अधरलाल भाग सकने में समर्थ हुए।

लगभग सात वर्ष तक भूमिष्ठ रहकर सन् १९२१ में महात्मा गांधी के कहने से बाबू गुरुदत्त सिंह ननकाना में प्रकट हुए और उन्होंने आत्म-समर्पण किया। १९२२ में उन्हें मुक्त कर दिया गया। अधरलाल ने अपने आप को छिपाय रख कर पोस्टमेन की नौकरी और उसी सिलसिले में तबदील होकर वे मानपुर में आए थे। वे बराबर आतंक-दल से अपना सम्बन्ध बनाए हुए थे। भारतवर्ष उनके लिए एकदम से नया देश था, वे इस देश को समझना चाहते थे, अतः छिपे-छिपे ही उन्होंने अपना कार्य जारी रखा, पोस्टआफिस की नौकरी उनके सब समयों से सब जगहों में जाने में सहायक हुई। आतंक के जितने भी मुख्य मुख्य कार्य भारतवर्ष में घटित हुए हैं, उन सबके साथ उनका प्रकट या अप्रकट सम्बन्ध था। वे पक्के हिंसावादी थे, किंतु वे कहा करते थे, महात्मा गांधी द्वारा अहिंसावाद के प्रचार के बाद अपने हिंसावाद में उन्हें रंचमात्र भी आस्था न रह गई थी।

विशाखा ने पूछा, "उनके विवाह की बात तो आई ही नहीं दीदी?"

सभी सदस्यों के मुख पर किंचित् परिहास की रेखा खिंच गई, किंतु जैसे ही उनकी दृष्टि इस संबंध के दूसरी ओर आरती पर पड़ी उसके भस्मावृत चेहरे को देख कर सब के फूल मुरझा गए।

नीलम ने कहना शुरू किया, "मैंने कहा कि अधरलाल के पोस्टमेन बनने का भी एक कारण है, कि इससे उन्होंने अपने लिए प्रत्येक स्थान पर समय-कुसमय आने-जाने की स्वतंत्रता प्राप्त करली थी। सन् १९३७ में अधरलाल पटना की हेड आफिस में थे; वहाँ उनका संपर्क एक करोड़पति सेठ नवजीवनलाल से बड़े अद्भुत तरीके से हुआ। चिट्ठियाँ बांटते समय उन्होंने लक्ष्य किया कि सेठजी के नाम केलिफोर्निया से कुछ चिट्ठियाँ सेठजी के नाम बराबर आया करती हैं, और एक दिन एक मुहरबन्द चिट्ठी को उन्होंने अनायास ही खोल कर पढ़ लिया उस चिट्ठी में बड़े रहस्य का वृत्त था। सेठजी चोरी-चोरी कोकीन और अफीम का

व्यापार करते थे। अधरलाल उस चिट्ठी को लेकर सेठजी के पास पहुँच गए, और उन्होंने सम्पूर्ण हाल उन्हें कह सुनाया। सेठजी बहुत डरे, किन्तु अधरलाल ने उन्हें धीरज बँधाया, और कहा कि यदि वे भविष्य में ऐसा कार्य न करने का वे वादा करें तो अधरलाल उस मामले को गुप्त रखेंगे, और सेठजी ने इसे स्वीकार कर लिया। कहते हैं सेठजी ने दूसरे दिन उन्हें दस हजार रुपए देकर अधरलाल को विश्वास में लाने की चेष्टा की; किन्तु अधरलाल ने उन रुपयों को अस्वीकार कर दिया, और उन्हें विश्वास दिला दिया कि अधरलाल ऐसे तुच्छ व्यक्ति नहीं थे कि रुपये के लिए वे किसी से विश्वासघात करेंगे। सेठजी बहुत अधिक प्रभावित हुए, उसी दिन से उन दोनों में घनिष्टता हो गई। अधरलाल की प्रेरणा से, वह रुपया सार्वजनिक कार्यों में लगा दिया गया।

"किंतु पूंजीवाद की जीभ पर खून का स्वाद होता है, सरलता से उसकी तृप्ति नहीं होती। अधरलाल से भी छिपा कर सेठजी ने अपने कारोबार की एक शाखा भागलपुर में खोली, और वहाँ से वे अपना पुराना कारोबार चलाते रहे। कुछ माह तो ठीक तरह से बीत गए, पर भाग्य अनुकूल न मालूम दिया। एक दिन सेठजी के यहाँ पहुँचने पर अधरलाल ने उनको बहुत अधिक बदहवास पाया। पूछने पर नवजीवनलाल ने सारी कथा अधरलाल को सुनाते हुए बताया कि किस तरह वे अधरलालसे छिपा कर अपने कारोबार को भागलपुर की नई शाखा से चलाते रहे। दुर्भाग्य से वहां के पोस्टमेन ने भी उसी तरह सेठजी के रहस्य को जान लिया, जिसमें पोस्टमास्टर भी सम्मिलित था,यद्यपि यह बात उन्हें बाद में मालूम हुई। पोस्टमैन की मांग थी पचास हजार रुपए। रुपयों के अलावा यह भी बात थी कि पोस्टमेन भला व्यक्ति नहीं मालूम देता था। भविष्य का खतरा था, इसलिए सेठजी भागलपुर पहुँचे और कौशल से रुपये के लिए उस पोस्टमैन को बुला कर उन्होंने उसकी हत्या करवा दी, उन्हें यह पता न था कि पोस्ट मास्टर भी उस

रहस्य को जानता था। दूसरे दिन उसकी चढ़ाई हुई, और उसकी माँग हुई पहले से दूनी, क्या किया जाता, कोई उपाय न था। एक बहुत बड़ा धक्का स्वीकार करके सेठजी ने एक लाख रुपया होम करके 'स्वस्ति' लाभ करने की चेष्टा की। कुछ दिनों तक मामला सोया रहा, किन्तु कल फिर उस पोस्टमास्टर का नया आक्रमण हुआ था, उसकी मांग थी पचास हजार रुपया। सेठजी ने अपना भविष्य समझ लिया था। वे पचास हजार देकर भी अपना भविष्य नहीं सुधार सकते थे, और सच पूछा जाए तो इतना रुपया तब उनके पास था भी नहीं। तब पोस्ट-मास्टर लौट गया खाली हाथ, किन्तु भरे दिमाग से कि किस भाँति सेठजी के भविष्य की व्यवस्था की जा सकती है! सेठजी की चिन्ता अपने भविष्य के बारे में थी, वे अपनी एक मात्र मातृहीना अविवाहित कन्या के भविष्य की चिन्ता कर रहे थे। जब कि अधरलाल में और सेठजी में ये बातें हो ही रही थीं, तभी नौकर ने सूचना दी कि पुलिस ने मकान घेर लिया है। रोते हुए सेठजी को अधरलाल से अनुरोध करना पड़ा कि अधरलाल पर ही वे अपनी कन्या का दायित्व सौंप सकते थे। समय न था, उन्होंने अपनी कन्या को बुलाया, आसन्न-विपत्ति को वह जानती थी, निराभरण, घर के कपड़ों ही में वह बैठक में आई, अधरलाल के सम्मुख पहली बार, किन्तु तभी पुलिस के कर्मचारी भी गिरफ़्तारी का वारण्ट लेकर भीतर प्रविष्ट हो गए। नव-जीवनलाल बन्दी बना लिए गए, पोस्टमैन अधरलाल को छूने की किसी को जरूरत न थी। एक सिपाही सेठजी की कन्या की ओर बढ़ा, और सेठजी से बोला, 'यह तुम्हारी कन्या है?'

"सेठजी ने तत्काल उत्तर दिया, 'नहीं; यह तो पोस्टमैन साहिब की धर्म पत्नी है।"

"पुलिस ने अधरलाल से पूछा, क्यों जो, सच बात है?"

"अधरलाल ने कहा, 'इसी से पूछ लीजिए न थानेदार साहिब, मुफ्त में तो कोई किसी की धर्म-पत्नी बनती नहीं।"

"प्रवहमान आँसुओं को रोक कर नीची दृष्टि से उसे 'हाँ' कहना पड़ा।

"थानेदार ने पूछा, क्योंजी, तुम तो खैर चिट्ठी बांटने आए हो, पर तुम्हारी धर्म पत्नी ?"

"अधरलाल ने उत्तर दिया, गाँव के रहने वाले हैं सरकार, 'सुना था सेठजी की बहुत बड़ी देखने लायक कोठी है। घरवाली ने जिद की 'देखूँगी; दूसरे ब्याह की मेहरारू है, इनकार करने की हिम्मत न पड़ी, और लाना ही पड़ा। इसी से पूछ लीजिए न।—औरतों के अक्ल आधी होती है न। गरीब पोस्टमैन हूँ सरकार, मेरा कोई कसूर नहीं।' पुलिस के कर्मचारियों ने हँसकर लड़की की जान बख्श दी। सेठजी को फाँसी का दण्ड मिला, उनकी सब जायदाद जप्त हो गई। कुछ दिनों बाद एक दिन अपने घर में अधरलाल ने सेठजी की कन्या से पूछा, 'तुम सयानी हो गई हो, यह गलत है कि तुम्हारे विवाह के बारे में तुम्हारी सम्मति न ली जाए! मैं कई दिनों से तुम्हारे लिए वर की खोज कर रहा हूँ, पर क्या तुम मुझे कुछ सहायता न दोगी। यदि कहो कि किस तरह का लड़का मैं तुम्हारे लिए तलाश करूँ! मैं तो तुम्हारी रुचि आदि के बारे में कुछ जानता नहीं।'

"लड़की ने कहा, 'तुम्हें क्या मालूम नहीं कि मेरा विवाह तो हो चुका है ?'

" 'हो चुका ? मुझे तो तुम्हारे पिता ने यही कहा था कि तुम्हारा विवाह करना शेष है। कौन है तुम्हारे पति ?—वहीं पहुँचा कर जिम्मेदारी से मुक्त होऊँ!'

" जिम्मेदारी से सस्ते मुक्त न हो सकोगे!"

" 'विवाह करके कन्या का पिता भी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाता है, फिर मैं ही क्यों न हूँगा!'

"पिता की भाँति क्या पति भी मुक्त हो जाता है क्या ?'

" 'यानी ?'

"'नहीं समझे ?—तो कहदो कि मेरा विवाह तुम्हारे साथ नहीं हुआ !—भूल गए ? पुलिस के सामने स्वीकार नहीं कर चुके थे कि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ !—एक गवाह को तो फाँसी हो गई, किन्तु पुलिस की गवाही तो मौजूद है।' बस यही उनका विवाह था।"

"कैसा दुर्भाग्य है कि जिस दण्ड से पिता का अन्त हुआ, वही दण्ड पल्ले पड़ा पति के भी ! गुरुदेव, राज कन्या के समान वैभव वाली वह लड़की यही आरती है। पिता की इतनी दुश्चिंता के बाद भी आज इसका भविष्य उजड़ा हुआ है।"

सभी लोगों ने पुनः नत-दृष्टि आरती की ओर दृष्टि डाली। स्मृति में मृतक को पुनर्जीवित छवि पाकर उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली थी। अब रुदन का प्रवाह छूत की बीमारी की भाँति चारों ओर व्याप्त हो गया।

कुछ देर बाद विशाखा ने पूछा, "दीदी, तुमने उस फ्रांसीसी विधवा और उसकी कन्या की कहानी तो सुनाई ही नहीं।"

नीलम ने आँसू पोंछ कर कहा, "वह भी ऐसे ही दुःख की कहानी है लल्ली !—आज तो वह बात सचमुच एक कहानी ही रह गई है !"

आचार्य ने कहा, "कहानी में स्मृति है माँ; और मनुष्य का वर्त्तमान जब विक्षुब्ध हो उठता है, तो उसी स्मृति में उसके आनन्द-बोध की बुभुक्षा तृप्त होती है। कहो आर्ये ? हम सभी उस कहानी को सुनने के लिए उत्सुक हैं। उत्सुक हैं जानने के लिए कि उस पर ब्रह्म लीला-निकेतन के ये अनेक स्वरूप कहाँ-कहाँ पर किस-किस प्रकार से अपनी लीला का विस्तार करते हैं। सुनाओ माँ !"

नीलम बोली, "गुरुदेव, कामागातामारु की इस दुर्दशा से भारतीय सशंक हो उठे थे। अंग्रेजों की पहरेदारी से 'मेवरिक' को बचाना आवश्यक था। बंगाल की खाड़ी में बड़ा भयानक पहरा बैठा हुआ था, फिर भी एक युवक नरेन्द्र भट्टाचार्य साहस करके बटेविया पहुँच गया। 'मेवेरिक' वहीं पर खाली कर दिया गया; कैथराइन अपनी कन्या तथा टीकू के साथ वहीं पर उतरने के लिए बाध्य की गई। सुनते हैं, दूसरे

ही दिन उसकी तलाशी का योग आगया, यदि एक दिन की भी देर हो जाती तो जाने क्या गुल खिलता ! किन्तु कैथराइन-परिवार के कष्टों की समाप्ति यहीं न हुई। वहाँ का मथेरिया कैथराइन पर अनुरक्त होगया, और कुछ ही समय के बाद उसे परलोक की यात्रा कर देनी पड़ी, अपनी कन्या को टीकू के भरोसे छोड़कर। बेचारी का भारतवर्ष का स्वप्न कभी पूरा नहीं हुआ !"

किन्तु इतना कहने के साथ ही नीलम को कण्ठावरोध हो गया; आँसुओं के उद्दाम वेग में उसकी वाणी बह गई। गले से हिचकियाँ छूटने लगीं। सभी लोगों को आश्चर्य हुआ कि नीलम एकाएक इतनी अधीर कैसे होगई ! किन्तु कुछ समय बाद ही प्रकृतिस्थ होकर नीलम ने कहा—

"आप लोग मुझे क्षमा करें मैं बहुत अधिक विह्वल होगई हूँ। आप लोग समझ जायँगे कि वह अभागिनी कैथराइन मेरी ही माँ थी, और उसके दुर्भाग्य का मूल मैं ही उसकी व ; जिसका नाम 'नीलम' उसी के बाप की प्रेरणा का फल है।"

एक बार और सारी सभा पर मानों वज्र; स्वयम् आरती भी यह रहस्य न जानती हो, एक क्षण के लिए उसे अपना दुःख भूल गया, वह अचेत प्राय नीलम के गले से चिपट गई, और बोली—"अभागिनी मातृहीन बहन मेरी !"

—और दोनों ही के सम्मिलित अश्रु बहुत देर तक प्रकोष्ठ के फर्श को सिक्त करते रहे।

वृद्ध आचार्य ने भी अपने आँसू पोंछे, और धीरे-धीरे बोले, "जो इन भौतिक आघातों में भी अपने हृदय के अमृत को नहीं भूलता, वही अमर है देवि। शोक का त्याग करो, तुम्हारी माता ने प्रेम के विराट् आदर्श का पालन किया है।"

नीलम ने एक और लम्बी सांस ली, और कहा, "भारतवर्ष की राजनैतिक अवस्था तब बहुत शोचनीय थी। टीकू की राय थी कि जब

तक भारतवर्ष की अवस्थामें किंचित सुधार न होजाए, या अधरलाल का पता पाकर उनसे सम्मति न प्राप्त करली जाए तब तक बटेविया में रहना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। मेरे पठन पाठन शिक्षा-दीक्षा सबकी उचित व्यवस्था कर दी गई, मेरी माँ काफी सम्पत्ति छोड़कर मरी थी। आखिर अधरलाल का पता लगने पर भी सम्मति यही मिली कि मुझे भारतवर्ष की अवस्था में सुधार होने तक बटेविया ही रहना चाहिए! और इस तरह मैं सन् १९३७ के पहले भारत भूमि में पैर नहीं रख सकी। बटेविया में रहकर मैंने भारतवर्ष का समस्त भाव से अध्ययन किया था, और मुझे बड़ी इच्छा थी कि यहाँ की समाजनीति में, संस्कृति में तथा राष्ट्र-नीति में हाथ बँटाऊं। अधरलाल तब मानपुर में थे। मुझे भी यहीं आना पड़ा, और एक मकान लेकर रहने लगी। लोगों की उत्सुक दृष्टि से छिपने के तब भी कारण थे। मैं भी अधरलाल के अराजकदल की सदस्या हो गई, किन्तु मुझे कार्य स्वीकार करना पड़ा एक नर्त्तकी और गायिका का, यद्यपि मुझे बाद में मालूम पड़ा कि भारतवर्ष में इस व्यवसाय को बड़ी नीची दृष्टि से देखा जाता है। केवल दो ही वर्ष की तो बात है जब यहां पर तबदील होकर श्रीयुत नवनीतलाल व्यास पोस्टमास्टर बनकर आए, और वही नवनीतलाल, सभी के जीवन में एक धूमकेतु प्रमाणित हुए। मेरी कथा का पूर्वार्द्ध यहीं समाप्त होता है गुरुदेव।"

एक संन्यासी ने पूछा, "और टीकू का क्या हुआ?"

"उसने मानपुर के तालाब में ही नावों का ठेका ले लिया था, तब से वह भी यहीं था। अधरलाल के साथ उसे भी फांसी पर लटका दिया गया।"

"उसे भी फाँसी पर लटका दिया गया?"

"जी हाँ, अधरलाल का वही सच्चा साथी प्रमाणित हुआ।"

इसके बाद नीलम ने वह सम्पूर्ण कथा भी सुनादी, जिसमें सभापति के पुत्र की हत्या का उल्लेख था। यह भी उसने बताया कि किस

तरह उसके प्रतिशोध में मानपुर के तालाब में क्रिट्सन रोगर्स तथा उसकी पत्नी को हत्या का प्रयत्न किया गया था। नवनोतलाल की भूमिका विशद रूप से वर्णित की गई, केवल उससे अरना और आरती का सम्बन्ध छिपा लिया गया।

"तत्पश्चात् नीलम मुकद्दमें को बातें बताने लगी—"यह बात सत्य है कि अधरलाल ने किट्सन की हत्या की, किन्तु वह केवल नवनीतलाल के लिए की गई थी। अराजक-दल का दायित्व उनके ऊपर था अवश्य, किन्तु केवल इतने मात्र से वे हत्या के लिए तैयार न होते। प्रत्युत इसीलिए उसकी हत्या का दायित्व उन्होंने रेडियर के ऊपर ही रहने दिया था। यदि नवनीतलाल के प्राणों के ऊपर न आ बनती तो वह काठियावाड़ी सेठ कभी गोली न चलाता। और इसके लिए नवनीतलाल को अधरलाल के प्रति न केवल कृतज्ञ ही होना चाहिए था, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों की बाजा लगाकर भी उनकी रक्षा करने के लिए प्रतिश्रुत होना चाहिए था। यही नहीं, इसके पूर्व भी आरती अपनी अथक-सेवा से नवनीतलाल को महाभयानक बीमारी से त्राण देने में सफल हुई थी। नवनीतलाल बड़ा कृतघ्न निकला गुरुदेव!"

"किन्तु बिना किसी प्रकार की आवश्यकता के नवनीतलाल को यह चरखा कातने की आवश्यकता ही क्या पड़ी? मैंने इस सम्वाद को समाचार पत्रों में पढ़ा था। मुझे स्मरण है, किस्सा इतना दिलचस्प बना लिया गया था, कि उसके ऊपर एकाएक किसी को अविश्वास न हो!"

नीलम ने एक बार आरती की ओर, देखा, और आरती ने नीलम को ओर; दोनों की दृष्टि टकरा गई, एक मूक संदेश दोनों के बीच प्रचारित हो गया।

नीलम ने कहा, "विहृत संतोषी मनुष्यों के कोई कारण तलाश करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरी बात यह हुई कि घटनास्थल के दो आरोपी, अंग्रेज कन्या शर्ली और डा. रेडियर, जिनको कि यह समाज डूबा हुआ समझता था, तालाब से किसी तरह बच गए और

इनकी खबर शायद नवनीतलाल को लग गई। शायद उसे यह भय था कि ये लोग अवश्य ही मामले को कोर्ट तक पहुँचाएंगे; और तब रक्षा बन न पड़ेगी यदि अधरलाल ने इनकार कर दिया। अंग्रेज-लड़की शर्ली की गवाही काफी समझी जाती, अधरलाल के प्रति कोई सन्देह का कारण न था। अगस्त-आँदोलन से उभड़ी हुई अंग्रेज सरकार नवनीत-लाल को किसी भाँति न छोड़ती। यही सब बातें सोच कर शायद उन्होंने प्रारम्भ किया और दोनों के प्राणों को ले बैठे।"

"अधरलाल ने अपनी रक्षा का कोई उपाय नहीं किया?—यदि वह समस्या इतनी सरल थी तो वे सरकार की दृष्टि से छिप भी तो सकते थे।"

"शर्ली और रेडियर के जीवित रहने का पता हम लोगों को था ही नहीं। नवनीतलाल की कृतघ्नता की बात तो कोई सोच भी नहीं सकता था। वह इतनी आकस्मिक थी, कि जब उसका सबसे पहले पता लगा, तब तक पुलिस उन्हें गिरफ्तार कर चुकी थी। दुर्ग का जो मोर्चा सबसे अधिक दृढ़ समझा जाता था, वही सबसे अधिक दुर्बल निकला। भाग्य की बात देखिए कि नवनीतलाल स्वयम् इतना डरपोक निकला कि वह अन्तिम पेशी तक स्वयम् गायब होगया। उसे भय था कि शर्ली के बयान से सरकार कहीं उसे भी फाँसी न दे दे। अगर वह पहले ही यह कर देता तो इतने बड़े अभिशाप की कभी सृष्टि न होती! और सब से बड़ी बात, अधरलाल ने अपने लिए मिथ्या का कभी आश्रय नहीं लिया।"

"तो क्या उन्होंने स्वीकार कर लिया था?"

"अस्वीकार करने की बात ही क्या थी गुरुदेव! वे वीर थे, उन्होंने वीर की मृत्यु का आह्वान किया। मुझे अपने मृत पिता के शब्द याद आते हैं, फाँसी के तख्ते पर से उन्होंने कहा था, यदि कोई हमारी मातृ-भूमि का अपमान करता है, तो वह परमेश्वर का अपमान करता है, यही शब्द अधरलाल की जीभ पर भी आ टपके थे। उन्होंने कहा था,

किट्सन की मैंने हत्या की, इसके लिए मुझे पश्चात्ताप नहीं होता; दुःख अवश्य होता है कि उस हत्या का कोई लाभ नहीं हुआ। वह हत्या, हत्या के लिए नहीं की गई थी, बल्कि इस लिए कि भविष्य के लिए हत्याओं का जो मार्ग उस पापी के हाथ खुल गया था, वह बन्द होजाए और भारतीयों की स्वातन्त्र्य-भावना अंग्रेजों में भय पैदा करके उनकी काली छाया हटाने में समर्थ हो। मुझे अपनी मृत्यु का दुःख नहीं है; कार्य-साधना में मर जाना कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है कि स्वातन्त्र्य-युद्ध में मर जाने वाले देश-प्रेमियों का रक्त स्वाधीनता की दीवार को मजबूत बनाने में सहायक होता है। जिस मिट्टी से मेरा शरीर बना था, यदि वह शरीर उस मिट्टी को बल देकर दीवार के रूप में खड़ा कर सके, तो उससे अधिक उत्तमता इस शरीर की और हो ही क्या सकती है? मैं स्वीकार करता हूँ कि भारत-स्थित अंग्रेज-सरकार मेरी शत्रु है, और उस शत्रुता को मैंने अपनी माँ के साथ बलात्कार करनेवाले नृशंस की शत्रुता के समान समझा है। हतभाग्य संतान के लिए जो साधन-शक्ति दोनों से हीन है, इसके सिवा चारा ही क्या है, कि मैं अपनी माँ की वेदी पर अपना रक्त अर्पित करूँ। किन्तु प्रत्येक जाति को, जो किसी दूसरी जाति को गुलाम बनाकर रखना चाहती है, यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति या जाति की स्वतन्त्रता का कोई दूसरा कभी स्वामी नहीं हो सकता। यदि दमन से स्वातन्त्र्य की भावना को कभी कुचलने की चेष्टा की जाएगी, तो देश प्रेमियों के रक्त से रक्त बीज की भांति एक महाभयानक सेना उठ खड़ी होगी, और वह उन शासकों से उनकी क्रूरता का प्रतिशोध लेकर रहेगी यदि अंग्रेज सरकार में कुछ साहस हो, तो वह भारत की इस चुनौती को स्वीकार करे। मैं अपनी मृत्यु को इस चुनौती का गवाह बनाता हूँ।

बस, इससे अधिक क्या कहा जाय! न्याय निष्ठ जज ने सब गवाहों के बयान का निष्कर्ष निकाला, और अधरलाल की स्वीकारोक्ति को उपलब्ध मानकर अधरलाल तथा टीकू के लिए फांसी की सजा तजवीज

कर दी। चार दिन होगए, अधरलाल तथा टीकू की अमर-भावना ही अब हम लोगों में शेष रह गई, उनकी मंगलमय स्थूल-मूर्त्ति को हम में से कोई झपट ले गया।"

स्नेह शेष दीपक-वर्त्ति के समान नीलम की द्रुत एवम् दृष्ट वाणी मन्दतर होती हुई विलीन हो गई। स्वप्न के उपसंहार में लगे हुए किसी सुप्त व्यक्ति के समान सारा समुदाय एक क्षीण चेतना का अनुभव कर रहा था। सभी मंत्र-मुग्ध थे, केवल नीलम और आरती की आँखों में करुण का समुद्र उद्वेलित हो रहा था, और किसी को इसका आभास तक नहीं था।

अपनी आर्द्र आँखों को उत्तरीय के छोर से पोंछते हुए वृद्ध आचार्य राधिका रंजन को प्रकृतिस्थ होने में कुछ समय लगा। उसके पश्चात् उन्होंने ललिता का उद्दिष्ट कर घन-मन्द्र वाणी में कहना प्रारम्भ किया—

"ललिते अधरलाल को सम्पूर्ण कथा सुन ली न! प्रश्न यह है कि मृत्यु को अधरलाल ने स्वयम् क्या समझा? वे दासता के जीवन को मृत्यु से अधिक गर्हित समझते थे, इसलिए समस्त जीवन वह स्वतंत्रता की साधना में बिताते रहे, और उसी भावना में उन्होंने अपना प्राण त्याग दिया। नीलम की शंका है कि किस तरह वे अपने आदर्श को प्राप्त कर पाए? उनका लक्ष्य था देश की स्वतंत्रता, और जब वह स्वतंत्रता अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी, तो आदर्श की प्राप्ति उन्हें कैसे हुई? क्या अब भी प्रश्न उतना ही जटिल है?"

नीलम ने प्रश्न सूचक दृष्टि से आचार्य की ओर देखा, ललिता भी कुछ स्पष्ट कर पाई हो, ऐसा नहीं मालूम दिया।

आचार्य ने कहा, 'देवियो, बात जीवन की नहीं, आदर्श की है। जीवन सामान्य रूप में एक है, आदर्श सामान्य रूप में भी अनेक हो सकते हैं।—आदर्शों में से कुछ व्यक्ति के होते हैं, कुछ होते हैं समष्टि के। जो व्यक्ति के होते हैं उनकी प्राप्ति व्यक्ति को होती है, और जो

समष्टि के होते हैं उनकी प्राप्ति समष्टि को। अधरलाल का जो आदर्श स्वतंत्रता है, वह समष्टि का आदर्श है, उसी के समान व्यष्टि का जो आदर्श है उसकी संज्ञा है 'मुक्ति'। मुक्ति का अधिकारी व्यक्ति माना गया है, और स्वतंत्रता का अधिकारी समूह, समष्टि। अतः इस आदर्श के अधिकारी केवल अधरलाल न थे, उसका अधिकारी सम्पूर्ण समूह है, जिसके वे स्वयम् एक अंश थे। किसी दुर्ग विशेष में अलग पड़े हुए किसी पत्थर का कोई महत्व नहीं होता, किन्तु वही जब दुर्ग प्राचीर में अन्य प्रस्तरों के साथ कन्धा भिड़ाकर बैठ जाता है, तो उसका महत्व साधारण नहीं रह जाता। अधरलाल ने आजादी की दीवार को ऊंचा उठाने में अपने उपयोग को आदर्श माना था। नीलम, आरती, तुम व्यष्टि की भावना से अधरलाल के उत्सर्ग का महत्व न आँको। अधरलाल किसी के पति थे, किन्तु एक के पति-भाव से अधिक उनको देश के अनेक वासियों का नेतृत्व प्राप्त था। उनके जीवन का आदर्श किसी स्त्री के पति होने में उतना न था, जितना कि देश की परतंत्र जाति को स्वाधीनता की ओर उपनयन करने में। शोक को त्याग करो माँ! दीवार में किसी पत्थर को अलग से नहीं देखा जाता, और न इसके लिए शोक ही किया जाता कि वह अलग से क्यों नहीं देखा जाए!"

ललिता ने बड़ी देर के बाद आँखें खोलीं खाँसी का प्रकोप उसको सघनतर होता जा रहा था। उसने कहा; "गुरुदेव, यदि कोई कार्यक्षेत्र में हंसते हुए अधरलाल जैसा न मरकर मुझ जैसा विवश होकर मरे!"

"मृत्यु मनुष्य को विराट् रूप दे देती है माँ! वह मनुष्य के चारों ओर के विभिन्न बन्धनों को काट देती है, उसका शरीर सम्बन्धी पारतंत्र्य भी, बन्धन भी, नष्ट हो जाता है। मृत्यु मनुष्य के शाश्वत रूप की एकान्त अवस्था है, जिसमें मिथ्या रूप से दीख पड़ने वाले इस नानात्यका संहार हो जाता है। इस अवस्था में न मुमूर्षु को दुख होना चाहिए न उसके नातेदारों को!"

ललिता को एक वेग की खाँसी हुई, मुँह से रक्त में मिला हुआ

एक बलगम का टुकड़ा उसकी सफेद साड़ी पर गिर पड़ा। सभी लोग संत्रस्त हो उठे।

आरती ने शीघ्र ही ललिता को सम्हाला। ललिता की आँखों से आँसुओं की धाराएं बह चलीं। रुद्ध कण्ठ से वह बोली—

"गुरुदेव, मेरी मृत्यु के बाद मेरे कृष्ण की पूजा-प्रतिष्ठा कैसे होगी!—प्राणेश्वर! क्या मेरे अभाव में तुम्हारे भौतिक-जीवन का यह सहज-उत्सव समाप्त हो जायगा? नहीं-नहीं, गुरुदेव! मुझे ऐसी शान्तिमय अवस्था नहीं चाहिए। मेरे प्राण वल्लभ की सेवा का अधिकार मुझ से न छीनो देव! न छीनो, मुझे लौटा दो!"

ललिता अचेत प्राय होने लगी! बोलने से उसकी खाँसी का प्रकोप बढ़ जाता, खाँसी के साथ ही उसे रक्त की वमन हो जाती। क्षणक्षण में उसका मुखमण्डल अधिकाधिक क्षीण और श्वेत होने लगा।

आचार्य ने आँसू पोंछ कर कहा, "आर्ये! धैर्य धरो! उस सर्वशक्तिमय परब्रह्म की चिन्ता करना मनुष्य को नहीं सोहता बेटो! आश्वस्त होओ, अपने आनन्द और उत्सव को मेरे प्रभु कभी नष्ट नहीं होने देंगे। यदि तुम्हें हम लोगों से विदा ही होना है, तो शान्ति का आवाहन करो माँ! भगवान् कृष्ण तुम्हें शान्ति दें!"—और आचार्य ने अपना वरद हस्त ललिता के मस्तक पर आरोपित कर दिया।

नीलम ने आँसू पोंछकर धीरे-धीरे कहना शुरू किया, गुरुदेव! क्या मुझे कभी भगवान् की पूजा करने का अनुग्रह नहीं प्राप्त हो सकता?"

वृद्ध के निर्भास सूखे ओठों पर आभा फैल गई। "सचमुच बेटी, क्या मेरा यह सौभाग्य हो सकता है?"

अचेत प्राय ललिता की आँखें भी खुल गईं। उसने कुछ कहने का प्रयत्न किया, किन्तु आरती ने उसे रोक दिया। वह न रोकती तो भी शायद अब अधिक बोल सकना ललिता के लिए सम्भव न था।

अपनी आँखों को पुनः पोंछकर नीलम ने कहना प्रारम्भ किया, एक उठती हुई लम्बी साँस भी उसने अपनी छाती में छिपाली—

"प्रत्येक जवान स्त्री के मन में कई प्रकार की आशाओं का सुनहरा प्रभात उदय होता है। मुझ जैसी नारी का जटिल-जीवन भी इस प्रकार की कई समस्याओं को मेरे जीवन में उदित करता रहा है। फ्रांस के किसी कोने में जन्म लेकर मैंने जिस भारत का सपना देखा था, वह आज मेरे लिए शून्य हो गया। जीवन में किसी को अपना समझने की भूल प्रत्येक नारी करती है। मैंने वह भूल चाहे की हो, किन्तु उस भूल के प्रति मैंने कभी आत्म-समर्पण नहीं किया। कहते हैं आत्म-समर्पण के बिना नारी के जीवन में कभी पूर्णता नहीं प्राप्त होती, परन्तु जीवन में ऐसे पूर्ण पुरुष का साक्षात् ही कहां प्राप्त होता है? गुरुदेव! आज मेरी इच्छा है कि मैं अपनी समस्त वासनाओं, समस्त कामनाओं और समस्त दुर्बलताओं के साथ इन पूर्ण पुरुष के समक्ष अपना आत्म-समर्पण करदूं। जीवन में जबकि आशाएं बहुत अधिक उद्दाम हो उठती हैं, तो उनका समर्पण ही कल्याणकर होता है।— प्रभो! मुझ दुर्बल-हृदय को क्या तुम्हारी पूजा करने का अनुग्रह नहीं प्राप्त होगा?—षोड़सी पूजा नहीं, इस अकिंचन् के अनाघात किन्तु म्लान-कुसुम की अर्चना क्या स्वीकृत नहीं होगी हृदय-धन?"

नीलम ने मस्तक झुकाकर कल्पित भगवान के चरणों में अपना श्रद्धा का विरुच-मधुर-अश्रु स्नात हृदय अर्पित कर दिया। किन्तु आरती की आँखों से वर्षा होने लगी। नवनीत के प्रति उन्मुख नीलम के हृदय का रहस्य उससे छिपा न था, साथ ही वह यह भी समझती थी कि नीलम की निराशा का कारण केवल उनके सम्बन्ध से उत्पन्न नवनीत के हृदय-दौर्बल्य से है। उसने गद्‌गदावरोध को संयत कर कहना शुरू किया, समझें आने के बाद पहली बार—

"नीलम, अभागिनी बहन मेरी, तू ने मेरे लिए कुछ कम नहीं किया है। अब मैं अपने दुःख में तुझे अधिक न घसीटूंगी। नहीं, इस

स्थान के उपयुक्त तू नहीं है, यहाँ की सेवा के अधिकार पर तुझसे अधिक मेरा दावा है। तू कर्मक्षेत्र में लौट जा बहन। विश्व की व्यवस्था को परिवर्त्तित करने में समर्थ किसी एक तूफान को खड़ा कर देने की तुझ में बुद्धि है, शक्ति है, और साहस है। तू जीवन को स्वर्ग बना सकती है, तू पशु को मनुष्य बना सकती है। तेरे भविष्य का सुनहला प्रभात अभी बादलों में नहीं छिपा। नवनीत को यदि तू प्राप्त हो सकी, तो उसका अप्रतिभ पौरुष भी विश्व के लिए एक अभूतपूर्व वरदान बन सकता है। गुरुदेव। जीवन में इसने जिस पुरुष को प्यार किया, उस-पर यह विजय नहीं पा सकी। इसके जीवन की साधना अभी पूरी नहीं हुई। इसे आदेश कीजिए, इसे पुनः दुनियाँ में लौट जाना चाहिए!"

नीलम के शीर्ण चेहरे पर हँसी का दाग लग गया। वह बोली,

"प्रेम क्या कोई पदार्थ है? मैं यदि किसी के निकट प्रेम के लिए उपयाचक हुई थी, तो मेरे निकट भी तो वह अभागा उसी तरह उप-याचक हुआ था? प्रेम किसी को प्राप्त करने के लिए नहीं होता, वह तो केवल आत्मदान के प्रवाह को मुक्त कर देने के लिए होता है! मेरे आत्मदान के प्रवाह को किस महादेव में सहने की शक्ति है! तब मैं श्रीकृष्ण के पदाम्बुजों को प्रक्षालित करने के लिए क्यों न उसे उनके नखाग्र पर उत्सर्ग कर दूँ? तू ने मेरी बुद्धि, मेरी शक्ति और मेरे साहस की चर्चा की है, किन्तु क्या उनका तेरे निकट अभाव है? स्त्री जब पौरुष पर छा जाती है तो पौरुष की शक्ति को लकवा मार जाता है, और पुरुष जब किसी नारीत्व पर छा जाता है, तो नारी की समस्त श्री पंगु होजाती है। मेरा वरदान है कि मेरा नारीत्व अप्रवाहित रहा। पौरुष अधरलाल का कहना चाहिए कि तेरी माया की छाप उनके सार्वजनिक जीवन की धारा को रुद्ध नहीं कर सकी। अपने नारीत्व का विसर्जन कर मैं आत्म-हत्या न करूँगी बहन! बल्कि मेरी शक्ति की किरणों और तेरी भक्ति का समुद्र दोनों ही मिलकर श्रीकृष्ण के चरणों का

मधुर-शीतल जल से क्यों न आप्लावन करें ! दुनियाँ के क्षुद्र स्वार्थी प्राणियों के लिए प्रकृति का यह मुक्त वैभव सहनीय न होगा आरती !"

ललिता ने दोनों का हाथ पकड़ लिया, स्नेह के उस स्पर्श में उसके हृदय की समस्त कृतज्ञता चुक गई। वाणी उसकी मूक हो गई थी, उसने बोलने का जब प्रयत्न किया तो शब्दों के स्थान पर रक्त के प्रवाह ने उसकी बेवसी प्रगट कर दी; किन्तु उसकी आँखों में प्रकाश की दिव्य छाया झलक उठी थी।

आचार्य ने आँखें बन्द करके हाथ जोड़ कर कहा, "हे लीला-निकेतन, तुम्हारी माया की सीमा कौन पा सकता है ! अपने आनन्द के अक्षुण्ण प्रवाह में तुम कहाँ-कहाँ से पात्रों को खींच लाते हो ! अपनी मधुर-करुण पीड़ा का भार तुमने आनन्द की जिस शुभ मूर्त्ति पर रक्खा है, वह क्यों न अनन्त कल्याण की प्रतिमा होगी ! सौभाग्य शालिनी ललिते, तेरी अ त की यात्रा असफल न होगी।"

ललिता ने केवल हाथ जोड़ लिए। कुछ देर के पश्चात् उसने संकेत से समझाया, 'मुझे देवता के सम्मुख ले चलो !' और शीघ्र ही सम्पूर्ण समुदाय देव-विग्रह के सम्मुख उपस्थित हो गया।

सूर्य अस्त हो रहे थे; पश्चिम की गुफा से स्वर्ण-नेत्र की प्रखर-दृष्टि देवालय के स्वर्ण-कलश को अपने अखण्ड अनुराग से आरक्त कर रही थी, और मलय-देश के समस्त सौरभ का आहरण करके मन्द-मारुत देवता के चरणों में अपनी आत्मा का निवेदन चरितार्थ कर रहा था।

आरती और नीलम के द्वारा उठाई हुई ललिता की श्वास-शेष देह देवता के चरणों में रख दी गई। ललिता ने अमित-प्रभा से भरे हुए अपने नेत्रों को देवता के स्मित-हास्य-अलंकृत स्निग्ध मुख मण्डल पर आरोपित कर दिया—मानों दोनों की चार आँखें हो गईं। वृद्ध आचार्य ध्यानावस्थित खड़े हो गए, और आरती तथा नीलम ललिता के सिरहाने और पैंताने खड़ी हो गईं। एक अनन्त दिव्यालोक मुग्ध

भास्वर-उत्सव की समाप्ति का मानों अवसर था। महाकाल की शून्य शांति दिगंत में प्रसारित हो गई थी, केवल सुसकारी मारता हुआ समीर कभी-कभी अपनी श्रद्धा के कुसुमों को मधुर हिल्लोरों में भर कर देवता के चरणों में उत्सर्ग कर जाता था।

एक लम्बी साँस के साथ पुनः ललिता के नेत्रों से आँसू बहने लगे। अपनी विवशता की कहानी वह किससे कहे? जीवन के एक मात्र देवता से आज सदैव के लिए वियोग हो रहा था; इसी पत्थर की निर्वाक निस्पन्द मूर्त्ति के साथ उसके जीवन के समस्त हर्ष-क्रंदन, आनन्द-उत्सव, सुख दुःख उलझे हुए थे, आज उन सब सम्बन्धों की परिसमाप्ति पर उसकी वाणी ही मूक हो गई!—इस पत्थर की मूर्त्ति ही ने उसके हृदय का स्पन्दन अनुभव किया है, उसकी आत्मा के अमर अभिसार का उपभोग किया है, उसके करुणाश्रुओं की सजल-माला अपने हृदय पर धारण की है, उसके मधुर यौवन के मान-सम्मान, विश्रब्ध आलाप-संलाप मूक-निवेदन-संवेदन सब में सहयोग दिया है, और आज जब वह अपनी अंतिम आकांक्षा को अधरों पर लाना चाहती है, तो उसका कण्ठ ही जवाब दे देता है!

ललिता के अधर फड़के, किन्तु उसके साथ ही रक्त का एक फव्वारा उसके मुँह से निकल गया; देव मूर्त्ति के चरणों में रक्त की धारा फैल गई। किन्तु ललिता ने साहस न खोया। वह जान गई थी कि कुछ ही क्षणों का समय शेष है। वह यदि इनका उपयोग अभी ही नहीं कर सकेगी।

चेष्टा करके उसने नीलम और आरती दोनों के हाथों को पकड़ कर अपने पास बिठाया, फिर दोनों के सिरों को देव-विग्रह के चरणों में झुका दिया। उसके बाद उसने पास खड़ी हुई विशाखा की अश्रु-रुद्ध ठुड्डी को पकड़ कर दोनों के हाथों में थमा दी। उसने अपना चार्ज सम्हला दिया।

एक बार और उसने भगवान् की स्निग्ध मूर्त्ति की ओर दृष्टि

डाली। भगवान् के सदा-प्रसन्न चेहरे पर उल्लास की वह पूर्व धारा दीख न थी, संध्या के धूमिल प्रकाश की झलक मात्र उनकी आँखों को ईषत् ज्योतित करके मानों उनके दृष्टि-पथ को स्पष्ट कर रही थी। अश्रु से भरे हुए नेत्रों की तरह उनके नेत्र चमक उठे थे।

पहले के वमन से ललिता का कण्ठ मानों साफ हो चुका था। सूर्य के ठीक अस्त होने के क्षण में एक अत्यन्त मन्द स्वर रोगी के कण्ठ से उद्गीत हुआ। करुण स्वर समन्वित बागीश्वरी में बहुत ही क्षीण-स्वरों में सुनाई दिया—

'सूली ऊपर सेज पिया की किस विध मिलणा होय।'

—और धीरे-धीरे यह स्वर भी जब विलीन हो गया, तो ललिता के प्राणों की धड़कन भी निशेष हो चुकी थी।

आरती ने रुद्ध कण्ठ से आचार्य का ध्यान भंग करके कहा, "गुरुदेव!"

आचार्य ने आँखें खोल कर देखा। सूर्य अस्त हो चुका था। किसी ने पार्श्व में रक्खे हुए दीपक को प्रज्वलित कर दिया। दर्शकों की दृष्टि उद्भासित देव-विग्रह के ऊपर जा पड़ी—मानों किसी भीषण दुःसह सम्वाद् से मूर्त्ति का समस्त शरीर काँप उठा, उसके हृदय की वनमाला हिल उठी, और उसी समय सब ने आश्चर्य के साथ देखा कि मारुत के एक मन्द निश्वास के साथ देवता के मुकुट पर रखे हुए सभी पुष्प स्खलित होकर नीचे गिर पड़े। नीचे पड़ा हुआ ललिता का निष्प्राण-शव अपनी निष्पलक आँखों से उस देव-विग्रह को मानों अभी भी पी जाना चाहता था। मुकुट से गिरे हुए पुष्पों ने शव पर गिर कर मानो उसकी अभ्यर्थना की।

मूक स्वर में मानो मंदिर के प्राण-प्राण में, पाषाण-पाषाण में, कण-कण में झंकार हो उठी—

'सूली ऊपर सेज पिया की किस विध मिलणा होय।'

आचार्य ने मानों महा निद्रा से जागते हुए लम्बी साँस लेकर कहा, "प्रभु ! तुम्हारी इच्छा !"

शव को उठा कर बाहर आँगन में रख दिया गया।

(२६)

माया के भू गर्भ में बसे हुए कमरे में आज फिर एक सभा का आयोजन है। कमरे में बहुत अँधेरा है, अतः संध्या के पूर्व ही से इसे विद्युत् से प्रकाशित कर दिया गया है। सभानेत्री के बैठने की विशेष व्यवस्था है। पूर्व की दीवार में एक गवाक्ष है, उसी में उसके लिए आसन लगा हुआ है। गवाक्ष के शीर्ष पर एक तीव्र-प्रकाश का बिजली का बल्ब लगा हुआ है, और गवाक्ष पर एक जाली की स्क्रीन लगी हुई है। तात्पर्य यह कि भीतर का बल्ब लगा देने पर सभा भवन में से सभानेत्री को अच्छी तरह देखा जा सकता है; किन्तु यदि भीतर का बल्ब बुझा दिया जाए, तो सभा भवन से गवाक्ष पर स्क्रीन के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई देगा, यद्यपि स्क्रीन के पीछे बैठा हुआ व्यक्ति सभा भवन की सम्पूर्ण कार्यवाही को अच्छी तरह देख सकेगा।

सभागृह का वातावरण बड़ा गंभीर है। सभा में उपस्थिति आज सब से अधिक है। उस दिन के भी सभी सदस्य उपस्थित हैं। स्वयम् सभानेत्री अपने आसन पर उपस्थित है। इसकी बाईं ओर महिलाओं की बैठक है, जहाँ पर अपने चेहरे पर अन्तर का गंभीर उल्लास मूर्त्त किए हुए मंजरी, उत्सुकता लिए हुए उषा, तथा गम्भीर वेदना और आश्चर्य लिए हुए नीलम एवं आरती बैठी हुई हैं। बाईं ओर सभा के अन्य सदस्य सुरेश नारायण, प्रह्लाद, निकल्सन आदि व्यक्ति बैठे हुए हैं। और सामने की ओर तीन-तीन बैठक के बीच में एक छोटा-सा मंच रखा हुआ है। सभानेत्री कागजों को उलट-पुलट करने में बड़ी व्यस्त है; किन्तु उसके मुँह का भाव देखकर कोई भी उसके हृदय के क्षुब्ध तूफान की कल्पना नहीं कर सकता।

अधरलाल की फाँसी से सम्बन्धित मुकदमे की आज पेशी है। नवनीतलाल तथा रेडियर गिरफ्तार कर लिए गए हैं। अधरलाल तथा टीकू नहीं छुड़ाए जा सके। सम्भव है रेडियर तथा नवनीतलाल को प्राण दण्ड मिले। उन्होंने विश्वासघात किया है, न केवल अधरलाल और टीकू के साथ, बल्कि दल के साथ, उन्होंने देश के साथ, तथा मनुष्यता के साथ भी विश्वासघात किया है। अराजक-दल की सभानेत्री अनुशासन की कठोरता के लिए प्रसिद्ध है। सभी सदस्यों की धारणा है कि इसका प्रति विधान निश्चय ही प्राण-दण्ड से कम दण्ड द्वारा नहीं हो सकेगा।

प्राणदण्ड के उत्सव में बड़ा भारी आकर्षण है। जन्म के दिन कभी उतनी भीड़ नहीं एकत्रित होती, जितनी मृत्यु के दिन। राज्यारोहण का उत्सव भी उतनी भीड़ में सम्पन्न नहीं होता, जितना किसी की फाँसी का उत्सव। इसलिए नहीं कि किसी की मृत्यु के समय मनुष्यता की लहर में सहानुभूति का तूफान आजाता हो, बल्कि इसलिए कि मृत्यु अक्षय यौवन शालिनी चिर नवीन है। मनुष्य उसे देखकर भी नहीं देखता, क्योंकि वह स्मृति में कभी जीवित नहीं रहती शायद, अपनी मिथ्या अमरता का दम्भ भरकर देखने वाला मनुष्य, मुमूर्षु कीआसन्न मृत्यु पर उपहास की दृष्टि भी डालने की इच्छा रखता हो। कुछ भी हो, सभागृह में आज लगभग सभी सदस्य उपस्थित हैं।

छः बजते ही सामने टेबल पर रखी हुई घण्टी बज उठी। एकदम सभा भवन में शांति छागई।

सामने रखे हुए कागज पत्रों को उलटते हुए सभानेत्री ने कहना प्रारम्भ किया, "माननीय सदस्यों से छिपा हुआ न होगा कि इस सभा में गई बार उन्होंने दो प्रस्ताव पास किए थे। एक था अधरलाल तथा टीकू का उद्धार और दूसरा था इस सभा के प्रति दोषी नवनीतलाल तथा रेडियर के शासन की व्यवस्था। इन प्रस्तावों को कार्यमय करने के लिए कार्यक्रम भी स्थिर कर लिया गया था कि इन चारों व्यक्तियों को

किसी भी तरह इस सभा भवन में उपस्थित किया जा सके। अधरलाल तथा टीकू को मुक्त करके जाने का भार स्वीकार किया था। माननीय सदस्य सर्व श्री निकल्सन तथा प्रह्लाद ने, तथा नवनीतलाल व रेडियर को बन्दी बना कर लाने का भार लिया था सुश्री कुमारी मँजरीदेवी एवं इस सभा के मूक चपड़ासी लछमन ने। मुझे खेद के साथ यह सूचना उपस्थित करनी पड़ती है कि सर्व श्री निकल्सन एवं प्रह्लाद अपने दायित्व में असफल हुए। अपनी कार्य-प्रणाली का सम्पूर्ण विवरण वे अभी आपके सम्मुख विचार के लिए उपस्थित करेंगे, और आप लोगों को संतुष्ट करेंगे कि किस तरह उनकी असफलता का कारण उनका प्रमाद नहीं, प्रत्युत परीस्थितियों की परवशता है, किन्तु यह सच है कि यह असफलता साधारण नहीं है, इस असफलता का फल यह हुआ है अधरलाल एवं टीकम चन्द को फांसी का दण्ड दे दिया गया है।

मि० निकल्सन तथा प्रह्लाद नीची दृष्टि किए बैठे हुए थे, शीघ्र ही वे सभी आंखों का केन्द्र होगए। मनमानी आलोचना उन पर उँढ़ेली जाने लगी। एक क्षण के विराम के उपरान्तश्री सभाने ने फिर कहना प्रारम्भ किया।

"दूसरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में सूचना उपस्थित करते हुए मुझे उतनी ही प्रसन्नता भी है। कुमारी मंजरी तथा लछमन नवनीतलाल और डाक्टर रेडियर को बन्दी बना लाने में समर्थ हुए हैं। मैं आप लोगों की ओर से इन दोनों सदस्यों का अभिनन्दन करती हूँ। कुमारी मंजरी ने मुझे बताया है कि जिस तरह नवनीतलाल को स्वायत्त करने में वे स्वयं श्रेयस्वान हुई हैं, उसी तरह रेडियर को बन्दी बनाने में लछमन। मूक होकर भी उसने अनन्य प्रवीणता का परिचय दिया है। जिस तरह वह यहाँ का चपरासी है, उसी तरह जब वह रेडियर के पास पहुँचा तो इस मुकदमे के विचारक त्रिलोक नारायण का चपरासी बन गया, और उन्हें चाय का निमंत्रण देकर कार में बिठा लाया। शायद विचारक को उससे किसी गोपनीय रहस्य का पता लगाना हो, यह सोच-

कर रेडियर फँस गए। अपने आप को बुद्धिमान् समझने वाले मनुष्य को कितनी सरलता से मूर्ख बनाया जा सकता है, यह इसका अच्छा और सही उदाहरण है।"

मि० निकल्सन उठ खड़े हुए और उन्होंने अपना विवरण दिया, "श्रीमती सभानेत्री जी, और साथियो, आपको बताया जा चुका है कि हमको हमारे 'मिशन' में कामयाबी नहीं मिली। मैं इसके लिए 'अशेम्ड' (लज्जित) नहीं हूँ। कोशिश करना आदमी का काम है, नतीजे के लिए वह जिम्मेदार नहीं हो सकता। मैं मेम्बर्स को यकीन दिलाना चाहता हूँ कि हमने सिंसियरली (सचाई के साथ) कोशिश की थी। दो रात तक हम बराबर मौके की तलाश में रहे। पहली रात बारह बजे से हम जेल के फाटक पर पहरेदार की पहरेदारी करते रहे, मगर न तो वह एक लहमे भर के लिए ही वहाँ से टला, न एक लहमे के लिए ही उसने आँखें झपकाईं। दूसरी रात को हमने दीवार फाँद कर अधरलाल और टीकू की कोठरियों का पता लगाया। आप हमारी हिम्मत की दाद दीजिएगा कि पहरेदार के होते हुए हमने यह सब किया। अगर उसे पता लग जाता तो हमारी जान एक गोली में खत्म हो जाती। हमने टीकू के कमरे का ताला खोल डालने में कामयाबी हासिल की और उसे लेकर हम अधरलाल की कोठरी तक पहुँचे। हमारे 'बंच' (चाबियों का गुच्छा) में से हमने एक-एक करके अधरलाल की कोठरी को खोलने का 'एफर्ट' (प्रयत्न) किया, मगर कोशिश के बीच ही में खटाखट की आवाज से चौंक कर पहरेदार भीतर आ घुसा। हमने अपना पिस्तौल काम में लिया, पहरेदार की टाँग बेकार हो गई, मगर उसने हल्ला मचाना शुरू कर दिया। हमारे लिए भाग जाना ही बाकी बचा था, मैंने टीकू को बहुत समझाया मगर उसने अधरलाल का साथ छोड़ना मंजूर नहीं किया। तभी एक तरफ से पुलिस वालों के दौड़ने की आवाज आई, हमें वहाँ से भाग आना पड़ा। हमसे जो कुछ हो सकता था हमने किया। 'हमारे इस बयान से ही आप लोग जान गए

होंगे कि हमारी कोशिश कितनी सिन्सियर थी। आप लोग इन्साफ करें।"

निकल्सन नीचे बैठ गए। सुरेशनारायण ने खड़े होकर कहा

"मि० निकल्सन के प्रयत्न में कूटनीति का हाथ न था, इस लिए वे परिस्थितियों से पराभूत हुए। ऐसे मामलों में शारीरिक शक्ति के ऊपर अधिकाधिक विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। किंतु इनके प्रयत्न की सचाई के बारे में दो मत नहीं हो सकते। अराजक-दल के ऊपर केवल प्रयत्न का दायित्व है, फल का नहीं। अतः मेरा प्रस्ताव है कि हमें सर्व श्री निकल्सन और प्रह्लाद का उनकी असफलता के उपरान्त भी, अभिनन्दन करना चाहिए।"

एक दूसरे व्यक्ति ने इसका समर्थन किया।

कुमारी उषा उठ खड़ी हुई, और बोली, "माननीय सदस्य का यह कथन कि अराजक-दल के सदस्यों पर केवल प्रयत्न ही का दायित्व है, फल का नहीं; मेरी समझ में कुछ कम आता है। यदि फल की चिन्ता न करके कार्य-साधन में प्रवृत्त हुआ जाए तो उसका नतीजा वही होगा, जो सर्वश्री निकल्सन तथा प्रह्लाद के प्रयत्नों का हुआ है। यदि व्यक्ति के प्रयत्न की दिशा गलत हुई तो उसे वांछित फल कैसे प्राप्त होगा! मि० निकल्सन के मार्ग की कठिनाइयाँ साफ थीं। साधारणतया किसी पहरेदार के लिए यह संभव नहीं समझा जाता कि वह पहरे पर गफलत करेगा, परन्तु माननीय सदस्यों ने यही धारणा करके एक रात व्यर्थ बिता दी, तथा दूसरी रात को बेकार प्रमाणित कर दिया। यदि वे कूट-नीति से पहरेदार को फोड़ सकने में प्रयत्नवान हुए होते, तो न तो पहरेदार को अपनी टाँग खोनी पड़ती, और न हमें अधरलाल तथा टीकू को। और यह एक इतनी सामान्य बात थी कि इसका ध्यान अराजक-दल के इतने गौरव मय कार्य का भार वहन करने वाले सदस्य को न हो, यह कभी विश्वास नहीं किया जा सकेगा। मैं समझती हूँ

कि इस कार्य की असफलता का सम्पूर्ण दायित्व माननीय सदस्य के ऊपर है।"

कुमारी मंजरी ने कहा, "मैं भी ऐसा ही समझती हूँ।"

बात बढ़ती देखकर सभानेत्री बोली, "इन दोनों प्रकार के मतों में, मैं सोचती हूँ, आपने पूर्णरूप से वस्तुस्थिति को समझने का प्रयत्न नहीं किया। बुद्धि का ठेका केवल एक व्यक्ति ही लेकर नहीं बैठता। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी बुद्धि है, और उसी के मार्गदर्शन से उसके कार्य की दिशा सूचित होती है। मि० निकल्सन तथा प्रह्लाद को पचास प्रतिशत सफलता मिल चुकी थी, और यदि ताले के खुलने में अधिक कठिनाई न होती, तो कोई कारण नहीं था कि वे शतप्रतिशत सफल क्यों न होते! जब कार्य सिद्ध हो जाता है तो हम प्रयत्नों को नहीं देखते, कार्य की असफलता पर भी प्रयत्नों पर हमें वैसी ही निर्लेप दृष्टि रखनी चाहिए। यह बात ठीक है कि यह असफलता बहुत महँगी साबित हुई है, किन्तु मैं समझती हूँ कि मि० निकल्सन तथा प्रह्लाद ने इस गुरुतर कार्य का भार अपने कंधों पर लेकर ही हमारा विश्वास सम्पादन कर लिया था। उनके प्रयत्न पर हमें अविश्वास नहीं करना चाहिए। आप लोग मुझे अनुमति दें कि मैं आपकी ओर से इन दोनों का अभिनन्दन करूँ।"

ऊषा तथा मंजरी को छोड़कर सभी ने कहा, "हम निकल्सन तथा प्रह्लाद का अभिनन्दन करते हैं।"

"धन्यवाद!" सभानेत्री ने कहा। निकल्सन तथा प्रह्लाद ने दृष्टि नीची करली!

"कुमारी मंजरी तथा लछमन अपने कार्य में सफल हुए हैं। मंजरी-देवी ने प्रार्थना की है कि उन्हें अपनी कार्य-प्रणाली का आपके सामने बयान करने के लिए आदेश न दिया जाए। मेरी सिफारिश है कि उनकी प्रार्थना योग्य है, खासकर तब जबकि उन्होंने अपनी जिम्मेदारी

को पूरी तरह से निभाया है, हमें यह बात उनके ऊपर ही छोड़ देनी चाहिए।"

सुरेशनारायण ने कहा, "इस बारे में विस्तृत विवरण जानने की हमारी उत्सुकता तो बहुत है, किन्तु माननीय सदस्य की यह प्रार्थना बहुत ही योग्य है, और हमें इसका सम्मान करना चाहिए।"

उसके बाद ही सभानेत्री ने कहा, "अब आप लोगों के सामने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। दोनों बन्दियों—नवनीतलाल एवं रेडियर के अपराध के बारे में आप लोग विचार करेंगे, और उनके लिए उचित दण्ड की व्यवस्था करेंगे। मैं पहले रेडियर को उपस्थित करने का आदेश देती हूँ। हाँ, एक बात बता देना आवश्यक है: मैं अदृश्य रहकर सारी कार्यवाही करूँगी। यहाँ का प्रकाश बुझा दिया जाएगा, और यह स्क्रीन मुझे अदृश्य बनाए रहेगी। मैं आपको पुनः सावधान कर देना चाहती हूँ कि कोई सदस्य किसी का नाम लेकर बातचीत न करे।—रेडियर उपस्थित हो।"

सभानेत्री के गवाक्ष का विद्युत् प्रकाश बुझ गया। सभागृह के आलोक में सामने की स्क्रीन चमक उठी। गवाक्ष के अन्तर में क्या रह गया, यह जानने का किसी को अब साधन न था।

कुछ ही देर में डाक्टर रेडियर को लेकर, दोनों हाथों में पिस्तौल लिए हुए दो व्यक्ति उपस्थित हुए। रेडियर के हाथों में हथकड़ियाँ, पैरों में बेड़ियां और मुँह पर हवाइयाँ थीं। सामने केन्द्रिस्थ मंच पर लेजाकर उसे खड़ा कर दिया गया; दोनों रक्षक उसके दोनों ओर पिस्तौल ताने हुए खड़े होगए। सारी सभा की दृष्टि उसी पर जाकर टकरा गई। स्वयं रेडियर की दृष्टि नीचे झुकी हुई थी, चेष्टा करके भी ऊपर देखना उसके लिए शक्य न था।

एक अधेड़ युवक सभा के बीच में उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं क्षमा किया जाऊँ, इस सभा में कुछ नये अपरिचित व्यक्ति दिखाई दे रहे हैं। क्या सभानेत्री महोदया यह बताने की कृपा करेंगी कि इनकी उप-

स्थिति में हमारा कार्यक्रम निर्विघ्न चल सकता है ?"

नये व्यक्ति दो ही थे—आरती और नीलम; सभी की दृष्टि उधर खिंच गई।

निकल्सन ने कहा, "अगर नये मेम्बर्स 'को-आप्ट' किए गए हैं, तो सभानेत्री को 'हाउस' से 'परमिशन' लेनी चाहिए थी।"

सामने खिड़की से आवाज आई—रेडियर ने अनुभव किया कि यह आवाज उसकी पहिचानी-सी लगती है, किन्तु किसकी है, यह वह एकाएक नहीं समझ सका। उसकी मानपुर-यात्रा के समय कार्यालय लखनऊ में था, मथुरा में नहीं; और अध्यक्ष थे दयाराम के पिता।

सभानेत्री ने कहा, "माननीय सदस्य की बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। जिन नए व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है, वे इस दल के सम्मानित सदस्य हैं, अतः को-आप्शन का कोई प्रश्न ही नहीं आता। यदि सन्तुष्ट होना चाहें तो दल की सदस्य-सूची में संख्या ३७ व ३८ पर उनका परिचय देख सकते हैं!"

इसके बाद वह एक क्षण का विराम लेकर बोली, "आप लोग डा. रेडियर के अपराध का विचार करने के लिए तैयार हैं?"

सबने स्वीकृति सूचक मस्तक हिलाया। किन्तु नीलम अपने स्थान पर उठ खड़ी हुई, और बोली, "सभानेत्री महोदया, मेरा एक प्रस्ताव है। अभियुक्त से तो श्रीयुत नवनीतलाल व्यास का भी इस मुकद्दमे में घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्या हानि है यदि उन्हें भी यहीं अभी उपस्थित कर दिया जाए? कम-से-कम यह सभा बहुतेरी बातें दुहराने से बच जाएगी। सम्भव है दोनों की उपस्थिति से कई नई बातें प्रकाश में आएं और अपना अपराध स्वीकार करने में दोनों अभियुक्तों को सुविधा हो।"

सुरेशनारायण ने कहा, "माननीय सदस्य का प्रस्ताव उत्तम है और वैध है। मैं इसका समर्थन करता हूँ।"

सभी सदस्यों ने इसकी विशेष तौर से माँग की।

सभानेत्री ने पास बुलाकर धीरे से सुरेशनारायण से कुछ बातचीत की, सभाभवन का कोई भी व्यक्ति उसे नहीं सुन पाया।

सुरेशनारायण ने कहा, "सभा के आदेश को सभानेत्री जी ने स्वीकार कर लिया है। मेरे द्वारा वे एक प्रार्थना अपनी भी आपके विचारार्थ उपस्थित कर रही हैं। आज प्रात:काल से उनका स्वास्थ्य कुछ खराब है। वे सारी कार्यवाही को यहीं बैठी-बैठी देखेंगी, किन्तु वे चाहती हैं कि सभा की कार्यवाही उनके आदेश और मार्गदर्शन के अनुकूल में करूं, और आप इसके लिए उन्हें स्वीकृति दें। मैं उनसे बराबर परामर्श लेता रहूँगा; एवं वे यह भी कहती हैं कि आवश्यकतानुसार वे भी कार्यवाही में भाग लेती रहेंगी, किन्तु उन्हें विश्राम की आवश्यकता है। आशा है आप इसे स्वीकृत करेंगे।"

कुछ ही क्षण पहले भली चंगी दीखनेवाली सभानेत्री का एकाएक अस्वस्थ हो जाना सभी के लिए आश्चर्य की बात थी, परन्तु सभी ने सुरेशनारायण के द्वारा कार्य-संचालन स्वीकृत किया।

सुरेशनारायण ने कहा, "सभानेत्री की आज्ञा है कि नवनीतलाल व्यास उपस्थित किए जाएँ।"

बगल के कमरे से डा० रेडियर के समान ही दो सशस्त्र रक्षकों के बीच नवनीतलाल ने भी प्रवेश किया। उनकी भी दृष्टि उनके पैरों पर पड़ी हुई थी, उन्होंने यह भी नहीं देखा कि वे कहां पर किन लोगों के बीच उपस्थित किए गए हैं। किन्तु नीलम और आरती ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि इन्हीं कुछ दिनों में नवनीतलाल की वह देव-विनिन्दन छवि न जाने कहाँ चली गई थी। आँखें गढ़े में धँसी जारही थीं, और सम्पूर्ण मुख-मण्डल पर भीषण-भविष्य का लेख काल की स्याही में उत्कीर्ण हो रहा था। कुमारी मंजरी ने उस ओर बड़ी लालसापूर्ण दृष्टि से देखा।

आरती ने धीमे से नीलम से पूछा, "नीलम, ये इन अभियुक्तों का क्या करेंगे?"

नीलम ने अन्यमनस्क होकर कहा, "ये जो बगल में दो लड़कियाँ बैठी हैं, इनका उन्हें सम्प्रदान कर देंगे।"

"सच कहो; मजाक रहने दो!"

"अराजक-दल की कथाएँ नहीं सुनीं? कम-से-कम मृत्यु दण्ड तो समझो!"

"मृत्युदण्ड?"

"तो क्या प्राणदान?—वह तुम्हीं देती रहो, और उसका फल भुगतती रहो?"

"तो क्या इसीलिए नवनीत का चेहरा इतना काला पड़ गया है?"

जीवन को अक्षुण्ण समझकर दूसरों के अस्तित्व को खतरे में डालने वालों को अपने चेहरे पर कालिख मल ही लेना पड़ता है। यदि कभी यह काम उनसे न हुआ, तो प्रकृति पूरा कर देती है। यह मृत्यु की छाया है आरती, मृत्यु की, जिसका इसने अधरलाल तथा टीकू को आहार बना दिया, किन्तु मृत्यु की क्षुधा भी कभी कम होती है? उस भूख को छेड़ देने वाला ही फिर उसका सबसे पहला आहार बनता है। उसी मृत्यु की यह छाया है, जिसको अपने मुख से यह कायर प्रयत्न करके भी नहीं हटा सका।"

नवनीतलाल कायर है नीलम?"

"जो अपने आप ही को नहीं जीत सका, उसे और क्या कहा जाएगा!—पर सुनो—"

"परन्तु मृत्युदण्ड, और नवनीत के—

"उसके अभियोग की तुलना में वह बहुत तुच्छ है।"

"परन्तु—"

"सुनो न! देखो क्या कह रहे हैं?"

सुरेशनारायण कह रहे थे, "नवनीतलाल शायद इस सभाभवन से परिचित न हों, किन्तु डाक्टर रेडियर, इस सभाभवन को न सही, इस सभा को तुम अच्छी तरह जानते हो, शायद कुछ चेहरे तुम्हें नवीन

रुगें, किन्तु बहुतेरों को तुम पहचान लोगे, क्योंकि तुम इसी दल के सदस्य रह चुके हो, इसकी आत्मा के एक अंग के रूप में तुमने जर्जर मनुष्यता की वेदना अनुभव की है। किन्तु दुर्भाग्य है, इस आत्मीयता को लेकर आज न तो तुम गर्व कर सकते हो, और न अपने आप को निरापद समझने की तुम्हें दुराशा ही करनी चाहिए।"

रेडियर इस दल का सदस्य रह चुका है। वह अच्छी तरह जानता है कि प्राणदान की आशा यहाँ पर कितनी बड़ी विडम्बना है। वह स्वयं इस दल के तत्वावधान में कई व्यक्तियों के प्राणों का ग्राहक बन चुका है, और यदि नवनीत की भूमिका उपस्थित न हुई होती, तो इसी यज्ञ में दो बलिदानों की व्यवस्था करने के लिए वह प्रतिश्रुत हुआ था। फिर भी जीवन की आशा इतनी सरलता से नहीं छोड़ी जा सकती, यद्यपि सम्पूर्ण सभा भूखे भेड़िए की तरह अनायास ही खूनी आँखें इन दोनों शिकारों पर गड़ाए हुए थी।

सुरेशनारायण ने कहा, "मुझे आदेश हुआ है कि मैं तुम्हारे अपराध का उल्लेख करके उसकी गुरुता प्रमाणित कर दूँगा, और फिर सम्पूर्ण सभा की सम्मति के अनुसार तुम्हारे अपराध के प्रतिशोध का प्रयत्न किया जाए।"

"डाक्टर रेडियर, आज से सौ वर्ष पूर्व इस दल के उद्देश्यों में पूर्ण सहानुभूति और विश्वास रखते हुए तुमने शपथ खाकर इसकी सदस्यता स्वीकार की थी। यह दल स्वीकार करता है कि तुमने भी मनोयोग-पूर्वक दायित्व ज्ञान के साथ दल को सहयोग दिया, और उससे न केवल इस दल की, किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र की सेवा हुई। यह प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया जाता है कि गत अगस्त मास में दल के एक बहुत ही कोमल और महत्वपूर्ण कार्य के भार को तुमने स्वेच्छा से स्वीकार किया, जो कि तुम्हारे पूर्व गौरव के उपयुक्त ही था। किन्तु अबकी बार तुम्हारा दुर्भाग्य सम्मुख आ गया। और तुम्हारे व्यक्तिगत स्वार्थ प्रमुख हो गए। न केवल तुम अपने कर्त्तव्य से च्युत हुए प्रत्युत तुमने

विश्वासघात किया, उसका परिणाम तो सभी जानते हैं, दो चोटी के कार्यकर्त्ताओं को फांसी और इस दल के अस्तित्व को खतरा। इस अभियोग के बारे में तुम्हें क्या कहना है ?"

"सभापति महोदय, मैं स्वयं नहीं समझ पाता कि क्या कहने से मेरी रक्षा हो सकती है ! अपनी पूर्व सेवाओं की स्मृति कराकर यदि मैं क्षमा की प्रार्थना करूं, तो क्या मुझे अभय मिलेगा ? मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कभी ट्रेटर (देश-द्रोही) नहीं था, परिस्थितियों ने मुझे ऐसा बना दिया था। अपना दोष मैं स्वीकार करता हूँ। दोष स्वीकार करने का अर्थ मैं जानता हूं उसका अर्थ दण्ड स्वीकार करना भी है, और अराजक-दल के विगत सदस्य के नाते मैं उस दण्ड के प्रकार की भी कल्पना कर सकता हूं। किन्तु सभापति महोदय, मृत्यु से नहीं डरते हुए भी, कौन इस प्रकार के कलंकमय अन्त को दूर न हटाना चाहेगा ! मैं आपसे और आपके द्वारा सारी सभा से जीवित रहने के एक अवसर की भीख माँगता हूं।"

सभा में से एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ, और बोला, "अध्यक्ष महोदय, हम लोग उस अपराध की पूरी रूप-रेखा जानना चाहते हैं ! क्या उसका सम्पूर्ण इतिवृत्त आप सुनाना पसन्द न करेंगे ?"

सुरेश नारायण ने कुछ क्षणों तक खड़े रहकर सभासदों की मनोदशा जानने का प्रयत्न किया, फिर गवाक्ष की ओर अभिमुख होकर धीरे से बोले—

"सभानेत्री की क्या आज्ञा है ?"

सभानेत्री गवाक्ष के अन्धकार में बैठी हुई अतीत के रूखे बालों में अंगुलियाँ उलझाए हुए थी। सम्मुख मंच पर बन्दी के वेश में खड़ा हुआ, दैत्य की प्रतिमूर्त्ति एक युवक, नवनीतलाल व्यास, अपने अतीत की शृंखलाओं को मानो तोड़कर मुक्त होगया था। बन्दी के वेश में विचार के लिए सम्मुख खड़ा होकर वह अपनी पराजय स्वीकार कर रहा है, या उसकी उपेक्षा करके अपनी विजय उद्घोषित कर रहा है ?

एक क्षण राह देखकर सुरेशनारायण ने अपना प्रश्न दुहरा दिया।

सभानेत्री ने कहा, "मुझे क्षमा करें। आप किसके लिए आज्ञा चाहते हैं? मेरे मस्तक में भयानक शूल है; मैं विशेष कुछ सुन नहीं सकी।"

"सुन नहीं सकी?—कष्ट तो आपको होगा, किन्तु यदि इस आवश्यक मामले को आपने मनोयोग पूर्वक न सुना तो बड़ा दुर्वाद फैल सकता है। अब तो इसको स्थगित करने का भी अवसर नहीं रहा। क्या कहती हैं?"

"आप सच कहते हैं। अच्छा मैं स्थिर हूं। आप स्पष्ट और सशक्त शब्दों में रेडियर का सम्पूर्ण अपराध व्यक्त कर दीजिए। सभासदों के मन में इस व्यक्ति के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न हो जाने ही से आपका मंतव्य पूरा हो सकेगा।"

"जैसी आज्ञा!" और वे सभा की ओर अभिमुख हुए।

"माननीय सभासद गण। लखनऊ पोस्ट आफिस के जलाए जाने के सिलसिले में जो ऐतिहासिक गोलीकाण्ड हुआ, उसे आशा है आपको स्मरण करने की आवश्यकता न पड़ेगी। उसमें जिला कलेक्टर के पुत्र किट्सन रोगर्स के द्वारा हमारे दल के सभापति के पुत्र दयाराम गोली का आखेट हुए। मेरा अनुमान है शायद स्वयम् डाक्टर रेडियर की बाँह में भी एक छर्रे का प्रहार हुआ था।"

डाक्टर रेडियर ने कहा, "जी हाँ, उसका चिह्न अभी तक मौजूद है।"

"कालान्तर से किट्सन रोगर्स का विवाह वहाँ के पोस्टमास्टर जनरल की पुत्री शर्ली से हुआ, और वे दोनों मानपुर में अपनी सौभाग्य रात्रि मनाने के लिए रवाना होगए। डाक्टर रेडियर भी दल का विश्वास लेकर इस अंग्रेज दम्पति से प्रतिशोध लेने के लिए मानपुर रवाना हुए। प्रतिशोध से आप गलत अर्थ न लें। उसमें केवल रक्त की प्यास न थी। जो मर चुका है वह किसी के भी रक्त से पुनर्जीवित नहीं हो

सकता, यह बात यह दल भी खूब अच्छी तरह समझता है। किन्तु इन व्यक्तियों के जीवन में भारतीयों का अस्तित्व खतरे में था। प्रतिशोध क्षतिपूर्त्ति के लिए ही नहीं होता, वह प्रतिरोध या निरोध के लिए भी होता है। यह आशंका थी कि यदि ये लोग जीवित रहे, तो भारतीयों से व्यवहार रखने में ये अपनी वही हत्या की प्रणाली काम में लाने में नहीं हिचकिचाएँगे। अंग्रेज जाति के निकट हमारा रोष प्रकट करने का भी उद्देश्य था। इन्हीं सब कारणों से उसके प्रतिशोध की आवश्यकता अनुभव की गई। इन सब के अतिरिक्त डाक्टर रेडियर के भी स्वयं के कुछ व्यक्तिगत सम्बन्ध ऐसे हो गए थे कि जिसमें इन्हें उनसे प्रतिशोध लेने में पर्याप्त उत्तेजना मिली। दल के निकट उन व्यक्ति गत कारणों का कोई महत्व नहीं है। यह दायित्व-भार इसलिए उनको नहीं दिया गया था। अतः उन कारणों की आलोचना करने का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है।"

दल को मानपुर की शाखा ने इनको पूरा सहयोग दिया, कदाचित उस शाखा के सहयोगके अभाव में यह कार्य संभव भी न था। कार्य लगभग पूरा होगया, किन्तु डाक्टर रेडियर सेक्सकी एक साधारण दुर्बलतासे परास्त हो गए। किट्सन की विवाहिता-पत्नी की जादू-भरी आँखों की मोहक दृष्टि इन पर सवार हो गई, और ये अपने ही सहायक के शत्रु हो गए। यदि सहायक की, नवनीतलाल की शक्ति ने इनका साथ न दिया होता तो सम्भव है रेडियर नवनीतलाल ही को समाप्त कर चुका होता। नवनीतलाल आपके सामने खड़े हुए हैं, यदि डाक्टर रेडियर इस बात की आवश्यकता समझें; तो ये इस बात का समर्थन कर सकेंगे।"

सभी सभासदों ने दूसरे बन्दी की ओर देखा, और दूसरे बन्दी ने, सभा में आने के बाद से पहली बार अपने ज्वलन्त-नेत्रों की प्रखर दृष्टि को वक्ता की ओर डाला, अवज्ञा का एक कटाक्ष-निक्षेप करके वह दृष्टि एक क्षण के लिए डाक्टर रेडियर पर गिरी। यह चुपचाप नीची

दृष्टि किए हुए खड़ा था, उसने किसी बात को इनकार करने की चेष्टा नहीं की। नवनीत ने अपनी प्रलयंकर दृष्टि को समेट लिया।

सुरेशनारायण ने कहना जारी रक्खा, "यह देश-द्रोहिता की पराकाष्ठा है, किन्तु डाक्टर रेडियर को इतने मात्र में से सन्तोष न हुआ। अंग्रेज कन्या को बचाकर ले भागने में समर्थ हुए, और उसके पश्चात् उसके आकर्षण से मुग्ध होकर इन्होंने नवनीतलाल तथा अधरलाल पर कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ कर वाई। यदि यह न होता, तो आज यह देखने की नौबत न आती।"

तब वे डाक्टर रेडियर की ओर अभिमुख हुए—"मैं मिथ्या तो नहीं कह रहा न डाक्टर रेडियर?—तुमने अभी अभी क्षमादान की प्रार्थना की है, किन्तु तुमने अपने अपराध की गुरुता को भी सोचा है? एक क्षुद्र चंचल-नारी की कटाक्ष के आखेट होकर तुमने अपने पौरुष के समस्त महत्व को भुला दिया, और व्यक्ति की तुच्छ स्वार्थभावना की वेदी पर तुम्हारी राष्ट्रीयता का समस्त गौरव बलिदान हो गया। जिस व्यक्ति में राष्ट्रीयता की भावना का नाश हो गया हो, वह नर नहीं पशु है, और जीवित भी मृतक के समान है। तुम्हारे विश्वासघात का लेखा कितना बड़ा है जानते हो? तुम्हारे कारण से जो मृत्यु के द्वार पर पहुँचे थे, उन साथियों का तुमने विश्वासघात किया, अपने दल के साथ तुम अपने विश्वास को प्रतिष्ठित न रख सके, तुम्हारा देश तुम्हारे विश्वास को अधरलाल-टीकू के साथ फाँसी पर चढ़ा कर तुम्हारी ओर देख रहा है, और यह कल्पों की संचित मनुष्यता तुम्हारे विश्वास के नाम पर आठ आँसू रो रही है। अपनी आत्मा को टटोलो, अपने हृदय के विश्वास की कितनी खोखली नींव पर तुम खड़े हो, यह शायद तुम्हें न दिखाई दे, तुम मनुष्य नहीं हो, तुमने मनुष्य होकर राक्षस का कार्य किया, और तुम क्षमादान की प्रार्थना करते हो? लज्जा से तुम्हारा मस्तक नहीं झुक जाता?—तुम्हें याद करने के लिए, मालूम है कौन से

शब्द आगे बढ़ रहे हैं ?—देश-द्रोही अत्याचारी, विश्वासघाती, कृतघ्न —नहीं, कोष पूरा हो जाएगा डाक्टर रेडियर ।"

समस्त सभा में मृत्यु की शान्ति छागई। केवल सुरेशनारायण के शब्द वज्र बनकर सभी सदस्यों के कानों पर भयानक आघात कर रहे थे। नवनीतलाल का उत्साह नष्ट होने लगा, उनके आत्म-विश्वास की दीवार धंसने लगी। सुरेशनारायण के शब्द उनके कानों में गूँजने लगे। उनकी आँखों में पहली बार आँसुओं की स्निग्धता मचलने लगी' किन्तु वे बल पूर्वक उसे रोके रहे। काँच में इतने निकट से उन्होंने अपना रूप नहीं देखा था।

सभा के बहुतेरे सदस्य अपने कलेजे हाथ से थामे हुए थे, उनका हृदय धड़क रहा था। कुछ सदस्यों की आँखें अङ्गारे बरसा रही थीं, वे खून का दृश्य देखने को उत्सुक थीं। स्वयम् डाक्टर रेडियर कण्डे की ठण्डी राख के समान अपने चेहरे को अपने ही मस्तक की छाया में छिपाये था।

क्षणभर चुप रह कर सुरेशनारायण फिर बोले, "डाक्टर रेडियर, जीवित रहने का एक अवसर तुमने माँगा है। तुम बुद्धिमान हो, युवक हो। चाहे तुम्हें अपनी इस गुप्त पार्टी के सदस्यों के धिक्कार की कल्पना न हुई हो, किन्तु क्या तुम देश के इन समस्त भाइयों के धिक्कार की भी अवहेलना कर सकोगे ? तुमने नहीं सोचा कि, घर के बाहर निकलते ही बाजार के लोग अंगुली उठाकर निर्देश करते हुए तुम्हें याद करेंगे, 'गद्दार' शब्द के साथ, और अपना सम्बन्ध जोड़ने के लिए अतीत-इतहास के पन्नों से तुम्हारी स्मृति भारत के उस अभागे जयचन्द को यहाँ खींच लाएगी ? तुम्हारी डाक्टरी का रोजगार क्या स्वयम् पायोरिया बनकर तुम्हारे दिमाग को न सड़ा देगा ?—यदि तुम अपनी दृष्टि में घृणित न हो उठो, तो क्या तुम्हारी आत्मा का अमृत ही सदैव थू-थू करता हुआ, तुम्हें तुम्हारे ही हृदय की ज्वाला में नहीं जलाता रहेगा ?—क्या ये सब बातें तुम्हारे मस्तिष्क में क्षण भर के लिए भी

नहीं आई ?— तुमने दोष स्वीकार किया, और जीवित रहने के एक अवसर की याचना करते हो ?"

साहस करके डाक्टर रेडियर ने सिर उठाया, और काँपती हुई आवाज में कहा, "क्या मुझे कुछ कहने की आज्ञा मिल सकती है ?"

सुरेशनारायण ने कहा, "क्या कहना चाहते हो कहो ! तुमने स्वयं अपना अपराध स्वीकार किया है।"

"मैं उसे अस्वीकार नहीं करूँगा महोदय ! इस सभा ने दया करके स्वीकार किया है कि मैं भी कभी इस सभा का सदस्य था, इसी भाँति सभा की सम्माननीय कुर्सियों पर बैठकर ऐसे नाजुक मामलों में सम्मति देने का गौरव मुझे भी प्राप्त रहा है। दुर्भाग्य से आज मेरा वह गौरव-मय अधिकार मेरे पास नहीं है। मैं क्षमा-दान की अपनी प्रार्थना वापिस लेता हूँ, और एक दूसरी प्रार्थना सभा के सम्मुख रखना चाहता हूँ। वह प्रार्थना यह है कि यह सभा मेरी पूर्व सेवाओं का स्मरण करके, सम्मति देने का मेरा पूर्व गौरवमय अधिकार मेरे अपने मुकद्दमे में भी मुझे अन्तिम बार के लिए देने की कृपा करे। मैं वादा करता हूँ कि मैं इस गौरव की रक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा।"

सारी सभा ने फिर इस अद्भुत व्यक्ति की ओर देखा। बुझी हुई राख के समान उसके चेहरे पर आँखों के दो स्फुलिंग मानों पुनः चमक उठे थे, किन्तु उसने अपनी दृष्टि को नत कर लिया।

मि० निकल्सन बोले, "खुद कल्प्रिट (दोषी) अपने बारे में कोई राय कैसे दे सकता है ?"

डा० रेडियर ने कहा, "मेरी राय एक सदस्य की राय भर होगी। मैं सभा को यह बता देना चाहता हूँ कि मैंने केवल सदस्य का प्रस्ताव देने का और मत देने का ही अधिकार माँगा है, निर्णय देने के गौरव को माँगने की मैंने हिमाकत नहीं की है।"

सुरेशनारायण ने कहा, "अच्छा डाक्टर रेडियर, अपने अपराध की

गुरुता को सोचकर निष्पक्ष रूप से तुम कहो कि तुम्हारे साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाए ?"

"नहीं सभापति महोदय, अपराधी होकर मैं आपसे दण्ड माँगूँ, इसमें मेरा गौरव नहीं है। आप कहिए कि मेरी सदस्यता का गौरव मुझे लौटाया जा रहा है। जो कुछ मैं कहूँ, वह सभा की कार्यवाही में लिखा जाए।"

सभानेत्री द्वारा आदिष्ट होकर सुरेशनारायण ने कहा, "तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की जाती है। सभा की कार्यवाही में तुम्हारे प्रस्ताव का उल्लेख रहेगा। कहो, तुम्हें क्या कहना है। किन्तु डाक्टर रेडियर, ध्यान रहे, एक बार और अराजक-दल के सदस्य का गौरव तुम्हारे कंधों पर दिया जा रहा है, उसका दुरुपयोग न हो, सावधान।"

डाक्टर रेडियर ने अबकी बार गौरव अनुभव करके अपना मस्तक ऊँचा किया, मानों फूँक देकर किसी ने म्रियमाण अग्नि को पुनर्ज्वलित कर दिया। वह बोला, सभानेत्री महोदया, अभियुक्त से जो अपराध बन पड़ा है, वह बहुत भारी नहीं कहा जा सकता, किन्तु अभियुक्त का व्यक्तित्व बहुत तुच्छ है, अतः अनायास ही उसके व्यक्तित्व की क्षुद्रता से यह अभियोग बहुत भारी हो उठा है।"

"सुरेशनारायण ने कहा, "व्यक्तित्व की क्षुद्रता से तुम्हारा मतलब ?"

"साइकोलोजी (मनोविज्ञान) ने इस युग में व्यक्ति के व्यक्तित्व को बड़ा हीन बना दिया है महोदय ! फ्रायड की काण्ट्रीब्यूशन (देन) को अभियुक्त यदि अपने अपराध का आधार बना ले, तो उस अपराध की संज्ञा कम हो जाएगी, यह आज का पठित समाज भी स्वीकार न करे, यह मैं नहीं मानता। किन्तु इसी में तो अभियुक्त के व्यक्तित्व की हीनता है !—यह हीनता अराजक-दल के सदस्य को शोभा नहीं देती। अराजक-दल का सदस्य मनुष्य नहीं है, वह केवल अराजक-दल का सदस्य है। मेरा प्रस्ताव है, मेरी प्रार्थना है कि बिना आगे विचार किए हुए अभियुक्त को प्राणदण्ड दिया जाए !" अभियोगी की गौरव-दृप्त

वाणी सभा के सन्नाटे में गूँजती हुई निश्शेष हो गई। अंतिम वाक्य का रेडियर का व्यंग्य कुछ ही व्यक्ति समझ सके; किन्तु किसी को आशा न थी कि कुछ ही क्षणों पूर्व क्षमादान की याचना करने वाला यह युवक अपने बारे में प्राणदण्ड को व्यवस्था प्रस्तावित कर देगा। नवनीत लाल ने आश्चर्य से इस युवक की ओर देखा, टटोला कि क्या उसके अन्तरतम में भी अपने आपको पहचानने की ऐसी कोई आँख है, दोनों की समता का तार भी कहीं मिल सकता है?

सुरेशनारायण ने कहा, "डा० रेडियर, सभानेत्री ने तुम्हारा अभिनन्दन करने का मुझे आदेश दिया है। किन्तु वे यह भी कहती हैं कि अपने प्रस्ताव को प्रार्थना के रूप में रखकर अपराधी की भूमिका अनजाने ही तुमने अपने ऊपर उठाली है, और वस्तुतः इसीलिए अराजक-दल का तुम्हारे भीतर का सदस्य, अपने गौरवमय आसन पर स्थिर नहीं रह सका। सभा के सदस्यों से प्रार्थना है कि वे भी अपनी सम्मति दें।"

दाहिने पार्श्व से नीलम उठ खड़ी हुई। "सभानेत्रीजी, माननीय सभासद बन्धुओ, आपने डाक्टर रेडियर के अपराध का स्पष्ट और सशक्त शब्दों में वर्णन सुन लिया है, और उतने ही स्पष्ट और सरल शब्दों में स्वयं उनकी सम्मति भी। सभापति के सशक्त शब्दों ने उनके अपराध की तीव्रता भी प्रमाणित करदी, और मेरा अनुमान है, डाक्टर रेडियर के सरल शब्दों ने उनके अपने हृदय का सारल्य भी प्रमाणित कर दिया है। अपने कर्त्तव्य-स्खलन का सम्पूर्ण दायित्व उन्होंने फ्रायड के मनोविज्ञान की एक सामान्य-सी कारिका पर डाला है, यद्यपि अपने व्यक्तित्व की तुच्छता को स्वीकार करके उन्होंने उस तिनके का आधार भी छोड़ दिया है। मैं नहीं समझती कि क्या रह जाता है कि इसे हम उनकी चारित्रिक-दृढ़ता का प्रमाण न मानें! वे इस सभा के योग्यतम सदस्यों में से हैं, और इस सभा का योग्यतम सदस्य होकर भी, किसी के लिए यह दुराशा तो नहीं की जा सकेगी कि वह मनुष्य नहीं है। और यदि व्यक्ति के 'स्व' की अवहेलना नहीं की जा सकती, तो उनको परास्त कर

सकने वाली दुर्बलता को तुच्छ और हलकी स्वीकार करने से काम नहीं चल सकेगा। सेक्स की इस सीनाजोरी से आपकी सभा में एक विशिष्ट-सदस्य का व्यक्तित्व तुच्छ हो गया है, आपने, मालूम देता है, इसे स्वीकार भी कर लिया है; किन्तु मनुष्य के शाश्वत सत्य को देखा जाए, तो इसी दुर्बलता ने उसे मनुष्य बनाए रख कर प्रकृति के संतोल की प्रतिष्ठा कर रखी है। यह तो एक अवसर था कि उसके साथ एक दुर्घटना का सम्बन्ध जुट गया। आज वे आपकी भूल स्वीकार कर रहे हैं, उनके हृदय की स्वच्छता उनकी स्वीकारोक्ति में प्रमाणित है। सभापति ने पहले ही प्रमाणित कर दिया है कि हमारे प्रतिशोध का लक्ष्य अपराधी नहीं, वरंच उसका अपराध है, और यदि यह बात सही है तो डाक्टर रेडियर को किसी भी प्रकार का दण्ड देने के पूर्व हमें उनके भीतर उस अपराध की खोज करना होगी।"

डाक्टर रेडियर बोलने के लिए उत्सुक हुए, किन्तु सुरेशनारायण द्वारा रोक दिए गए। मि० निकल्सन ने खड़े होकर कहा—

"इस तरह चीप सेण्टिमेण्ट (सस्ती भावुकता) से काम करना इस पार्टी को शोभा नहीं देता। कोई भी कल्प्रिट (अपराधी) अपना कसूर मंजूर करके बरी नहीं होना चाहिए उसको दण्ड मिलना ही चाहिए। नहीं तो फ्यूचर सोसाइटी (भविष्य-समाज) के लिए यह एक बोगस एग्जाम्पल सेट (बुरा उदाहरण उपस्थित) करेगा। मैं अपने प्रेडिसेसर (पूर्ववक्ता) की बात का विरोध करता हूँ।"

खड़ी होकर नीलम बोली, "माननीय सदस्य ने भविष्य में बुरा उदाहरण उपस्थित होने की आशंका प्रकट की है। भविष्य के सूत्र को संचालित करना इतना सरल नहीं है कि किसी एक व्यक्ति का मत ही अन्तिम और निर्भ्रान्त मान लिया जाए। और मैं विश्वास करती हूँ कि डाक्टर रेडियर को सचमुच पश्चात्ताप हो रहा है, अपने अपराध की अनुशोचना में कष्ट पाकर ही उन्होंने प्राणदण्ड की व्यवस्था माँगी है। मैं समझती हूँ राष्ट्र को केवल अहेतुक आशंका के कारण, किसी योग्य

व्यक्ति की सेवाओं के अवसर से विरत करना किसी का अधिकार नहीं है। यदि उनके हृदय-परिवर्त्तन पर विश्वास न किया जाएगा, तो पृथिवी में कोमल भावों की कभी सङ्गति न होगी।"

निकल्सन ने कहा, "जिसने पार्टी की हस्ती ही को खतरे में डाल दिया है मैडम, उसको बचाने की आपकी कोशिश किसी दूसरे खतरे को इनवाइट (निमंत्रित) कर रही है, यह आप नहीं देखतीं। रेडियर को प्राणदण्ड मिलना ही चाहिए तभी हमारी पार्टी में डिसिप्लीन रह सकता है। आज उन्होंने विश्वासघात करके सिर्फ अधरलाल और टीकू की जान ही ली है; मगर वह लड़की अब भी जिन्दा है, क्या भरोसा है कि अबकी मर्त्तबा उसके जादू में भूलकर गवर्नमेंट के एजेण्टों के साथ हथकड़ी बेड़ी लेकर इस सभा ही में न आ कूदें! सभानेत्री महोदया, यह एनार्किस्टों की पार्टी है, स्त्रियों का मजमाँ नहीं। यहाँ कोमल भावों के लिए क्या जगह हो सकती है? हमें सब बातें प्रेक्टिकल-वे (कार्यक्रम प्रणाली) में सोचना चाहिए।"

डा० रेडियर एकाएक बोल उठा, "मेरे मन ने जब एकबार मुझे धोखा देने में विजय प्राप्त करली, तो क्या भरोसा कि वह भविष्य में भी मुझे धोखा न देगा। मैं नीलमकुमारी के निकट अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हुए, सभा से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अपने जीवन में नफरत का बोझा ढोते फिरने का संयोग न दें, मैं मृत्यु दण्ड की कामना करता हूँ।"

निकल्सन ने ताली बजाई, अन्य बहुतेरे अस्पष्ट कण्ठों ने उसका समर्थन भी किया। निकल्सन ने फिर कहा—

"क्रांतिकारी कोमल भावों को नहीं जानता। वूमन, दाइ नेम इज फ्रेल्टी—"

निकल्सन का वाक्य पूरा नहीं हुआ। अंधकारमय गवाक्ष से गम्भीर घोष में आवाज आई, मानो कोई बम गिर पड़ा।

"शट अप निकल्सन, (बन्द करो निकल्सन)!) क्या तुम्हें फिर से

याद दिलाना पड़ेगा कि तुम अपने 'मिशन' में जिस तरह 'फेल' हुए हो, उससे एक महिला तुम्हारी इज्जत पर पानी फेर चुकी है ?—और अगर डॉक्टर रेडियर तथा—"नवनीत के नामोल्लेख का अवसर आते ही सभानेत्री की आवाज एकाएक काँप उठी। उधर सभानेत्री के बोलना प्रारम्भ करते ही नवनीत के कानों में एक अभूतपूर्व भाव जाग उठा, मानों क्षितिज के उस पार दृष्टि से दूर छाए हुए बादलों का सजल-सन्देश सुनकर मयूर के प्राण थिरक उठे, वह ललचाई आँखों से अपनी नत दृष्टि को उठाकर गवाक्ष की ओर देखने लगा। किन्तु तभी मायावती की आवाज एक चट्टान से ठोकर खाकर लड़खड़ा उठी, एक ही क्षण में माया ने सोच लिया कि उसे आवेश में आकर बोल नहीं देना चाहिए था। किन्तु अब क्या था, उसे बात पूरी करनी पड़ी, यद्यपि वह पूर्व की आवेशमयी ध्वनि नहीं थी!—" अगर डॉक्टर रेडियर के मुकद्दमे को इतना भयानक समझा जा रहा है, तो मैं चैलेंज देती हूँ मि० निकल्सन, आपकी असफलता का भी इसी मानदण्ड पर विचार किया जाएगा। डॉक्टर रेडियर को धोखा देने वाली एजेन्सी उनका हृदय-तत्व थी, और तुमको धोखा देने वाली एजेन्सी तुम्हारी बुद्धि का दिवाला, और इस सभा के निकट, चाहे बुद्धि के दोष से हो, या भावना के दोष से, असफलता का दोष बराबर है। कहिए, क्या सजा तजवीज फरमाते हैं आप अपने लिए ?—रेडियर ने प्राणदण्ड की व्यवस्था दी है। फरमाइए, रुक क्यों गए ?"

निकल्सन दृष्टि नीची किए हुए चुपचाप बैठे रहे! महिला-पार्टी ने प्रसन्नता से तालियाँ पीटीं, बहुतेरे पुरुषों ने भी साथ दिया।

सभानेत्री का आदेश पाकर सुरेशनारायण ने कहा, "माननीय सदस्यगण, आपने रेडियर के पूरे मुकदमे को सुना है, सभानेत्री जी आपकी सम्मति जानने के लिए उत्सुक हैं।"

सभानेत्री का वक्तव्य सभी ने सुना था, लगभग सभी समवेत

स्वर से बोल उठे, "डाक्टर रेडियर को क्षमा कर दिया जाए।" अवश्य ही निकल्सन इसमें सम्मिलित न थे।

डॉक्टर रेडियर ने अविश्वास की दृष्टि से चारों ओर देखा, और फिर अपनी दृष्टि नीची करली।

सुरेशनारायण और सभानेत्री में धीरे-धीरे कुछ देर तक कुछ बातें हुईं। सुरेशनारायण ने एक कागज सभानेत्री की ओर बढ़ा दिया ताकि सभानेत्री अपने हाथ से फैसला लिख दें।

सुरेशनारायण ने डॉक्टर रेडियर को सम्बोधन करके कहा, "डॉक्टर रेडियर, सभा के इस निर्णय पर मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। किन्तु फ्रायड का उल्लेख करके अपनी दुर्बलता को छिपाना या उसका आश्रय लेना किसी मनुष्य को शोभा नहीं देता। सेक्स की मर्यादा में तुम पदस्थ हुए भी किससे? एक अंग्रेज लड़की से जो तुम्हारे ऊपर स्वयम् अपने देश प्रेम के कारण गोली चलाने के लिए तैयार हो गई थी, और उसी के प्रेम में तुम अपने देश के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार हुए। जरा सोचो कि सचमुच में उस लड़की के हृदय में तुम्हारे प्रति प्रेम होगा या घृणा? एक स्त्री के कटाक्षों से किसी व्यक्ति का कर्त्तव्य से च्युत हो जाना फ्रायड के नाम से यदि हल्का हो जाता हो, तो इस अराजक-दल की सदस्यता का या देशोद्धार के और किसी बहाने का प्रयोजन ही क्या रहेगा?" इसके बाद ही सभानेत्री के हाथ से लौटा विचार-पत्र लेकर वे बोले, "यह तुम्हारे पापकर्म का फैसला है:" यदि डॉक्टर रेडियर लिखित आश्वासन दें कि वे अपने कृत पाप के लिए आन्तरिक हृदय से पश्चात्तापपूर्वक क्षमा याचना करते हैं, और वादा करते हैं कि वे भविष्य के लिए राष्ट्र के सम्मुख अपने उत्तरदायित्व का अनुकरणीय उदाहरण छोड़ जाएँगे, तो उन्हें क्षमा किया जाता है, और वे मुक्त किए जाते हैं।—स्वयंसेवको, इनके बन्धन खोल दिए जाएँ।"

तुमुल हर्ष-ध्वनि के बीच डा० रेडियर की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ खोल दी गईं। किन्तु एक लम्बी साँस खींचकर डॉक्टर रेडियर ने कहा—उसकी आँखों में आँसुओं की धाराएँ प्रदीप्त हो उठी थीं—"किन्तु देशवासियों के उस सर्वव्यापी धिक्कार के बन्धनों से मैं कैसे मुक्त हो सकूँगा?—मेरी प्रार्थना है कि मैं जीवित नहीं रहना चाहता!"

"तो क्या भविष्य में तुम देश-सेवा का आश्वासन नहीं देते?"

"उससे अधिक आनन्द की बात मेरे लिए हो ही क्या सकती है, किन्तु—"

तभी डाक्टर रेडियर ने शीघ्रता की। पास में खड़ा हुआ पहरेदार बहुत कुछ असावधान था। झपट कर रेडियर ने उसके हाथ से पिस्तौल को छीन लिया, और इसके पहले कि कोई इसका उपचार कर सके, उसने पिस्तौल को अपने हृदय पर लगाकर विद्युत के वेग से घोड़ा दबा दिया। गोली का धक्का साधारण नहीं था, नीचे गिरते ही रेडियर ने कहा—

"नफरत को जिन्दगी का आदर्श बनाकर जिन्दा रहने की ताकत मुझमें नहीं है। मैं सभानेत्री का, नीलमदेवी का—सारी सभा का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मेरे ऊपर असीम दया दिखाई है। किन्तु मैं दया का पात्र नहीं था। रहा मेरी हृदय शुद्धि का प्रमाण;—इस बहते हुए रक्त को देखिए, यह उसी हृदय का रक्त है।—अन्त समय में यही कामना है कि आप लोगों के प्रयत्न सफल हों।"

रक्त का प्रवाह बहुत तीव्र था, गोली हृदय में लगी थी। शीघ्र ही डाक्टर रेडियर की चेतना क्षीणतर होने लग गई।

सभी सदस्य उठ-उठकर रेडियर की लाश को देखने लगे। किसी की आँखों में आँसू भी भर आए। शव से बहकर रक्त चारों ओर फैलने लगा। नवनीत के हृदय की धड़कन दुगुनी हो गई।

मालूम हुआ मानों सभानेत्री खड़ी होकर बोल रही है; सभी सदस्य खड़े हो गए। शांति के एकान्त वातावरण में सामने की बन्द

खिड़की से आवाज आई, "शब्द नहीं हैं, जिनसे इस वीर मृत्यु का अभिनन्दन किया जा सके। डाक्टर रेडियर ने अपने पश्चात्ताप का सच्चा परिचय दिया है।—क्या अब भी उनके ऊपर किसी का अविश्वास है?"

सभानेत्री ने मानों किसी के बोलने की राह देखी, किन्तु कोई नहीं बोला, निकल्सन की दृष्टि उसी तरह नीची रही।

"हम लोग दो मिनिट तक निरव खड़े रहकर मृत व्यक्ति के प्रति अपने हृदय का सम्मान प्रकट करेंगे।"

सम्पूर्ण सभा दो मिनिट तक नीरव खड़ी रही। जब सब बैठे तो आरती और नीलम ने आँचल के छोर से अपने आँसुओं को पोंछ लिया।

सुरेशनारायण ने खड़े होकर कहा, "मुझे खेद है कि मेरी वक्तृता ने अभियुक्त के हृदय पर एक अन्धकारमय भविष्य का चित्र खींच दिया था। किन्तु उसमें अतिरंजना क्या थी? उत्तेजना के प्रवाह में हमने अवश्य ही एक अच्छे कार्यकर्त्ता को खो देने का दुर्भाग्य प्राप्त किया है, किन्तु प्रतिदिन की भर्त्सना से उसके लिए मुक्ति की यही राह थी। किसी एकाकी प्रातःकाल में शांतिमयी निद्रा से उठकर जनता उसको किसी एकान्त कमरे में रस्सी से गर्दन लपेटे हुए देखती, उसकी अपेक्षा इस मृत्यु को गौरवमय क्यों न कहा जाए! मुक्त पंछी, जिसके पीछे रोने वाला कोई न हो, क्यों अपने जीवन को भार बना लेगा? मैं अपनी ओर से मृत व्यक्ति का अभिनन्दन करते हुए उसके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।" यह कहकर वक्ता ने शव की ओर अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया।

सुरेशनारायण बोले, "यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम इच्छा रखते हुए भी शव का उत्सव के साथ दाह संस्कार नहीं कर सकते। फिर भी हमारी यह सभा कल पुनः सात बजे यहाँ पर एकत्रित होगी, और यहीं से शव शहर के पश्चिम में यमुना किनारे साधारणतया इस भाव

से ले जाया जाएगा, जैसा कि हमारे लिए इन परिस्थितियों में सम्भव होगा। आप सब सज्जन उपस्थित हों।"

इसके बाद पुनः उन्होंने सभानेत्री से कुछ परामर्श किया, फिर बोले, "सभासद गण, सभानेत्री आपसे पूछना चाहती हैं कि नवनीतलाल के अपराध का भी क्या यह सभा अभी विचार करेगी?"

निकल्सन ने कहा, " 'एजण्डा' में यह 'आइटम' दिया गया है। इसका विचार अभी ही किया जाना चाहिए।"

मृत्यु यज्ञ की पुरोहिताई में किसे दिलचस्पी नहीं? सभी एकमत हो गए। आरती और नीलम का चित धड़कने लगा। और कौन कह सकता है कि अन्धकार में बैठी हुई माया के हृदय की क्या अवस्था थी?

कुछ देर तक कागज-पत्र देखकर सुरेशनारायण ने कहना प्रारम्भ किया—

"आपके सामने जो दूसरे बन्दी के रूप में खड़ा है, उसे आप नहीं जानते होंगे, क्योंकि वह कभी आपकी सभा का सदस्य नहीं रहा। रिपोर्ट कहती है कि यह व्यक्ति सुशिक्षित है, सुचरित्र है और इसके स्वास्थ्य को देखकर आप भी कह सकते हैं कि सुदृढ़ भी है। किन्तु कैसा दुर्भाग्य है कि ये सब 'सु' देश के लिए बड़ा भारी दुर्भाग्य साबित हुए हैं। जिन सुन्दर शब्दों से इन महाशय को अभी अलंकृत किया गया है, वह सब देश का ऋण है—जिस देश के पवित्र और महान् गौरव ने इनकी शिक्षा-दीक्षा को वर्द्धमान किया है, जिस देश के प्राचीन आर्य सिद्धान्तों ने इसके चरित्र को महानता दी है, और जिस देश की मिट्टी के पोषक तत्वों में लोट-पोट कर इन्होंने यह सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त किया है, वही देश इनसे अपनी समस्त सेवाओं के बदले में पाता है विश्वासघात, कृतघ्नता और विद्रोह! इसी बन्दी का नाम है श्री नवनीतलाल व्यास, मानपुर पोस्ट आफिस का ब्रांच पोस्टमास्टर, अधरलाल और टीकू काण्ड का दूसरा अभियुक्त।"

सभी सदस्यों ने जब नीची दृष्टि किए हुए नवनीतलाल को ठीक तरह से देख लिया तो सुरेशनारायण फिर बोले—"इस सभा के प्रति इनका प्रत्यक्ष कोई दायित्व नहीं है, आपकी सभा के निकट प्रतिश्रुत होकर इन्होंने कोई आपके प्रति विश्वासघात नहीं किया ! यही नहीं, यदि इनके अपराध से अधरलाल अथवा टीकू का कोई सम्बन्ध न होता तो कदाचित् इनको आज आपके इजलास में खड़े होने की आवश्यकता न थी। किन्तु नवनीतलाल, इसीलिए तुम्हारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया था। तुम अपने कृत अपराध के लिए, न केवल किसी मनुष्यता का हित-साधन करने वाली सभा के निकट ही वरंच स्वयम् मनुष्यता की और राष्ट्रीयता की सभा के निकट उत्तरदायी हो। परोक्ष रूप में तुमने इस संस्था के कार्य में अनुचित हस्तक्षेप किया है। जिससे संस्था की गतिशीलता में बाधा और दो व्यक्तियों के प्राणनाश के द्वारा उसकी हानि हुई है। तुम्हें क्या कहना है इसके बारे में ? शायद तुम कहो कि यदि इस सभा को तुम्हारे आचरण के प्रति किसी प्रकार की शिकायत है, तो वह भारत-सरकार को कानूनी कोर्ट की शरण ले। मेरा कथन है कि यह दल उस राज्य के विधान को नहीं मानता। इसका स्वयम् का एक शासन है, एक विधान है, और अपने विधान और शासन को प्रचारित करने की उसके पास सामर्थ्य है, जिसके प्रमाण की शायद तुम आवश्यकता न समझो !"

नवनीतलाल ने नत-दृष्टि को एक बार ऊची उठाया, खिड़की की ओर उड़ती हुई वह पुनः पैरों पर लोट गई, वे बोले— "सभा के प्रति मैंने कोई अपराध नहीं किया है। अधरलाल और टीकू आपके दल के सदस्य हो सकते हैं, किन्तु मेरे और उनके बीच की सीमा रेखा का कोई सूत्र आपके दल तक पहुँचता हो, इससे मैं नहीं समझता। आप शायद यह भी जानते होंगे कि अधरलाल मेरे मातहत पोस्टमैन था, और इस सम्बन्ध के लिए आप या आपकी सभा कभी जिम्मेदार नहीं हो सकते। मेरे और उनके बीच में स्नेहास्पद या कलहास्पद जैसा भी

सम्बन्ध रहा हो, मेरे और उनके बीच की बात है ! न, मैं समझता हूं, आपका सदस्य हो जाने ही से अधरलाल-टोकूकी व्यक्तिगत इकाई समाप्त भी हो गई हो ? मैं नहीं समझता कि आपको मेरे व्यक्तिगत मामले में हस्ताक्षेप करने का आपको या आपके दल को क्या अधिकार है, जब कि मैं उसके प्रति किसी भी बन्धन से उत्तरदायी नहीं हूं। आप अन्याय कर रहे हैं ! मैं आपके दल का शासन-विधान कुछ नहीं मानता !"

सुरेशनारायण ने कहा, "इस सभा का शासन मनुष्यता का शासन है, इसका विधान राष्ट्र के हितों की रक्षा का विधान है। तुमने मनुष्यता के साथ विश्वासघात किया है।"

नवनीत ने देखा कि उसकी बातों का प्रभाव पड़ रहा है, उसने स्वर को और भी अधिक प्रभविष्णु बनाकर कहा—

"मिस्टर सुरेशनारायण, यह सच है कि आप विचारासन पर अधिष्ठित हैं। मनुष्यता के विधान की किस धारा ने आपका इस आसन पर अभिषेक किया है, मैं नहीं जानता, न जानने की चिन्ता ही करता हूं। किन्तु यदि इसके लिए आपके प्रति मेरे हृदय में कोई श्रद्धा का भाव उदय न हो सका हो तो मुझे दोष नहीं दिया जा सकता। मैं किसी की बुद्धि का कायल नहीं हूं, आपने अपनी जिस बुद्धि की साक्षी से मुझे दोषी ठहराया है, मैं उस बुद्धि को अन्तिम नहीं मानता।"

"आप मेरी बुद्धि का ठेका न लीजिए मि० व्यास ! आप यही कहिए कि आप दोषी किस तरह नहीं हैं !" व्यंग्य के साथ सुरेशनारायण ने कहा। किन्तु नवनीतलाल की भंगिमा से वह सम्भ्रम व्यंग्य न होकर सत्य होगया।

नवनीत ने उत्तर दिया, "उसी तरह नहीं हूं, जिस तरह आप नहीं हैं, इस सभा का अन्य कोई सदस्य नहीं है। क्या आप प्रत्येक व्यक्ति के जीवित रहने के अधिकार को भी स्वीकार नहीं करते ?"

"किन्तु उसका मतलब दूसरे व्यक्ति को जीवित नहीं रहने देने से तो नहीं है ?"

"अवश्य नहीं है। अधरलाल या टोकू की मैंने हत्या नहीं की है। मैंने केवल उनको राज्यश्रय के सुपुर्द किया है, इसलिए कि उनके किए हुए पाप का फल मुझे न भोगना पड़े। यदि आप विचारक का अभिनय करने के इच्छुक हैं, तो यह जानने की चेष्टा क्यों नहीं करते कि किट्सन की हत्या करने वाले अधरलाल और टोकू थे, नवनीतलाल नहीं, और यदि जानते हैं, तो किसी दुधमुँहें बच्चे से पूछिए, वह बतायेगा कि हत्या करने वालों के गले फूलों की माला से नहीं, फाँसी ही के फन्दे से सुशोभित होते हैं।"

सुरेशनारायण अप्रतिभ होगए। सम्पूर्ण सभा मंत्र मुग्ध-सी नवनीतलाल के दृढ़ व्यक्तित्व का दर्शन करने लगी। मंजरी की आँखें प्रसन्नता से चमक उठी थीं, आरती का हृदय वेग से धड़क रहा था, और नीलम के ओठ इस व्यक्ति की शठता पर बराबर क्रोध से फड़क रहे थे।

कहा नहीं जा सकता कि अन्धकार में बैठी हुई माया या सभानेत्री पर नवनीतलाल के इस कथन का क्या प्रभाव पड़ रहा था।

सुरेशनारायण ने अन्तिम शक्ति लगाकर कहा, "मि० नवनीतलाल, यह बात हमसे छिपी हुई नहीं है कि जब किट्सन आपके प्राणों का खेल निपटाने के लिए पिस्तौल का प्रयोग करने ही वाला था, तभी अधरलाल ने उसके ऊपर अपनी पिस्तौल का प्रयोग किया है। अधरलाल से आपको प्राणदान मिला है, इसे आप क्यों भूल जाते हैं?"

व्यंग को अधिक तीव्र करते हुए नवनीत बोला "धर्मावतार, उसे मैंने अस्वीकार तो नहीं किया। रहा प्रश्न प्राणदान का, सो आप ही बतलाइए कि क्या प्राण देने वाले को प्राण लेने का भी अधिकार मिल जाता है क्या? पर इन बातों में उलझने से क्या लाभ! अधरलाल ने मेरे प्राणों की रक्षा की, और उसके लिए मुझे उनका कृतज्ञ होना चाहिए था, यही न आपका तात्पर्य है? मैं भी कृतज्ञता को मनुष्य का एक अच्छा गुण मानता हूं, किन्तु मेरी दृष्टि में उससे भी उत्तम एक

और गुण है, और वह है सत्य की रक्षा ! न्याय का मतलब यदि सत्य की रक्षा से है, और जहाँ तक मैं समझता हूं कृतज्ञ के प्रकाश से उसका सम्बन्ध उतना नहीं है, जितना कि सत्य की रक्षा से है, तो न्यायमूर्ति मैंने सत्य की रक्षा का पाप किया है, अवश्य ही कृतज्ञता का चिरऋणी मैं नहीं बन सका। दीजिए, इन शरीर-रक्षकों को आदेश दीजिए, आप इस समय समर्थ हैं। मेरे ऊपर पिस्तौल का प्रहार करवाइए, और सारी सभा को समझा दीजिए कि आपने इस पृथिवी को एक पापी के बोझ से मुक्त कर दिया है।"

नवनीतलाल दृष्टि ऊँची करके सीना ताने खड़ा हो गया। सुरेश-नारायण को कोई उत्तर नहीं सूझ पाया। नवनीतलाल की प्रतिभा के सामने वे हत-प्रभ होगए। अन्धकार में बैठी हुई सभानेत्री की आँखों में अनजाने ही गर्व की दीप्त झलक उठी।

आवश्यक था कि सभानेत्री कुछ राह बतलाए, कि नीलम अपने आसन पर उठ खड़ी हुई।

डूबते हुए सुरेशनारायण ने तिनके को पकड़ कर पूछा, "आप कुछ कहना चाहती हैं ?"

"जी हाँ !"

"कहिए !"

"यदि आप आज्ञा दें, तो अभियुक्त पर अभियोगों का आरोप मैं करूँ !"

नवनीतलाल ने दृष्टि संयत करके वक्ता की ओर देखा, दोनों की आँखें चार होगईं। एक क्षण के लिए सफलता की जो दुराशा उसके हृदय में उठ रही थी, वह बैठने लगी। किन्तु मुंह पर उसने कोई क्लेश का भाव व्यक्त नहीं होने दिया !

सुरेशनारायण ने स्वीकृति दे दी।

नीलम सतर होकर खड़ी हो गई। तभी भारती ने धीरे से पूछा, "तुम्हारा मतलब क्या है बहन ?"

"अधरलाल की मृत्यु का प्रतिशोध ! यह शठ यह न समझले कि पीछे बचनेवाली अबला ही तो है, वे क्या कर सकेंगी ?"

"पर कुछ करके भी वास्तव में हम कर क्या लेंगे ?"

"पौरुष की दृढ़ दीवार को एक ठोकर तो लगेगी !"

नीलम नवनीत की ओर अभिमुख हुई। सुरेशनारायण अपनी कुर्सी पर हारे हुए जुआरी की भाँति बैठ गए। मंजरी के हृदय की धड़कन तीव्र हो उठी, और अपने आप में खोई हुई सभानेत्री को मानो इस नए उपसर्ग का कुछ ध्यान ही नहीं हुआ।

नीलम ने पूछा, "महाशय, आशा है आप अस्वीकार न करेंगे कि आप मुझे जानते हैं !"

"मेरा वह सौभाग्य कहाँ है ?—किन्तु सभानेत्री, या सभापति जी, क्या इस सभा का प्रत्येक व्यक्ति विचारक का नाटक करेगा ? मैं समझता था कि इस प्रकार की एनार्किस्ट सोसाइटीज में केवल पिस्तौल का शासन चलता है, किन्तु क्या यहाँ पर नाटक भी खेले जाते हैं !"

उत्तर नीलम ही ने दिया, "इतने शीघ्र व्याकुल हो उठे ? अभी तो पापों के लेखे-जोखे का प्रारम्भ भी नहीं हुआ है। किन्तु महाशयजी, यदि आपने अभियोगों का उत्तर नहीं दिया, तो उससे उन अभियोगों की सचाई ही प्रमाणित होगी। वह वैसे भी प्रमाणित हो चुकी है, किन्तु सभा तो उन अभियोगों को सुनना चाहेगी, आप चाहें तो उत्तर न दीजिएगा।"

सभी सदस्य बोल उठे—"आप सुनाइए, हम सब सुनेंगे, हम सब सुनेंगे।"

विजयगर्व से नीलम ने चारों ओर देखा, नवनीतलाल ने अपनी हिंस्र दृष्टि को पिंजर-निबद्धसिंह की भाँति नीचे झुका लिया।

नीलम ने कहा, "सज्जनो ! आप अपने सम्मुख एक सुशिक्षित, सच्चरित्र और सुदृढ़ व्यक्ति को देख रहे हैं—व्यक्ति को आप देख रहे हैं, और इन विशेषणों को आप सुन रहे हैं। देखने और सुनने की यह

चार अँगुल की दूरी कितनी बड़ी है, इसे आप इन श्रीमान् को देखकर ठीक तरह से समझ सकेंगे ! शब्द निर्जीव होते हैं और बहुत अधिक सशक्त होते हुए भी जब ऐसे व्यक्तियों के नाम का साथ प्राप्त करने का दुर्भाग्य पाते हैं तो निर्बल भी हो जाते हैं ! आपको सुशिक्षित कहा गया है, किन्तु केवल स्कूल की शिक्षा के नाम पर किसी व्यक्ति को सुशिक्षित कहने से जिस प्रवंचना का हम सूत्रपात करते हैं, उसका बहुत अच्छा उदाहरण आपको अन्यत्र नहीं मिलेगा। शिक्षा का या ज्ञान का उद्गम व्यक्ति का 'अहम्' नहीं होता, वह व्यक्ति के बाहर का 'सोहम्' होता है। शिक्षा का आभार व्यक्ति का 'स्व' नहीं हो सकता, वह होता है व्यक्ति के चारों ओर का 'सर्व', जिसे हम प्रकृति, देश, राष्ट्र, जाति, समूह या और किसी ऐसे ही नाम से पुकारते हैं। इस देश, राष्ट्र, जाति या समाज के प्रति श्रीमान् ने जैसी वफादारी का परिचय दिया है, उसे तो आप सुन ही चुके हैं; किन्तु यदि आप मुझे और आगे कहने के लिए विवश करें कि साधन के तौर पर भी श्रीमान् की उच्च शिक्षा का व्यय श्रीमान् के श्रम या श्रीमान् के माता-पिता के श्रम के द्वारा उपार्जित द्रव्य से नहीं, प्रत्युत आपकी धर्मपत्नी के कोष से निष्पन्न हुआ है।"

नवनीत को स्पष्टतः ही अपनी आँखें नीचे झुका लेनी पड़ीं। मायावती उस अन्धकार में भी चौंक उठी, एक झटके के साथ उसके हृदय के सभी तार मानों टूट गए, वह उत्कर्ण होकर सभा की कार्यवाही को ध्यान से सुनने लगी।

"महाशयो ! आप लोग हँसिए नहीं। भावी धर्मपत्नी के कोष से अपना अध्ययन सम्पन्न करना लज्जा की बात नहीं, लज्जा की बात तो उसी शिक्षा के बल पर अपनी उसी पत्नी की भर्त्सना कर सकना है। आप लोग अवश्य ही नवनीतलाल के साहस की तारीफ करेंगे। इन्होंने न केवल अपनी ऐसी दयालु विवाहिता पत्नी की भर्त्सना ही की है, किन्तु विवाह के बाद चार वर्ष तक उसे विवाह के कैदखाने में कैद रखकर अपने घर से निरपराध निकाल देने का अद्वितीय साहस भी

किया है—वही पत्नी जो स्वयम् पर्याप्त शिक्षिता थी, और जिसने अपनी सम्पत्ति से इनके भरण-पोषण और शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की थी। जिस सरलता से ये पति के कर्त्तव्य को और पत्नी की कृतज्ञता को भूल सके हैं, क्या उस पर आपको श्रद्धा नहीं होती ?"

नवनीतलाल ने शक्ति लगाकर कहा, "मेरी पत्नी को आपने कभी दो आँखों देखा है ?"

"गवाह चाहते हैं आप ! सुसराल से मिले हुए आपके नौकर हरनामको उपस्थित किया जाए! दुर्भाग्य है कि आपकी पत्नी आपको अब तक देख नहीं सकी। यह एक सौभाग्य भी है। किन्तु उसके स्वाभिमान का परिचय तो मुझे आपको लिखे हुए उसके पत्र से पर्याप्त रूप से लग गया है अभागिनी नारी, आज तो यहभी कह सकना कठिन है कि अपने अभिमान का बोझ और अपमान का दण्ड सहती वह जीवित भी है या नहीं ! नारी की दुर्बलता का आपने खूब लाभ उठाया है महाशय जी ! नारी की अश्रु-सिक्त कातर प्रार्थना को सदैव अपना प्राप्य समझ कर उसको अवहेलना करने वाले निष्ठुर ! मैं तुम्हें चुनौती देती हूँ कि इस सभा में यदि आज वह उपस्थित होती, तो स्वाभिमान से दृप्त उसके विद्युत् तेज का सामना आप किस तरह करते ? नारी की यह चिरकालीन दासता अब उसके लिए कलंक है, किन्तु आज की नारी इस कलंक को समझ गई है। आपने निरपराध भक्ति-प्राण पत्नी का परित्याग करके न केवल उसी अभागिनी नारी का अपमान किया है, किन्तु तुमने समस्त नारी जाति को पदस्थ करने का प्रयत्न किया है। सौभाग्य से आज भी इस सभा का नेतृत्व एक अद्भुत शक्तिशालिनी नारी के हाथ में है; और आपके अपराधों की गणना ?—सभानेत्री तो सभानेत्री, यदि इस आसन पर स्वयम् आपकी पत्नी, वह परित्यक्ता महिला होती, और उसे आपके अपराधों का विचार करने का अधिकार दिया जाता, तो अवश्य ही आप जैसे शठ को उसके निकट अपने प्राणों की भीख माँगनी होती, और सहे हुए अत्याचारों का स्मरण करके,

अपने नारीत्व के गौरव को अक्षुण्ण रखती हुई वह नारी आपकी इस प्रार्थना को ठुकरा देती।"

चारों ओर से तालियाँ बज उठीं। सभानेत्री के हृदय का टूटा हुआ तार स्वाभिमान से मानों विद्युत् का स्पर्श पाकर जल उठा। तो क्या पुरुष की चिर शृंखलाओं की प्रवंचना को तोड़ डालने के लिए ही उसका अवतार हुआ है!

नवनीतलाल की आँखों के आगे अँधेरा छा गया, किन्तु साहस बटोर कर उसने उत्तर दिया—

"यदि तालियों की गड़गड़ाहट से आपके कान पक न गए हों तो नीलम देवी, एक बात पूछना चाहता हूँ। यह आप मेरी परित्यक्ता पत्नी की वकालत कर रही हैं, या 'विवाहित' शब्द को धोखे की आड़ लेकर अपनी खुद की ही पैरवी कर रही हैं?"

जो इस गूढ़ व्यंग्य को समझा, वह स्तम्भित हो गया। मायावती का दिल बैठने लगा। नीलम स्वयम् घबड़ा-सी उठी, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने आपको सम्हाल लिया। वह बोली, मुस्कराती हुई—

"नवनीतलाल जी, विश्वास रखिए, यह उसी हतभागिनी पत्नी की वकालत है। आपके हृदय की शैतानियत के राज्य में अपनी पैरवी करके अब मैं अपने लिए अपने ही हृदय की अधिक घृणा सम्पादित नहीं कर सकूँगी। समझ रहे हैं न?"

—फिर सभानेत्री की ओर तथा सभा की ओर अभिमुख होकर उसने कहा—"सभानेत्री महोदया, जिस इतिहास की ओर अभियुक्त का संकेत है, वह नारीत्व की लज्जा का नहीं, वह केवल नारीत्व की दुर्बलता का भी नहीं, वह तो सम्पूर्ण मनुष्यता की दुर्बलता का है, जिसे अभी ही रेडियर के मुकद्दमे में फ्रायड की देन कहकर पुकारा गया है। दुर्बलता तो है, उस दुर्बलता के सम्मुख असम्मानपूर्वक झुक जाना लज्जाजनक है, किन्तु मेरा इतिहास नारीत्व की भूमिका के सम्मान को बढ़ाता है सभानेत्री जी! तब महाशय नवनीतलाल व्यास मानपुर में

नये-नये आए थे—बीमार शरीर और बीमार मन लेकर ! आज तो आप सत्य की रक्षा के लिए अंग्रेज जाति के भक्त बने हुए हैं, किन्तु, यदि ये अस्वीकार न करें तो इनका मन तब अंग्रेजों के प्रति भयानक विक्षोभ से भरा हुआ था, और वस्तुतः यही कारण था कि तब ये मानपुर के हमारे समाज में सम्मानित हुए थे। इनके मन की प्रतिगामिता भली-भाँति सिद्ध कर देती है। भारतवर्ष के औसत व्यक्ति का गुलाम मन किस तरह से अपमान के कड़ुए घूँट को शरबत के समान पी सकता है। यदि इनमें साहस हो तो ये लखनऊ शहर में एक रेस्टराँ में सहे हुए अपने अपमान की कथा को प्रमाण के रूप में रख सकते हैं। किन्तु मैं इनके मानपुर के प्रथम प्रवेश की बात कह रही हूँ। अपने परिचय के प्रभात में यदि ये किसी समर्पणोत्सुक युवती को आकृष्ट कर सकने में समर्थ हुए हों, तो उसे न नारी की लज्जा ही कहा जा सकता है, और न पौरुष का विशेष महत्व ! यह तो सृष्टि की सामान्य-सी घटना है। उसी रुग्णावस्था में जब कि इनका रोग प्राणान्त हो उठा था, इनकी सेवा का भार लिया था मृत अधरलाल की जीवित पत्नी ने, और अपनी अथक साधना से इन्हें मृत्यु के मुख से लौटा लाने में उसने सफलता प्राप्त की थी, सेवा के उसी पाप का फल है कि आप आपके सामने अपने पापों का गट्ठर लिए हुए खड़े हैं। हतभागिनी नारी ने भूल की, नहीं तो न केवल उसके सुहाग के नष्ट होने का खतरा ही न रह पाता, प्रत्युत देश और मनुष्यत्व के गौरव की छीछालेदर भी न होती। महानुभावो, जैसे ही मुझे अपने प्रेम के लक्ष्य की क्षुद्रता का पता लगा, मैं उसे जीर्ण कन्या की भाँति विसर्जित करने में सफल हो सकी हूँ। यही व्यक्ति है जिसे मैंने एक दिन प्रेम करने की भूल की थी, किन्तु आज उतनी ही घृणा कर सकने में अपने आपको समर्थ पाकर मैं सोचती हूँ, मैंने नारी के गौरव को अक्षुण्ण ही रक्खा है। कहिए, श्रीमान् नवनीतलाल, मैंने कोई बात गलत तो नहीं कही ?"

नवनीतलाल क्या उत्तर देते ! नीलम की उपस्थिति मात्र ही से

वह अपने आपको संत्रस्त अनुभव कर रहा था, अब उसे विश्वास हो गया कि आज उसकी रक्षा असम्भव है। अब भी न जाने कौन-से गढ़े मुर्दे उखाड़ने की वह तैयारी कर रही है। क्या उसके लिए भी रेडियर-जैसी गौरव की आत्महत्या उपलब्ध हो सकेगी ?

सभानेत्री मायावती अन्धकार में बैठी हुई एक अद्भुत प्रकाश का अनुभव कर रही थी। नीलम के शब्द उसके कानों में वज्र के प्रहार की भाँति लग रहे थे। कैसी प्रतिभा है, और कैसे गजब का जोश है। भारतीय नारी में ऐसी दीप्ति असम्भव प्राय है। उसने सोचा, यदि यह युवती फ्रान्स में होती, तो अवश्य ही दूसरी जोन आफ आर्क होती। कैसे निष्कम्प कण्ठ से वह कह गई—स्वयम् नवनीत की प्रेमिका होकर, कि यदि विचारासन पर स्वयम् नवनीत की पत्नी होती, तो नवनीत जैसे शठ को उसके निकट अपने प्राणों की भीख माँगनी होती। संयोग से नवनीतलाल की पत्नी ही दृढ़ता से उस आसन पर बैठी हुई है; उसने भी नीलम की भाँति ही पौरुष के दम्भ को उन्मूलित करने का व्रत लिया है। ठीक समय पर वह कायर की भूमिका नहीं करेगी। वह अराजक दल की सभानेत्री है। उसे अपने देश का गौरव, नारी जाति का गौरव अपना स्वयं का गौरव अक्षुण्ण रखना है।

किन्तु उसके हृदय का दूसरा कोना और भी अधिक अधीर हो उठा था। अवश्य ही आज उसके अबोध-नारी के संस्कार गायब हो गए हैं, किन्तु वह स्वयम् तो गायब नहीं हुई ? उसने नीलम की ओर दृष्टि डाली, मानों सौंदर्य का समवेत उत्स विक्षुब्ध होकर नीलम पर बिखर पड़ा था। इसी रमणी ने नवनीत से प्रेम किया था। ईर्ष्या की गम्भीर कालिमा उसकी काली आँखों में और भी गहरी हो उठी; किन्तु अपने हृदय का स्वामी स्वयम् आप होना कितना बड़ा ऐश्वर्य है, यह स्वयम् माया या दूसरी इस नीलम के अतिरिक्त जानता ही कौन है ?

सुरेश नारायण के चेहरे पर आशा फिर जोर मार रही थी। वे बोले, "रिपोर्ट में लिखा है कि नवनीतलाल सच्चरित्र हैं। आपको शायद

स्मरण होगा कि किसी विगत-सभा में गोपनीय रिपोर्ट के आधार पर सभानेत्री ने बतलाया था कि इन्हीं महाशय की उस अंग्रेज लड़की शल से अवैध सम्बन्ध की चर्चा थी। नीलम देवी ने अंग्रेजों के नवनीत के प्रति किए हुए अपमान का केवल उल्लेख भर किया है, किन्तु मालूम देता है कि उस अपमान का इस घटना से कुछ सम्बन्ध हो। तब तो आप लोग इनके चरित्र की दृढ़ता की भी जय बोलिए।"

नवनीत इस लांछन से तो स्तब्ध हो गया; किन्तु नीलम ने वह वातावरण बना दिया था नवनीत के प्रतिवाद का कुछ प्रभाव न पड़ता। सभानेत्री ने उसके बारे में जाने क्या कहा था। स्वयम् सभानेत्री ने कल्पना नहीं की थी कि उसके कथन का नवनीत के सम्मुख ही कभी प्रयोग किया जा सकेगा। कही हुई बात को वह इन्कार ही कैसे करती?

स्वयम् नीलम के लिए इस बात को समझना संभव न था, किन्तु उसका आश्चर्य अधिक टिका नहीं। उसकी सूचना का उद्‌गम हरनाम ही तो था, जो एक प्रभु-भक्त नौकर ही था, शायद वह झूँठ भी बोला हो। सभानेत्री की सूचना अधिक विश्वस्त होनी चाहिए, और फिर आरती के प्रति उसकी आसक्ति की तो वह स्वयम् साक्षी है।

सुरेशनारायण को सम्बोधन करके नीलम ने अपने वक्तव्य का सूत्र जारी रक्खा, "सभापति महोदय, मनुष्य की जिस दुर्बलता का उल्लेख करके आपने रेडियर के कर्त्तव्य-स्खलन की भयानकता प्रतिपादित की थी, उसका दोष कितनी गुनी मात्रा में इनके ऊपर डाला जा सकता है, उसकी शायद किसी को कल्पना न होगी। अधरलाल ने किट्सन को गोली मार कर इनको जीवन दिया था, बदले में इन्होंने उसको फाँसी का फन्दा दिलवाया; अधरलाल की पत्नी आरती, प्राणांतक बीमारी में इनकी सेवा करके इनके द्वारा केवल अपना अहिवात ही खोने के लिए बाध्य नहीं की गई, प्रत्युत माता की ममतामई सेवा के बदले वह बाध्य की गई अपने नारी-जीवन की समस्त-साधना—"

नवनीतलाल समझ गया कि नीलम क्या कहने जा रही है, वह

एक क्षण का भी विलम्ब न कर सका, उड़े हुए चेहरे से उसी क्षण ज़ोर से वह चिल्ला पड़ा, "नीलम देवी !—जो हो गया, वह हो चुका है। मैं अपने समस्त अपराधों को स्वीकार करता हूँ।"

"सभानेत्री के निकट श्रीमान् ! सभानेत्री के निकट। मेरे निकट अपराध स्वीकार करने का कोई मूल्य नहीं है। सभानेत्री जी, आप देखती हैं कि अभियुक्त ने अपराध स्वीकार कर लिया है। शायद आप आवश्यक समझें, कि अब नवनीतलाल के और भी गंभीर पापों का चिट्ठा खोलने की आवश्यकता नहीं है। यदि आपका आदेश हो, तो मैं बैठ जाऊँ?"

नवनीत ने सभानेत्री की ओर मुख किया, "सभानेत्री महोदया, मेरे विरुद्ध जो-जो अभियोग आपने उपस्थित किए हैं, उन्हें मैं स्वीकार करता हूँ।"

सुरेशनारायण ने उठ कर दर्प के साथ कहा, "इस स्वीकृति का अर्थ समझते हो न नवनीतलाल ?"

नवनीतलाल ने नीची दृष्टि ही से कहा, "कल्पना करता हूँ कि वह मृत्यु दण्ड ही होगा। सभानेत्री जी, मरने से मैं नहीं डरता, यद्यपि मरने की उमर मेरी नहीं है। यदि मैं अभी ही मरने के लिए बाध्य किया गया, तो मेरी मनुष्य-जीवन की यह सारी कथा व्यर्थ हो जायगी। मैंने निरपराध पत्नी का परित्याग किया है, यह घटना मुझे सुख से मरने न देगी। मेरी बड़ी इच्छा है कि यदि मुझे जीवन मिले तो मैं उस पाप का प्रक्षालन करूँ। सभानेत्री महोदया, मेरी आपसे प्रार्थना है कि मुझे जीवन का एक अवसर और मिले।"

माया ने आश्चर्य के साथ देखा कि नीलम के कथन की सत्यता कितनी शीघ्र प्रमाणित हो गई ! उसका पति उसके सम्मुख करबद्ध होकर प्राण-दान की भीख माँग रहा है। माया—अराजक-दल की कठोर सभानेत्री, एक हिन्दू की पति गत-प्राण कोमल पत्नी—आगे कौनसा मार्ग ग्रहण करें ?—

विजय गर्व से मुस्करा कर नीलम ने कहा, "नवनीत बाबू, इतने कातर हो गए? अपराध स्वीकार करके डाक्टर रेडियर ने मृत्यु दण्ड माँगा था; और कृपा के रूप में मिली हुई क्षमा को ठोकर मार दी। अब भी आपकी आँखों के सामने उसका शव रक्त के अक्षरों में अपने पौरुष की कहानी लिख रहा है। और आप जीवन का एक अवसर माँगते हैं! जीवन का एक अवसर आपको आरती ने दिया था, जीवन का एक अवसर आपको अधरलाल ने दिया। और अवसर माँगिए, पर अब बाकी बचा कौन है?—क्या शर्ली?—पर अब मुझे कुछ कहने की जरूरत ही क्या है? आपने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। क्षमा शायद आपको मिल जाए। अभी नारी की कठोरता की परीक्षा लेने का समय युगों दूर है। मेरे निकट बैठी हुई आरती मुझे इसीलिए प्रारंभ ही से हतोत्साहित करती रही। मेरे हृदय के आघात को चाहे वह न समझे, पर मैं समझती हूँ, और समझती यदि आपकी वह परित्यक्ता निरपराध पत्नी यहाँ पर होती 'बेस्टआफ लक!' (बहुतसुन्दर भाग्य!)"

नीलम अपनी जगह पर बैठ गई; आरती अपनी जगह पर और भी सिकुड़ गई, उसका शीर्ण मुँह रुआ-सा हो उठा। सम्पूर्ण सभा ने आरती की ओर देखा, फिर नत-दृष्टि नवनीत की ओर! उनकी आँखों में रक्त झलक उठा।

आदेश पाकर सुरेशनारायण ने कहा, "सभानेत्री से बड़ी यह सभा है नवनीत, यदि तुम इसके मन को द्रवित कर सको तो तुम्हारा उद्धार संभव है।"

नवनीत ने चेष्टा करके सभा-भवन के सदस्यों की ओर देखा। लगभग प्रत्येक व्यक्ति की आँखों से उसकी आँखें टकरा गईं। लगभग सभी के नेत्रों में क्रोध हुंकार रहा था।

सभा-भवन के सदस्यों का परिचय नवनीत को मिल चुका था। इन क्षुद्र व्यक्तियों से वह प्राण की भिक्षा माँगेगा? आखिर जीने जैसी वस्तु उसके जीवन में है ही क्या? एक लम्बी साँस लेकर वह बोला,

"सभानेत्री जी; मैंने सोच देखा है, सचमुच ही जीवन का बोझ बढ़ाने से लाभ ही क्या है ? मैंने अपराध स्वीकार कर लिया है, आप शीघ्र ही अपना निर्णय सुना दीजिए।"

तभी मंजरी देवी उठ खड़ी हुई, और बोली—"मुझे बोलने की आज्ञा दी जा सकती है ?"

"अवश्य !"

"सभानेत्री महोदया, इस गंभीर मामले में बाधा डालने की अपनी विवशता की मैं पहले ही क्षमा माँग लेती हूँ। इस सभा ने नवनीतलाल तथा डॉक्टर रेडियर को बन्दी बना कर पकड़ लाने का गौरव मुझे दिया था और आपके अनुग्रह से मैं उस गौरव की रक्षा करने में समर्थ भी हुई। यदि मैं अपने प्रयत्न में कृतकार्य न होती, तो नवनीतलाल और डाक्टर रेडियर के इस सभा में उपस्थित होने का अवसर ही न आता; तब न तो डाक्टर रेडियर को आत्महत्या करनी पड़ती, और न ही नवनीतलाल को आसन्न-मृत्यु के भय का सामना करना पड़ता।—"

आदेश पाकर सुरेशनारायण ने कहा, "मंजरी देवी, आपका तात्पर्य क्या है ? यह सभा आपके प्रयत्न की सफलता पर आपका अभिनन्दन कर चुकी है। किन्तु क्या आप यह कहना चाहती हैं कि आपका यह साफल्य आपके दायित्व ज्ञान से भारी हो उठा है ?"

मंजरी ने कहा, "माननीय निकल्सन साहब को अपने दायित्व ज्ञान की जैसी शिक्षा यहाँ अभी दी गई, यदि उससे मेरा लोभ जाग गया हो, तो क्या आश्चर्य है महाशय ?—मेरे प्रयत्न का मूल्य भी तो मैं अभी समझ पाई हूँ ! सभानेत्री महोदया, श्रम के मूल्य की अपेक्षा करना क्या अविश्वास या दोष के दायरे में परिगणित होता है ?"

सुरेशनारायण ने कहा, "नहीं; आप अपनी बात कहिए; अपनी बात कहने का आपको पूरा अधिकार है।"

मंजरी बोली, "सभानेत्री महोदया, सभा की एक सदस्या होने के नाते यहाँ के न्याय-विधान व्यवस्था आदि पर मेरा भी कुछ स्वत्व है।

चूँकि नवनीतलाल की गिरफ्तारी में मैं उत्तरदायी हुई हूँ, अतः उनके विचार के मार्ग में अन्य सदस्यों की अपेक्षा मेरा विशेष दावा स्वीकार किया जाना चाहिए। और कार्य के महत्व और गौरव को देखते हुए यदि मैं अभिनन्दन की अपेक्षा कुछ ठोस पुरस्कार माँगूँ तो आशा है मेरी प्रार्थना अस्वीकृत न होगी।"

"आप कहिए न, आप चाहती क्या हैं?"

"मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप नवनीतलाल को इस सभा से मुक्त करके मेरे हवाले कर दें!—अधरलाल तथा टीकू को फाँसी की सजा हो चुकी है, इस सभा का कोई भी प्रत्यन, नवनीतलाल का रक्त—किसी का भी कितना भी बड़ा रक्त—अब उनको जीवित नहीं लौटा सकता। स्वयं नवनीतलाल ने पापों का प्रायश्चित करने के लिए पवित्र हृदय से अपराध स्वीकार करके जीवित रहने का एक अवसर माँगा है। उनकी प्रार्थना में मेरी प्रार्थना के भी स्वर मिला कर आप उन्हें मुक्त कर दीजिए।"

सुरेशनारायण ने कहा— "मंजरीदेवी, आपकी यह प्रार्थना व्यक्तिगत है, या इस सभा के सदस्य की हैसियत से? यदि सभा के सदस्य की हैसियत से आप यह प्रार्थना कर रही हैं, तो सभा का अनुशासन आपको स्वीकार करना चाहिए। यदि यह प्रार्थना आपकी व्यक्तिगत है, तो आपकी प्रार्थना में औचित्य कितना है, यह तो सभा सोचेगी, किन्तु यह तो बताइए कि इनकी मुक्ति से आपके व्यक्तिगत जीवन में क्या अन्तर पड़ता है?"

"मेरी प्रार्थना व्यक्तिगत है सभानेत्री जी! "और यह कहते ही उसके गाल सुर्ख हो गए। उसने बात पूरी की, "आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया ही जाना चाहिए?"

"सभा तो इस प्रश्न का उत्तर चाहेगी, उसी के ऊपर तो उनके विचार की दिशा स्थिर होगी।"

लज्जा से और अधिक संकुचित होते हुए मंजरी ने कहा, "सभानेत्री

महोदया, आप स्त्री हैं, आप मेरे हृदय के द्वन्द्व को अच्छी तरह से समझ सकेंगी, यदि मैं कहूँ कि नवनीत बाबू ने मेरे हृदय का आभार सहन किया है, और उन्होंने वादा किया है कि यदि वे मुक्त हो गए तो मेरे साथ विवाह कर लेंगे।"— और उसका सारा मुख मण्डल सिन्दूर से पुत गया।

किन्तु उसके कथन-मात्र से सभा में मानों वज्रपात हुआ। सभी सभासद स्तम्भित होकर कभी मंजरी की ओर और कभी नवनीतलाल की ओर देखने लगे। नीलम के मुख पर पहले तो अपूर्व विस्मय और फिर गर्वमय मुस्कान का भाव फैल गया। आरती स्वयम् आश्चर्य से मंजरी की ओर देखने लगी, और जो कि स्त्री थी और जो स्त्री के हृदय के द्वन्द्व को अच्छी तरह समझ सकती थी, वह सभानेत्री मायावती अपने ही ओठों से अपने दाँतों को काटने लगी। स्वयम् नवनीतलाल विस्मय विमूढ़ हो उठा।

कुछ क्षणों तक जब कोई कुछ न बोला, तो नीलम ने पूछा, "वादा कर चुके हैं कुमारी मंजरी, आपसे ?"

"जी हाँ !" नीची गर्दन किए हुए मंजरी ने उत्तर दिया।

"तो फिर शायद आप भी इनके साथ इनकी परित्यक्ता पत्नी का उद्धार करने जाएँगी ! नये-नये विवाह के बाद एक दासी की आवश्यकता तो होती ही है, सो सभानेत्री महोदया, सचमुच उस अभागिनी का उद्धार हो जायगा। बेचारी हिन्दू कन्या ठहरी, कठिनाई से एक समय का आहार जुटाकर कहीं जीवन के दिन काट रही होगी। मेरी भी शिफारिश है सभानेत्री जी, कि उनको मुक्त कर दिया जाए, एक साथ दो नारियों के उद्धार का अवसर है।"

मंजरी ने क्रोध से नीलम की ओर देखा, और नीलम द्वारा व्यक्त संभावना की कल्पना करके सभानेत्री का क्रोध सौ गुना तथा ईर्ष्या चार सौ गुना बढ़ गई। किन्तु वह स्थिर रही।"

सुरेशनारायण ने व्यंग्य का अवसर पाकर कहा, "क्यों महाशय !

क्या सचमुच आपने इनसे वादा किया है ?"

नवनीतलाल ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "नीलमदेवी की ईर्ष्या तो समझ में आती है, किन्तु मिस्टर सुरेशनारायण, आप क्या कुमारी मंजरी के उम्मीद वारों में से हैं ?बिना वह हुए इन शब्दों में इतनी बेकसी लाते कहाँ से ?—यह रत्न आपके सिर को मुबारिक हो ! इससे अधिक आपको क्या कहूं । आप बैरिस्टर हैं, किन्तु नवनीत के मन की बात को समझना आपके लिए शायद ही शक्य हो ! और सभानेत्री साहब, यदि यह प्रश्न आपकी ओर से पूछा गया है, तो गुस्ताखी माफ हो, जरा अपने दिल को टटोलिए । नारी अपने ही विश्वास का दावा नहीं कर सकती, फिर यह चंचल नारी मेरे ही विश्वास का दावा कर बैठेगी, इससे अधिक बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है ? मेरे हृदय का रहस्य आप भी क्या समझ सकेंगी, किन्तु यदि नीलमदेवी, अपने हृदय की जासूसी पर अविश्वास न करें, तो उन्हें कदाचित् मेरी बात का विश्वास हो जायगा । सच तो यह है कि एक के बाद एक स्त्रियों के प्रेम का उपलक्षण बनाकर मैं एक ऐसा लुढ़कता हुआ कन्दुक मान लिया गया हूं जिसकी कभी सीधी गति नहीं हो सकती, और जब कभी उनकी क्रीड़ा में मेरी स्वच्छन्द गति ने असहयोग किया है, तभी मुझे उनकी प्रतिहिंसा के बल्ले के आघात सहने पड़े हैं । सभानेत्री जी, मुझे नहीं मालूम, आपकी सूचना कितनी प्रामाणिक है, किन्तु शर्ली के जिस उपसर्ग को लेकर मेरा व्यंग्य किया गया है, उसकी सच्ची कथा यदि आप जानतीं,—नहीं, कह नहीं सकता कि आप क्या करतीं, क्योंकि न तो आप समस्त नारीत्व के प्रति मेरी उपेक्षा का लांछन सह सकती हैं, और न एक सामान्य-नारी के प्रति मेरी आसक्ति ही ।"

नवनीत कुछ क्षणों के लिए चुप हो गया । मंजरी की आँखें नीचे झुकी हुई थीं, नीलम को भी बोलने के लिए कुछ शेष न था । अन्धकार में बैठी हुई सभानेत्री को भी अपना मस्तक झुका लेना पड़ा ।

जो सीना तान कर तथा पैर टिका कर खड़ा हो जाता है वही सत्य

है, और जिसके पैर नहीं टिक पाते, वही मिथ्या हो जाता है। इसके सिवा सत्य और मिथ्या में कोई विशेष अन्तर भी नहीं है। प्रचलित अर्थ में सत्य क्रिया से भाव की ओर चलता है, और मिथ्या भाव से क्रिया की ओर। चूँकि मिथ्या क्रिया से पूर्व ही भाव में निहित हो जाती है, अतः उसका स्वरूप कभी अपूर्ण भी रह सकता है। इसी अपूर्ण अभिव्यक्ति को हम मिथ्या कहते हैं। किन्तु जो समर्थ हैं, जो अभिव्यक्ति के सूक्ष्म-रहस्य को समझ सकते हैं, वहाँ उसकी सम्पूर्णता-अपूर्णता का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसे ही लोगों के लिए कहा जाता है, 'समरथ को नहिं दोष गुसाँई।"

नवनीतलाल ने कहा, "नीलमदेवी ने कहा है कि यदि सभानेत्री के स्थान पर मेरी परित्यक्ता पत्नी होती तो मुझे मेरी वंचना का पुरस्कार मिल जाता। नीलमदेवी विदुषी महिला है, व्यंग्य का सफल प्रयोग वे खूब जानती हैं। किन्तु मेरा सौभाग्य और उनका दुर्भाग्य है—और आप लोग स्वीकार करेंगे कि मेरी बात सही है—कि वे मेरी पत्नी नहीं हैं। प्रत्याख्यात तो है जैसा कि वे स्वयं स्वीकार कर चुकी हैं। सभानेत्री जी, बल्कि मेरी प्रार्थना है कि उन्हें ही क्यों न कुछ समय के लिए आप अपना आसन दे देतीं! मेरी परित्यक्ता पत्नी के जजबात तो उनमें हैं! मुझे मेरे अपराध के योग्य दण्ड देकर नारी जाति के सम्मुख जागृत का एक उदाहरण रखने में यदि उन्हें श्रेय मिलता है, तो इससे तो आपकी प्रतिष्ठा ही होगी!"

सभानेत्री क्रोध से विक्षुब्ध हो उठी, वह स्वयं ही बोल उठी, "यह सभानेत्री का अपमान है बन्दी!"

वही स्वर—वही सब कुछ!—परन्तु नवनीत ने अपने आपको स्थिर रख कर कहा—"किन्तु महोदया! यही तो नारी जाति का सम्मान है! मैंने कुछ ही क्षणों पूर्व अपने दैन्य की पराकाष्ठा का चित्र खींचने का दुर्भाग्य प्राप्त किया था—हाथ जोड़कर मैंने तब प्राणों की भिक्षा माँगी थी। मेरा साथी पुरुष-वर्ग उपहास की हंसी से अपने

आप को तृप्त किए हुए था। वह मेरा दैत्य नहीं था, वह था समस्त पौरुष का दैत्य, और पुरुष-वर्ग ने उसकी सार्थकता प्रमाणित करदी थी। समस्त-नारीत्व के दैत्य प्रदर्शन का जब अवसर आ रहा है, तो नारी की आत्मा में क्रोध की हुँकार गरजने लगी है, मेरा साथी पुरुष-वर्ग स्तंभित चकित-सा बैठा हुआ है। किन्तु सभानेत्री जी! नवनीतलाल ने मोह शब्द को सदैव तटस्थ रक्खा है, चाहे वह प्राणों का हो, चाहे स्त्री-जाति का। यदि आप में मेरी पूरी बात सुनने का साहस न हो, तो मेरे तत्काल वध की आप आज्ञा दे सकती हैं।"

गर्व से छाती फुलाकर नवनीत कुछ क्षणों के लिए चुप होगया।

सुरेशनारायण ने कहा, "मृत्युदण्ड के अभियुक्त को अन्तिम बार कहने का सभी जगह अधिकार दिया जाता है।"

"धन्यवाद मेरे पुरुष-साथी, दण्ड दे सकने का अधिकार सचमुच बारबार नहीं मिलता, किन्तु श्राद्ध के पन्द्रह दिनों में ही वर्ष की समाप्ति नहीं हो जाती! और नवनीतलाल के लिए मृत्युदण्ड घोषित कर सकने की क्षमता को ही विश्व का चरम-फल न समझिए! सभानेत्री जी, नवनीतलाल के कृत्यों का आपकी सभा विचार करने बैठी है—विचार करने के लिए कि मैं अधरलाल और टीकू की फाँसी का कारण हुआ हूँ; और आप उस सभा की सभानेत्री हैं! किन्तु अधरलाल की भावना भार लेकर कौन मेरा विचार कर रहा है, यह आप बता सकेंगी? देखता हूं, विचार करने वालों में कोई मेरी प्रेमिका है, कोई अवैध सम्बन्ध की अस्वीकृति की प्रतिहिंसा लिए हुए अंग्रेज कन्या शर्ली; और कोई मेरी परित्यक्ता पत्नी! सुनता हूं कि यह किसी अराजक-दल की सभा है, या किसी बहु-विवाह वाले अभागे पति की बिगड़ी हुई गृहस्थी!" और नवनीतलाल स्वयं ही बहुत जोर से ठठाकर हंस पड़े सम्पूर्ण सभा की श्री उस अट्टहास में दब गई।

नवनीत ने गर्व से चारों ओर देखा, और कहना जारी रक्खा, "नवनीतलाल जो कुछ कहता है, सत्य कहता है, वह सदैव सत्य ही

की सृष्टि करता है, इसलिए कि वह सच्चे अर्थ में पुरुष है। वह दूसरों के दिए हुए अधिकार पर जीवित नहीं रहता, प्रत्युत् अपना स्वत्व आपही प्राप्त करता है। नीलमदेवी ने जिस प्राणदान की दया का बारंबार उल्लेख किया है, वह सब पर प्रमाणित हो चुकी है, किन्तु सभानेत्री जो, यदि आपने दुनियाँ देखी है, तो आप जानती होंगी कि कई बार यह प्राणदान का अभिशाप मनुष्य जीवन में मृत्यु के वरदान से भी कठिन प्रमाणित हुआ है। यदि मेरी बात का प्रमाण आप चाहें तो डाक्टर रेडियर के शव से पूछिए, वह आपको मेरी बात का विश्वास दिला देगा। सेवा के द्वारा किसी की बीमारी को दूर करने का नाम प्राणदान नहीं है, न ही पिस्तौल की गोली से किसी की रक्षा करके ही कोई प्राणदान का श्रेय ले सकता है! गढ़े में गिरने वाली गाड़ी को बचा लेने मात्र से न तो गाड़ी के निर्माण का श्रेय मिल सकता है, न उसकी गति का स्वामित्व ही! प्राणरक्षा और प्राणदान दो जुदा चीजें हैं; इसके ऊपर अमुक्त विश्वास करके किसी के प्राणों का सौदा करना कभी न्याय संगत नहीं कहा जा सकता। किन्तु क्षमा कीजिएगा, आपकी न्याय-प्रणाली आलोचना करके मैं अपने लिए किसी सुविधा की व्यवस्था करने का दोष अपने सिर पर न लूँगा।"

क्रोध से नीलम की आँखें फिर रक्त हो उठीं, उसके अधर फड़कने लगे। नवनीत ने इसे लक्ष्य कर लिया, बोला—

"नीलमदेवी बड़ी व्यग्र हो रही हैं कि मेरे और भी गंभीर पापों का चिट्ठा खोलकर कब मुझको प्रवंचक कह सकें। जिस बात का उल्लेख करने से मैंने पहले उसको रोका था, शायद वही आप लोगों के मस्तिष्क को और नीलमदेवी की स्मृति को भी बेचैन किए हो! मैं स्वयम् उसका इजहार करने के लिए तत्पर हूँ; किन्तु आप यह भी जानते हैं कि उसका सम्बन्ध आरतीदेवी से है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या आरतीदेवी, मेरे द्वारा उस बात का उल्लेख चाहती हैं?"

आरती ने तत्काल ही खड़ी होकर, कहा "मेरे बारे में आपके द्वारा किसी बात के उल्लेख की मैं आवश्यकता नहीं समझती !"

"धन्यवाद ! सभानेत्री महोदया, आप देख रही हैं कि दुनियाँ में घटनाओं का महत्व नहीं होता, महत्व होता है उनका अर्थ लगाने के तरीके से। शायद मुझे बाप-बेटे की उस कहानी को सुनाने की आवश्यकता न होगी, जिसमें सभी व्यक्तियों को प्रसन्न करने की चेष्टा में उन्हें अपने बैल से भी हाथ धोना पड़ा था। सच्चा पौरुष सत्य के पीछे नहीं चलता, किन्तु सत्य ही उसके पीछे चलता है। अर्थ शब्दों का अनुधावन नहीं करता, प्रत्युत शब्द ही अर्थ की अपेक्षा करते हैं। मैं अपने जीवन में केवल एक रमणी की ओर आकर्षित हुआ हूँ, किन्तु केवल इसलिए कि वह अप्राप्य थी। जैसे-जैसे वह अप्राप्य होती गई, मेरा प्रयत्न उग्र होता गया, यहाँ तक कि मेरे प्रयत्न का रस्सा टूट गया, और दुनियाँ ने केवल यही देखा कि मैं नीचे गिर गया हूँ।"

नीलम ने कहा, "जबतक वह प्राप्य नहीं हुई, तब तक तो आपकी और उसकी रक्षा होती रही, किन्तु यदि आपके प्रयत्न का रस्सा न कटता ?"

"आपके प्रासाद की भाँति वहाँ पर मेरे स्वागत की तैयारियाँ न थीं नीलमदेवी ! यदि रस्सा आपसे आप न कटता, तो वह स्वयम् उसे काट देने में कुछ न उठा रखती, और यदि यह भी न होता, तो उसके प्राणों पर तो उसका पूरा अधिकार था, अपने प्राणों का अविश्वास भी वह सहन नहीं करती। आप कहेंगी, 'दुर्भाग्य से उसका मस्तक झुक जाता तो ?" तो नवनीत का हृदय सहारे किसके खड़ा रहता, क्या वह टूट नहीं जाता ? जो हिमालय का आरोहण करना चाहता है, वह अपने पैरों चलकर उसके मस्तक पर पहुँचना चाहता है; परन्तु जब हिमालय का मस्तक ही झुक जाए तो चढ़ने वाले के गौरव की प्रतिष्ठा नहीं होती; हवाई जहाज वालों से पूछ देखिए न ! और सभानेत्री महोदया, छिपाने की और भय की क्या बात है ? वह दृढ़ रमणी यही आरती

देवी हैं, अधरलाल की विधवा पत्नी; मैं इनके अक्षुण्ण नारीत्व के सम्मुख अपना गर्वोन्नत मस्तक झुकाता हूँ !"

सभा में मानों एक बार और वज्र गिरा, और उसके प्रहार की भयानकता सबसे अधिक प्रमाणित हुई सभानेत्री के हृदय पर। तो यह रमणी है, जो उसके स्वयं के प्राप्य को उससे विरत करने में निमित्त हुई है ? अथवा जिस दुर्ग को वह अधिकृत नहीं कर सकी, उसने स्वेच्छा से इस रमणी के लिए अपने कपाट खोल दिए हैं। घनीभूत ईर्ष्या से उसके अधर वक्र हो गए। वह स्वयं बोल उठी—

"बन्दी, तुम्हारी वाचालता को बहुत लगाम दी जा चुकी है।"

"मुझे सचमुच आपने बहुत बोलने दिया है, मैं इसका हृदय से आभार मानता हूँ। किन्तु मुझे अन्तिम बात तो कहना शेष रह ही गई। सभानेत्रीजी, अन्तिम बात कहने के लिए कहूं भी क्या ? मैं आज इस सभा के सभी कर्मचारियों का मन तोल चुका हूँ। सभानेत्री के आसन की ओर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे सिवा अन्धकार के कुछ नहीं दिखाई देता। अन्धकार से मैं डरता नहीं, किन्तु उसकी सचाई पर विश्वास करने के लिए मैं कभी तैयार नहीं हो सकता। एक ओर तो आप नारी के अधिकार के लिए आतुर दिखाई देती हैं, और दूसरी ओर इतनी कातर कि आपको अपना शरीर भी छिपाना पड़ता है ! आपकी बहादुरी की, आपकी सख्ती की यह सभा काफी तारीफ कर चुकी है, किन्तु आपका यह छद्मवेश क्या साबित करता है। हम बन्दी जिनके पास कोई शस्त्र नहीं, जिनका कोई सहायक नहीं, यहाँ तक कि जिनके मुँह में वाणी नहीं, उनसे डरकर यदि आप इस छद्मवेश में हैं, तो मैं नहीं समझता कि मेरे मुकद्दमे में हाथ लगाने का आपका दावा कितना सच है ? जो सत्य परदे की अपेक्षा करता है, वह सत्य नहीं, मिथ्या है। आपकी सभा में मेरी परित्यक्ता पत्नी का अभियोग नहीं, शर्ली का नहीं, और यदि सच कहने की आज्ञा हो तो अभी तक तो नीलमदेवी का भी नहीं। व्यक्तिगत रूप से भी आपके निकट कभी दोषी होने की बात मैं

स्मरण नहीं कर पाता—किन्तु इन सबके उपरान्त भी मुझे आपकी निष्पक्षता पर विश्वास नहीं है। आप अराजकदल की सभानेत्री हैं, किन्तु आपकी गलदश्रुवाणी प्रकट करती हैं कि आप में पत्नी की कातरता, प्रेमिका की परवशता तथा परित्यक्ता का आवेश सभी कुछ है। और इन सभी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए आपने अपने आपको एक निगूढ़ अंधकार में छिपा रखा है!—सब बातों को देखकर, सोचता हूँ कि मेरे न्याय के सूत्र का संचालन करने वाली केवल एक अधिकारिणी महिला है, और वह है आरतीदेवी, जिनके पति की हत्या के परिशोध के लिए मुझे यहाँ उपस्थित किया गया है, और उनका निर्णय मानने के लिए मैं बाध्य हूँगा। आप आसन से उठ जाइए, यदि आप में अपने सत्य को व्यक्त करने का साहस न हो।"

नवनीत के भाग्य-विधाता के तौर पर पुनः आरती का नाम सुनकर माया का क्रोध चरम-सीमा को पहुँच गया। उसने एक क्षण की भी देर नहीं की, और गवाक्ष की बिजली को उद्भासित कर दिया। समस्त गवाक्ष विद्युत प्रकाश ही से नहीं, किन्तु माया के कठोर सौंदर्य से भी जगमगा उठा।

नवनीत ने स्तंभित होकर सामने देखा, और अविश्वास की दृष्टि से उसी ओर देखता रह गया। सन्देह के उपरान्त भी वह कभी इस धारणा को हृदय में स्थान नहीं दे सका था कि सभानेत्री के आसन पर उसीकी परित्यक्ता पत्नी मायावती उसके मुकदमे का विचार कर रही है। आखिर कानों की भ्रांति सत्य हो गई।

माया ने कड़ककर पूछा, "देख चुके मेरे सत्य का स्वरूप? कहो, कौन करेगा तुम्हारे मुकद्दमे का फैसला! वह करुणा का वरदान देने वाली करुणा की मूर्त्ति आरती, या मैं?"

नवनीत ने कहा, "आप का अपमान नहीं करूँगा आर्ये! दीजिए अपना निर्णय!" नवनीत की वाणी काँप उठी, उसकी आँखों से शायद एक आँसू भी ढुलक पड़ा!

माया ने अपने आपको सम्भाला, प्रयत्न करके अधरों पर उसने एक क्षीण मुस्कराहट का पुट भी लगा दिया। फिर खड़े होकर उसने कहा—"नवनीतलाल, तुम्हें अपने अपराध के लिए मैं मृत्युदण्ड—"

मंजरी अपने आसन से उठकर कब बन्दी के पीछे पहुँच गई थी, यह किसी ने नहीं जाना। सभी सभानेत्री के प्रगट होने का उत्सव देख रहे थे। मंजरी ने चुपके से अपना पिस्तौल नवनीत के हाथ में थमा दिया था। और तभी नवनीत जोर से बोल उठा—

"सावधान सभानेत्री, मेरे हाथ में देख रही हैं न! रक्षको! मेरा लक्ष्य सधा हुआ है, तुम्हारी गोली मुझे मार देगी, किन्तु तुम सभानेत्री को नहीं बचा सकोगे। सभानेत्री, सचमुच आपके साहस की मुझे तारीफ करना चाहिए! शायद आप समझती हों कि यह पिस्तौल भरा हुआ नहीं है। नहीं; धोखे में न रहें सभानेत्री, आपके शब्द 'मृत्युदण्ड' को यह आपके मुँह में वापिस रख सकता है। किन्तु कह चुका हूँ, नवनीतलाल किसी के मोह को पकड़ कर चलने वाला व्यक्ति नहीं—न प्राणों के मोह को, और (मंजरी की ओर अभिमुख होकर) सुन्दरी, न किसी नारी ही के मोह को। ले जाओ अपनी पिस्तौल। मैं अभिशाप के जीवन की अपेक्षा गौरव की मृत्यु को अधिक उत्तम समझता हूँ। मेरे पूर्ववर्त्ती डाक्टर रेडियर का मेरे हृदय में काफी सम्मान है। और बहन! मेरे मोह को आधार मान कर अब और दुःख न पाना, उससे नारीत्व का उपहास ही होता है। नारीत्व की सफलता को तुम्हारी सभानेत्री की कठोरता चाहिए, तुम्हारी कातरता नहीं।—पूरा कीजिए सभानेत्रीजी, अपना आदेश!"

नवनीतलाल फिर सीना तान कर खड़ा होगया। मंजरी की आँखें झुक गईं। सभी लोगों की आँखों में उसके प्रति धिक्कार की भावना भर गई थी।

सभानेत्री कड़क उठी, "मंजरी ने विश्वासघात किया है, उसे गिरफ्तार किया जाए!"

उसी समय मंजरी गिरफ्तार होगई। नवनीत के अधरों पर तुच्छता की हंसी भर उठी। उसने कहा—

"आर्ये, प्रेम का दोष भयानक दोष नहीं होता, वह कम-से कम अराजक दल के लिए तो खतरे की चीज नहीं। अराजक दल से उसे जरूर बरख्वास्त कर दीजिएगा ताकि वह अपनी गृहस्थी जमाने में सफल होजाए। और हाँ, पिस्तौल भी उससे ले लीजिएगा। विश्व की आदि शक्ति, यह भी नहीं जानती कि पिस्तौल का उचित उपयोग प्रेम की रक्षा में नहीं रक्त की रक्षा में अवश्य है।"

तभी आरती उठ खड़ी हुई और बोली, "सभानेत्री महोदया, सभा स्वीकार कर चुकी है कि अधरलाल के प्राणों पर केवल मेरा दावा है। मैं अपने समस्त अभियोग वापिस लेती हूं। नवनीतलाल व्यास को आप मुक्त करदें, यही मेरी और न्याय की आपसे प्रार्थना है।"

नवनीतलाल ने चिल्ला कर कहा—"मुक्त करदें ?—नहीं-नहीं यह असम्भव है। सभानेत्री जी, इस क्षुद्रनारी को अपने जैसे महान् व्यक्ति के न्यायाधिकरण का उत्तरदायित्व देकर मैंने भूल की है। आप अपना फैसला पढ़ने से न रुकें। स्मरण रखिए, यह आपके नारीत्व की कसौटी है!"

माया ने मुस्कराते हुए कहा, "बन्दी, तुमने मेरे ऊपर कई भावों को वहन करने का आरोप किया है, किन्तु तुम देख रहे हो मैं तुम्हारे किसी भी प्रकार के भाव से लेशमात्र भी आक्रान्त नहीं हूँ। तुम्हें मृत्यु मण्ड देने की मेरी साध को इस क्षुद्र अथवा महान् नारी ने नष्ट कर दिया है सदस्यो, नवनीतलाल के ऊपर के समस्त अभियोगों को वादी ने लौटा लिया है, न्याय उन्हें मुक्त करने की आज्ञा देता है। उनके बन्धन खोल दिए जाँय। किन्तु नवनीतलाल, सावधान—सभानेत्री के ऊपर किसी भी भाव का लांछन लगाकर नारीत्य के औचित्य को नष्ट न करना!"

नवनीतलाल के बन्धन खोल दिए गए।

माया ने कहा, "रात्रि का एक बज गया है। आप लोग सवेरे सात

बजे की बात न भूलें। आपकी सभा विसर्जित होती है। कहिए मि० व्यास, आपका विश्वास किया जाए या सवेरे तक आप बन्दी रहना पसन्द करेंगे?—डाक्टर रेडियर का दाह-संस्कार हम बे खतरे कर देना चाहते हैं। आरतीदेवी, आप इनकी जमानत दे सकती हैं?"

आरती ने नवनीत की ओर देखा—एक लम्बी साँस लेकर नवनीत ने दृष्टि नीची करली। आरती समझ गई। उसने जमानत स्वीकार करली। सभी लोग थ्री चीअर्स टू दी चेअर' कहकर प्रस्थान होगए!

किन्तु माया बहुत देर तक अपने आसन पर खोई हुई-सी बैठी रही। जब शव भी वहाँ से हटा लिया गया, तब लछमन ने उसे सावधान किया। लम्बी साँस लेकर वह उठी, परन्तु उस रात को फिर वह सो नहीं सकी।

(२७)

मथुरा नगरी में बस्ती से पश्चिम में एक निर्जन सड़क के किनारे साधारण-सा एक मकान है। किसी प्रचीन यग में एक राजा की मृत्यु के समय दशोत्तर क्रिया में किसी ब्राह्मण को यह जमीन तथा कुछ रुपया दान में मिला था। ब्राह्मण ने उस रुपए से यहाँ पर एक मन्दिर-नुमा मकान या मकाननुमा मन्दिर बनाकर कहीं से लाकर एक पत्थर को स्थापना करदी, और नाम रख दिया भैरव जी का मन्दिर! कुछ दिनों तक तो जैसे-तैसे उनका गुजर होता रहा, परन्तु भैरव की पूजा में लोगों को अधिक आकर्षण नहीं रहा। मृत्यु के देवता में किसका आकर्षण हो?—और कालान्तर में स्वयं देवता ने अपने पुजारी की सुधि ली; कोई बाल-बच्चा उसके पहले से ही न था! मतलब यह कि चार वर्ष पहले जिस तरह यह जमीन राजा के अधिकार में थी, उसी भाँति चार वर्ष बाद उस दिन वह पुनः राजा के अधिकार में चली गई। स्वर्ग में या नरक में रानी के हिस्से में क्या रहा, वह मृत्यु के देवता और भैरव ही जानें!

राजा ने यही कृपा की कि उस मकाननुमा मन्दिर को तुड़वा कर किसी दूसरे को कीमतन या गैर कीमतन दान नहीं दे दिया। मृत्यु के देवता में चाहे आकर्षण का अभाव हो, किन्तु आतंक का अभाव नहीं रहता, और जब देवता पत्थर का हो तो उसकी कठिन लौह-लेखा से कौन नहीं डरेगा ?—यानी, बाद में कोई उस मन्दिर का पुजारी तक बनने के लिए तैयार नहीं हुआ, और जनता में उस स्थान के बारे में अधिक-से-अधिक मनहूसियत फैलती हुई। वह भूतों का आवास करार दे दिया गया। उस सड़क तक पर भी लोगों की आवाज ही कम होने लगी। एक ने कहा कि उसने दिन को भी उस मकान में भूत देखे, दूसरे ने उसकी और चुड़ैलों की प्राणान्तक लड़ाई का आँखों देखा वर्णन किया। तीसरे तो दिन को ही उस मन्दिर के चारों ओर घूमते हुए तारे दिखाई दे गए थे। मतलब यह कि यदि कभी कोई भूले-भटके उस सड़क से निकल गया, तो देखने वाले उसके भाग्य की सराहना करते और आदेश देते कि घर जाकर सबसे पहले भगवान् माद्रति के सवासेर के लड्डू चढ़ाने में देर न करे। केवल उसके बीबी-बच्चों के भाग्य ही से उसकी रक्षा हो पाई है।

किन्तु इस काल-देवता के हाथों सताए या सताए हुए मकान वा मन्दिर के कुछ दिनों से भाग्य-परिवर्त्तन होने के चिह्न दिखाई दिए। पहले तो लोगों ने यही सोचा कि यह किसी नये प्रेत की नई करामात है, बल्कि इसी को आधार बनाकर शहर में कई तरह की नई कथाएँ भी प्रचारित होगईं, किन्तु लोगों को जब विश्वास हो गया कि वहाँ का नया निवासी कोई प्रेत नहीं, प्रत्युत उन्हीं जैसा चलता-फिरता आदमी है, तो उसके भाग्य पर उन्हें दया आई।

यह अभागा निवासी हमारा परिचित नवनीतलाल व्यास है। पत्नी की कर्मठ कर्मण्यता के जबड़ों से बचकर भी वह नरापद नहीं हो सका—कुएं से बचकर वह खाई में गिर पड़ा। मालूम देता है यमराज ने उसके घर की देहली पहचान ली है। वह उसी दिन से मानसिक

और शारीरिक दोनों दृष्टियों से बीमार है, जिस दिन से उसे मुक्ति मिली थी, और कोई औषधि या कोई विश्वास उसे आश्वत नहीं कर पा रहा है।

मंजरी ने नवनीतलाल को अचेत करने के लिए जिस नशे का प्रयोग किया था, वह खतरनाक था, नवनीत की शारीरिक शक्ति उससे बहुत घट गई थी। इसके बाद कारावास का जीवन, जहाँ उसकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती गई। और अराजक दल में उसके मुकदमें के विचार ने तो उसकी रीढ़ ही तोड़ दी। मानपुर लौटना भी उसके लिए कठिन होगया, आवश्यक होगया कि वह मथुरा ही में रहे। डाक्टरों ने उसे स्वास्थ्यप्रद स्थान की सिफारिश की। नवनीत ने यह स्थान ढूँढ निकाला।

शराब के अत्यधिक प्रयोग से उसके शरीर में एक मूल-जड़ता तो पहले ही से घर कर गई थी, शराब एक अस्थाई-उत्तेजना देकर उस अभाव को सदैव छिपाए रखता था। स्वास्थ्य की इस दुर्बल स्थिति में मानसिक संघातों ने उसके शरीर को और भी झकझोर दिया। डाक्टरों ने बताया शरीर के रक्त का दबाव बहुत बढ़ गया है, अवस्था चिन्ता-जनक है। दिन इसी तरह बीत रहे हैं।

बाहर आज का प्रभात अपेक्षाकृत साफ था। मन्दवायु पुष्पों की गन्ध को चारों ओर बखेर रही थी। नवनीत के कमरे का पश्चिम का द्वार भी उन्मुक्त था। बाहर के नयन रंजनकारी सौंदर्य की सम्पूर्ण प्रभा रोगी की आखों में थी, किन्तु उसका शरीर एक दूसरी ही भयानक प्रकृति का क्रीड़ालय बन रहा था ? सम्पूर्ण शरीर ऐंठ रहा था, रक्त की गति बहुत क्षुद्र हो गई थी, हृदय मानो प्रत्येक क्षण बैठा जा रहा था। बेचैनी और घबराहट की सीमा न थी। जब नवनीत का आत्म-विश्वास नष्ट होने लग गया, तो एक संदेश लेकर उसने हरनाम को बाहर भेज दिया। इस समय वह अपने प्रकोष्ठ में अकेला पड़ा हुआ छत को कड़ियाँ गिन रहा है।

शरीर की इन मार्मिक पीड़ाओं के बन्दीगृह को तोड़ता हुआ उसका चैतन्य मन इधर-उधर दौड़ने लगा। अतीत के मनोहर चित्र भविष्य की भीषण दुरभिसंधियाँ, और वर्त्तमान का धूमिल-दृश्य, उसकी आँखों के सामने चलचित्र की भांति आने-जाने लगे। छाया की कंपित शाखाओं में वह एक पत्ते के समान दोलायमान हो गया।

इस बड़े भारी नगर में आज उसके स्पन्दन व्यर्थ हो रहे हैं। बाहर मुग्ध कर देने वाली प्रभात की वायु कुसुम-कलियों से अपने बदन को सटा कर अठखेलियाँ कर रही हैं, किन्तु नवनीतलाल का प्रश्वास आज ऊर्ध्व हो उठा है, उसकी क्षिप्रता में आँधी को स्थिरता भी नहीं देखी जा सकती। दूर पर बहनेवाली यमुना की क्षीण कलकल किसी बीते हुए अतीत की मानो एक अमर प्रेम गाथा गुनगुना रही है। युगों पुराना राधा-कृष्ण का अमर विरह प्रेमी की आँखों के सामने मूर्त्त हो उठता है, विरह के आसुओं में भी उसकी दीप्ति नष्ट नहीं होती। किन्तु नवनीत के प्राणों की दिगन्त-विस्तृत हाहाकार आज किस शिला पर अपने नीरव-अश्रुओं को अंजलि विसर्जित कर रहा है? उसके अतृप्त प्रेम की प्यास, उसके अ-परिणीत-विरह की वेदनामय विवृत्ति, उसके विडम्बनामय जीवन का यह मूक उपसंहार, किसी को भी अपना गवाह न बनाते हुए किस महासागर में लीन हो रहे हैं?

इस अनन्त महासागर में कभी एकाकी लहर पैदा नहीं हुई; उसके नष्ट होने का निर्विच्छिन्न प्रवाह अनंत लहरों में बँट कर क्षीणतर होता हुआ शांत होता है। इस आकाश में केवल एक कम्पन पैदा होकर कभी निस्संग नष्ट नहीं हुआ, अपनी श्रुतियों का अनुक्षण विस्तार करता हुआ वह धीरे-धीरे परम शांति के साथ दिगन्त में समाहित होता है। वायु का हिल्लोल सदैव ही अपने साथ स्पन्दन की अप्सराओं को लेकर अवतीर्ण होता है, और उसी ऐश्वर्य में सम्पूर्ण-संसृति को सुरभित करता हुआ नेपथ्य में अवश्य हो जाता है। किन्तु एक उसी का जीवन है, जो दीपशिखा की भाँति निशीथ में बुझ कर एक दम अन्धकारमय

हो उठेगा, उसके धुँए की कालिख उसके अंधकार मय जीवन को और भी सघन करती हुई उसके जीवन की शून्यता को प्रमाणित कर देगी। चेतनाओं का यह पिण्ड, शक्ति का यह छलनामय अम्बार, अहंकार की यह दग्ध निशानी, स्मृतियों का यह प्रेत, जीवन की यह पुंजीभूत विडम्बना—विश्व की शाश्वत प्रतिहिंसा में एका-एक हो इतने अभाव-मय हो उठेंगे, यह कौन जानता है, कौन समझता है, और कौन इसका प्रतीकार करता है !

दूर पर मजदूरों को बुलाने वाला शहर के बिजली घर का सायरन बज उठा। प्रतिदिन बजने वाला यह सायरन आज नवनीत के कानों में विशरण हो उठा; मानों इस ध्वनि में उसके लिए दूसरे लोक का अनि-वार्य निमंत्रण था—यह कूच का बिगुल था।

उसने आवाज दी, "हरनाम !"

किन्तु हरनाम तब भी लौटा न था; करवट बदल कर नवनीत फिर अपने स्वप्न-चित्रों की छाया देखने लगा।

जीवन का उदय और उसका अस्त—कुछ ही वर्षों का यह व्यवधान है। प्रायःही कोई युवक तीस वर्ष की अवस्था में मृत्यु की बात नहीं सोचता; यदि कोई सोचता है तो उसे अनाधिकारी कह दिया जाता है, और यदि सत्य का अपलाप न हो तो उसे कोई कहता है 'हाइपो क्रीट' (मिथ्या प्रदर्शन करने वाला), और कोई कहता है कुशल नाटक करने वाला ! किन्तु नवनीत के स्वयं के जीवन की यह क्षीण रेखा हो उसकी दृष्टि के आकाश में एक सृष्टि के सर्ग और प्रलय की नीहारिका बन गई--जीवन की घटना का एक-एक बिन्दु बृहत्तर होता हुआ दिगन्त विस्तृत भूलोक बनने लगा। अतीत की जीवित-अर्द्ध जीवित सभी स्मृतियां मूर्त्त होकर उसकी कल्पना के भविष्य को अनेक विभीषिकाओं से आकुल करने लगी, उसके हृदय का उत्ताप अधिकाधिक बढ़ चला ! स्मृति-चित्रों के व्यक्तित्व के साथ करुणा का जो इतिहास छिपा पड़ा है, रक्त के अक्षरों में उसका स्थूल कलेवर नवनीत की आँखों में स्फीत हो उठा।

खुली हुई खिड़की से दृश्यमान बाहर का नील आकाश आज उसे विदेशी अनुभव होने लगा—इस पृथिवी की घटनाओं के साथ मानों उसका अब कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। उसने अब तक सभी खेल मानो एक तटस्थ दर्शक की भाँति ही देखे हैं; तभी तो उसके स्वयं के हाहाकार मय अतृप्त जीवन में किसी ने किंचित्मात्र भी तृप्ति नहीं दी !—शर्ली, माया, नीलम,आरती, मंजरी—एक-एक कर सभी ने उसके प्यासे जीवन को मरीचिका की छलना दी, और इस तप्त रेगिस्तान की छाती पर जन्म से लगा कर आज तक दौड़ते-दौड़ते भी वह प्यासा ही रहा।

शहर का कोलाहल अधिक सघन होता जा रहा था। कार्यक्रम के अविराम-प्रवाह में विश्व का प्रत्येक कण उद्दाम वेग से बहा चला जा रहा था, किसी को दूसरे की मानो सुधि ही न थी; केवल नवनीत अपने निष्क्रिय जीवन की स्थिर विडम्बना पर आँसू का भार लिए हुए किसी विदेशी यात्री-सा धर्मशाला में पड़ा हुआ अपनी व्यर्थ असफल यात्रा की मीमांसा कर रहा था।

तभी हरनाम ने प्रवेश करके पुकारा, "राजा बाबू ?"

"हरनाम ? आ गया ? चिट्ठी दे दी ?"

"घर पर बहू रानी नहीं थीं बाबू,महरी को दे आया हूँ,और ताकीद कर आया हूँ कि आते ही उन्हें दे दे।"

"और तो कुछ कहा नहीं ?"

"बस, आपकी बीमारी की बात कह आया हूँ; छोटे लोगों को जब तक साफ बात नहीं कहें, तब तक वे क्या समझें कि खत जरूरी होगा, या गैर जरूरी !"

"बीमारी की भी कह आया ? पर उससे लाभ क्या होगा, चिट्ठी तो तब भी महरी की निगाह में जरूरी न हो सकेगी ! शहर का कोई नवनीतलाल बीमार पड़ जाए, तो क्या उसके लिए उसकी मालकिन का सिर दर्द हो उठना जरूरी है ?"

"इतना मूर्ख नहीं हूँ बाबूजी, कह कर आया हूँ कि बहूरानी के पति बीमार हैं—"

"कह क्या रहा है तू !"

"महरी नई थी न ! पुरानी होती तो आपका नाम लेने से भी काम चल जाता।"

"अरे बेवकूफ—"

"मगर—"

एक लम्बी साँस लेकर नवनीत बोला, "मेरी ही बेवकूफी है जो चिट्ठी लिखने की बात ही सोच बैठा। जा, थोड़ा पानी पिला दे।" और जब हरनाम चल दिया तो बोला—'सभानेत्रो के ऊपर किसी भी भाव का लांछन लगा कर नारीत्व के औचित्य को नष्ट न करना !' क्षुद्र नवनीत, अन्त समय में इस दुर्बलता का आश्रय तुझे लेना ही पड़ा।"

हरनाम पीने का पानी और दवाई की बोतल लेकर आया, और बोला, "डॉक्टर को बुला लाता हूँ, और कोई काम तो नहीं है ?"

"नहीं; डाक्टर को बुलाने जाने की जरूरत नहीं है। डाक्टर अब तक तेरी राह थोड़े देखता रहता ! वह देख गया है।"

"देख गया ? बिना बुलाए ही आज आ गया वह ?"

"चिट्ठी देने क्या गया था, तू तो विलायत की सैर करने जो गया था ! कितना समय हो गया, उसे और भी तो मरीज देखने होंगे ?"

"पर वह तो बुलाने से भी सरलता से आने का नाम नहीं लेता था !"

"उसके पहले के पैसे जो बाकी थे।"

"चुका दिए पैसे आपने ?—कल वह फिर क्या आएगा ?"

तनिक मुस्कराकर नवनीत बोला, "कल उसे आने की जरूरत नहीं पड़ेगी हरनाम ! मगर फिर भी बिल उसका चुकाया नहीं है। देखना, मेरे बाद में कहीं उसका पैसा बाकी न रह जाए—"

हरनाम की आँखों में पानी भर गया, बोला, "हालत के बारे में क्या कह गया ?"

इसी तरह मुस्कराकर नवनीत बोला, "कह गया है कि सुधर रहा हूँ, और जल्दी ही चंगा हो जाऊँगा। ला, दवा-अवा जो कुछ पिलाना हो, पिला-पिलू दे।"

हरनाम ने दवा पिला कर पानी का घूंट भी पिला दिया।

"थोड़ा सिर दबा दे हरनाम !"—बैठ जा, बैठ जा न भाई ! आज तुझ में और मुझ में फर्क क्या है ? नौकर और मालिक—आज तुझसे बढ़ कर मेरा अपना कौन है ?" उसने हरनाम का हाथ पकड़ लिया। यह वहाँ पास बैठ कर उसका मस्तक दबाने लगा। उसके गले में वाष्प आकर अटक गई।

"हरनाम, तेरा खयाल है कि मैं अच्छा हो जाऊँगा ?"

"हो क्यों न जाएँगे बाबू ! दुनियां में सभी तो बीमार होते हैं, और सभी अच्छे हो ही जाते हैं !"

"सभी अच्छे हो जाते हैं क्या ?"

"अच्छा नहीं होने वालों की उमर होती है बाबू ! दुनियां में आपने अभी देखा ही क्या है ?"

"मौत यह कहाँ देखती है पागल !—दुर्भाग्य ही तो है; अन्त समय में तेरा भी तो साथ छूट गया था।"

"बाबू, आपको मुझे खबर दिए बिना, कहीं न जाना चाहिए था। मुझसे क्या कसूर हो गया था राजा बाबू, कि आप मुझे खबर दिए बिना उस चुड़ैल के साथ चल दिए ?"

"गलती हो गई थी हरनाम, उसका फल भी तो भुगतना पड़ रहा है।"

"हिम्मत न हारो बाबू, भगवान् मुझ बेकसूर बूढ़े की तकदीर के साथ नहीं खेलेंगे !"

नवनीत के पाण्डुर मुख पर प्रवंचना का हास्य फैल गया। वह बोला, रुकरुक कर—

"लोग किस किससे न जाने कैसी आशाएं लगाए रखते हैं!—जहाँ हमें जीवन की कोई आशा नहीं रहती, वहीं पर कोई अलक्ष्य हाथ—न जाने कहाँ से आकर—मृत्यु की गोद से हमें उठा लेता है,—और निश्चिंत आश्वस्त पड़े हुए माँ की गोद में भी—जाने कहाँ से आकर काल भुजंगम ग्रास कर जाता है हरनाम!—सृष्टि का यही नियम है— गुप्त-सभा की कार्यवाही कही थ। न मैं-ने!—नीलमदेवी की तू तो बहुत भक्ति करता था न!—और सभा की अध्यक्ष भी तो औरत ही थी!— उसके भी पति होगा, भाई होगा, पुत्र होगा, पति होगा—किन्तु दण्ड देते हुए नारी के सहज सदय कण्ठ में किसी भी प्रकार का किन्चित भी कम्पन्न नहीं हुआ! नहीं है अजीब बात!—और उससे भी अजीब बात देख, उस मृत्यु के मुंह से भी जब बच कर निकल आया, तो क्या यह भाग्य का उपहास नहीं है?"

हरनाम कुछ न बोला। नवनीत ने नीलम और आरती का जैसा अपमान किया है, वह उससे छिपा नहीं। यदि नवनीत से उसका मोह न होता, तो वह यहाँ रहता भो या चल देता, कौन कह सकता है!

कुछ देर विराम लेकर नवनीत फिर बोला, "सम्भव भी नहीं है, और साध भी नहीं है, कि दुनियाँ में अधिक दिन जीऊँ!—जितने दिन जिया, दुनियाँ को समझने के लिए वे क्या काफी नहीं हैं!— मैं छाती ठोक कर नहीं कहता कि मेरी कोई भूल नहीं हुई।—जहाँ ठोकर खाकर ही सीखने का विधान है, वहाँ ठोकर कौन नहीं खाता!—दुनियाँ ऐसी ही अजीब है कि हर ठोकर खानेवाला दूसरे ठोकर खाने वाले पर जी भर कर हंस सकता है।—यही नहीं; वह अपने आप को विचारक मानकर दूसरे का विचार भी करने लग जाता है।"

हरमाम कुछ समझा हो, ऐसा नहीं मालूम दिया। परन्तु इतना तो वह समझ गया कि जो कुछ कहा जा रहा है, वह एक मरने वाले के

मुँह की बात है। इससे लाभ कुछ नहीं होगा; बीमारी बढ़ती ही जायगी।

वह बोला, "सो जाने की कोशिश कीजिए राजा बाबू! बहुत बोलने से सिर दर्द बढ़ता ही है।"

"सो तो मैं भी जानता हूँ। सिर दर्द की दवा कोई हो, पर बोलना जरूर नहीं है! —उपदेश क्यों देता है!— सोऊंगा भी जरूर ही, कोशिश करके भी कोई नहीं जगा सकेगा, और वह वक्त भी दूर नहीं है बोलना बन्द हो जाने पर भी सिरदर्द की शिकायत दूर न होगी!— तब जबतक शक्ति है, तब तक दिल की बात तो कह लेने दे! — जानता हूं कि तू मेरे हित ही की बात कह रहा है। मगर यह हित काम आएगा ही किस तरह? बैंक में करीब चारेक हजार हैं, अन्तिम साँस लेने तक शायद पाँचेक सौ तक, दवा-अवा का मिलाकर खर्च हो जाएं, तो भी काफी बच रहेगा। सोच रहा हूं कि क्या कर जाऊं तेरे लिए! कहीं सरकारी नौकरी की होती तो बुढ़ापे में पेंशन मिलती, या कुछ एकमुश्त पैसा मिलता! बूढ़ा तू हो गया है—नौकरी की अमर अब तो तेरी है नहीं! मेरी नौकरी में तूने पाया हो क्या है सिवा कठोर वचन के या झिड़कियों के! अगर कोई दूकान करे—यही छोटी मोटी-सी, जिससे तेरे गुजारे का जरिया लग जाए, और तुझे ज्यादा मेहनत न करनी पड़े—जैसे पान-आन की —हजारेक में काम चल जाएगा?

आँसू पोंछ कर हरनाम बोला, "कैसी बातें कर रहे हो राजा बाबू! आप लाख बरस जियो, और मैं आपकी चाकरी करता रहूं, और चाकरी करते रहते ही आपके दरवाजे आपके देखते-देखते मौत हो जाए, बस, यही कामना है बाबूजी, ज्यादा चाह कर करूँगा क्या मैं?"

नवनीत बोला, "फजूल का भरोसा करने से क्या होता है हरनाम!- सारा बदन जल रहा है, किसी करवट चैन नहीं पड़ती। रहने दे, अब यह सिर क्या अच्छा होना है जो तेरे दबाने से अच्छा हो जायगा!—

सिरहाने एक तकिया और लगादे—हाँ, ठीक है। जरा इस आकाश को अच्छी तरह देख लूँ! कौन जाने उधर क्या है?— पागल हुआ, रोता है?— सिर पर दो कर्ज और हैं। पर एक की चिन्ता नहीं, पाँच हजार का बीमा है। जिसके नाम पर है, उसे मिल ही जायगा। और उसका कर्जा न भी चुके तो भी हर्ज कुछ नहीं। आखिर किसी का कर्ज सिर पर रख कर मरने से इस दुनियाँ से कुछ रिश्ता तो बना रहेगा!"

नवनीत ने मानों अपने भारी हृदय को थोड़ा-सा विश्राम दिया। जिसका कर्जा उसके सिर पर रह जाएगा, उसकी स्मृति उसके जीवन काल में भी ब्याज की रकम को बढ़ाती जा रही है, किन्तु जगत में नर-नारी का व्यवसाय ऐसा है कि कर्जदार बराबर ब्याज चक्रवृद्धि की दर से अपने सिर पर प्रसन्नता से चढ़ाता चलता है, यहाँ तक कि यह रकम मूलधन से कई गुना अधिक चुक जाती है, किन्तु कोई भी मूलधन चुका कर उऋण होना नहीं चाहता, और न उऋण हो ही सकता है। एक लम्बी साँस छोड़ कर नवनीतलाल फिर बोला—

"दूसरे कर्ज के लिए बैंक की रकम में से ढाई हजार के करीब बच जाएँगे, आरतीदेवी को तो तू जानता ही है न! और यह भी जानता ही है कि उन्हें फाँसी हो गई, पर यह न जानता होगा कि वह मेरे ही ही कारण हुई है।— आदमी क्या सोचता है, और क्या हो जाता है! सोचा था कि निरवलम्ब होने पर आरती को शायद मेरे ही अवलम्ब की जरूरत पड़ जाए। मगर वह तो हुआ नहीं, उल्टे मुझही को इतनी भयानक और इतनी जल्दी अवलम्बन की आवश्यकता पड़ गई। जो हो, ढाई हजार से कर्ज चुकाने का खयाल करना ही बड़ी ओछी बात है, पर देवालियों के भुगतान का इसके सिवा दूसरा तरीका ही क्या है?—और यह व्यवस्था करना तुझी को पड़ेगी, करेगा न? नहीं तो मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी हरनाम!"

हरनाम की आँखों से आँसू बहते रहे। नवनीत की बातों का इसके सिवा उस बूढ़े के पास उत्तर ही क्या था!

उनको शायद इस अराजक दल से भी कुछ सहायता मिले, किन्तु हमें तो अपना धर्म शक्ति के अनुसार पालना ही चाहिए। नहीं ? पर तू बोलता क्यों नहीं ?—क्या तुझ से यह भी नहीं हो सकेगा ?"

"आप हुकुम देंगे राजा बाबू, और मुझ से न हो सकेगा ?—हुकुम हो तो एक बार तो मौत के मुँह में जाने में भी नहीं हिचकूँगा !"

"दूसरी बार हिचकिचाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी ! और क्यों खुद मौत के मुँह में पहुँचने में तो न हिचकेगा, दूसरों को उस मुँह तक पहुंचाने में भी नहीं हिचकेगा न ?"

हरनाम ने उत्तर नहीं दिया।

"तू कल क्या कह रहा था ? क्या आरतीदेवी अभी यहीं हैं ?"

"जी कल उन दोनों को गोकुलजी के मन्दिर में देखा था।"

"दोनों कौन ?—शायद नीलम भी अभी यहीं होंगी ! हैं ?"

"जी हाँ !"

"क्या बात हुई थी ?"

"कुछ नहीं, दूर से ही देखा था। जल्दी में था, इसलिए उनको बचा ही गया।"

मगर सचमुच हरनाम झूँठ बोल गया था। उसने दोनों महिलाओं को नवनीत की बीमारी की पूरी सूचना दे दी थी, किन्तु अभी-अभी बहूरानी की बात को लेकर नवनीत की बीमारी के सन्देश पहुँचाने के विषय में उसे जो 'बेवकूफ' की उपाधि मिल चुकी है, इस बात को स्वीकार करके क्या नवनीत की ओर से वह अपनी पदोन्नति करवाता ? इसके अतिरिक्त एक बात और भी थी, उन महिलाओं को एक सूचना दी गई थी परसों, यदि नवनीत-विषयक उनकी भावना में वही पूर्व सौहार्द्र रहता, तो अबतक आकर उन्होंने इसकी सुधि ली ही होती। मकान का ठिकाना तक वह बतला आया था। इतने पर भी अगर आज तक उन्होंने दर्शन नहीं दिया, तो उनके हृदय की भावना का तात्पर्य स्पष्ट है। ऐसी अवस्था में इस बात को स्वीकार करके क्या वह बीमार

के हृदय को एक और आघात नहीं पहुँचाएगा ?—अतः हरनाम के पास उस बात को इनकार करने के सिवा चारा न था।

हरनाम ने कहा, "वक्त हो गया बाबू, चाय ले आऊँ ?—जरा सागूदाना भी बना लिया है। चाय के साथ—"

"तू पूछ कर कोई काम क्यों नहीं करता हरनाम ! सागूदाना के लिए सवे ही डाक्टर इनकार कर गया है। मैं कोई धन्ना सेठ तो हूँ नहीं कि घर-गृहस्थ को बेकार जाते देखकर भी कुछ न सोचूँ !"

"तो दलिया या— किसी के लिए तो डाक्टर साहब कह गए होंगे ?"

सच तो यह है, जैसा कि पाठक जानते हैं, कि 'किस के लिए' कहने को डाक्टर का पदार्पण ही नहीं हुआ था, इस दिशा में हरनाम का आश्चर्य ही सहेतुक था !

रोग की भीषणता में जब रोगी शेष उपाय औषधि को भी इनकार कर देता है, तो मानों सहज रूप से वह मृत्यु की चुनौती को स्वीकार करके उससे जूझ पढ़ने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। मालूम दिया, नवनीत भी अब सम्मुख युद्ध के लिए तैयार हो रहा है, उसने कहा, "डाक्टर कह गया है केवल चाय के लिए—गरमागरम चाय, उसमें ज्यादा दूध न हो—तू तो बिलकुल दूध की चाय बनाकर लाता है, परन्तु तेरा कसूर ही क्या, किसी को मृत्यु के मुँह में पहुँचा आने में तुझे हिचकिचाहट थोड़ी होगी !— पर देख तो, नीचे कोई किवाड़ खट-खटा रहा है !

सचमुच नीचे कोई किवाड़ खटखटा रहा था। हरनाम नीचे उतर गया।

नवनीत का हृदय धड़कने लगा। तो मायावती आखिर आ गई ! उसके अन्तिम शब्द—'मैं तुम्हारे किसी भी प्रकार के भाव से लेश-मात्र भी आक्रान्त नहीं हूँ'—क्या एक विशेष-आवेश की अवस्था का अस्थाई वक्तव्य मात्र था ?—क्या नारी की कोमलता अब भी उसमें शेष है ?

नवनीत के प्रति अब भी उसके हृदय की गंभीर कन्दरा में स्थान है ?—हाय, कितना विलम्ब हो गया !—विधाता उसको कुछ दिनों के और जीवन का वरदान नहीं दे सकता ? —आज वह आई है, जब कि वह मृत्यु की समस्त मन से कामना करता रहा है। क्यों पहले वह अपने हृदय के इस मधुर भाव को व्यक्त नहीं कर सकी ? यदि वह इसका कुछ भी अनुभव कर पाता, तो स्वेच्छा से मृत्यु के इतने निकट न खिंच आता—उसके हृदय की जीवित रहने की वासना आखिर उसे अपने स्वास्थ्य को ठीक करने में कुछ सहायता देती ही ! किन्तु अब—

उसने क्षीण-स्वर में हरनाम को कहते सुना, "बहन जी, उनकी हालत बहुत ही बिगड़ गई है ! मैं जानता हूँ कि आप उनकी हालत के लिए मोह ममता रखकर ही आई हैं, मगर छिपी सभा के बाद से ही उनका विचार आपके लिए बदल गया है। दिमाग भी कुछ ठीक-ठिकाने नहीं; मुझे फिकर है कि उनका आखिरी समय तो शांति से बीत जाए। आप ही सोचो माँ !—अगर फिर भी आप हुकुम दोगी, मैं तो मूर्ख हूँ। जैसा आप ठीक समझो !"

उत्तर में सुनाई दिया, "आखिरी समय ?—कह क्या रहा है हरनाम ? और तब भी मैं लौट जाऊँ ?—परन्तु अगर वे मेरी सूरत नहीं देखना चाहें ! तो हरनाम, मुझे देहली के बाहर बैठी रहने देना। मैं दूर ही से देखती रहूँगी—इलाज किसका है ?—डाक्टर क्या कहता था ?—है कौन डाक्टर—मैं जाकर उन्हें ले आती हूं, मुझे पता बतादे हरनाम !"

हरनाम का उत्तर हवा के झोंके से नवनीत के कानों से दूर जा गिरा।

जरा जोर लगा कर नवनीत ने पुकारा, "हरनाम, आ जाने दे भाई, आ जाने दे !" फिर धीरे से बोला, "आखिरी समय में अब किसके साथ द्वेष करूँगा ?"

कुछ ही क्षणों के बाद ऊपर आकर नीलम ने नमस्ते की।

नवनीत ने कहा, "कुछ बिछादे हरनाम !—माफ करना नीलम देवी, पुरानी बात तो कुछ रही नहीं; यदि कुछ तकलीफ हो तो नाराज नहीं हो सकेंगी।"

"आप भी कैसी बातें कर रहे हैं नवनीत बाबू, पर यह तो कहिए, आपकी तबीयत एकाएक कैसे खराब हो गई ?"

"एकाएक तो नहीं हुई नीलम देवी, धीरे-धीरे ही हुई है। परिचितों के प्रति कृतज्ञ हूँ कि शरीर ने जब एकाएक जबाब दे दिया तो टूटे मन के साथ उसकी संगति खूब बैठ गई। यदि मित्रों ने यह व्यवस्था पहले ही से न कर रखी होती तो जाने क्या होता, शायद हार्टफेल ऐसे ही मौकों पर तो हुआ करता है !—आप तो स्वस्थ हैं ?"

"अभागिनी स्त्रियों को कभी होता ही क्या है ?"

"अभागिनी क्यों कहती हैं आप अपने आपको ?—स्वयं स्वास्थ्य भी तो एक सौभाग्य है !"

"उसका उपभोग किया जा सकने जैसी अवस्था भी तो हो ! अभी ही आपने कहा कि यदि शरीर और मन में संगति न हो !"

"ठीक है, ठीक है नीलम देवी ! पर यह तो मेरे जैसे कमजोर आदमी की बात है ! आप तो मन की कमजोरी को मानती न थीं ?—वह तो अपनी ही कमजोरी स्वीकार करना है !"

"सो तो है, पर आखिर एक जगह तो सबको अपनी कमजोरी स्वीकार करनी ही पड़ती है न !"

"सब की जगह क्या एक ही होती है ?"

"दूसरों की जगह के बारे में तो मैं कह ही क्या सकती हूँ ?"

"तो अपनी ही कहिए !"

एक क्षण चुप रह कर नीलम बोली, "नहीं नहीं, कहने की अब आवश्यकता ही क्या है ? केवल यही जान लीजिए कि सभी जगह समर्थ होते हुए भी एक व्यक्ति को एक जगह तो कमजोर होना ही पड़ता है।"

''आपकी इच्छा, यदि आप न कहना चाहें ! किन्तु नीलम देवी, सच कहता हूँ, मालूम देता है, जैसे जीवन को इतने निकट से कभी नहीं देखा था। जब कि एक व्यक्ति जीवन को चहार-दीवारी से घिरा हुआ हो तो वह उसे देख ही नहीं सकता ! आँखों से कभी आँखें देखी जा सकती हैं क्या ? और जब मनुष्य मृत्यु के उस पार पहुँच जाता है, तो जीवन के बारे में क्या जान पाता होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ! सच मानिए, यही एक अवस्था है, जब न जीवन ही रहता है न मृत्यु ही ! मृत्यु खींच कर कहती है, 'देखो जीवन की रंगीनी ! और अपनी भविष्य-यात्रा का पाथेय देखो ! क्या बटोरा है तुमने ?' और तब जीवन, कुछ दूर कुछ पास, धूप-छाँह की भाँति, भागते हुए रंगों में दिखाई देता है। हम उसे पकड़ना चाहते हैं, किन्तु मृत्यु हमारा दुपट्टा पकड़ कर उधर खींचती है। मैंने आपका सदैव ही अपमान किया है नीलम देवी, आपके पर्वत-जैसे प्रेम को वहन करने की सामर्थ्य मुझमें कभी नहीं मिली। आपकी कमजोरी का स्थान चाहे जो हो, पर मुझे क्षमा कर देना होगा ! आपने सच ही कहा था कि बड़ी क्षुद्र नींव पर मैंने अपने पौरुष की दीवार खड़ी की थी !''

नीलम ने भारी गले को साफ करके कहा, ''मन को संयत कीजिए नवनीत बाबू, आज आपकी कैफियत देने की अवस्था नहीं है। भगवान् आपको शीघ्र ही आरोग्य करेंगे !''

''भगवान्—क्या आप उन्हें मानने लग गई हैं ?''

''आप मुझे 'आप' कह कर क्यों पुकार रहे हैं ?—मालूम पड़ता है, आपके निकट अभी मेरा अपराध क्षमा नहीं हुआ !''

''यह क्या बात कही आपने !—दोषी तो मैं ही हूँ नीलम देवी ! और यदि सम्बोधन की बात लें तो शिष्ट-समाज में सम्बोधन का शिष्ट शब्द यही तो है !''

''पर इससे मुझे तो सचमुच दुःख होता है।''

''मेरा इरादा वह नहीं है। इन तमाम अभियोगों के साथ चलते-

चलते इतनी सतर्कता अगर इस समय भी न रक्खूँ तो मुझे क्षमा कौन करेगा ? तुम्हारे ही मन की सही। कहो आरती देवी के क्या हाल हैं ? भाग्य की विडम्बना तो देखो, मुझे मेरी कृतघ्नता ने कभी उतना दुःख न दिया, जितना उनकी प्राणदान की दया ने। यदि यह न होता, तो आज जैसी परिताप की मृत्यु मुझे उपलब्ध न हुई होती !"

"जो कुछ हो चुका है, उसे छोड़ कर वे अच्छी तरह ही हैं। किन्तु, यह तो कहिए, डाक्टर क्या कहता है आपके बारे में ?"

"डाक्टर क्या कहेगा ?—दुबला देखा तो रक्त का अभाव, मोटा देखा तो रक्त का दबाव ! घबराहट और बेचैनी, चाहे रक्त का अभाव हो या दबाव हो, रहती ही है, सिर दर्द भी होता है, मस्तक की नसें मानों फटने वाली हैं, बुखार १०४-५° तक बराबर बना रहता है। अरे हरनाम—बर्फ आ गया हो तो जरा माथे पर रख दे। सिर फटा जा रहा है।"

"दवाई तो बराबर ले रहे हैं ? बीमारी के बारे में उसकी क्या राय है ?"

"ले रहा हूँ ! बीसवीं शताब्दि का शिक्षित युवक मरता भी है तो दवाई लेते-लेते ही, दवाई के ऊपर उसका कभी अविश्वास नहीं होता रही राय की बात, सो उनकी राय को कौन नहीं जानता ? सतयुग में यमराज से लड़ कर मृत्यु से मुक्ति की राह बतलाई थी नचिकेता ने; और कलियुग में जय हो इन डाक्टरों की, अपने चन्द पेटेण्ट मिक्श्चरों में स्वयं यमदूत बन कर मुक्ति की गारण्टी दे देते हैं। इन डाक्टरों की औषधि न लेकर कदाचित् कोई जी ही जाए, किन्तु औषधि लेकर जीवित रहने की अपेक्षा जीवित रह कर औषधि लेना ही डाक्टरी कानून है ! डाक्टरों की औषधि से बीमारी चाहे छिप जाए, पर वह नष्ट नहीं होती !"

"तो किसी वैद्यराज की औषधि कराई जाए ?—चलें, हम लोग

मानपुर चल दें। वहाँ की जलवायु तो अच्छी है। और किसी भी वैद्य-राज को यहाँ से साथ ले लिया जा सकेगा।"

नवनीत मुस्करा कर बोला, "किस दावे से तुम्हारी सेवा ग्रहण कर सकूंगा नीलम?—और तुम ही किस छल को छिपा कर मेरा भार ग्रहण करोगी!—आरती की सेवा का परिचय तो मुझे मिल ही चुका है, और मैंने भी उसे उसका बदला जैसा दिया है, वैसा शायद दूध पीकर साँप भी न दे! नियम तो यह है कि दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूंक कर पिए।"

"मेरा न सही, आरती का दावा भी स्वीकार नहीं कर सकेंगे क्या?"

"आरती का दावा पेश करने का तुम्हें कितना अधिकार है यह मैं नहीं जानता! लेकिन विवेकशील नारी इतना अनुभव प्राप्त करके भी यह व्यर्थ का बोझा ढोने के लिए तैयार हो जायगी?— बल्कि यही कहो नीलम, आज सहसा मेरे प्राणों के प्रति तुम्हारे हृदय में यह ममता कहाँ से जग उठी?—उस दिन तो —"

"प्राणदण्ड की सिफारिश कर रही थी, यही न?—तब नवनीत बाबू, आपकी शक्ति का दुराग्रह व्यापी वह अमंगलमय रूप ही तो सामने था?"

नवनीत ने मानो उठते हुए दर्द को दबा दिया, और हंस कर कहा, "आज का सत्याग्रह व्यापी मंगलमय रूप देख रही हो तुम?"—किन्तु उठती हुई वेदना दबी नहीं, नवनीत को एक जोर की हिचकी हुई, और वह सम्हले उसके पहले ही उसे रक्त की एक वमन हो गई। नीलम और हरनाम दोनों उठ खड़े हुए, उन्होंने नवनीत को सम्हाला। ओढ़ने की चादर रक्त से भर गई थी, उसे उन्होंने बदल दिया।

नीलम ने डर कर कहा, "डाक्टर को बुलवा लें?"

मुस्कराकर नवनीत ने कहा, "यमदूत को? इतनी जल्दी?—नहीं नीलम, डरो नहीं, अभी एक दम नहीं मरूँगा। इतना सुख इस

जली तकदीर में किसी ने नहीं लिखा। रक्त का दबाव ज्यादा है न!—कुछ रक्त निकल गया, इससे थोड़ी घबराहट कम ही होगी! डरोमत, बैठो!"

नीलम खाट के पास ही दरी खींच कर बैठ गई। नवनीत ने फिर पूछा, "बोलो नीलम, आज शक्ति को कौनसा रूप देख रही हो तुम?"

"रक्त का ही रूप, उसके आगे विशेषण लगाने की जरूरत ही क्या है? यदि उसका ठीक दिशा में उन्नयन हो सके तो यह अद्वितीय वस्तु है नवनीत बाबू!"

"इस उन्नयन को सम्पन्न कौन करेगा? तुम?— किन्तु तुम्हारा तेज सहन करने की सामर्थ्य तो मैंने अपने में कभी नहीं पाई! यह बात नहीं है कि परिचय के प्रारम्भ में मन-ही-मन तुम्हारा तिरस्कार न करता रहा होऊँ, किन्तु तुम्हारा तेजस्वी स्वरूप कब तक छिपा रहता? आज मृत्यु के द्वार पर मैं मिथ्या न कहूँगा—तुम्हारे अनन्य रूप की, तुम्हारी अप्रतिम बुद्धि की, तुम्हारे इस अनन्य-दुर्लभ हृदय के माधुर्य की आसक्ति मुझे न लगी हो, सो बात नहीं, किन्तु तुम्हारे इन 'परम' पदार्थों का कवच ही तो मुझे तुमसे दूर रक्खे रहा। क्षुद्र नद-नदी में रत्न नहीं मिल सकते, किन्तु समुद्र के सामने क्रीड़ा भी तो नहीं चल सकती, उसे क्षुद्र-हाथों से पार भी तो नहीं किया जा सकता! मेरी प्रकृति को किसी ने नहीं पहचाना, तुम पहचान पाईं केवलमेरे दम्भ को, पर मेरे दम्भ-मात्र को पहचाननेवाला ही कैसे मेरा अवलम्बन हो सकता है नीलम!—हरनाम! कमरे की सब खिड़कियाँ खोल दे। जी घबरा रहा है, खूब हवा आने दे, फिर इस हवा को कहाँ पाऊँगा? बर्फ, अभी तक नहीं आया?"

हरनाम ने खिड़कियाँ खोल दीं। नीलम ने कहा, "नवनीत बाबू, आप यदि शान्ति से चुपचाप बैठे रहें, तो आपको अवश्य आराम मिलेगा! इन सब बातों का अभी प्रयोजन ही क्या है?"

"शान्ति से लेट सकूँ तब न! रक्त के अधिक दबाव से दिमाग

खराब हो जाता है। मेरा दिमाग भी पागल की तरह दौड़ रहा है, केवल एक बात ही बची है कि वह पागल की तरह विपथ में अभी तक नहीं लगा। चुप रहने से ही मैं पागल हो जाऊँगा नीलम, मुझे बोलने से मना मत करो। यदि शान्ति मुझे थोड़ी बहुत कहीं मिल रही है तो वह आत्म-स्वीकार द्वारा ही। और अगर कभी-कभी रक्त का वमन हो जाए, तो उससे जीवन-शक्ति चाहे कम होती जाय और उसका अब कम होना ही अच्छा और ध्रुव है, किन्तु जितनी देर तक मैं जिऊँगा, उससे मेरी शान्ति बढ़ेगी ही।"

कुछ क्षणों की नीरव शान्ति के बाद नवनीत फिर बोला, "मेरे जीवन को पौरुष की अपार शक्ति मिली, किन्तु उसको अपने लक्ष्य का पता न लगा। जीवन में मैंने क्या-क्या कर गुजरने का विचार न किया! जीवन के प्रारम्भ ही से इन अंग्रेजों के प्रति मेरे हृदय में घृणा थी, इस शासन को उलट देने की मेरी परम इच्छा थी, किन्तु इसी शासन के निमित्त करके अपने ही एक अन्यतम बन्धु से विश्वासघात करने की विडम्बना को प्राप्त करना पड़ा! इन व्यर्थ के उपलक्षों को लेकर ही जीवन से खिलवाड़ करता रहा, उन्हीं में उलझा रह कर शान्ति प्राप्त करने की चेष्टा करता रहा! तब मंजिल कहाँ से मुयस्सर हो, और उसको सर करने की इच्छा ही कहाँ से लाई जाए! यहाँ तक कि यात्रा के अन्त की कभी इच्छा ही न हुई!—रेल के सफर में भी जब कभी गन्तव्य स्थान आया कि एक भयानक अतृप्ति मन पर छा जाती रही, और मालूम दिया कि वह लक्ष्यस्थान कहीं गाय के लिए कसाई घर तो नहीं है! शर्ली, मंजरी आदि उपलक्षों पर मेरी दृष्टि नहीं टिकी, इसका तो तुम विश्वास कर सकती हो नीलम, किन्तु सचमुच अनजाने ही एक दिन मैंने अपनी पत्नी को प्यार किया था! वह महत्व मुझे तब पकड़ाई दिया, जब कि वह उपलब्ध न थी। सोचता हूँ, यदि उसे खोने की भाग्य हीनता मुझे प्राप्त न होती, तो लक्ष्य की कौन कहे अलक्ष्य को भी भेद सकने में मेरी सामर्थ्य मुझे धोका न देती!"

नीलम ने देखा कि नवनीत की आरक्त आँखें आँसुओं से उद्भासित हो उठी हैं !

उसने एक लम्बी साँस ली और पूछा, "आपकी पत्नी तो अभी जीवित होंगी ?"

"हाँ हैं !"

"आप यदि पता बतादें, तो तार करदूँ !"

नवनीत ने मुस्कराकर कहा, "रहने दो नीलम, सच्मं यही तो कहता है कि तुम ठीक हलके मन से तार नहीं दे सकोगी !"

नीलम क्रुद्ध न हुई, बोली, "क्या आप मुझे इतनी ओछी समझते हैं नवनीत बाबू ?— यह सच है कि एक दिन आपको प्राप्त करने की कामना मेरे हृदय में उदय हुई थी, किन्तु आज तो, सच कह दूँ, मुझ पर अपना कोई सत्व नहीं रहा है। मैंने समस्त मन-प्राण से अपने आपको गोपीजन वल्लभ श्रीकृष्ण की पदार्चना में निवेदित कर दिया है ! आई तो आज आपकी सेवा में लुकछिप करही हूँ, किन्तु यह छिपाव अपने लिए नहीं, आरती के लिए था। यद्यपि वह भी मेरी तरह उन्हीं सर्वेश्वर के चरणों उत्सर्ग हो गई है, किन्तु वह अपने शोक पर अभी तक विजय नहीं प्राप्त कर सकी, और इस लिए उससे छिपाना पड़ा। न आपकी बात सुनकर मुझे विशेष उत्साह ही अनुभव हो रहा है। मैं अपने ऊपर अब अधिक लांछन सहन न कर सकूँगी। आप अपनी पत्नी का पता बता दीजिए, मैं तार कर दूँ !"

"भगवान् की सेवा में तुम निवेदित हो गई हो यह प्रसन्नता की बात है। मैंने अपने जीवन में भगवान् को कभी नहीं माना। मैं मानता हूँ कि इससे व्यक्ति के जीवन में बहुत सुविधा हो जाती है, यदि इसे लक्ष्य हो मान लिया जाए, तो इन कम-से-कम कई दुर्दान्त लक्ष्यों से आप-ही-आप दृष्टि हट जाती है। किन्तु तुम परितापित क्यों होती हो ? मैं सचमुच ही तुम्हें लांछन तो नहीं देना चाहता !"

"तो फिर मुझे तार देने की क्या इजाजत दीजिए !"

"मेरे इजाजत देने मात्र से तो वह चली न आएँगी नीलम, यह तो तुमसे भी छिपा नहीं कि उनके अभिमान करने का कितना कारण है !"

"फिर भी नारी हो तो हैं वे ! नारी के हृदय को आप नहीं जानते। मैं इसका दायित्व लेती हूँ।"

"इतना बड़ा दायित्व न लो नीलम ! तुम भगवान् की शरण चली गई हो, एक मुक्त नारी के तेज की कल्पना अब तुम से नहीं हो सकेगी !"

"आप ही नारी के हृदय को कौनसा समझते हैं ? आइ मुझे पता बता दीजिए। विश्वास मानिए, नारी कितनी ही स्वतंत्र मुक्त क्यों न हो, जब उसे सचमुच की प्रकार मिलती है, तो वह उसे अन्यथा कहीं कर सकती—कम-से-कम सेवा का अवसर पाने पर तो कभी अस्वीकार नहीं कर सकती।"

नवनीत कुछ क्षणों तक नीरव सोचता रहा, फिर लम्बी साँस लेकर बोला, "मर्जी तुम्हारी; तो सुनो उसका पता देवी मायावती व्यास, सभानेत्री, अराजक-दल, मथुरा !—"

नीलम के ऊपर मानो वज्र गिरा—"नवनीत बाबू—"

"चौंक उठी ?"

"सच कहते हैं आप ?"

"झूठ तो मैंने कभी कहा नहीं। इसीलिए तो कहा था कि इतना बड़ा दायित्व लेकर मिथ्या बनने की अपेक्षा, इस मसले को यहीं छोड़ देना क्या बुरा है। सचमुच, उस दिन मेरे प्राण दण्ड की व्यवस्था देने वाली, अराजक-दल की सभानेत्री मायावती ही मेरी पत्नी हैं। और—" अचानक ही एक क्षीण खाँसी के साथ नवनीत को फिर वमन हो गई। काफी रक्त व्यय हो गया। नीलम और हरनाम ने उसे सम्हाला। इसके अतिरिक्त वे कर ही क्या सकते थे ? हरनाम ने माथे पर दूसरी गीली पट्टी रखदी, किन्तु शरीर का उत्ताप पूर्ववत ही बना

रहा। नीलम समझ गई, यह भावों की तीव्रता का फल है।

वह चुपचाप बैठ कर सोचने लगी कि माया का नवनीत की पत्नी होना किस तरह सारी घटनावली में बैठ सकता है। उस दिन के विचार का सम्पूर्ण दृश्य उसकी आँखों में छा गया। माया का अदृश्य रहना, सुरेशनारायण द्वारा उसका प्रतिनिधित्व, नीलम के स्वयम् के आक्षेप, यहाँ तक कि सभानेत्री की वाणी का एक-एक कंपन तक उसके कल्पना क्षेत्र में मूर्त्त हो उठा। नवनीत ने उसे अन्यमनस्क देखकर पूछा, "क्या सोच रही हो नीलम ?"

"यही कि विचार के दिन, क्या आपको भी यह विदित था कि आपकी पत्नी ही विचारक के आसन पर स्थित हैं ?"

"नहीं। पहले पहल कुछ सन्देह हुआ था, किन्तु उसकी कठोरता देखकर सोचना पड़ा कि क्या पत्नी, और वह भी हिन्दू पत्नी कभी स्वाभाविक रूप में इतनी कठोर हो सकती है ? मैंने उसे कानों की भांति समझी, किन्तु अन्त में मेरे व्यंग्य से तिलमिला कर जब उसने अपने आप को प्रकट कर दिया, तो मुझे उसको पहचानना ही पड़ा नीलम !—जो कुछ हो, किन्तु उसकी तेजस्विता से आखिर गर्व करने को तो मुझे कुछ मिल गया। क्या सोच रही हो; तार देने का ही निश्चय रहा क्या ?" मुस्करा कर नवनीत ने कहा।

"सचमुच आप गर्व कर सकते हैं नवनीत बाबू ! मैं प्रयत्न कर रही थी यह समझने का कि इस अवस्था में मैं उन्हें श्रद्धा करूं या— नहीं, अवश्य ही लज्जाजनक कार्य उन्होंने कोई नहीं किया। किन्तु नारी होकर, पत्नी होकर आखिर इतना दुःख वे सह कैसे सकीं ?"

"सो तो मैं भी नहीं समझ सका नीलम !"

बातों में ये लोग इतने तन्मय हो गये थे कि एकाएक किवाड़ खोल कर आरती ने ऊपर कब प्रवेश किया, ये लोग जान ही नहीं सके। किन्तु उससे भी अधिक व्यथित हुई आरती स्वयम् जब उसने देखा

कि नीलम भी वहाँ पर विद्यमान है, बल्कि वह उल्टे पैरों लौट ही जाती, यदि हरनाम ने उसे देख न लिया होता।

नीलम की पीठ थी, इसलिए सब से पहले नवनीत ही की दृष्टि पहुँची। वह बोला—

"कौन आरती देवी हैं! भाभी?—इस कपूत के लिए अब भी आपके हृदय में स्नेह रह गया? किन्तु कष्ट क्यों किया आपने? मेरा तो ऋण बढ़ ही गया!"

नीलम ने मुड़ कर देखा, तो वह भी चकित हो उठी। आखिर एक दूसरे की चोरी पकड़ी ही गई। नीलम ने कहा—

"बैठो बहन! माफ करना, मैं तुमसे छिपकर आई थी, किन्तु इस लिए कि कदाचित्—

"कहो, रुक क्यों गई?"

"तुम कहीं नाराज न हो जाओ!"

"किस लिए?"

"कि आखिर भाई के हत्यारे का लोभ छोड़ा नहीं जा सका।"

नवनीत ने दुखित होकर मानो मुंह फेर लेने का प्रयत्न किया। आरती ताड़ गई। मुस्करा कर नीलम से बोली—

"या इसलिए कि एक बार प्राणदण्ड दिलाने का नाटक कर के भी चितचोर को प्राप्त करने के प्रयत्न में मैं कहीं बाधा न बन जाऊं?"

किन्तु नीलम का मेघाच्छन्न मुंह स्वच्छ न हुआ। वह बोली, "जीवन की समस्त-आकांक्षाओं का विसर्जन कर के ही मैंने ललिता का रिक्त आसन स्वीकार किया है आरती! प्रेममूर्त्ति भगवान् के विराट् स्नेह-स्वरूप में क्या किसी अन्य भाव के लिए स्थान रह सकता है?"

संकुचित होकर आरती ने सिर नीचा कर लिया, कुछ समय के बाद नवनीत को लक्ष्य कर के उसने कहा—

"देवर जी, हालत तो आप की बहुत गिर गई! देख भाल कौन करता है?"

"हरनाम; और हरनाम से पूछिए, तो उत्तर मिलेगा 'हरनाम' अब तो आप दोनों ने भी तो यही आधार पकड़ लिया है, आप भी तो यह जानती होंगी !"

"तब यहाँ किस के भरोसे पड़े हुए हैं ?"

"उसी के भरोसे !—और यों तो भरोसा है ही, नीलम देवी का है, आप का है- डॉक्टर का, यमराज का, ले जाने वाले चार कन्धों का यानी भरोसा तो है ही !—बिना भरोसे न तो जिया जा सकता है, न मरा ही।"

कुछ देर नीरव रह कर नवनीत ने कहा, "समझ नहीं पाता, किस मुँह से पूछूं ! पर आप ठीक तरह से तो हैं ?"

"ठीक ही हूं देवर जी, मन्दिर में भगवान् द्वारा कुछ शांति मिल ही आयगी।"

नवनीत ने चित्त को दृढ़ किया, और बोला "मैंने आपका सर्वस्व अपहरण किया है, और इसके उपरान्त भी आप मुझे प्राणदान देती आ रही हैं। किन्तु आपका प्राणदान किसी काम न आया ! आज उसकी विडम्बना यदि आप ही के सामने वीभत्स हो उठे, तो सहन भी आप ही को करना पड़ेगा !—साहस नहीं होता कि आप से कुछ माँगूँ। आपने अत्यन्त उदार होकर मुझे अप्राप्य भी दिया है, और जहाँ मैंने माँगने का अधिकार हाथ में लिया, तो वहीं पर प्रलय की लहर फैला कर सब कुछ स्वाहा भी कर दिया है। मुझ जैसे वंचक को कोई वचन न देगा, इसलिए अपने अन्तिम समय में केवल एक बात बिना वचन लिए ही माँग बैठता हूँ, और वह है मेरी ढाई हजार की पूँजी सहित हरनाम का भार !"

"पर रुपयों का मैं क्या करूँगी देवर जी ?—मेरा भार उठाने वाले भगवान् क्या मुझे रुपयों का भार उठाने दे सकेंगे ?"

"मैंने उसे अपनी ओर से आपको अर्पण किया ! आपके स्वयम् के भार के साथ उसका भी भार रहेगा भाभी !"

"पर अभी आप इतने निराश क्यों हो रहे हैं ?—शरीर है, स्वास्थ्य में व्यतिक्रम तो होता ही रहता है।"

नवनीत ने तनिक मस्करा कर कहा, "व्यतिक्रम में कभी अतिक्रम भी हो ही जाता है भाभी !—रही बात निराशा की; सो निराश मैं अवश्य नहीं होता, किंतु आशा का बोझ भी तो मैं नहीं उठा सकता। कमजोर बहुत हो गया हूं !"

"अवश्य ही उस दिन का आघात बहुत भयानक लगा होगा आप को, किन्तु देवर जी, अब तो बहूरानी को बुलवा लीजिए न ! इस अवस्था में तो समाचार भेजने ही से वे आजाएँगी ?"

एक भावपूर्ण-दृष्टि नीलम की ओर डाल कर नवनीत ने लम्बी साँस ली और कहा, "कितना समय बीत गया भाभी, सारी ऊमर क्लेश पाकर बेचारी बहूरानी अब जीवित भी होंगी या नहीं, कैसे जान सकता हूं। और जीवित भी हों, तो क्या उनसे क्षमा की भीख को आशा की जा सकती है ? नीलम को तो आशा नहीं है।"

"नीलम को पति की पीड़ा का अनुभव नहीं है देवर जो, नहीं तो अनायास ही उसे आशा हो जाती। भारतीय और आर्य कन्या की भावना वह लाए कहाँ से ?" आप तो जानते हैं या नहीं ?" भारतवर्ष का इसका समस्त प्रेम तोता-रटन्त है ?"

"यह कैसे भाभी ?"

"यह हिन्दुस्तानी माँ की लड़की नहीं है; इसके हिन्दुस्तानी बाप ने इसकी माँ को फ्रान्स के जौहरी से दो आँसुओं की कीमत पर खरीदा था ! किसे पता था कि उन आँसुओं में से बादल के हृदय को चीर देने वाली यह बिजली निकल पड़ेगी !"

"कहती क्या हैं भाभी ! साफ-साफ कहिए न ! पहेलियां बुझाने से मेरा तो दिमाग ही खराब हुआ जा रहा है। अरे हरनाम, माथे पर दूसरी पट्टी रख दे भाई !"

हरनाम ने पट्टी बदल दी ! आरती ने धीरे-धीरे नीलम के जन्म का

वृत्तान्त कह सुनाया। नवनीत के आश्चर्य की सीमा न रही। बोला, "नीलम देवी, एक बार और क्षमा कर दोगी न !—तभी आश्चर्य की बात रही है कि भारतीय आदर्श के साथ ही साथ आत्म चेतना की इतनी अधिक और स्वस्थ तेजस्विता तुम में आई किस भांति ? यदि तुम्हारे भगवान् ने ही तुम्हें यह ऐश्वर्य दिया है, तो दुःख है कि यह न तुम्हारे ही काम आया, न दुनियां के ही। लौट फिर कर उन्हीं भगवान् के चरणों में पहुँच गया ! कह नहीं सकता, आज मैं अपने आप को इसलिए सौभाग्य शाली समझूँ कि किसी दिन मैं तुम जैसी महान् रमणी की चाहना का पात्र रहा, या इसलिए कि मुझ जैसे अयोग्य व्यक्ति की अपूर्णता से तुम्हारे जीवन को कंटकित करने के श्रम से अपने को बचाए रहा !—मेरे अन्त का अभिनय बहुत कुछ सहनीय हो गया नीलम !"

"तो लाला जी, यहीं क्यों पड़े हुए हो ! मानपुर क्यों नहीं चले चलते ?" आरती ने पूछा !

"वहाँ पर भी क्या है भाभी ?—वह अनाथशाला भी तो अब न रही ?" नवनीत का गला फिर भारी हो गया।

एकाएक नीलम बीच ही में बोल उठी, "किन्तु नवनीत बाबू, आप हमारे आश्रम सुदामापुरी ही में क्यों नहीं चले चलते ? गुरुदेव बड़े दयालु हैं। आपकी सेवा का भार लेने में वहाँ किसी कोई संकोच नहीं होगा।"

"यही तो कठिनाई है। सेवा का भार लेते हुए नारी को कुछ नहीं होता यह तो ठीक है; किंतु उसी निस्संकोच सेवा वृत्ति ही से तो पुरुष के पिपासा दग्ध कण्ठ में अग्नि की रेखा खिंच जाती है। स्त्रियों से सेवा लेते-लेते पुरुष ऐसा अदम्य आलसी और दुर्निवार लालसाकुल हो उठा है कि सेवा से वह न केवल सन्तोष ही की कामना करता है, प्रत्युत उससे उसके हृदय की आसक्ति भी बेगार कराए बिना नहीं छोड़ती। नारी के जीवन की विडम्बना को सेवा का क्या पुरस्कार मिलता है, यह

मैं जान ही कैसे सकता हूँ, किन्तु शायद अराजकदल की सभानेत्री मायावती देवी कुछ जान सकी हों, या फिर भूली न हों, तो आप बता सकें !"

आरती ने नीची दृष्टि से कहा, "स्त्रियों को सेवा के मार्ग में संकोच तो नहीं होता, किन्तु कष्ट भी नहीं होता नवनीत बाबू ! वे केवल स्वामी ही की गरज से सेवा नहीं करतीं, उनकी खुद की गरज भी रहती है; उन्हें सेवा में तृप्ति जो मिलती है।"

"किन्तु क्या निर्द्वन्द्व तृप्ति ? सोच देखिए। नीलम देवी तो जरूर न जानती होंगी, किन्तु आपको अधरलाल के प्रति की गई सेवा में या अन्य किसी के प्रति की गई सेवा में कोई द्वन्द्व ही न होता ?"

"कुछ देर रुक कर आरती ने कहा—"यह बात आप क्यों पूछते हैं लालाजी—"

बात काट कर नवनीत बोला, "माफ कीजिए। आगे न कहिए। मेरा प्रश्न ही गलत था। किन्तु भाभी, विश्वास दिलाता हूँ, मेरे भावों को अब अन्तिम समय में तो गलत न समझिएगा।" और अपने हृदय के भार को दबा कर एक लम्बी साँस उसके मुँह से निकल गई।

आरती ने कहा, "नवनीत बाबू, सचमुच ही स्त्रियों का हृदय न जाने किस वस्तु का बना हुआ है, नहीं तो आपको पतिघाती समझते हुए भी आपके लिए सहानुभूति का वृश्चिक-दंश न सहन करना पड़ता। लौट चलिए न आप मानपुर को। आप मुझे भाभी कहते हैं। भाभी के रिश्ते में माँ का वात्सल्य नहीं रहता क्या ?—आप शायद इसे अनुभव न कर पाए हों, किन्तु मैंने किया है लालाजी, मैं अपनी सेवा के बल से पुनः आपको स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करूंगी !"

नवनीत की आँखों में आँसू आ गए, किन्तु हृदय की धड़कन के अनावश्यक रूपसे बढ़ जाने के कारण अकस्मात् ही उसे रक्त की वमन हो गई। शब्द उसके कण्ठ ही में अटक गए। आरती के सम्मुख यह नवनीत की पहली वमन थी; किन्तु इस बार इतना अधिक रक्त वमन

से निकल गया कि नवनीत अचेत होने लग गया। हरनाम चादर सम्हालने में लगा; आरती ने विलम्ब नहीं किया, नवनीत के सिर को अपनी गोद में लेकर भीगे हुए तौलिए से उसका मुँह साफ करने लगी।

नीलम ने कहा, "हरनाम, तू जल्दी दौड़कर डाक्टर को बुला ला।" फिर आरती की ओर मुखातिब होकर बोली, "रक्त का दबाव बहुत अधिक है। दो-तीन वमन पहले हो चुकी हैं, काफी रक्त निकल चुका है, किन्तु—"

तभी नीचे मकान के सामने मोटर रुकने का शब्द हुआ। नवनीत ने आँखें खोल दीं, उसने बोलने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

हरनाम नीचे उतरा।

नीलम ने चादर बदल दी, आरती ने नवनीत के मुंह को पोंछ कर साफ कर दिया। नवनीत के कान बड़े सजग हो गए थे, उसे—केवल उसे नीचे से हरनाम की ध्वनि सुनाई दी 'बहूरानी' किन्तु मानो वह बीच ही में टोक दिया गया। नवनीत ने आँखों को बन्द कर लिया। आरती ने बर्फ की पट्टी बदल दी।

कुछ ही क्षणों में ऊपर कमरे में प्रविष्ट हुए—पहले हरनाम, उसके बाद अंग्रेजी लिबास में सना हुआ डाक्टर, उसका कम्पौण्डर और उसके भी बाद में मायावती बड़ी ही हलकी-फुलकी बनी हुई!

माया सीढ़ियों पर से ही कहती हुई आई, "कहिए महाशय नवनीत-लाल बाबू, अभी यहीं तशरीफ रख रहे हैं!—सोचा था कि आप तो घर लौट गए होंगे! मुकदमा भी तो आपका खारिज हो गया। रेडियर के अभाव में बेचारी शर्ली करती ही क्या! किन्तु आप बीमार कैसे हो गए! अरे-आरती देवी और नीलम देवी भी विद्यमान हैं!—तो क्या, डाक्टर साहिब की जरूरत नहीं है क्या?"

आरती ने कहा—नवनीत का मस्तक तब भी उसकी गोद ही में

था—"नहीं सभानेत्री जी, हम तो स्वयम् ही हरनाम को डाक्टर को बुलाने के लिए भेज रही थीं—"

नवनीत ने माया का व्यंग्य समझ लिया था, बोला, "ले आई हैं तो उन्हें भी तसल्ली कर लेने दीजिए। यह तो सच है कि इस अवस्था के बाद डाक्टर की बहुत जरूरत नहीं रहती।"

माया ने नवनीत को अभी तक देखा न था, केवल अनुमान ही किया था। अब उसे देख कर तथा उसकी आवाज सुनकर उसे उसकी भयानक बीमारी का आभास मिल गया। उसके इशारे से डाक्टर आगे बढ़ा।

माया रेशम की बढ़िया साड़ी पहने हुए थी, कमर में मखमल का पट्टा उसे चुस्त बनाए हुए था, और साड़ी सिर से खिसक कर कन्धे पर आ पड़ी थी, मीठी सुगन्धि चारों ओर फैल रही थी—मानों किसी रेस से लौट रही हो। आरती ने नवनीत के मस्तक को तकिए पर रख दिया और माया के साथ खड़ी हो गई; किन्तु अराजक दल की इस कर्मठ सभानेत्री को बैठने के लिए कहना किसी से सम्भव नहीं हुआ। हरनाम, विस्मय-विमूढ़, आँखें फाड़ कर देखने के सिवा कर ही क्या सकता था?

डाक्टर ने रोगी की हालत देखना प्रारंभ की, उसकी नाड़ी देखी, फेफड़ों का परीक्षण किया, फिर ताप-मापक यंत्र से ज्वर की परीक्षा की। मालूम दिया कि बुखार बहुत तेज है, इस अवस्था में सन्निपात हो जाने की बहुत सम्भावना है। बाएं हाथ के बाहुमूल में रबर की थैली लगा कर डाक्टर ने रक्त का दबाव देखा, और निर्णय से उसे आश्चर्य-सा मालूम दिया।

अंग्रेजी में वह माया से बोला, "अवस्था बड़ी नाज़ुक है मिस माया! ब्लड प्रेशर (रक्त चाप) बहुत ऊँचा चढ़ गया है। मुझे आश्चर्य है कि रोगी अभी तक इसको सहन कर रहा है।"

नीलम ने हिन्दी ही में कहा, "इन्हें तीन-चार खून की कै भी हो चुकी हैं।"

"कै हो चुकी हैं ?—तभी !—कै से इनकी हालत गिरती जरूर जाएगी, किन्तु इन्हें रिलीफ (आराम) पहुँचता जाएगा। इन्हें दवाखाने में भरती करवा दीजिए !—इनके ऊपर तो अविराम-दृष्टि रखने की आवश्यकता है।"

"किन्तु अभी ?—इनकी अवस्था तो बड़ी गिर गई है।" माया ने कहा।

"अभी मैं इंजेक्शन दे दूं, अगर आप कहें !—बर्फ आप माथे पर रखने के लिए कह दीजिए ! दुपहर के बाद इन्हें दवाखाने पहुँचा दीजिएगा। यदि आप किसी को साथ भिजवा दें तो रूम रिजर्व करवा दूंगा, वह थोड़ा 'स्टिमुलेण्ट मिक्स्चर' भी लेता आएगा।"

"अच्छी बात है, आप इंजेक्शन दे दीजिए।"

नवनीत आँखें बन्द किए लेटा रहा, कुछ न बोला। डाक्टर ने इंजेक्शन दे दिया, सब जड़ बन कर खड़े रहे। माया के शासन में किसी को भी चूं करने का साहस तक नहीं हुआ !

डाक्टर ने कहा, "चल रही हैं न आप साथ ?"

नवनीत ने क्षीण स्वर में कहा, "हरनाम, डाक्टर साहिब की फीस दे दे।"

डाक्टर ने कहा, "डोण्ट माइण्ड, आइ हैव्ह आलरेडी गाट इट।" (चिन्ता न कीजिए, मुझे फीस मिल चुकी है।)"

नवनीत ने माया की ओर देखा—निगाहें चार हो गईं; नवनीत ने अपनी दृष्टि को बन्द कर लिया।

माया ने ड्राइवर को सम्बोधन करके कहा, "जाओ डाक्टर साहिब को छोड़ आओ, दवा लेते आना, और एक कमरे को ताला लगाते आना।—डाक्टर, यू एक्स्क्यूज मी; आइ विश आइ कुड अकम्पनी

यू बट—(माफ कीजिएगा। चाहती तो थी कि आपके साथ चलूँ, किन्तु—

माया ने नवनीत की ओर दृष्टि डाली। डाक्टर ने कहा, "नेव्हर माइण्ड,आइविल अरेंज फार दी रिजर्वेशन (कोई बात नहीं; मैं सब प्रबन्ध कर दूंगी।)"

डाक्टर जाने के लिए आगे बढ़ा, माया पहुँचाने के लिए दरवाजे तक आई, पूछा "क्या सोचते हैं डाक्टर साहिब !"

"हालत बड़ी सिंकिंग (डूबती हुई है)—कोई आशा करना बड़ा कठिन है।"

"अस्पताल में भेजने के बाद भी ?"

"कह नहीं सकता ! लेकिन हमें तो अच्छा ही सोचना चाहिए !"

डाक्टर चल दिया। माया लौट कर बीमार के पास आई, बैठने को जब कुछ दिखाई न दिया तो माया नवनीत के पैरों की ओर उसी खाट पर बैठ गई। आरती को माया और नवनीत के रिश्ते का पता न था, वह नवनीत के सिरहाने ही बैठ गई। नीलम ने परिस्थिति की विषमता को समझ लिया, किस भाँति वह आरती को यह बात बताए, वह दिग्विमूढ़ बन कर खड़ी ही रही।

नवनीत आँखें बन्द किए शांति की आशा में लेटा रहा।

कुछ देर तक इधर-उधर देखने के बाद माया ने हरनाम की ओर दृष्टि डाली और पूछा—

"हरनाम, मजे में है रे ? याद है मेरी, या भूल गया।"

हरनाम कुछ सोच ही नहीं पा रहा था कि आखिर इस परिस्थिति की गाँठ कहाँ से खुलेगी ? यह सच है कि पति-पत्नी दोनों कुछ वर्षों से अलग हो गए हैं; किन्तु, क्या उस अलगाव का रूप क्या इतना भीषण हो सकता है कि वह जन्म के संस्कार ही को धो-पोंछ डाले ! पति-पत्नी की मर्यादा क्या इतनी सरलता से अतिक्रमण की जा सकती हैं ! वह बहूरानी को बचपन से जानता है। तब वह उसे 'बिटिया'

कहता था, किन्तु इस घर में आने के बाद से नवनीत ही ने उससे माया को 'बहूरानी' की पदवी दिलवाई थी—किन्तु आज तो यह उसका मुक्त-निर्बाध रूप था, उसको वह किसी भी प्रकार से नहीं समझ पा रहा था। किन्तु जब स्वयम् बहूरानी ने उससे बातचीत की, बल्कि प्राचीन सम्बन्ध का सूत्र भी उसके हाथ में थमा दिया, तो मानों वह चाँद पा गया। बोला—"बहूरानी ! आपको क्या कभी भूला जा सकता है ?"

माया ने हँसकर कहा, "सम्बोधन तो तू जरूर नहीं भूला। पर मैं अब बहूरानी नहीं हूँ हरनाम ! आयन्दा से यदि और कोई दूसरा तरीका तुझे पुकारने का न मिले, तो तू मुझे 'मिस साहब' कहकर पुकारा करना। समझा न ?"

हरनाम ने दुगने आश्चर्य से गर्दन झुका ली।

माया ने हरनाम की ओर ध्यान नहीं दिया। नवनीत की ओर लक्ष्य करके वह बोली, "दुपहर के बाद आपको अस्पताल में भेजने के लिए डाक्टर कह गया है; वहाँ क्या प्रबन्ध कीजिएगा ? पहुँचा मेरी कार देगी आपको, सेवा और तीमारदारी के लिए नर्सें हैं तो वहाँ, किन्तु आरती देवी या नीलम में से कोई वहाँ पर जाना चाहें तो ये भी जा सकेंगी। और आप कहें तो—मंजरी देवी को भी भिजवाने का प्रयत्न करूँ क्या ?—अवश्य अब उसका आना उतना सरल नहीं है। आपको शायद मालूम न होगा, दो-तीन दिन पहले उसका सुरेशनारायण के साथ विवाह हो गया है।"

नवनीत व्यंग्य को समझ गया, बोला, "मैं गरीब आदमी हूँ मायावती देवी, अस्पताल का खर्च सह न सकूँगा। मैं वहाँ नहीं जाना चाहता। यदि मरना ही लिखा है, तो यहीं मरूँगा।"

"खर्चे ही की बात है !—शायद अराजक दल आपको कुछ सहायता कर सकें।"

नीलम ने कहा, "अराजक दल !—या व्यक्तिगत रूप से आप ?"

माया ने हँसकर कहा, "मैं भी गरीब हूँ नीलम देवी ! आप तो जानती ही हैं, न मेरे पिता का कुछ ठिकाना है न पति ही का !"

हरनाम ने भी यह शब्द सुने, पर कहने को था ही क्या ?

आरती ने पूछा, "डाक्टर ने कहा कि ये वहाँ जाने से स्वस्थ हो जाएँगे ?"

"कह तो वह कम-से-कम यही गया है ।"

नवनीत ने कहा, "नहीं मायावती देवी, मैं अपने ऊपर ऋण बढ़ाना नहीं चाहता—दो-चार घड़ी का अतिथि हूँ, बस शाँति से—" बात काटकर मुस्कराती हुई माया ने कहा, "नाराज हो गए ? अच्छा माया स्वयम् ही आपके आरोग्य का व्यय सहन करे ?"

नवनीत ने लम्बी साँस खींचकर क्षीण स्वर में कहा, "नहीं, तब भी नहीं माया, नवनीत भिखारी नहीं है ।"

माया ने पूर्ववत हँसते हुए कहा, "अपनी पत्नी, चाहे वह अतीत की बात ही हो, उससे माँगना भीख नहीं कही जा सकती । क्यों बहन आरती, झूँठ कहतीं हूँ क्या ?"

आरती तो कुछ न समझ सकी, किन्तु नीलम के आश्चर्य की सीमा न रही । आखिर इस अद्भुत रमणी का तात्पर्य क्या है ?

आरती ने कहा, "आपका मतलब मैं नहीं समझी !"

"कहा नहीं आपसे इन्होंने ?—अजी ये मेरे पूर्वजन्म में पति थे—एकदम विवाहित, शास्त्र मन्त्रोच्चार द्वारा; और ब्राह्मण के द्वारा मुझे भी कभी-कभी ऐतिहासिक घटना का स्मरण हो जाता है । किन्तु बात पूर्वजन्म की हो या इस जन्म की, पति-देवता अपनी पत्नी के ऊपर अपने दावे को सरलता से नहीं भूलता ! क्यों नवनीत बाबू, झूँठ कहती हूँ क्या ?—सवेरे सभा के कार्य से बाहर गई हुई थी, लौट कर सुरेश-नारायण के विवाह की दावत में जाना था । दोनों ने खास तौर से निमन्त्रण भेजा था । सभा के कार्य से लौट कर देखती हूँ तो दासी एक पत्र लिए खड़ी तैय्यार है, और कहती है कि मेरे कोई पति बीमार

हैं। थोड़ा-सा आश्चर्य हुआ, परन्तु पत्र पढ़कर पुरानी बात ताजा हो गई। एक मन हुआ कि इस जन्म के रिश्ते को जानते ही कितने लोग हैं! दावत जैसी सुमधुर वस्तु को, जिसके समान इस विश्व में दूसरा पुण्य कार्य नहीं, आखिर किस लिए छोड़ा जाए?—बीमार मनुष्य की संगति में ऐसा स्पृहणीय क्या है?—कुछ देर तक सोचने के बाद डरी कि कहीं इनके भीतर का पति विद्रोह न कर बैठे, आखिर आना ही पड़ा। क्योंकि झूँठ बात है क्या?"

आरती ने आश्चर्यान्वित होकर कहा, "मायावती—ओह, मालूम दे रहा था जैसे यह नाम परिचित है, तो आप ही इनकी पत्नी हैं?"

—कहते-कहते ही आरती अपने आसन से उठ खड़ी हुई, मानों उस जगह बैठने का उसे अब अधिकार न रहा हो।"

माया ने हंसकर उत्तर दिया, "थी उस जन्म में, अब नहीं हूँ! परन्तु आप बैठी रहिए न! यदि आपने कुछ अधिकार प्राप्त किया है, तो मैं उसे छीनूंगी नहीं। बैठिए, बैठिए।"

अन्यमनस्क होकर आरती वहीं बैठ गई, नीलम को क्रोध हो आया, किन्तु तब भी वह चुपचाप ही बैठी रही। नवनीत की अवस्था संकटापन्न होती जा रही थी, किसी भी प्रकार का क्रोध प्रकट करने योग्य वह समय न था।

नवनीत ने संयतन मन से धीमे से पूछा, "माफ करना, अधिक बोल नहीं सकता। तुम्हारे पिताजी—"

"गए अगस्त ही से उनका कुछ पता नहीं है। सरकार से भी पूछ कर हार गई, किन्तु कोई कुछ भी पता नहीं बताता।"

"तुम्हारा क्या ख्याल है माया?"

"देश के अन्य नेताओं के साथ वे भी होंगे—परन्तु, मेरे पहले वाले प्रश्न का क्या उत्तर है?"

"उत्तर? उत्तर चाहा था क्या? मानता हूँ कि—अराजकदल की सभानेत्री नवनीत को न जानती हो—किन्तु जो कम-से-कम अपने

पूर्वजन्म के नाते को स्वीकार कर रही है, वह माया भी नहीं जानती क्या ?"

"जरूरत क्या है मुझे ? क्या उस संध्या की स्मृति नहीं, जब हमारे परिचय के सभी सूत्र सहज ही टूट रहे थे ? पूर्वजन्म की बात है, शायद याद न रहा हो। किन्तु आपके हाथ का लिखा तो शायद खोया न होगा, जिसमें विवाह का अकल्पित मजाक को सार्थक करने के लिए मथुरा के पेड़ों की जमानत काफी समझी गई थी। मथुरा के पेड़े ही ठहरे, पत्र पाते ही मैंने सेरों भिखमंगों में बंटवा दिए थे महाशय जी !– पर, जो भी हुआ, आखिर यह आक्रोश किसके लिए ? यदि मेरे लिए हो तो, मैंने नारी के इन समस्त प्राचीन संस्कारों को आँचल में लगी हुई धूल की तरह झाड़ दिया है, और प्रयत्न करती हूँ कि यह नारी, इन सड़े-गले पुराने संस्कारों में दबकर अब और अधिक न सड़े । न पुरुष के लिए ही यह आक्रोश है : वह पतन के कगारे पर खड़ा हुआ एक धक्के की राह देख रहा है ! उसके दम्भ का पतन-प्राय स्तूप कैसी क्षुद्र नींव पर बना हुआ है, उसका उदाहरण आपकी परिस्थिति से अच्छा और कहाँ मिल सकता है नवनीत बाबू।"

त्रस्त होकर नोलम ने कहा, "मायादेवी, यह स्पष्ट हो चुका है कि आप इनकी पत्नी हैं। नारी जाति के उत्कर्ष में आपने अवश्य ही स्तुत्य कार्य किया है, यद्यपि यह कहना कठिन है कि जो कुछ आपने किया है, वही चरम का कल्याणमय भी है। किन्तु क्या आपके हृदय में इनके लिए इतनी अनुरक्ति भी न रही कि आप इनके दुःख-दर्द से सहानुभूति रख सकें ?"

मुस्करा कर माया बोली, "आशंकित न हूजिए। आपकी नारी जाति में मैं कलंक नहीं हूँ। इनकी बीमारी का सम्वाद पाते ही मैंने सुमधुर व्यंजनों की आशा को स्वेच्छा से त्याग दिया है; और यह तो आप भी जानती ही हैं कि मेरे—जैसी गरीबिन ने ही डाक्टर का शुल्क भी दे दिया है, यही नहीं, अस्पताल का इनका व्यय तक उठाने के

लिए मैं तैयार हो गई हूँ। फिर भी आप कहती हैं कि मुझ में इनके लिए सहानुभूति नहीं? किन्तु यदि मेरा स्वयम् का तापमान १०५° न हो उठा, या मेरे मस्तक में एक हज़ार एक बिच्छुओं की दंशन पीड़ा न उठ खड़ी हुई, तो इसमें मेरा क्या दोष है? सचमुच ही मुझ में आज इनके लिए कोई पतिव्रत का भाव नहीं है। मैं स्वीकार करती हूं कि एक दिन इस विश्व में मैंने इनके सिवा किसी को नहीं चाहा, किन्तु आज मेरे मन में जितनी आसक्ति किसी एक उपवीतलाल के लिए हो सकती है, उससे तनिक भी अधिक आसक्ति मैं नवनीतलाल के लिए अनुभव नहीं कर पाती।"

"किन्तु स्वयं नवनीतलाल—"

"हो सकता है कि वे आज माया को प्राण-पण से प्यार करते हों!— मैं इसका अविश्वास नहीं करूँगी। किन्तु नारी के प्रेम का मूल्य पुरुष नहीं समझ सकते, जिसने उस प्रेम को अपने में मूर्त्त नहीं किया, वह स्त्री हो या पुरुष, कभी जान ही नहीं सकता! प्रेम क्या सौदा है, जो यदि चार पैसे में तय न हुआ तो पाँच पैसे में तय हो जायगा? या कोई औषधि है, जिसकी स्वस्थ अवस्था में तो आवश्यकता नहीं होती, पर बीमार होते ही जिसके लिए हाय-हाय मच जाती है? प्रेम का वृक्ष होता है वृक्ष, और नारी के हृदय से जब वह उखड़ता है तो सम्पूर्ण भूमि को तोड़ता हुआ—उस गम्भीर गढ़े में आँसुओं की बाढ़ फिर किसी बीज की जड़ को जमने ही नहीं देती। पुरुष का व्यापार वहीं नहीं चलता—यहाँ सौदा न पटा तो वहाँ सही, इस बार न पटा तो दूसरी बार सही। गाँठ के दाम की बात पुरुष ही जानता है। पर देखिए, मेरी कार भी लौट आई। कहिए नवनीत बाबू—"

नवनीत सुन सब कुछ रहा था, धीरे-धीरे उसकी वाक्-शक्ति लुप्त होती जा रही थी, उसने बोलने का प्रयत्न किया तो मुँह में से रक्त निर्गत होने लगा, उसकी आँखें भर आईं।

कुछ प्रयत्न करके उसने कहा, बहुत ही धीरे—"बोल नहीं सकता, जरा पास आओ तो सुन सकोगी।"

माया और भी पास सरक गई, किन्तु अब उसे विश्वास हो रहा था कि नवनीतलाल का न बोलना ही अधिक अच्छा है।

नवनीत ने आँखें बन्द करलीं, फिर प्रयत्न करके कहने लगा, "माया जो कुछ तुमने कहा है, वह सच या झूठ, तुम्हीं जानो। अन्त समय में मैं तुम्हारे हृदय को दुखाना नहीं चाहता। अगर तुम अपनी ही कल्पना में सुखी रह सकती हो, तो मेरा अभिनन्दन है।"—कुछ साँस लेकर फिर बोला, "किन्तु अभी तक तो मैंने तुमसे कुछ माँगा नहीं। मैंने तुम्हें प्रेम किया या नहीं, यह मैं ही जानता हूँ, किन्तु क्या किसी दिन मेरा मन भी तुम्हें पकड़ाई दिया, अपने हृदय की गूढ़ पीड़ा को रखने के लिए कभी तुमने स्थान दिया हो, यह याद पड़ता है? तुम कहती हो आँचल पर लगी हुई धूल की तरह अपने हृदय को तुमने पत्नीत्व के समस्त जड़ संस्कारों को झाड़ दिया है, सचमुच ही इस सौर्य की तुलना नहीं मिल सकती, किन्तु क्या आँचल पसार कर मैंने ही तुमसे पत्नीत्व की भीख माँगी थी?—और जब तुम्हारे और मेरे सम्बन्ध के सूत्र टूट रहे थे, तब भी जिसकी याचना की अस्वीकृति के कारण यह सब कुछ हुआ था, वह कम-से कम मेरी तो नहीं थी! जाओ माया तुम्हारी मोटर तुम्हारी राह देख रही है, दावत में तुम्हारी अनुपस्थिति से अतिथियों के मुँह का स्वाद ही नहीं जम पा रहा होगा! तुम्हारी मेहरबानी के लिए धन्यवाद। नवनीतलाल घर की खुली हवा में मरना पसन्द करता है, दान की चिकित्सा से मिला हुआ जीवन नहीं।"

आवेश के कारण फिर उसके मुँह से रक्त निकलने लगा। आरती ने उसे चुप कर दिया, वह रक्त साफ करने लगी। किन्तु माया ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया, और कहा,

"आपकी राजी और नाराजी से मेरा कुछ बनता बिगड़ता नहीं; पर

यदि इस अवस्था में भी नाराज होंगे तो उसे बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकेगा खासकर जबकि दान की हुई चिकित्सा से आप दो बार प्राणदान पा चुके हैं। यदि गवाह की जरूरत हो —'

"हाँ, आरतीदेवी मौजूद है। गवाह तो इनसे भी बड़ी एक और थी, जिसे कोई इनकार नहीं कर सकता। दुर्भाग्य मेरा कि जन्म के कुछ ही दिन बाद मेरी माँ का गोलोकवास हो गया—आरतीदेवी की चिकित्सा वैसी ही रही है, इन दोनों के अहसानों को इन्कार किया ही कैसे जा सकता है। माया, इनसे अपने दान की तुलना करके अपने आपको छोटा करने की कोशिश न करो !—हरनाम हरनाम—अरे सम्हाल, सिर फट रहा है, सिर फट रहा है!" और एक वेग की वमन हो गई। अबकी बार बहुत रक्त निकल गया। चादर बिलकुल भीग गई। शायद अब और चादर थी नहीं। हरनाम ने नवनीत को सम्हाल, नवनीत अचेत हो गया।

माया ने यह पहली ही रक्त की वमन देखी थी, उसने शायद बीमारी को इतना भयानक समझा ही न था—यदि समझा होता तो वह इस तरह की व्यंग्यात्मक बातचीत करती या नहीं, यह तो कहना कठिन है, किन्तु शायद व्यंग्य को इतना कटु न बनाती। इस समय भी नवनीत अंतिम व्यंग्य को वह समझ गई थी, किन्तु इच्छा होते हुए भी, नवनीत की इस अवस्था को देखकर उसने अपने आपको रोक लिया। नीलम और आरती के लिए बीच-बचाव करना न सम्भव ही था, न स्वाभाविक ही, दोनों ही महान् आश्चर्य के भाव से इस अति नारी के वज्र के समान कठोर शब्दों को सुन रही थी, किन्तु अब आरती के लिए अपने आपको रोकना सम्भव न रहा, वह बोली—

"यह तो ठीक है कि आप ही इनकी पत्नी हैं, अपने प्रत्याख्यान का आपने प्रतिशोध भी काफी ले लिया है। और आपके प्रश्नों का उत्तर भी आप भी पा चुकी हैं—तब भी क्या आप यहीं ठहरना

पसन्द करेंगी ?— यदि नवनीत बाबू को कुछ होगया तो उसकी जिम्मेदार आप होंगी !"

माया ने तुच्छता की दृष्टि से आरती की ओर देखा, ईर्ष्या की कुटिल-रेखा उसकी आँखों के बादल में बिजली की भाँति कौंध उठी—अब भी नवनीत के ऊपर अधिकार बनाए रखने की भावना को वह दबा नहीं सकी, गोद में सिर रख कर बैठने का अधिकार तो पा ही चुकी है, चिता के ऊपर भी यदि इसी तरह बैठा जा सके— कल्पना-मात्र से माया के अधरों पर मुस्कान फैल गई। उसने कहा,

"सुन ही तो चुकी हो, मेरे से पत्नीत्व की भीख तो कभी इन्होंने माँगी नहीं, मेरा कोई भी भाव इन पर हावी नहीं है, तो फिर अगर इनको कुछ हुआ, तो वह तुम्हारे ही कारण होगा ! जिस कारण ने एक दिन इन्हें अपने अन्यतम मित्र को फाँसी के झूले पर लटकाने के लिए बाध्य किया, वही कारण आज इनके अन्यतम प्राणों के ऊपर भी प्रभाव डाल सकता है आरती ! बल्कि मेरी राय मानो, और तुम्हारा हृदय गवाही दे सके, तो तुम्हीं यहाँ से चली जाओ। यदि कभी इनको मरना ही पड़ा, तो वह कम से-कम अतृप्ति की मृत्यु तो न होगी !"

नीलम ने उत्तर दिया, "आप चाहे जितनी बड़ी हों, आप एक भद्र महिला का अपमान कर रही हैं मायादेवी !"

"अपमान ? अपमान की बात कहाँ से हो गई नीलम ?—बात तो है जिम्मेदारी की ! देखिए न, मैं भला कैसे किसी की जिम्मेदारी ले सकती हूँ ?—" रहा सवाल जाने का सो जाऊँगी तो सही, एक बार बसाकर नारी दूसरा घर नहीं बसा सकती, परन्तु कदाचित आरतीदेवी बसा सकें, वे भारतवर्ष की आर्य कन्या हैं, नारी कुल-तिलक हैं !"

क्रोध से आरती की आँखें जलने लग गईं। हरनाम पंखे से हवा कर रहा था, नवनीत के माथे पर बर्फ से भरी कपड़े की पट्टी लगी हुई थी। धीरे-धीरे नवनीत को चेत आ गया, वह आँखें खोल कर देखने लगा।

नीलम ने कहा, "मायादेवी, कठोरता से पुरुष को कुचल देने में ही नारीत्व की महिमा नहीं है, तब तो नारी से अधिक महत्व की वस्तु एक तोप हो जाती है, जिसके सामने मनुष्य एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। रहा प्रश्न आरती का, मेरी प्रार्थना है कि आप इसे स्थिर मस्तिष्क से सोचें, आरती के ऊपर आप ज्यादती कर रही हैं।"

माया ने कहा, "यह खूब रही, आप कहती हैं मैं आरती के ऊपर ज्यादती कर रही हूँ, आरती कह रही हैं, नवनीत के ऊपर ज्यादती कर रही हूँ। यदि नवनीत बाबू को होश होता, ये कदाचित कहते, मैं नीलम पर ज्यादती कर रही हूँ। पर, जाग तो रहा हैं नवनीत बाबू, इन्हीं से न पूछ लीजिए। यही आरतीदेवी का मार्ग बता देंगे।"

नवनीत ने आँखें खोलीं। प्रश्न सूचक दृष्टि से उसने तीनों की ओर देखा।

आरती ने नवनीत को उद्देश्य करके कहा, "नहीं देवरजी, अब आपको कुछ भी बोलने न दूँगी। और सुनिए, आज संध्या की ही गाड़ी से हम लोग मानपुर चल रहे हैं, आप इसमें कोई ना-नुकर नहीं कर सकेंगे। आज से इस भाभी का शासन आपके ऊपर रहेगा। और मायादेवी, आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा दुर्नाम मेरे साथ लगाइए, कह दीजिए कि मृत पति के सूने आसन पर मैं इन्हें बिठाना चाहती हूँ—किन्तु इनकी सेवा से मुँह न मोड़ूँगी। यदि आपको सौतिया डाह हो रहा हो, तो आपकी कार नीचे खड़ी हुई है।"

नवनीत संत्रस्त हो उठा, बड़ी चेष्टा करके बोला, "भाभी—भाभी क्या कह रही हैं आप? बल्कि आपसे तो अधिक मेरी हितू माया है, जिसने जीवन भर मुझे पत्नी के नाम से सिर तो नहीं झुकाने दिया—हे भग—"

आगे कुछ कहा नहीं जा सका। रक्त का वमन, और मूर्च्छा। मानों प्राण कण्ठ पर आ लगे, आँखों की पुतलियाँ ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ने लगीं, मुँह सारा सफेद हो गया। आरती ने और माया ने डरकर एक साथ

ही साथ नाड़ी देखी, देखा कि नाड़ी हाथ में नहीं आ रही है, हाथ-पैर ठण्डे पड़ने लगे। सभी के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हरनाम रोने लगा, नीलम और आरती की आँखें भर आईं।

नीलम ने माया का कन्धा पकड़ कर कहा, "बहन !"

माया ने नीलम की ओर देखा !

"क्या होगा ?"

माया ने एक क्षण नवनीत के बदलते हुए चेहरे को देखा, दूसरे क्षण भारी वातावरण को देखा, मध्याह्न था, सूर्य सिर के ऊपर चढ़ कर प्रलय की दृष्टि से समस्त सृष्टि को देख रहे थे। सम्पूर्ण वनस्पति झुलस कर अपने ही चरणों पर पड़ी हुई थी। वायु का कहीं नाम-निशान न था।

आरती ने कहा, "मुझे क्षमा कर दीजिए मायादेवी, इन्हें अस्पताल भिजवा दीजिए !"

माया ने मानों किनारा पा लिया, बोली "हरनाम, जाओ, मोटर ले जाओ, जल्दी डॉक्टर को बुला लाओ ! ड्राइवर जानता है।"

हरनाम नीचे उतर गया, और बड़े सर्जन को बुलाने के लिए मोटर रवाना हो गई !

नवनीत को एक बार फिर चेत हो आया, उसने आँखे खोलीं, आधी से अधिक न खुल सकीं, किन्तु एक बार फिर वह खिड़की से बाहर शुभ्र जलते हुए आकाश को देख सका। कमरे की सभी सामग्री मानों किसी दूसरे लोक की थी। उसकी आँखों में आँसू भर आए।

बहुत ही क्षीण स्वर में उसने कहा, "माया, मुझे क्षमा कर दो !"

माया ने शुष्क स्वर में कहा, "हिम्मत न हारिए नवनीत बाबू, डाक्टर को बुलाने गया है, आप अच्छे हो जाएँगे !"

"डाक्टर ?—इससे तो तुलसी और गंगाजल अधिक लाभ करेगा देवी !"

फिर आरती की ओर अभिमुख होकर बोला, उसी म्रियमाण स्वर

में—"भाभी, आप मेरी मां हैं, कपूत की मां। कपूत के अपराधों को मां नहीं देखती, और मां के सुकृत को कपूत नहीं देखता। आपने अपनी टेक रक्खी, और मैंने अपनी! अब आज क्षमा मांग कर आपकी महिमा को कम नहीं करूँगा। आशीर्वाद दो मां, कि जो जीकर नहीं पा सका, मरने पर तो उस शांति को प्राप्त कर सकूँ।"

आरती की आँखें बहती रहीं। नवनीत ने अपनी उड़ती हुई आँखों को संयत किया; एक क्षण का विश्राम लेकर उसने नीलम की ओर दृष्टि फेरी, बोला—

"नारी के चिरंतन सत्य को मैं केवल तुम में खोज पाया हूँ नीलम!—तौलने की मेरी तराजू चाहे गलत रही हो, किन्तु मुक्त तेज के दर्शन मैंने केवल तुम में पाए हैं, और उस मुक्त तेज का सामंजस्य मुझे मिला है तुम्हारी मातृत्वमयी करुणा में! तुम रमणियों की आदर्श हो। तुम चाहे भारत में पैदा न हुई हो, किन्तु भारत की भूमि उसकी संस्कृति तुम से गौरवान्वित है। दम्भ में मैंने तुम्हारा अपमान किया है; मैं क्षमा चाहता हूं नीलम! कर दोगी न?"

उसके बाद शेष में पुनः उसने माया की ओर दृष्टि डाली, "क्या कहूँ तुम्हें! तुम नारी के भविष्य का स्वप्न हो, नीलम के कल्याण के ऊपर तुम्हारा आसन है, किन्तु उसकी चकाचौंध से आँखें मुँद जाती हैं। आज के जागे हुए लोभ को कहाँ रखूँगा माया?—अपने मन को दुर्बल कर के मेरी आखरी यात्रा को भारी मत करना—मत करना माया!"

नवनीत ने आखें बन्द कर लीं—फिर वे आँखें कभी न खुलीं; किन्तु एक बार और क्षीण स्वर में सुनाई दिया—

"हरनाम मेरे लिए हरिनाम की भांति रहा है! उससे कहना माया, कि उसे मैं अन्त समय तक याद कर के शांति पाता रहा हूं!"

—बस इसके आगे नवनीत की कथा को स्पन्दन नहीं मिला!

आँसू पोंछते हुए नीलम ने कहा, "बहन, क्या व्यवस्था होगी?"

माया ने कहा, "हरनाम को लौट आने दो—"

आरती ने कहा, "मेरी प्रार्थना मानेंगी ? इनका अन्तिम संस्कार तो सम्मान के साथ होने दीजिएगा !"

माया ने मुँह से कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु वह शव के मुंह के पास गई, दोनों हाथों से शव के गालों को दबा कर बड़े स्नेह से बोली—

"वीर, सचमुच तुम पुरुष थे; तुमने वीर की मृत्यु को वरण किया है !—सचमुच आज माया विधवा हो गई।"

इसके बाद उसने अपने सिर पर हाथ फेरा, उसके भाल का दीप्त सिन्दूर एक ही क्षण में आँचल में लगी हुई धूल के समान साफ हो गया ! हाथ की सोने की चूड़ियों को खोल कर उसने शव के चरणों में रख दिया, आरती और नीलम अश्रु-निरुद्ध आँखों से आश्चर्य के साथ निर्वाक सब कुछ देखती रहीं।

किन्तु फिर माया स्थिर न रह सकी। वर्षों का बंधा हुआ बांध टूट गया, अकस्मात् ही कटी हुई वृक्ष शाखा के समान वह शव के वक्ष पर गिर कर मूर्छित हो गई।

नीलम और आरती ने उसे सम्हालने का प्रयत्न किया, किन्तु वह तब तक उस शव से विरत न हुई, जब तक कि उसे श्मशान ले जाने के लिए वहां से उठा न लिया गया।